CHAND.—I don't know.

CHA'Ṇ.—(*Smiling*) How possibly can you not know it? O merchant, danger stands (immediately) over your head, its remedy is far away.[1] Besides, as Vishṇugupta eradicated Nanda—(*Gesticulating the feeling of modesty*) so, do not even suppose that the minister Rākshasa will extirpate Chandragupta. Just see—

Who can attempt to separate from king Chandragupta the sovereignty, like moonlight from the moon, (now) consolidated and giving great delight to the world, which, unsteady as it often was, could not be made firm (even) at the time when Nanda lived, by eminent ministers such as Vakranāsa and others who were brave and skilled in politics? (22)

Moreover,

Who desires to snatch away &c. (Śloka 8)

चन्दनदास—क्या करूँ मैं वाणी का स्वामी नहीं—बेबस गलती कर बैठता हूँ।

चाणक्य—सेठजी चन्द्रगुप्त के राज्य में ऐसी चालें नहीं चलेंगी। राक्षस के परिवार को हमारे हवाले कर दो, और फिर तुम्हें कोई गद्दार नहीं समझेगा।

चन्दनदास—गुरुदेव, मैंने कहा न कि अमात्यराक्षस का परिवार मेरे घर में था।

चाणक्य—अव कहाँ चला गया?

चन्दनदास—मुझे नहीं मालूम।

चाणक्य—(नकली मुस्कराहट लाते हुए) कैसे नहीं मालूम? सेठजी, मुसीबत सिर पर खड़ी है, और (अभय) बूटी पड़ी है हिमालय पर। और फिर, जैसे नन्द को विष्णुगुप्त समूल—(इतना ही मुंह से निकला था कि लज्जा का आवरण डालते हुए) चन्द्रगुप्त को अमात्यराक्षस उखाड़ परे फेंकेगा, कहीं इस गलती में न रहना। देख लो—

नन्द के जीते-जी—वक्रनास आदि विक्रमशील, नीतिविशारद महामन्त्रियों के रहते भी—जो राज्यलक्ष्मी सदा डांवाडोल ही रही, स्थिर नहीं हो पाई, उसी को आज जब वह राष्ट्र के एकीकरण में तथा लोकानुरंजन में निरत है—कौन है जो चन्द्रगुप्त से छीन सकता है? कौन है जो सारी दुनिया को एक चादर-सी में लपेट रही चांदनी को चाँद से पृथक् कर सकता है? (२२)

---

[1] After this the eds. read—
CHAND.—(*To himself*)
Overhead is the deep thunder of clouds; the beloved is far away. What is this that has come to pass! On the Himālayas are the blazing herbs (*i. e.* of wonderful efficacy), whereas the serpent is seated on the head.

चन्द०—(स्वगतम्) फलेन संवादितमस्य विकत्थितम्। (फलेण संवादिदं[1] से विकत्थिदम्)

(नेपथ्ये कलकलः[2])

चाण०—शार्ङ्गरव, ज्ञायतां किमेतत्।

शिष्यः—तथा[3]। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) उपाध्याय एष राज्ञ-[4]श्चन्द्रगुप्तस्याज्ञया राजापथ्यकारी क्षपणको जीवसिद्धिः सनिकारं नगरान्निर्वास्यते।

चाण०—क्षपणक[5] अहह। अथवा अनुभव राजापथ्यकारित्वस्य फलम्। भोः श्रेष्ठिन् चन्दनदास एवमयमपथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा। तत्क्रियतां पथ्यं सुहृद्वचः[6]। समर्प्यतां राक्षसगृहजनः। अनुभूयतां[7] चिरं विचित्रो राजप्रसादः।

चन्द०—नास्ति मे गेहे अमात्यगृहजनः। (णत्थि[8] मे गेहे अमच्चघरअणो।)

(नेपथ्ये पुनः कलकलः[9])

चाण०—शार्ङ्गरव, ज्ञायतां किमतेत्।

शिष्यः—तथा। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) उपाध्याय, अयमपि[10] राजापथ्यकार्येव कायस्थः शकटदासः शूलमारोपयितुं नीयते।

चाण०—स्वकर्मफलमनुभवतु। भोः श्रेष्ठिन् एवमयं राजापथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा न मर्षयिष्यति राक्षसकलत्रप्रच्छादनं भवतः। तद्रक्ष[11] परकलत्रेणात्मनः कलत्रं जीवितं च।

कश्चालयेदिति भावः ॥ २२ ॥ आस्वादितेति। एतत्स्वाम्यनुरागप्रकाशविशिष्टवचनं पुष्पम्। [संवादितं सफलत्वाद्याथार्थ्यमापादितमित्यर्थः।] मुण्डी निष्परिग्रहस्तपस्वी निकारानर्हः इति कारुण्याविष्करणार्थोऽहहशब्दः। अथवेति राजापथ्यकारी यः कश्चिदपि निग्राह्य एवेति समाधानम्। सुलभेष्विति। परस्य परकीयार्थस्य संवेदने समर्पणे कृते सति स्वस्यार्थलाभेषु सुलभेषु सत्सु

---

[1] संपादिदं सोहृदि दे, [2] ततो ने०; उत्सारणा क्रियते, [3] यदाज्ञापयत्युपा०, [4] देवस्य, [5] कथं क्षपणकः, [6] वचनं, [7] अनुभूयन्तां विचित्रा राजप्रसादाः, [8] अज्ज गेहे सन्तं समप्पेमि कुदो असन्तं समप्पीअदि इति पाठः, [9] उत्सारणा क्रियते, [10] अयमसौ; मपि राजाज्ञयैव, [11] रक्ष्यताम्।

CHAND.—His bragging has been made consistent with (justfied by) the result.

(*A confused noise behind the scenes*)

CHA'Ṇ.—Śārṅgarava, ascertain what noise it is.

PUPIL.—As you command. (*Exit and re-enter*) Sir, it is the Jaina mendicant, Jīvasiddhi, a traitor to the king, who, by the command of his Majesty Chandragupta, is being turned out of the city with disgrace.

CHA'Ṇ.—I am sorry for you, oh Kshapaṇaka. Or why? taste (reap) the fruit of being treacherous to the king. O merchant Chandanadāsa, the king thus inflicts a severe punishment upon traitors. Act up, therefore, to the salutary advice of a friend. Surrender the family of Rākshasa and enjoy the manifold royal favours for a long time.

CHAND.—The family of the minister Rākshasa is not in my house.

(*Renewed noise behind the curtains*)

CHA'Ṇ.—Śārṅgarava, see what the matter is.

PUPIL—As you command. (*Exit and enter again*) Here is this another felon, the *Kāyastha* Śakaṭadāsa, being taken away for being impaled.

CHA'Ṇ.—Let him suffer the consequences of his own acts. Merchant, this king who is thus merciless in his punishment of traitors will not excuse your concealment of the family of Rākshasa. Save, therefore, your wife and life by delivering up the wife of another.

और कौन है—

चन्दनदास—(मन-ही-मन) सफलता ने इसकी गर्वोक्ति को चरितार्थ कर ही दिखाया है (क्या जवाब बन सकता है ?) ।

(नेपथ्य में शोर)

चाणक्य—शार्ङ्गरव, बेटा, देखना तो जाकर माजरा क्या है ?

शिष्य—बहुत अच्छा गुरुजी (जाकर, और फिर लौटकर) गुरुजी, महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा से यह राजद्रोही जैनभिक्षु जीवसिद्धि को बेइज्जती के साथ शहर से निकाला जा रहा है ।

चाणक्य—जैनभिक्षु के साथ यह ! शायद ठीक ही है—भुगतो, बेटा, राजद्रोह का फल । सेठजी, देख लो घर के द्रोहियों के प्रति हमारे महाराज कितने कठोर हैं । एक मित्र की मानो राक्षस का घर हमारे हवाले कर दो और सारी उम्र राजकीय अनुग्रहों को यथापूर्व भोगते रहो ।

चन्दनदास—राक्षस का परिवार मेरे घर है ही नहीं ।

(नेपथ्य में फिर शोर)

चाणक्य—शार्ङ्गरव, देखना तो यह फिर क्या है !

चन्द०—आर्य किं मे भयं दर्शयसि सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षसस्य गृहजनं न समर्पयामि किं पुनरसन्तम् । (अज्ज किं मे भअं दावेसि । सन्तं वि गेहे अमच्चरक्खसस्स घरअणं ण समप्पेमि किं उण असन्तं ।)

चाण०—चन्दनदास एष ते निश्चयः ?

चन्द०—बाढम् । एष मे निश्चयः । (वाढं एसो[1] मे णिच्चओ ।)

चाण०—(स्वगतम्[2]) साधु चन्दनदास साधु ।

> सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जनः[3] ।
> क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिबिना विना ॥ २३ ॥

(प्रकाशम्) चन्दनदास[4], एष ते निश्चयः ।

चन्द०—बाढम् । (वाढम्[5])

चाण०—(सक्रोधम्) दुरात्मन्[6], दुष्टवणिक्, अनुभूयतां तर्हि नरपति-[7]क्रोधः ।

चन्द०[8]—सज्जोऽस्मि । अनुतिष्ठतु आर्यः आत्मनोऽधिकारसदृशम् । (सज्जोह्मि । अणचिट्ठदु अज्जो अत्तणो अहिआरसरिसं[9] ।)

चाण०[10]—शार्ङ्गरवउच्यतामस्मद्वचनात्कालपाशिको दण्डपाशिकश्च । शीघ्रमयं दुष्टवणिक् निगृह्यताम्[11] । अथवा तिष्ठतु । उच्यतां[12] दुर्गपालो विजयपालः गृहीतगृहसारमेनं सपुत्रकलत्रं संयम्य तावद्रक्ष यावन्मया वृषलाय कथ्यते । वृषल एवास्य प्राणहरं[13] दण्डमाज्ञापयिष्यति ।

स्वार्थं तृणीकृत्य परसंरक्षणरूपमेवं दुष्करं कर्म जने लोके एकेन शिबिना विना त्वदन्यः कः कुर्यात् । शिबिरपि कृते पुरा कृतयुगे कृतवान् । त्वं तु इदानीं पापिनि कलौ करोषीति ततोप्यतिशयितसुचरितस्त्वमिति भावः । इदमपि पुष्पम् ॥२३॥

---

1. एसो स्थिरो, धीरो, 2. आत्म०, 3. जने, 4. श्रेष्ठिन्, 5. वाढं एसो मे स्थिरो णिच्चओ, 6. ०त्मन् तिष्ठ, 7. नरपतेः, पति-राज-कोपः, 8. [बाहू प्रसार्य], 9. अणुरूअं, 10. सक्रोधं खड्गमाकृष्य दुरात्मन् दुष्ट । इत्यधिकम्, 11. शास्यताम्, 12. उच्यतामस्मद्वचनात् दुर्गपालको विजयपालकः; पालश्च, 13. प्राणहरणं, सर्वस्वहरं ।

Chand.—Sir, why do you seek to intimidate me? I would not deliver up the family of the minister Rākshasa, even if it were in my house? What then, when it is not in my house?

Cha'ṇ.—Chandanadāsa, is that your resolution?

Chand.—Yes, that is my firm resolve.

Cha'ṇ.—(*To himself*) Bravo, Chandanadāsa, you ought to be praised.

When the acquisitions of objects (or money) are easy by delivering up what belongs to (or, by imperiling) another, who, Śibi excepted (existing no more), can, in this world, now do this, so hard to be done? (23)

(*Aloud*) Chandanadāsa, is this your resolve.

Chand.—Ay, it is.

Cha'ṇ.—(*Wrathfully*) Oh villain, thou wicked merchant, experience then the wrath of the king.

Chand.—I am prepared. Your Honour may do what befits your (high) office.

Cha'ṇ.—Śārṅgarava, say at my bidding to Kālapāśika and Daṇḍpāśika—Let this rascally merchant be pinioned immediately. Or, wait. Let Vijayapāla, the jail superintendent (or, the keeper of the fort) be told to detain him in prison with his wife and son, after having confiscated all the valuables in his house, till I shall have informed Vṛshala of the matter. Vṛshala himelf will pass the sentence of death upon him.

शिष्य—बहुत अच्छा, गुरुजी। (जाकर और फिर लौटकर) गुरुजी, यह एक और राजद्रोही है–शकटदास–कायस्थ–जिसे शूली पर चढ़ाने के लिये लिये जा रहे हैं।

चाणक्य—भुगते अपने किये को। सेठजी, राजद्रोहियों के बारे में यह रवैय्या है हमारे कठोर-रूप महाराज का–राक्षस के परिवार को छुपाकर शरण देना उन्हें हरगिज सहन न होगा। अपने पुत्र-कलत्र की खैर चाहते हो तो दुश्मन की पत्नी को चुपचाप शासन के हवाले कर दो।

चन्दनदास—गुरुदेव, क्या इस तरह मुझे धमका लेंगे? अमात्यराक्षस यदि मेरे घर में हो भी, तब भी, मैं उसे आपके हवाले नहीं करने का। और, अब, जबकि वह है ही नहीं—!

चाणक्य—चन्दनदास यही है तुम्हारा निश्चय?

चन्दनदास—हाँ, यही मेरा निश्चय है।

चाणक्य—(मन-ही-मन) शाबाश चन्दनदास, शाबाश।

जब एक, आदमी को, बस, पराये हाथों सौंप देने से ही इतना बड़ा आर्थिक लाभ होता (स्पष्ट दिखाई देता) हो, इतिहास में–और वह भी इस जमाने में–कहीं मिल सकेगा कोई—शिवि के अतिरिक्त—जो इतना बलिदान कर सके? (२३)

शिष्यः—यदाज्ञापयत्युपाध्यायः । श्रेष्ठिन्, इत इतः ।

चन्द०--आर्य[1] अयमागच्छामि । (स्वगतम्) दिष्टचा मित्रकार्येण मे विनाशो न पुरुषदोषेण । (अज्ज अअमाअच्छामि । दिट्ठिआ मित्तकज्जेण मे विणासो[2] ण पुरिसदोसेण ।)

(परिक्रम्य शिष्येण सह निष्क्रान्तः)

चाण०—(सहर्षम्) हन्त लब्ध इदानीं राक्षसः । कुतः ?

त्यजत्यप्रियवत्प्राणान्यथा तस्यायमापदि ।
तथैवा[3]स्यापदि प्राणा नूनं[1] तस्यापि न प्रियाः ॥ २४ ॥

(नेपथ्ये कलकलः)

चाण०—शार्ङ्गरव, शार्ङ्गरव !

(प्रविश्य)

शिष्यः—उपाध्याय, आज्ञापय ।

चाण०—किमेष[5] कलकलः ।

(निष्क्रम्य, विभाव्य पुनः प्रविश्य[6])

शिष्यः—उपाध्याय एष खलु शकटदासं वध्यमानं वध्यभूमेरादाय[7] समपक्रान्तः सिद्धार्थकः ।

वृषल एवेति । इदं छद्मना हितागमननिरोधनं निरोधः । छद्मना कपटेन हितागमनाय स्वेष्टसिद्धये चन्दनदासनिरोधात् । यद्वा हितं राक्षसमागमयतीति हितागमः हितागमनस्य हितराक्षसागमनहेतुभूतस्य चन्दनदासस्य निरोधात् ।

[पुरुषदोषान्मानुषतासुलभापराधात् । त्यजतीति । तस्य राक्षसस्यापदि तत्पुत्रकलत्रादीनां समर्पण उत्पत्स्यमानायामापदि तन्निवारणार्थमित्यर्थः । अप्रियवदनिष्टवस्तुत्यागवत् । तथा अस्यापदि प्राणहानिरूपायामुत्पत्स्यमानायां तद्वारणाय ।]

---

1. [उत्थाय] आर्य, 2. जणिदो इत्यधिकम्, 3. तथास्याप्यापदि, 4. ध्रुवम्, 5. ज्ञायतां किमेतत्, 6. प्रविश्य सम्भ्रान्तः, 7. वध्यस्थानात् ।

PUPIL—As the Preceptor commands. Merchant, this way.

CHAND.—Here do I follow you, sir. (*To himself*) Fortunately I suffer ruin for the sake of a friend and not for any fault of mine, common to man. [*Exit with* PUPIL.

CHA'Ṇ.—(*With delight*) I am glad, Rākshasa is now in my hand. For,

Just as this (merchant) sacrifices his life as if it were unwelcome to him when he (Rākshasa) is in calamity, so indeed, will life become a burden (lit. not dear) to him (Rākshasa) when this man is in peril. (24)

(*Noise behind the scenes*)

CHA'Ṇ.—Śārṅgarava ! Śārṅgarava !

PUPIL—(*Entering*) Your command, Preceptor ?

CHA'Ṇ.—What noise is this ?

PUPIL—(*Goes out, ascertains the cause and re-entering*) Sir, here has Siddhārthaka escaped from the place of execution having carried with him Śakaṭadāsa who was going to be killed.

(व्यक्त) चन्दनदास, फिर यही रहा ना तुम्हारा निश्चय ?

चन्दनदास—बिलकुल ।

चाणक्य—(गुस्से में आकर) कमबख्त धोखेबाज बनिये, ले भुगत फिर राजकीय कोप का फल !

चन्दनदास—मैं तैयार हूँ। गुरुदेव का अनुग्रह है। कर लीजिये जितना भी आपके सामर्थ्य में है ।

चाणक्य—शार्ङ्गरव ! जाओ, मेरे नाम से कालपाशिक और दण्डपाशिक को कह दो कि अविलम्ब इस लालची बनिये को आकर हथकड़ी डाल दो। नहीं, रहने दो। दुर्गपाल (जेल सुपरिण्टैण्डैण्ट) विजयपाल से कहो कि इसकी सारी धन-सम्पत्ति को कुर्क कराके, स्त्री तथा बच्चों समेत इसे कैद कर लो और इस पर कड़ी निगरानी रखो। जब तक मैं स्वयं इसकी खबर चन्द्रगुप्त को नहीं दे देता कि वह स्वयं आकर अपने मुँह से इसको मृत्युदण्ड की आज्ञा दे ।

शिष्य—सत वचन महाराज ! सेठजी, इधर से, उधर से ।

चन्दनदास—आ तो रहा हूँ महाराज। मैं कितना सौभाग्यवान् हूँ कि मेरी मौत भी आई तो एक मित्र के निमित्त—किसी मानव दुर्बलता या पाप के कारण नहीं ।

(कुछ रास्ता तय करते हुए शिष्य के साथ निकल जाता है)

चाणक्य—लो, अब हाथ आ गया राक्षस । देखो, ना—

मित्र आपत्ति में है, तो इसे प्राणों से कोई मोह नहीं। यही अवस्था उधर उसकी भी होगी (वह भी प्राणों का मोह छोड़कर आप-से-आप बाहर निकल आयेगा) जब उसे पता लगेगा कि मेरा मित्र फंस गया है। (२४)

(नेपथ्य में शोर)

चाण०—(स्वगतम्) साधु सिद्धार्थक[1], कृतः कार्यारम्भः[2] । (प्रकाशम्) प्रसह्य किमपक्रान्तः (सक्रोधम्[3]) वत्स उच्यतां भागुरायणो यथा त्वरितं[4] संभावयेति ।

(निष्क्रम्य प्रविश्य च)

शिष्यः—(सविषादम्) उपाध्याय, हा धिक् कष्टमपक्रान्तो भागुरायणोऽपि ।

चाण०—(स्वगतम्) व्रजतु कार्यसिद्धये । (प्रकाशम्, सक्रोधमिव) वत्स,[5] उच्यन्तामस्मद्वचनाद्भद्रभटपुरुषदत्तडिङ्गरातबलगुप्तराजसेनरोहिताक्षविजयवर्माणः शीघ्रमनुसृत्य[6] गृह्यतां दुरात्मा भागुरायण इति ।

शिष्यः—तथा ।[7] (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य सविषादम्) हा धिक्, कष्टं सर्वमेव तन्त्रमाकुलीभूतम् । तेऽपि खलु भद्रभटप्रभृतयः प्रथमतरमुषस्ये[8]वापक्रान्ताः ।

चाण०—(स्वगतम्) सर्वेषामेव[9] शिवाः पन्थानः सन्तु । (प्रकाशम्) वत्स, अलं[10] विषादेन । पश्य—

ये याताः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामो[11]द्यमाः ।
एका केवलमेव[12] साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलन[13]दृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ॥ २५ ॥

कृतः कार्यारम्भ इति । अयमपि विन्दुः । त्वरितं सम्भावयेति निगृह्य समाधाय वा सिद्धार्थकमानयेति बाह्योऽर्थः । त्वमपि तेन सह गत्वा कार्यं साधयेति आन्तरो गूढार्थः ।

[अपक्रान्तो गूढं पलायितः । तन्त्रं प्रकृतिमण्डलमाकुलीभूतं व्यत्यस्तम् । अनिष्टं सर्वतः प्रसक्तमित्यर्थः ।] ये इति । ये किमपि हृदये प्रधार्य अस्मद्विरोधं

---

1. ०र्थक साधु, 2. त्वयेत्यधिकम्, 3. सक्रोधमिव, 4. त्वरितमेनं, 5. भद्र, 6. मुपसृत्य, 7. यदाज्ञापयात्युपाध्यायः । 8. रजन्यामेव, अप्रभातायमेव रजन्याम्; प्रथमतः प्रभातायामेव, 9. सर्वथा, सर्वेषाम्, 10. कृतं, 11. सका०, 12. अर्थसा०, 13. नन्दोत्पाटन ।

Cha'ṇ.—(*Aside*) Well done, Siddhārthaka; you have set yourself about your work. (or, well have you begun your work, O, Sidha.) (*Aloud*) What, has he gone away by force ? (*Angrily*) Child, tell Bhāgurāyaṇa that he should immediately overtake him.

Pupil—(*Having gone out and re-entering, in alarm*) Alas, sir, what a misfortune ! Bhāgurāyaṇa also has run away.

Cha'ṇ.—(*Aside*) Let him go to accomplish his mission. (*Aloud, with feigned anger*) Child, say to Bhadrabhaṭa, Purushadatta, Dingarāta, Balagupta, Rājasena, Rohitāksha, and Vijayavarman that I command them to quickly pursue the villain Bhāgurāyaṇa and arrest him.

Pupil—I will execute your command, sir. (*Exit and re-enter with dejection*) Alas, what a calamity ! Oh ! the whole machinery is out of gear (*i. e.* the whole arrangement is unhinged or gone out of order). Those persons too, Bhadrabhaṭa and others, were the first to go away this morning

Cha'ṇ.—(*To himself*) May their way be prosperous in all respects. (*Aloud*) Child, do not be dejected; for,

Those who have already gone, having formulated some scheme in their mind, are, indeed, gone; let those also who still remain, by all means try to go away, just as they live. Let only my intellect, which by itself is more than a hundred armies in the accomplishment of desired objects, and the greatness of whose prowess was seen in (*i. e.* proved by) the destruction of the Nandas, not forsake me. (25)

चाणक्य—शार्ङ्गरव ! शार्ङ्गरव !

(एक ओर से)

शिष्य—आज्ञा, गुरुजी।

चाणक्य—यह शोर क्या है ?

शिष्य—(निकलकर, देख-दाखकर, लौटकर) यह, गुरुजी, सिद्धार्थक—शकटदास को शूली-घर से—मौत के मुंह में से—बचा-निकाल ले भागा है !

चाणक्य—(स्वगत) खूब, सिद्धार्थक तेरे काम का श्रीगणेश भी बहुत खूब रहा। (व्यक्त) क्या कुछ जोर-जबरदस्ती करके भाग निकला है ? बेटा, मेरी आज्ञा से भागुरायण से कहो कि एकदम सिद्धार्थक का पीछा करें।

(उत्थाय[1]) एष दुरात्मनो भद्रभटप्रभृतीनाहरामि[2]। (प्रत्यक्षवदाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा, आत्मगतम्) दुरात्मन् राक्षस, क्वेदानीं गमिष्यसि। एषाहमचिराद्भवन्तम्–

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वलदानशक्तिम्
  उत्सेकिना[3] मदबलेन[4] विगाहमानम्[5]।
बुद्ध्या निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियायाम्
  आरण्यकं गजमिव प्रगुणी[6]करोमि ॥ २६ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति मुद्रालाभो[7] नाम प्रथमोऽङ्कः ।

मनसि कृत्वेति बहिः। अस्मत्कार्यमेव साधयितुमिति गूढम्। [ते पूर्वंगता एव। गमने कामं यथेच्छं प्रकामः प्रकृष्ट उद्यमो येषां ते प्रकामोद्यमा भवन्तु। नन्दानामुन्मूलने० नेन वा दृष्टः महिमा यस्याः सा मम बुद्धिः।] सर्वा अपि प्रकृतयः सुखेन यान्तु न हि तदवलम्बेनाहं कार्यं साधये बुद्धिबलेनैव सर्वं साधयामीत्यर्थः। अयं चतुर्वणनिर्वर्णनं वर्णसंहारः। ब्राह्मणादिश्चतुर्वर्णान्तिः पातिनीनां प्रकृतीनां ये याता इत्यादिना निर्वर्णनान्निर्देशात्। त्रयोदशमङ्गम्। तृतीयाङ्के वक्ष्यमाणं तेषामुदन्तमानेष्यामीति गूढाशयः॥ २५॥

स्वच्छन्दमिति। स्वच्छदं निरंकुशं स्वपक्षमनाश्रित्य विजातीयं परपक्षं कथमाश्रितोऽसीति तव कोऽपि नियन्ता नास्तीत्यर्थः। एकचरमिति। वयमत्र नन्दवंशसंबन्धिनः सर्वे स्वजना वर्तामहे तान्विहाय तत्रैकश्चरसीति भावः। उज्ज्वलदानशक्ति परकृत्योपजापार्थं महता केशसञ्चयेन स्थापितः शकटदास इति वक्ष्यमाणबहुव्ययकारिणम्। उत्सेको दुरभिमानः। अरातिहस्तगतो विनश्येन्न तु चन्द्रगुप्तेन सन्दधीतेति षष्ठाङ्के वक्ष्यमाणदुरभिमानवता मदबलेन विगाहमानमस्मदपकाराय चेष्टमानं त्वामारण्यकं गजमिव प्रगुणी करोमि। यथा आरण्यको दुष्टगजः शनैर्गर्तपात दृढरज्जुबन्धनादिनोपायेन संवाहनादिक्रियायां प्रगुणीक्रियत एवं त्वामतिसंकटे पातयित्वागतिकतया यथा स्वयमेव प्रवणो भवसि तथा क्रियायां वृषलसाचिव्यक्रियायां वशीकरोमीत्यर्थः। एष यत्नः। 'प्रयत्नस्तु

---

1. उत्थाय प्रत्यक्षवदाका०, 2. ग्राहयामि, ग्राहयिष्यामि, 3. उत्सेकिनम्, 4. बलमदेन, 5. विगाह्यमानम्, 6. ०प्रवणं––णीकरोमि, 7. इति मुद्रा० नाम्नि नाटके, मुद्राराक्षसे, प्रथमोऽङ्कः।

(*Rising*) Here shall I bring back the wicked Bhāgurāyaṇa and others. (*Fixing his glance on something in the air, to himself*) Oh Rākshasa, of wicked resolve, where can you go now ? Here shall I, ere long,

—capture you by (the force of) mg intellect and make you apply yourself to work in the interest of Vṛshala; you who are acting alone at will, whose power to give (munificence) is brilliant (great) and who are laying out deep plots in your overbearing pride, just as one should catch by contrivance and break to labour a wild elephant, who wanders all alone in full freedom, whose capacity to shed rut is great and who roams (in the woods) through the exuberant strength of youthful vigour. (26)

[*Exeunt Omnes.*

END OF ACT I.

(बाहर जाकर और फिर आकर)

शिष्य—(जैसे रोते हुए) हाय, भागुरायण भी नौ-दो-ग्यारह हो गया।

चाणक्य—(मन-ही-मन) जाये, सफलता मिले उसे अपने कार्य में।

(प्रकट, जैसे बड़े गुस्से में हो) बेटा, जाओ और भद्रभट, पुष्पदत्त, हिंगुरात, कलागुप्त, राजसेन, रोहिताश्व, विजयवर्मा से हमारा आदेश बोल दो कि फौरन भागुरायण का पीछा करे और उसे पकड़ लाये।

शिष्य—जो आज्ञा, गुरुजी, (जाकर, फिर उसी उदासी के साथ लौटते हुए) यहाँ तो सारा आवा ही गड़बड़ में पड़ गया। लगता है—ये भद्रभटादि तो पहले ही गोधूलि के ही खिसक चुके हैं।

चाणक्य—(मन-ही-मन) सबकी यात्रायें सफल हों।
(प्रकट) बेटा, दुःखी क्यों होते हो ? देखो—

जिनके मन में कुछ और था और, इसीलिये, वे हमारा साथ छोड़ गये, वे तो गये ही; जो साथ हैं, उनके भी दिल में आये—खुशी से छोड़ जायें। बस, एक–सैकड़ों अक्षोहिणियों से भी अधिक बलवती—मेरी बुद्धि, जो अपने अद्भुत रंग नन्दवंश को उन्मूलित करके दिखा चुकी है, वह मुझे न छोड़ जाय (मुझे यही बहुत है)। (२५)

तदप्राप्तौ व्यापारोतित्वरान्वितः ।' इति लक्षणात्। इत्थं यत्नबिन्दुसंबन्धरूपप्रतिमुखसन्धिः । बिन्दुप्रयत्नानुगुण्येनास्य सन्धेः त्रयोदशान्यप्यङ्गानि च यथामति योजितानीति सूक्ष्मदृष्टिभिरवधार्य सन्तोष्टव्यम् ।। २६ ।।

प्रथमोऽङ्क इति । अङ्कलक्षणं निरूपितं दशरूपके—'प्रत्यक्षनेतृचरितो बीजव्यक्तिपुरस्कृतः । अङ्को नानाप्रकारार्थः संविधानरसाश्रयः ।।' इति ।।

कर्तेदन्नाटकस्याद्भुतरसविलसत्संविधानप्रवीणः
क्लेशं चाणक्यनीतौ बहुविध मतनोल्लक्षणाद्यैर्वचोभिः ।
तत्तल्लक्ष्ये तदङ्गानुसरणविषयक्लेशमस्मद्विधानां
राजश्रीत्र्यम्बकार्यानुमतिसुविहितं वीक्ष्य तुष्यन्तु सन्तः ।।१ ।।

इति त्र्यम्बकयज्वप्रभुवर्याश्रितढुण्ढिराजव्यासयज्वविरचिते
मुद्राराक्षसनाटकव्याख्याने प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ।।

(उठते हुए) भद्रभटादि दुष्टों को तो मैं यूंही वापिस ले आऊँगा। (आकाश में, जैसे, किसी को प्रत्यक्ष देखते हुए, मन-ही-मन)

दुरात्मा राक्षस, किधर जायेगा अब तू ! अब तो मैं तुझे चुटकी ही में अपने बुद्धिबल से जकड़कर चन्द्रगुप्त की सेवा में बांधकर ला खड़ा करूँगा। स्वच्छन्दता के साथ लोक-प्रवाह से बिलकुल अलग (नन्द की भक्ति में) दानवीरता के साथ, गर्व और मस्ती के साथ जंगली हाथी की तरह भटकने मंडराने के वे तुम्हारे दिन अब गये। आखिर जंगली हाथी भी तो स्वच्छन्दता में अपने यूथ से अलग, मस्ती और गर्व में शराबोर, जंगल के अंदर तक पहुँचा हुआ भी, युक्ति बल द्वारा वश में लाया ही जा सकता है। (२६)

(मंच पर कोई भी नहीं रहता)

अंगूठी प्राप्तिरूप प्रथमांक सम्पूर्ण

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्याहितुण्डिका)

आहितुण्डिकः—

जानन्ति तन्त्रयुक्तिं यथास्थितं मण्डलमभिलिखन्ति ।
ये मन्त्ररक्षणपरास्ते सर्पनराधिपावुपचरन्ति ॥ १ ॥
जाणन्ति तन्तजुत्तिं जहट्ठिअं मण्डलं अहिलिहन्ति ।
जे मन्तरक्खणपरा ते सप्पणराहिवे उवअरन्ति ॥

(आकाशे[1]) आर्य, किं त्वं भणसि कस्त्वमिति । आर्य, अहं खलु आहितुण्डिको जीर्णविषो नाम । किं भणसि अहमपि अहिना खेलितुमिच्छामीति । (अज्ज किं तुमं भणासि को तुमं त्ति । अज्ज अहं खु आहितुण्डिओ जिण्णविसो णाम । किं भणासि । अहं वि अहिणा खेलिदुं इच्छामि त्ति ।)

अथ कतरां पुनरार्यो वृत्तिमुपजीवति । किं भणसि राजकुलसेवक इति । ननु खेलति एव आर्योऽहिना । कथमिव । अमन्त्रौषधिकुशलो व्यालग्राही प्रमत्तो

अथ राक्षसकृतोपायवृत्तान्तकथनाय प्राप्त्याशापताकासंबन्धरूपो गर्भसन्धिर्द्वितीयेनाङ्केनारभ्यते । 'गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः ।' इति लक्षणात् । पूर्वाङ्के दृष्टस्यात्र राक्षसाहितुण्डिकसंवादरूपया व्यापिन्या कथया पताकाख्यया नष्टस्यादृष्टस्य चाणक्यनीतिरूपस्य बीजस्याग्रे मुहुरन्वेषणात् । पताकाप्राप्त्याशानुगुण्येन गर्भसन्धेरङ्गानि । 'अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः । संग्रश्चानुमानं च तोटकाधिबले तथा ॥ उद्वेगसम्भ्रमाक्षेपा द्वादशाङ्गान्यनुक्रमात् ॥' तत्राहितुण्डिकच्छद्मधारिणो विराधगुप्तस्य सर्वं प्राकृतं वचनं प्रस्तुतोपयोगिच्छद्माचरणमभूताहरणम् । प्रस्तुतस्य राक्षसं प्रति कुसुमपुरवृत्तान्तकथनस्योपयोगे छद्माचरणात् । **जानन्तीति** । तन्त्रं स्वराष्ट्रचिन्तायां शास्त्रौषधमखेष्वपि ।' इति वैजयन्ती । तन्त्रे स्वराष्ट्रचिन्तायां विषौषधविशेषे च युक्तिं यथावज्जानन्ति । मण्डलं [सप्तप्रकृतिकं] राष्ट्रं [द्वादशविधराजमण्डलं वा] माहेन्द्रादिदेवतायन्त्रं चाभिलषन्ति चिन्तयन्ति रेखाकारेण लिखन्ति च । [सर्पनराधिपे इति पठनीयम् । सर्प एव नराधिपः । पक्ष सर्प इव नराधिपः । तस्मिन्] तन्त्रमन्त्रादिष्वत्यन्तमवहितात्मना सर्पनराधिपोपचरणं कर्तव्यमित्यर्थः ॥१॥ किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति

---

[1] ०शे लक्षं बध्वा ।

ACT II.

(*Enter a* Snake-Catcher)

Snake-catcher—Those who know the application of antidotes (are conversant with the plans or policy to be followed in the administration of a kingdom), who draw the enchanted circle in the right way, (who prescribe the proper course of conduct for or properly mark out, *i. e.* hold in check, the circle of king) and who are devoted to the observance of spells (are versed in preserving state secrets), can deal with (manage) a serpent (a king to be cautiously approached like a serpent). (1)

(*Looking at the sky*) What do you say, sir ? Do you ask me who I am ? I am a serpent-catcher, Jīrṇavisha by name. What say you ? That you, too, wish to play with a serpent ?

अंक—२

(एक सपेरा)

सपेरा—वही लोग जिन्हें मन्त्रौषध का ज्ञान है, जो सांप के गिर्द विधिवत् मण्डल खेंच सकते हैं, जिनका जीवन मन्त्र-शास्त्र की रक्षा को अर्पित है—वही किसी सांप के आगे सही ढंग से पेश आ सकते हैं।

और वही लोग जिन्हें शासन-तन्त्र का पूर्ण ज्ञान है, और जो माण्डलिक राजचक्र को उसकी सीमाओं से बाहर नहीं होने देते और जो अपने गुप्त-रहस्यों पर जहाँ-तहाँ जबान नहीं खोलते फिरते—वही किसी भी कुटिल राजे-रजवाड़े को कुछ पाठ पढ़ा सकते हैं। (१)

(शून्य की ओर देखते हुए) क्यों भैय्या, क्या पूछते हो—

मैं कौन हूँ ? भाई, एक सपेरा हूँ, जीर्णविष (मेरा नाम है)। क्या कहा तुमने कि तुम भी मेरा (साँपों का) खेल देखना चाहते हो ? खैर; जनाब का पेशा जान

मतङ्गजारोही लब्धाधिकारो जितकाशी राजसेवक इत्येते त्रयोऽप्य वश्यं विना शमनुभवन्ति। कथं दृष्टमात्रोऽतिक्रान्त एषः। (पुनराकाशे[1])। आर्य, किं त्वं भणसि किमेतेषु पेटकसमुद्गकेष्विति। आर्य, जीविकायाः संपादकाः सर्पाः। किं भणसि प्रेक्षितुमिच्छामीति। प्रसीदत्वार्यः अस्थानं खलु एतत्। तद्यदि कौतूहलं एहि एतस्मिन्नावासे दर्शयामि। किं भणसि इदं खलु भर्तुरमात्यराक्षसस्य गृहं नास्त्यस्मादृशानामिह प्रवेश इति। तेन हि गच्छत्वार्यः। मम पुनर्जीविकायाः प्रसादेन अस्तीह प्रवेशः। कथमेषोऽपि अतिक्रान्तः। (अह कदरं[2] उण अज्जो वित्ति उवजीवदि। किं भणासि राअउलसेवकोह्मि त्ति। णं खेलदि एव्व अज्जो अहिणा। कहं विअ। अमन्तोसहिकुसलो वालग्गाही पमत्तो मतङ्गआरोही[3] लद्धाहिआरो जिदकासी राअसेवओ त्ति एदे तिण्णि वि अवस्सं विणासमणुहोन्ति। कहं दिट्ठमेत्तो अदिक्कन्तो एसो। अज्ज किं तुमं भणासि किं एदेसु पेडालसमुग्गएसु त्ति। अज्ज जीविआए[4] संपादआ सप्पा। किं भणासि पेक्खिदुमिच्छामित्ति। पसीददु[5] अज्जो। अट्ठाणं खु एदं। ता जइ कोदूहलं एहि एदस्सिं आवासे[6] दंसेमि। किं भणासि एदं खु भट्टिणो अमच्चरक्खसस्स गेहं णत्थि अह्मारिसाणं इह पवेसो त्ति। तेण हि गच्छदु अज्जो। मम उण जीविआए पसादेण अत्थि एत्थ पवेसो। कधं एसोवि अतिक्कन्तो।

(स्वगतम्[7], संस्कृतमाश्रित्य) अहो आश्चर्यम्। चाणक्यमतिपरिगृहीतं चन्द्रगुप्तमवलोक्य[8] विफलमिव राक्षसप्रयत्नमवगच्छामि। राक्षस[9]मतिपरिगृहीतं मलयकेतुमवलोक्य चलितमिवाधिराज्याच्चन्द्रगुप्तमवगच्छामि। कुतः ?

यत्। श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषणम्। 'अप्रविष्टैः सहालापो भवेदाकाशभाषणम्।' तदाह **आकाश इति**।

[**नन्विति**। राजसेवाया दुष्करत्वात्क्वापि स्खलने प्राणनाशस्यापि प्रसङ्गादहिना खेलत्येवार्य इत्युक्तम्। एतदेवविशदं करोति अमन्त्रौषधीत्यादिना। व्यालः सर्पः तस्य गृह्णातीति ग्राही। जितकाशी अवलिप्तोऽनात्मज्ञ इत्यर्थः। पेटकानां समुद्गकाः संपुटकास्तेषु पेटकान्तरेषु इत्यर्थः यद्वा पेटकाश्चसमुद्गकाः संपुटकाश्च तेषु।] **संस्कृतमाश्रित्येति**। वस्तुतः स्वस्योत्तम-

---

1. नास्त्येतत्क्वचित्; पुनरप्याकाशे लक्षं बध्वा, 2. कअरं, 3. अग्गिहदङ्कुसो मत्तमतङ्गा०; मत्तगअवरारोही, 4. अप्पजी० (आत्मजी०), 5. प० पसीददु; पेक्खदु, 6. आवासे पावीसिअ, 7. दिशोऽवलोक्य संस्कृतमाश्रित्य स्वगतम्, 8. अवेक्ष्य, 9. राक्षसमवेक्ष्य विफलमिव चाणक्यप्रयत्नमवगच्छामि।

Well, what is Your Honour's means of subsistence ? What do you say ? That you are a servant of the king ? Then Your Honour does, indeed, play with a serpent. You want to know how ? A snake-catcher who is not well acquainted with charms and medicinal herbs, one who mounts an intoxicated elephant without the knowledge of restraining it, and a servant of the king (an officer of state) invested with authority and (therefore) overbearing (lit. proud of his success)—these three persons assuredly meet with ruin. Oh, he has vanished from my sight the moment he was seen ! (*Again looking at the sky*) What does Your Honour say ? You ask me as to what these baskets and boxes contain ? They contain, sir, snakes, the means of obtaining my livelihood. What say you ? That you wish to see them ? Please, Your Honour, this is not the proper place to exhibit them. If you have a curiosity, come with me. I will show them to you in this house. What does Your Honour say ? That the house belongs to the minister Rākshasa, where people of your sort can have no access ? Well then, your Honour may take your departure. I, however, shall have access here, through the favour of my calling. How now ? He, too, has gone away !

(*To himself, speaking in* Sanskrit)

Oh wonder ! Seeing Chandragupta guided by the intellect of Chāṇakya, I consider the attempt of Rākshasa as futile; considering again (that) Malayaketu (is) aided by the counsel of Rākshasa, I look upon Chandragupta as almost deposed from his supreme power. For,

सकता हूँ क्या मैं ? क्या कहा—राजा के एक वंशानुगत सेवक हो ? फिर तो भैय्या, तुम सचमुच ही एक सांप के साथ खेल रहे हो। (पूछोगे) सो कैसे : बात यह है कि एक सपेरा जिसे मन्त्रों और औषधियों का सम्यक् ज्ञान नहीं,···एक महावत—जिसे मस्त हाथी को काबू में रखने की पूरी शिक्षा नहीं,···और अधिकार के नशे में चूर एक शेख : इन तीन की मौत आज आई कि कल आई। अरे यह क्या—एक आंख देखा नहीं और गायब ! (फिर उधर ही शून्य की ओर देखते हुए) तुम क्या कहना चाहते थे, भैय्या : यही न कि इन डब्बों-पेटियों में क्या-कुछ भरा पड़ा है ? भैय्या सांप हैं, हाँ सांप जिनसे रोटी कमाता हूँ।

क्या कहा—देखना चाहते हो ? बड़ी खुशी से आओ, भैय्या, और आकर देखो; किन्तु यह जगह सांप दिखाने की नहीं है। अगर तुम्हारा कुतूहल फिर भी बना हुआ है, तो इस घर के अंदर आ जाना (तुम्हें सब दिखा दूंगा)। क्या कहा तुमने—कि साथ वाला यह अमात्यराक्षस का घर है जिसमें तुम्हारे-जैसे ऐरा-गैरा लोगों को घुसने की इजाजत नहीं है ? तो भैय्या, फिर तुम्हारी छुट्टी। मेरा तो पेशा ही कुछ ऐसा है कि मुझे कोई रोक नहीं सकता। अरे, लो—यह भी गायब !

कौटिल्यधीरज्जुबद्धमूर्ति
मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य[1] लक्ष्मीम् ।
उपायहस्तैरपि[2] राक्षसेन
विकृष्य[3]माणामिव लक्षयामि ॥ २ ॥

तदेवमनयोः बुद्धिशालिनोः सुसचिवयोर्विरोधे संशयितेव नन्दकुल[1]लक्ष्मीः ।

विरुद्धयोर्भृशमिव मन्त्रिमुख्ययोर्
महावने वनगजयोरिवान्तरे ।
अनिश्चयाद्गजवशयेव भीतया
गतागतैर्ध्रुवमिह[5] खिद्यते श्रिया ॥ ३ ॥

तद्यावदमात्यराक्षसं पश्यामि । (इति परिक्रम्य स्थितः[6])

(ततः प्रविशत्यासनस्थः[7] पुरुषेणानुगम्यमानः सचिन्तो राक्षसः)

राक्ष०—(सबाष्पम्[8]) कष्टं भोः कष्टम् ।

त्वात्स्वगतं संस्कृतवचनम् ।

[कौटिल्यस्य धीरेव रज्जुस्तया निबद्धा दृढं बद्धा मूर्तिर्यस्यास्तादृशीम् ।] कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्तिमित्यत्र रूपकानुप्राणिता उत्प्रेक्षा ॥ २ ॥ **अनिश्चयादिति** । अनिश्चयादन्यतरविजयानिर्धारणात् । अत्रोपमानुप्राणितोत्प्रेक्षा । इयं प्राप्त्याशा 'उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा कार्यसंभवः ।' इतिं लक्षणात् । कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धेति उपायशङ्का राक्षसेन विकृष्यमाणा इति अपायशङ्का ताभ्यां कार्यस्य मौर्यश्रीस्थैर्यस्य संभवः कादाचित्कत्वेन संभावना । विराधराक्षसयोर्महती संवादकथा पताका । 'प्रतिपाद्यकथाङ्गं स्यात्पताका व्यापिनी कथा । इति लक्षणात् । अनयोः सम्बन्धादयं गर्भसन्धिः ॥ ३ ॥ **तद्यावदिति** । इदमङ्कास्यम् । 'अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यमुत्तराङ्कार्थसूचना ।' इति लक्षणात् । पूर्वाङ्कान्ते चाणक्येन मदबलेन विगाहमानमिति राक्षसकृतस्य विगाहनस्य नीतिप्रयोगस्यास्मिन्नङ्के वक्ष्यमाणस्य सूचनात् । यद्वा अङ्कावतरणम् । 'यत्र स्यादुत्तराङ्कार्थः पूर्वाङ्कार्थानुसङ्गतः । असूचिताङ्गपात्रं तदङ्कावतरणं मतम् ॥' इति लक्षणात् । अत्र वक्ष्यमाणस्य क्षपणकशकटदासादिनिग्रहस्य पूर्वाङ्कार्थानुसङ्गतत्वादाहितुण्डिकप्रवेशस्यासूचनाच्च ।

---

1. कुलस्य, 2. इह, 3. निकृ० ; निष्कृ०, 4. लक्ष्यते इत्यधिकम्, 5. भृशम्, 6. द्वारि स्थितः, 7. ०नस्थः स्वभवनगतः, 8. ऊर्ध्वमवलोक्य इत्यधिकम् ।

I consider the Royalty of king Maurya as stable, with her form held fast (*lit.* tied down) by the cord in the form of the talent of Kauṭilya; but that very Royalty I look upon as being snatched away by Rākshasa with his hands in the form of plans (*or*, expedients). (2)

So when there is this contest (rivalry) between these two able ministers, distinguished for their talents, the sovereign power of the Nanda family is, as it were, in suspense.

The bewildered goddess of wealth is surely much tired in this case, by moving backwards and forwards through indecision between these two eminent ministers strongly opposed to each other, like a terrified female-elephant in a large forest between two wild elephants. (3)

I will therefore see minister Rākshasa. (*Turns about and waits*)

(*Then enter* RA`KSHASA *seated in an anxious mood, followed by a* MAN, *i. e.* an ATTENDANT)

RA`K.—(*Tearfully*) Alas, Oh, alas!

(मन-ही-मन, संस्कृत में) कितने आश्चर्य की बात है। इधर जब मैं चन्द्रगुप्त को देखता हूँ–कि किस प्रकार चाणक्य के बुद्धिवल से उसका सब-कुछ परिचालित है—तो मुझे राक्षस के सब उद्योग विफल होते नजर आते हैं, और, उधर, जब मलयकेतु को देखता हूँ—कि किस प्रकार राक्षस के बुद्धिबल से उसका सब तन्त्र परिचालित है—तब मुझे लगता है जैसे, चन्द्रगुप्त अपनी प्रभुसत्ता से अब च्युत हुआ कि अब हुआ। मुझे तो लगता है—

कौटिल्य की बुद्धि, मानो एक रज्जु है जो मौर्य राज्यलक्ष्मी को (एक हथिनी की भांति) अचल किये हुए है; किन्तु, उधर से, राक्षस की नई-से-नई चालें, जैसे, लम्बे हाथ बनकर उसे बलात् छुड़ा लाने में तत्पर हों! (२)

इस प्रकार, जब विरोध दो महामन्त्रियों में हो–महामन्त्री भी दोनों ही अपनी-अपनी जगह बुद्धिशाली–नन्दों की वह परम्परागत राज्यसत्ता जैसे संशयापन्न ही हो गई है :—

जैसे, एक हथिनी मुश्किल में पड़ जाती है, डर जाती है, कभी दो जंगली हाथियों के बीच उसे निर्वश इधर जाना पड़ता है कभी उधर। वही हालत आज नन्दों की कुल क्रमागत राज्यलक्ष्मी की हो रही है–वह भी आज इसकी कल उसकी होकर दो महामन्त्रियों के परस्पर-विरोध का शिकार बनी हुई है। (३)

चलो, आज अमात्यराक्षस के दर्शन करें। (कुछ कदम चलकर रुक जाता है)

(अपने ही घर में, चिन्तित मुद्रा में राक्षस। एक
नौकर उसके पीछे-पीछे है।)

राक्षस—(आंखें भरकर) हाय रे दुर्भाग्य—

वृष्णीनामिव नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां
नन्दानां विपुले कुलेऽकरुणया नीते नियत्या क्षयम् ।
चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिंदिवं जाग्रतः
सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्तते ।। ४ ।।

अथवा

नेदं विस्मृतभक्तिना न विषयव्यास[1]ङ्गरूढात्मना
प्राणप्रच्युतिभीरुणा च न मया नात्मप्रतिष्ठार्थिना[2] ।
अत्यर्थं परदास्यमेत्य निपुणं नीतौ मनो दीयते
देवः स्वर्गगतोपि शात्रव[3]वधेनाराधितः स्यादिति ।। ५ ।।

(आकाशमवलोकयन् सास्रम्) भगवति[4] कमलालये, भृशमगुणज्ञासि । कुतः ?

आनन्दहेतुमपि देवमपास्य नन्दं
सक्तासि[5] किं कथय वैरिणि[6] मौर्यपुत्रे ।
दानाम्बुराजिरिव गन्धगजस्य नाशे
तत्रैव किं न चपले प्रलयं गतासि ।। ६ ।।

वृष्णीनामिति । नीतिविक्रमरूपौ गुणौ तयोर्व्यापारेण प्रयोगेण शान्ता गमिताः । ण्यर्थोऽन्तर्भावितः । द्विषो यैरिति बहुव्रीहिः । अकरुणया नियत्या दैवेन । सैवेयं नन्देषु जीवत्सु यादृशी तादृश्येव चित्रकर्मरचना विचित्रपौरुषव्यापारः भित्तिमाश्रयं विना वर्तते । स्वामिनो विनैव मुधा व्याप्रिय इति खेदः ।। ४ ।। नेदमिति । विषयव्यासङ्गो विषयोपभोगासक्तिः । [तत्र रूढो बद्ध आत्मा मनो यस्य तेन मया परदास्यमेत्य नीतौ सामादिप्रयोगे । किंतु] स्वर्गगतस्वाम्याराधनेच्छया नीतौ मनो दीयते न पूर्वोक्तहेतुभिरित्यर्थः । इदं तत्त्वानुकीर्तनं मार्गः ।। ५ ।। आनन्दहेतुमिति । स्पष्टम् [गन्धप्रधानो गजो गन्धगजस्तस्य नाशे तस्य मदजलधारेव । प्रलयं गतासि । अत्यन्तानुचिताचरणान्मरणमपि श्रेय इति भावः] ।। ६ ।। दुःखावेशेन

---

1. व्यापार०; रूढा०–मूढा०, 2. ०ष्ठेच्छुना, 3. वधैरा०, 4. हा भग०, 5. रक्तासि, 6. दुःकुलमौ० ।

6

Now that the large family of the Nandas, who, like the Vṛshṇis, had vanquished their enemies by the employment of the qualities of polity and valour, is destroyed by merciless fate, I, who am watchful night and day, with a mind tossed by intense anxiety, have (as it were) my practising of painting (using of diplomatic skill) done in the same way (as when the Nandas lived, but now) without a back-ground (a convass or wall to paint upon). (4)

Or rather,

It is not because I have forgotten my loyalty (to my old master), not because my heart is engrossed in the enjoyment of the objects of senses, not because I am afraid of the loss of my life, not because I am desirous of self-glorification, that I have closely and carefully devoted my attention to politics, but because His Majesty (*i. e.* Nanda) though gone to heaven may be propitiated by the destruction of his enemies. (5)

(*Looking towards the sky, with tears in his eyes*) Oh venerable lotus-throned goddess, you are quite incapable of appreciating merits. For,

Tell me why you, having discarded His Majesty Nanda, though a source of delight, have become attached to his enemy, the son of Maurya ? Why, O wanton one, did you not vanish for ever at that very time, like the line of ichor-water disappearing at the death of a scent-elephant ? (6)

आज जब नन्दों का वह महान् कुल—जिसने नीति और पराक्रम द्वारा अपने शत्रुओं को नष्ट कर डाला था—वृष्णियों की भांति भाग्य की हृदय-हीनता से स्वयं नामशेष रह गया है। ···चिन्ता से आकुल एक मैं हूँ कि रातदिन जागरूक रहकर अपनी कूटनीतियों में अब भी लगा हुआ हूँ। क्षणभर भी आराम नहीं। किन्तु यह मेरी प्रासाद-रचना किसी आधार के बिना वैसी ही है जैसे, किसी चित्रकार का परदे के बिना ही किसी चित्र उतारने का प्रयत्न। (४)

और फिर——

यह नहीं कि मेरे अन्दर अब स्वामिभक्ति नहीं रही, यह भी नहीं कि मेरा मन विषयों में आसक्त हो गया है। यह भी नहीं कि मुझे मृत्यु का डर हो, यह भी नहीं कि मुझे किसी प्रकार की कीर्ति व प्रतिष्ठा की कोई हवस हो। आज भी मेरा मन राजनीति में एक दास-कृतक की तरह अनुरक्त है कि शत्रु के विनाश से स्वर्गीय स्वामी की आत्मा को कुछ शान्ति तो पहुँचा सकूं। (५)

(भरी आँखों से, आकाश की ओर देखते हुए) देवि लक्ष्मी, लगता है गुण-अवगुण की अब तुम्हें पहचान ही बिलकुल नहीं रह गई——

महाराज नन्द के यहाँ तो तुझे सब सुख थे, किन्तु उन्हें छोड़कर तू उनके शत्रु मौर्य से जा चिपटी ! गजराज की जब मृत्यु हो जाती है, उसकी

अपि च अनभिजाते—

पृथिव्यां किं दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः
पतिं पापे[1] मौर्यं यदसि कुलहीनं वृतवती[2] ।
प्रकृत्या[3] वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला
पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी ॥ ७ ॥

अयि अविनीते, तदहमाश्रयोन्मूलनेनैव त्वामकामां करोमि । (विचिन्त्य) मया तावत्सुहृत्तमस्य चन्दनदासस्य गृहे गृहजनं निक्षिप्य नगरान्निर्गच्छता,[4] न्याय्यमनुष्ठितम् । कुतः[5] कुसुमपुराभियोगं प्रति अनुदासीनो[6] राक्षस इति तत्रस्थानामस्माभिः सहैककार्याणां देवपादोपजीविनां नोद्यमः शिथिलीभविष्यति । चन्द्रगुप्तशरीरमभिद्रोग्धु[7]मस्मत्प्रयुक्तानां तीक्ष्णरसदायिनामुपसंग्रहार्थं परकृत्योपजापार्थं[8] च महता कोशसञ्चयेन स्थापितः शकटदासः । प्रतिक्षणमरातिवृत्तान्तोपलब्धये तत्संहतिभेदनाय[9] च व्यापारिताः सुहृदो जीवसिद्धिप्रभृतयः । तत्किमत्र बहुना—

इष्टात्मजः सपदि सान्वय एव[10] देवः
शार्दूलपोतमिव यं परिपोष्य[11] नष्टः ।

अनभिजाते इत्यादि गालनम् । अभिजाताः कुलीनाः । पृथिव्यामिति । [प्रथितं विख्यातं कुलं तत्र जायन्ते इति । यद्यस्मात्कारणात् । पापे असत्कुलजातत्वात्पापाचरणप्रवृत्तेः ।'] पुरन्ध्रीणामित्यर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । 'उक्तिरर्थान्तरन्यासः स्यात्सामान्यविशेषयोः ।' इति । भगवति कमलालये इत्यादि राक्षसस्य वितर्कप्रतिपादनं वाक्यरूपं नामाङ्गम् ॥ ७ ॥ विचिन्त्येति । आश्रयोन्मूलनहेतुमुपायं विचिन्त्य तमेव प्रपञ्चयति । मया तावदित्यादिना । [न्यायादनपेतं न्याय्यमुचितम् । अभियोगोऽभियानम् ।] चन्द्रगुप्तेत्यादि । तत्संहतयो

---

1. पापं, 2. कृत०, 3. प्रकृत्यैवाकाश, 4. निःक्रामता, 5. किंकारणमिति, 6. उदासीनः, 7. ०ग्धुं यातानाम०, 8. कृत्योपक्षेपसंग्रहार्थम्; प्रकृत्युप०, 9. भेदाय, 10. एष, 11. पुष्य ।

Moreover, oh you base-born one !

Are all sovereigns of illustrious descent on earth dead (lit. burnt up) that you, oh wicked one, have chosen Maurya, of low extraction, for your lord ? Or rather, (why should I blame you ?) the mind of women, which by nature is as fickle as the edge of a *Śirīṣa* flower, is averse (has no inclination) to the appreciation (discrimination) of the merits of men. (7)

And now, oh ill-bred one, I will, for that reason, defeat you in your object by destroying your very resting-place. (*Thinking*) I, for myself, did a right thing in keeping my family in the house of my best friend, Chandanadāsa, when I left the town. For, the energetic work of the adherents of His Majesty residing in the city who are united in interest with us, will not be slackened, at the thought 'Rākshasa is not indifferent in the matter of the attack on the city of Kusumapura.' Śakaṭadāsa has been kept there with a large treasure in his possession for keeping well-pleased the persons engaged by us to administer poison and to do injury to the body of Chandragupta, and for communicating to us the secret doings of the enemy. And friends like Jīvasiddhi and others have been employed to secure information about the enemy every moment, and to break up their confederacy. Why waste more words on this matter ?

तो

मस्ती की वह रेखा भी उसी क्षण सूख जाती है, तो—तू स्वामी नन्द की मृत्यु के साथ वहीं सती क्यों नहीं हो गई ? (६)
तेरे, कुछ रक्त में ही दोष था ।···

क्या पृथ्वीतल से राजवंश बिलकुल उजड़ गये थे कि तूने अज्ञात कुल-शील मौर्य का ही अपने पतिरूप में स्वयंवर किया ? या फिर तू भी तो आखिर एक स्त्री ही है, जिसकी बुद्धि स्वभावतः शिरीष के तन्तुओं के समान अस्थिर होती है । जो दो पुरुषों में गुणी-गुणहीन का ज़रा भी अन्तर नहीं पहचान करती ? (७)

तू कितनी दुःशील हो गई है कि अब मैं तेरा आधार ही नष्ट करके तुझे तेरी लक्ष्यसिद्धि में विफल किये देता हूँ । (कुछ चिन्तन करके) अपने परिवार को परममित्र चन्दनदास के घर में सुरक्षित कर नगर से निकलते हुए मैंने ठीक ही किया, क्योंकि इससे हमारे सहकारी स्वामिभक्तों की गतिविधि में शिथिलता नहीं आने पायेगी—यह अनुभव करके कि पाटलिपुत्र पर धावा बोल देने के मामले में राक्षस इस संकट-काल में भी हाथ-पर-हाथ धर-कर नहीं बैठ गया है ।

शकटदास को भी हमने काफी धन-दौलत देकर कहीं टिका दिया है कि चन्द्रगुप्त के शरीर पर विष आदि का प्रयोग करने के लिये, और शत्रु की गतिविध के सम्पूर्ण समाचार हमें पहुँचाने के लिये, जिन-जिनको हमने नियुक्त

तस्यैव बुद्धिविशिखेन भिनद्मि मर्म
वर्मीभवेद्यदि न दैवमदृश्यरूपम्[1] ॥ ८ ॥

(ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—

कामं नन्दमिव प्रमथ्य जरया[2] चाणक्यनीत्या यथा
धर्मो मौर्यं इव क्रमेण[3] नगरे नीतः प्रतिष्ठां मयि ।
तं संप्रत्युपचीयमानमनु[4] मे लब्धान्तरः सेवया
लोभो राक्षसवज्जयाय यतते जेतुं न शक्नोति च ॥ ९ ॥

भद्रभटादयः जीवसिद्धिना भेदिता इत्यस्य भ्रमः । इदं प्रकृतोत्कर्षाभिधानमुदाहरणं राक्षसेन प्रकृतकार्यस्योत्कर्षाभिधानात् । **इष्टात्मज इति** । इष्टा आत्मजा यस्येति हेतुगर्भविशेषणम् । निकृष्टक्षेत्रजातमपि यं मौर्यं इष्टात्मजत्वात्प्रियापत्यत्वादुत्तमक्षेत्रजापत्यवत् परिपोष्य नष्टः । स्वपोषकघातकत्वेन शार्दूलपोतदृष्टान्तः । तस्यैव मौर्यस्य मर्म बुद्धिविशिखेन भिनद्मि भेत्स्यामि यदि दैवं न वर्मीभवेत् । वर्मरूपं रक्षकं न भवेद्यदि तदा भिनद्मीत्यन्वयः । अदृश्येति । दैवं दृश्यं चेत्तदपि प्रतिकर्तुं शक्नुयामिति भावः । अत्र मया तावदित्यारभ्यादृश्यरूपमित्यन्तेन राक्षसस्योपायापायशङ्के ॥ ८ ॥

कामं नन्दमिति । यथा चाणक्यनीत्या नन्दं प्रमथ्य कुसुमपुरे मौर्यः प्रतिष्ठापितः तद्वज्जरसा कामं विषयाभिलाषमुपमर्द्य मयि धर्मः प्रतिष्ठापितः । वार्द्धके विषयवैराग्ये कामं विहाय धर्ममेव सेवितुमुत्सहे इति भावः । संप्रति मलयकेतुसेवया लब्धान्तरः लब्धावसरः राक्षसः यथा तमुपचीयमानं वर्द्धिष्णुं मौर्यमनुलक्ष्यीकृत्य जयाय मौर्यजयायेत्यर्थः । लक्षणेत्थंभूतेति कर्मप्रवचनीयेनानुना योगे द्वितीया । यतते जेतुं च न शक्नोति न शक्ष्यति चाणक्यनीतेः प्रबलत्वात् । एवं सेवया कुलाचारादावश्यकत्वेन गले पतितया राजकुलसेवया लब्धावसरः मे मम लोभः सेवाविषयोऽभिलाषः वार्द्धकोचितस्य धर्मस्य जयाय यतते जेतुं न शक्नोति च । कुलाचारतया यथाशक्ति राजकुलं सेवमानोऽपि वार्द्धकोचितं शमदमादिकं

---

1. अदृष्ट०, अमृश्यमानम्, 2. जरसा, 3. प्रसह्य, 4. अपि ।

I shall pierce with the dart of intellect the vital parts of that very person whom, His Majesty, fond of sons, having brought up, like the cub of a tiger, suddenly perished along with his family, if invisible Fate will not serve (him) as an armour. (8)

(*Then enter the* CHAMBERLAIN)

CHAM.—Old age, having eradicated passion from within me, just as the policy of Chāṇakya destroyed Nanda, has gradually firmly established the feeling of piety (Dharma) in me like Maurya in the city; and now avarice, having got an opportunity through service (accepted by me), is trying to put it down as it (Dharma) is growing, like Rākshasa who having found an opportunity (for his plans) by (accepting) service, is endeavouring to vanquish Chandragupta who is gaining in strength but does not succeed. (9)

किया हुआ है उन्हें वह सन्तुष्ट रख सके। और दूसरी ओर, जीवसिद्धि आदि मित्रों को भी—शत्रु की क्षण-क्षण की प्रगति का हाल हमारे पास तक पहुँचाने के लिये और उनकी गुटबंदियों को तोड़ने के लिये—काम पर लगा छोड़ा है। पर यह सब बघारने से क्या फायदा—

महाराज का बच्चों से प्रेम था और एक सिंह-पोत को उसने पाला भी, किंतु उसी एक को पालते-पालते महाराज का सारा वंश ही सर्वथा नष्ट हो गया! किंतु (मैं भी राक्षस हूँ) उसी (छद्मी) सिंहपोत के मर्मस्थल को अपनी बुद्धि के तीक्ष्ण तीरों द्वारा भेदकर दिखा दूंगा। (हाँ, यदि रास्ते में भाग्य ही स्वयं अदृश्य कवच बनकर उसकी रक्षा में न आ खड़ा हो।) (८)

(कंचुकी)

कंचुकी—चाणक्य की नीति ने नन्द को नष्ट कर दिया; मुझे बुढ़ापे ने। पाटिलपुत्र में चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रतिष्ठा हो गई; मुझमें धर्मकर्म की। आज चंद्रगुप्त उन्नति के शिखर पर है, इधर मेरी धर्म-प्रकृति दिन-दिन बढ़ रही है। इस लम्बी सेवा में आज लोभ जैसे मेरी धर्म-भावना पर उत्सुक है, विजय पाने को; और उधर, उसी प्रकार राक्षस की पुरानी भक्ति को, जैसे, आज एक और अवसर मिल गया है। वह चन्द्रगुप्त (के उदीयमान भाग्य) को मिटाने में तत्पर है। किंतु दोनों को ही सफलता नहीं मिलती—न मेरे लोभ को, न राक्षस की कूटनीति को। (९)

(परिक्रम्योपसृत्य[1] च) इदममात्यराक्षसस्य गृहम् । प्रविशामि । (प्रविश्यावलोक्य च) स्वस्ति भवते ।

राक्ष०—आर्य,[2] अभिवादये । प्रियंवदक, आसन[3]मानीयताम् ।

पुरु०—इदमासनम् । उपविशतु आर्यः । (एदं आसणं । उपविसदु अज्जो ।)

कञ्चु०—(उपविश्य[5]) कुमारो[6] मलयकेतुरमात्यं विज्ञापयति । चिरात्प्रभृत्यार्यः परित्यक्तोचित[7]शरीरसंस्कार इति पीड्यते मे हृदयम् । यद्यपि सहसा स्वामिगुणा न शक्यन्ते विस्मर्तुं तथापि मद्विज्ञापनां[8] मानयितुमर्हत्यार्यः । (इत्याभरणानि प्रदर्श्य[9]) इमान्याभरणानि कुमारेण स्वशरीरादवतार्य प्रेषितानि धारयितुमर्हत्यार्यः ।

राक्ष०—आर्य जाजले, विज्ञाप्यतामस्मद्वचनात्कुमारः । विस्मृता[10] एव भवद्गुणपक्षपातेन स्वामिगुणाः । किंतु—

न तावन्निर्वीर्यैः परपरिभवा[11]क्रान्तिकृपणैर्
वहाम्यङ्गैरेभिः प्रतनुमपि संस्काररचनाम् ।
न यावन्निःशेषक्षपित[12]रिपुचक्रस्य निहितं
सुगाङ्गे हेमाङ्कं नृवर तव सिंहासनमिदम् ॥ १० ॥

धर्मं नोपेक्षे इति भावः । उपचीयमानमपीति पाठे उपचीयमानं जेतुं यतते जयाय न शक्नोतीति व्यवहितान्वयः क्लिष्टः । अनेन कञ्चुकिनिर्वेदेन राक्षसोद्यमस्य चाणक्यनीत्या भावी उपमर्दः सूचितः ॥ ९ ॥

[भवद्गुणपक्षपातेन भवद्गुणानुरागेण । न तावदिति । निर्वीर्यैः तेजोहीनैः ।] परपरिभवकर्तृकाक्रान्तिराक्रमणं तेन कृपणैर्दीनैरित्यर्थः । एभिः अङ्गैः प्रतनुमत्यल्पामपि संस्काररचनां देहमार्जनालङ्कारधारणादिरूपाम् । निःशेषं यथा

---

1. नाटचेन परिक्रम्य; दृष्ट्वा, अयममात्यराक्षसः, परिक्रम्योपसृत्य, अमात्य स्वस्तिभ०, 2. अवलोक्य आर्यं; आर्य जाजले, 3. आसनमत्रभवतः उपनय, 4. प्रियं०, 5. अस्मात्प्राक्नाटच्येन इति, 6. अमात्य कु०, 7. चितसं०, 8. मम, 9. दर्शयित्वा, इत्याभरणं दर्शयति; इदमाभरणं···तार्य प्रेषितं, 10. विस्मृता मया स्वामिगुणास्तव पक्षपातिना, 11. भवाक्रान्त०, 12. क्षयित ।

(*Turning round and walking forth*) This is the dwelling of the minister Rākshasa. I will enter. (*Entering and looking about*) Prosperity to you!

RA'K.—Venerable man, my respects to you. Priyaṁvadaka, bring a seat.

MAN—Here is a seat. Your Honour may sit down.

CHAM.—(*Sitting down*) Prince Malayaketu requests Your Excellency—"My heart is grieved that Your Honour has left off personal decorations for a long time. Although the merits of your master (Nanda) cannot at once be forgotten, yet you will be pleased to honour my request (by accepting the ornaments)." (*To saying and showing him the ornaments*) Your Excellency will please put on these ornaments which have been sent by the Prince after having taken them off from his person.

RA'K.—Worthy Jājali, respectfully say to the Prince in my name—The merits of my lord have already been forgotten by me through my attachment to Your Highness' merits. However—

I will not wear the slightest decoration on these my limbs which are powerless and pitiable by being subjected to disgrace at the hands of the enemy, so long as, oh best of men, this golden throne of Your Highness, with the circle of your enemies completely destroyed, is not placed in the Sugāṅga palace. (10)

(कुछ चलकर, और निकट पहुँचकर)

यह रहा अमात्य राक्षस का घर। अंदर चलूं। (घुसकर, और देखते हुए) कल्याण हो—अमात्यप्रवर का कल्याण हो!

राक्षस—प्रणाम स्वीकार हो, भगवन्। प्रियंवदक, आसन लाना तो।

प्रियंवदक—जी, यह लाया कुर्सी आइये, विराजिए।

कंचुकी—(बैठते हुए) कुमार मलयकेतु ने मेरे हाथ संदेश दिया है कि आपने कबसे अपने शरीर की प्रसाधना बिलकुल छोड़ रखी है। यह देखकर मुझे कितनी व्यथा होती है! ठीक है—स्वामी के गुणों की स्मृति इतनी आसानी से नहीं जाया करती, किंतु कुछ मुझे संतुष्ट देखने के लिये ही सही··· (साथ में लाये आभूषणों को बाहर निकालते हुए।)

अमात्य इन आभूषणों को इसलिये पहन लें कि ये राजकुमार ने (प्रेम के साथ) अपने शरीर से उतारकर भेंट में भेजे हैं।

राक्षस—पूज्यवर जाजलि, मेरी ओर से राजकुमार से कहना कि आपके गुणों में अनुरक्त होकर अब मुझे महाराज नन्द के गुण तो जैसे भूल ही चुके हैं; किंतु—

शत्रु के द्वारा पराभव-पर-पराभव से अवसन्न और निर्वीर्य हो चुके। इस शरीर पर मैं तब तक कुछ भी आभूषण धारण नहीं करूँगा जब तक कि

कञ्चु०—अमात्ये[1] नेतरि सुलभमेतत्कुमारस्य । तत्प्रतिमान्यतां कुमारस्य प्रथमः प्रणयः ।

राक्ष०—आर्य, कुमार[2] इवानतिक्रमणीयवचनो भवानपि । तदनुष्ठीयतां[3] कुमारस्याज्ञा ।

कञ्चु०—(नाटयेन भूषणानि[4] परिधाप्य)स्वस्ति भवते । साधयाम्यहम् ।

राक्ष०—आर्य, अभिवादये[5] ।

कञ्चुकी—(निष्क्रान्तः[6])

राक्ष०—प्रियंवदक, ज्ञायतां कोऽस्मद्दर्शनार्थी द्वारि तिष्ठतीति ।

पुरु०—यदमात्य आज्ञापयति । (इति परिक्रम्य[7] आहितुण्डिकं दृष्ट्वा) आर्य, कस्त्वम् ? (जं अमच्चो आणवेदि । अज्ज को तुमं ?)

आहि०—भद्र, अहं[8] खल्वाहितुण्डिको जीर्णविषो[9] नाम । इच्छाम्यमात्यस्य पुरतः सर्पैः खेलितुम् । (भद्द अहं खु आहितुण्डिओ जिण्णविसो णाम । इच्छामि[10] अमच्चस्स पुरदो सप्पेहिं खेलिदुं ।)

पुरु०—तिष्ठ, यावदमात्याय निवेदयामि । (राक्षसमुपसृत्य) अमात्य, एष खलु सर्वोपजीवी इच्छति सर्पं दर्शयितुम् । (चिठ्ठ जाव[11] अमच्चस्स णिवेदेमि । अमच्च[12] एसो खु सप्पोपजीवी इच्छदि सप्पं[13] दंसेदुं ।)

तथा क्षपितं क्षयं प्रापितं रिपुचक्रं यस्य । तस्य तव इदं सिंहासनं सुगाङ्गे सुगाङ्गनामकप्रासादे यावन्न स्थापितं तावदित्यन्वयः ।] इदमितिबुद्धिस्थपरामर्शः ।। १० ।। [नेतरि कार्यधुरन्धरे सतीत्यर्थः । अनतिक्रमणीयमलङ्घ्यं वचनं यस्य ।] **साधयामीति** । प्रायेण ण्यन्तकः साधिर्गमेरर्थे प्रयुज्यते । **निष्क्रान्त इति** । इदं प्रस्तुतोपयोगि समाधानवचनं संग्रहः । प्रस्तुतस्य राक्षसस्योत्साहस्योपयोगित्वात् । यद्वा प्रस्तुतस्य चाणक्योपायरूपस्यबीजस्योपयोगि इदं भूषणदानं समाधानवचनम् । अनुपदमेव राक्षसेन सिद्धार्थकाय पारितोषिकतया दास्यमानानामेषामेव भूषणानां निर्वहणे कूटलेखे उपयोक्ष्यमाणत्वात् ।

---

1. अमात्य त्वयि, 2. रवदन, 3. अनुष्ठीयते, 4. आभरणानि, संधार्य, 5. वादयाम्यहम्, 6. स्वनियोगं साधयाम्यहमिति सत्कृतो निष्क्रान्तः, 7. निष्क्रम्य, 8. प्रति, 9. जिनबिल्वः, 10. इच्छम्मि, 11. दाव जाव, 12. अज्ज, 13. सप्पेहिं अमच्चस्स पुरदो खेलिदुम् ।

Cham.—While the minister (*i. e.* you) is the leader (*i. e.* is at the head of affairs) it is easy for the Prince to accomplish this. May, therefore, this first request of the Prince be granted.

Ra`k.—Worthy sir, you too are one like the Prince, whose words cannot be transgressed. I, therefore, will act up to the command of the Prince.

Cham.—(*Gesticulates putting on the ornaments*) Prosperity to Your Excellency. I take my departure.

Ra`k.—Venerable man, my respects to you.

[*Exit.* Chamberlain.

Ra`k.—Priyaṃvadaka, ascertain who waits at the door desirous of an audience with (lit. seeing) me.

Man—As Minister commands. (*Turning round and observing the* Snake-catcher) Sir, who are you ?

Snake-catcher.—Sir, I am a snake-catcher, Jīrṇavisha by name. I wish to give a performance with snakes before the Minister.

Man—Wait, till I inform the Minister. (*Going back to* Ra`kshasa).—Minister, it is a snake-catcher (lit. a man who earn his livelihood by snakes) who wishes to exhibit snakes.

हे राजाधिराज, तेरे सम्पूर्ण शत्रुओं को आमूल नष्ट करके सुगांग के महल में तेरे स्वर्ण-सिंहासन को प्रतिष्ठित नहीं कर देता। (१०)

कंचुकी—अमात्य जब पथ-प्रदर्शक हों, तो कुमार के लिये यह सब बायें हाथ का खेल है। इसलिये मेरा अनुरोध है कि आप कुमार के उस प्रथम अनुरोध को पहले क्रियान्वित कर दें।

राक्षस—पूज्यवर, आपका वचन भी तो उतना ही अनुलंघनीय है जितना कि स्वयं कुमार का। सो, कुमार के आदेश को आप ही पूरा कर दें।

कंचुकी—(आभूषण पहनाते हुए जैसे) कल्याण हो, लो यह मैं चला।

राक्षस—भगवान्, मेरा नमस्कार स्वीकार कीजिये।

(कंचुकी चल पड़ता है।)

राक्षस—प्रियंवदक, जाकर देखो कौन है, जो बाहर द्वार पर मुझसे मिलने के लिये आया बैठा है ?

प्रियंवदक—जो आज्ञा, अमात्य। (कुछ कदम चलकर, और सपेरे को देखकर) भैय्या कौन हो तुम ?

सपेरा—मैं, भैय्या, एक सपेरा हूँ, जीर्णविष मेरा नाम है। अमात्य के सामने साँपों का खेल दिखाने की उत्कण्ठा थी।

प्रियंवदक—जरा बैठो यहीं, मैं जाकर अमात्य को जरा खबर कर आऊं। (राक्षस के निकट पहुँचकर) स्वामी ! एक सपेरा है जो आपको अपने सांप दिखाना चाहता है।

राक्ष०—(वामाक्षिस्पन्दनं[1] सूचयित्वा आत्मगतम्) कथं प्रथममेव सर्पदर्शनम्। (प्रकाशम्) प्रियंवदक, न नः कौतूहलं सर्पदर्शने[2] तत्परितोष्य विसर्जयैनम्।

प्रियं०—तथा[3]। (इत्याहितुण्डिकमुपसृत्य) आर्य, एष खलु ते दर्शनकार्येणामात्यः प्रसादं करोति। न पुनः सर्पदर्शनेन। (अज्ज एसो खु दे दंसण[4]कज्जेण अमच्चो पसादं करेदि। ण उण सप्पदंसणेण।)

आहि०—भद्रमुख, विज्ञापयामात्यं न केवलमहं सर्पोपजीवी प्राकृतकविः खल्वहम्। तस्माद्यदि मे दर्शनेनामात्यः प्रसादं न करोति तदा एतत्पत्रकं वाचयितुं प्रसीदत्विति। (भद्दमुह विण्ण[5]वेहि अमच्चं ण केवलं अहं सप्पोपजीवी पाउडकवी क्खु अहं। ता जइ मे दंसणेण अमच्चो पसादं ण करेदि ता एदं पत्तअं वाचेदुत्ति[6]।)

प्रियं०—(पत्रं गृहीत्वा राक्षसमुपसृत्य) आर्य, एष खल्वमात्यं विज्ञापयति न केवलमहं सर्पोपजीवी प्राकृतकविः खल्वहम्। तस्माद्यदि मे अमात्यो दर्शनेन प्रसादं न करोति तदा एतदपि तावत्पत्रकं वाचयत्विति। अज्ज एसो खु अमच्चं विण्णवेदि ण केवलं अहं सप्पोपजीवी पाउडकवी खु अहं। ता जइ मे अमच्चो दंसणेण पसादं ण करेदि तदो एवं वि दाव पत्तअं वाचेदु[7] त्ति।

राक्ष०—(पत्रं गृहीत्वा वाचयति)

[जीर्णविषः जीर्णं निराबाधं कृतं विषं येन। वामाक्षिस्पन्दनं पुरुषाणां तस्यानिष्टत्वात्।] कथं प्रथममेव सर्पदर्शनमिति शङ्कारूपः संभ्रमः। [दर्शनकार्येण दर्शनस्य सर्पदर्शनस्य यत्कार्यं पारितोषिकलाभादि तेन तद्दत्वेत्यर्थः। प्राकृतकविः। प्राकृते प्राकृतो वा कविः। प्रकृतिभ्यो यल्लब्धं तत्र कविः पण्डितः कुसुमपुरवासिजनकृत्यज्ञ इति च ध्वनिः।]

---

1. स्पन्दं, 2. सर्पेषु, 3. जं अज्जो-अमच्चो आणवेदि त्ति, 4. अमच्चो अदंसणेण, 5. वेहि मह वअणेण, 6. वाचेदुं पसीददुत्ति, 7. वाचेदुं पसीददुत्ति।

RA`K.—(*Gesticulating a twitching of the left eye to himself*) How, at the very beginning, there is the sight of serpents! (*Aloud*) Priyaṁvadaka, I have no curiosity to see snakes. Therefore satisfy him and let him go.

PRIY.—As the Minister orders. (*Approaching*) Sir, the Minister shows you his favour by giving you this reward (lit. that which would have resulted from his having actually seen your exhibition); he has no mind, however, to see the serpents.

SNAKE-CATCHER—Good Sir, say to the Minister, that I am not only a professional snake-charmer, but also a versifier in Prākṛt. If, therefore, the Minister does not wish to favour me with an audience, request him to *read* this letter.

PRIY.—(*Taking the letter and approaching* RA`KSHASA) Sir, he requests Your Honour, saying "I am not only a snake-catcher by profession but also a versifier in Prākṛt. If the Minister, therefore, does not grant me the favour of an audience he will at least read this letter."

RA`K.—(*Takes the letter and reads it*) That which the bee

राक्षस—(वैसे भी आँख फड़क रही है । मन-ही-मन) यह क्या पहले ही कदम पर साँप के दर्शन ? (प्रगट) प्रियंवदक, सांप के दिखने-दिखाने में हमें जरा भी दिलचस्पी नहीं है । कुछ दे-दिवाकर इसकी छुट्टी कर दो, जाओ ।

प्रियंवदक—जो आज्ञा, स्वामी (सपेरे के निकट पहुँचकर) भैय्या, यह (पारितोषिक) तुम्हें अमात्य की कृपा के प्रसाद के रूप में मिला है (जैसे उन्होंने सचमुच तुम्हारा कर्तब देख लिया है ।) बात दरअसल यह है कि सांप वगैरह देखने में उन्हें कोई रुचि नहीं है ।

सपेरा—तुम्हारे मुंह में घी-सक्कर, भैय्या, अपने स्वामी से जाकर कहो मैं केवल सपेरा ही नहीं हूँ, प्राकृत का एक कवि भी हूँ । अगर मुलाकात के लिये उनके पास समय न हो, तो कम-से-कम यह रुक्का तो वे तकलीफ करके पढ़ ही लें ।

प्रियंवदक—(रुक्का हाथ में लेकर राक्षस के निकट पहुँचते हुए) स्वामी, वह जो कह रहा है, 'मैं केवल सपेरा ही नहीं हूँ, प्राकृत का एक कवि भी हूँ । मुलाकात के लिये आपके पास समय न हो तो कम-से-कम यह रुक्का पढ़ने की तकलीफ तो करें ।'

राक्षस—(रुक्का लेकर पढ़ता है) ।

पीत्वा निरवशेषं कुसुमरसमात्मनः कुशलतया ।
यदुद्गिरति भ्रमरः अन्येषां करोति तत्कार्यम् ॥ ११ ॥

पाऊण निरवसेसं कुसुमरसं अत्तणो कुसलदाए।
जं उग्गिरेइ[1] भमरो अण्णाणं कुणइ तं कज्जं ॥

(विचिन्त्य स्वगतम्) अये, कुसुमपुर[2]वृत्तान्तज्ञो भवत्प्रणिधिरिति गाथार्थः। कार्यव्यग्रत्वान्मनसः प्रभूतत्वाच्च प्रणिधीनां विस्मृतम्। इदानीं स्मृतिरुपलब्धा। व्यक्तमाहितुण्डिकच्छद्मना विराधगुप्तेनानेन[3] भवितव्यम्। (प्रकाशम्) प्रियंवदक, प्रवेशयैनं सुकविरेषः। श्रोतव्यमस्मात्सुभाषितम्।

प्रियं०—तथा[4]। (इति आहितुण्डिकमुपसृत्य) उपसर्पतु आर्यः। (उपसप्पदु अज्जो।)

आहि०—(नाट्येनोपसृत्य[5] विलोक्य च स्वगतम्। संस्कृतमाश्रित्य।) अयममात्यराक्षसः[6]। स एषः—

वामां बाहुलतां निवेश्य शिथिलं[7] कण्ठे विवृत्तानना[8]
स्कन्धे दक्षिणया बलान्निहितयाप्यङ्के पतन्त्या मुहुः।
गाढालिङ्गनसङ्गपीडितमुखं[9] यस्योद्यमाशङ्किनी
मौर्यस्योरसि नाधुनापि कुरुते वामेतरं श्रीः स्तनम् ॥ १२ ॥

[पीत्वेति। आत्मनः कुशलतया नैपुण्येन समग्रं कुसुमरसं कुसुमपुरवृत्तान्तं पीत्वा सम्यग्ज्ञात्वा भ्रमरः भ्रमणशीलः स्पशः यदुद्गिरति कथयति तदन्येषां तज्जिज्ञासूनां स्वाम्यादीनां कार्यं करोति इति गूढोऽर्थः ।। ११ ।।] अये कुसुमपुरवृत्तान्तज्ञ इति। इयं सञ्चिन्तितार्थप्राप्तिः क्रमः। पूर्वं द्वारि कस्तिष्ठतीति कुसुमपुरवृत्तान्तहरचारगमनस्य सञ्चिन्तितस्य प्राप्तेः। कार्यव्यग्रत्वादिति इष्टजनानुसन्धानरूपमधिबलमङ्गम्। व्यक्तमाहितुण्डिकेति [आहितुण्डिकलिङ्गधारिणा।] इदं लिङ्गादभ्यूहनमनुमानमङ्गम्।

वामामिति। [वामां स्त्रीणां वामभागस्य श्रेष्ठत्वात्] अनुरागबलात्स्कन्धे निहितयापि यदुद्यमभयान्मुहुरङ्के पतन्त्या दक्षिणया बाहुलतयोपलक्षिता इति शेषः। गाढालिङ्गनसङ्गेनासक्त्या पीडितमुखं चिपिटीकृतचूचुकं यथा तथा।

---

[1] उग्गिरन्दि भमरा, [2] कुसुमरसम्; आम्; ततो भवत्प्रणिधिरिति गाथार्थः, [3] अस्मात्परं—कुसुमपुरादागतेन, [4] जं अज्जो आणवेदित्ति, [5] सृत्यावलोक्य, [6] अये अयं तिष्ठति, [7] शिथिलाम्, [8] निवृ०, [9] सुखं।

gives out after having, by its skill, completely drunk up *Kusumarasa* (honey of flowers; important news from *Kusumapura*) serves the purpose of others. (11)

(*Musing, to himself*) Ah, the verse purports to say that he is my spy and is acquainted with the state of affairs in Kusumapura. I forgot it on account of my mind being engrossed in my work, and of the large number of my spies. Now remembrance comes back to me. He is evidently Virādhagupta, disguised as a snake-charmer. (*Aloud*) Priyaṁvadaka, usher him in; he is a fine poet; I will hear from him good sayings.

PRIY.—So I will. (*Approaching the* SNAKE-CATCHER) Your Honour may come in.

SNAKE-CATCHER—(*Gesticulates that he goes in. Looking about, to himself, adopting* Sanskrit) This is minister Rākshasa. He,

Afraid of whose efforts the goddess of wealth, having her creeper-like left arm twined loosely round the neck of Maurya, with her face turned away and her right arm constantly falling down on her lap, though perforce placed on the shoulder, does not even now bring herself in close contact* with the bosom of Maurya. (12)

कुसुम (पुर) के रस (गत समाचार) को अपनी कुशलता से पी-पीकर संचित करते हुए भंवरा पुनः जो कुछ उगलता है, उससे औरों का काम भी चलता जाता है। (११)

(कुछ चिंतन करके, मन-ही-मन) अरे इस पद का तो यह अर्थ प्रतीत होता है कि यह कुसुमपुर की खबर लाया है। किंतु मेरा मन और कामों में उलझा हुआ था और फिर गुप्तचर भी तो कितने ही हैं, मुझे ध्यान ही नहीं रहा था। अब जाकर मेरी याद वापिस आई है; हो-न-हो, सपेरे के वेष में यह विराधगुप्त है। (व्यक्त) प्रियंवदक, इसे अंदर ले आओ, यह तो कोई अच्छा कवि मालूम देता है। लगे हाथ इससे कुछ सुभाषित ही सुनें आज।

प्रियंवदक—जो आज्ञा, स्वामी। (सपेरे के पास आकर) आओ भैय्या!

सपेरा—(नजदीक आते हुए और देखकर, मन-ही-मन संस्कृत में) यह है अमात्य राक्षस, यही है वह—

जिसकी नाराजगी के डर से, मानो लक्ष्मी आज भी अपने दांये स्तन को मौर्य की छाती के संपर्क में नहीं ले आती कि गाढ़ आलिंगन करके उसे वह झकझोर न दे। यद्यपि अपनी बायीं लता-सी भुजा को वह उसके कण्ठ में शिथिलता के साथ डाले हुए है, उसका मुँह भी उधर से फिर चुका है, और उसकी दायीं बांह जबरदस्ती कंधे पर रखी जाती हुई भी बार-बार अपनी ही गोद में आ गिरती है। (१२)

---

* Trans. not literal as it is obsene.

(प्रकाशम्) जयतु अमात्यः। (जेदु अमच्चो[1] ।)

राक्ष०—(विलोक्य) अये, विराध—(इत्यर्द्धोक्ते[2]) ननु प्ररूढमश्रुः[3] । प्रियंवदक, भुजङ्गैरिदानीं विनोदयितव्यम्[4] तद्विश्रम्यतामितः परिजनेन । त्वमपि स्वाधिकार[5]मशून्यं कुरु।

प्रियं०—तथा। (इति सपरिवारो निष्क्रान्तः।)

राक्ष०—सखे विराधगुप्त, इदमासनमास्यताम् ।

(विराधगुप्तो नाटचेनोपविष्टः[6])

राक्ष०—(निर्वर्ण्य) अये[7] देवपादपद्मोपजीविनोवस्थेयम् । (इति रोदिति)

विरा०—अमात्य अलं शोकेन। नातिचिरादमात्योऽस्मान्[8] पुरातनीमवस्थामारोपयिष्यति ।

राक्ष०—सखे[9], वर्णय कुसुमपुरवृत्तान्तम् ।

विरा०—अमात्य, विस्तीर्णः कुसुमपुर[10]वृत्तान्तस्तत्कुतः प्रभृति वर्णयामि ।

राक्ष०—सखे, चन्द्रगुप्तस्यैव तावन्नगरप्रवेशात्प्रभृति अस्मत्प्रयुक्तैः[11] तीक्ष्णरसदायिभिः किमनुष्ठितमित्याद्यादितः श्रोतुमिच्छामि ।

चन्द्रगुप्तेऽत्यन्तमनुरक्तापि राक्षसोद्यमाशङ्किनी [राक्षसः स्वोद्यमेन चन्द्रगुप्तं राज्याद् भ्रंशयेदिति शङ्कया मौर्यस्योरसि दक्षिणं स्तनं न करोति। गाढालिङ्गनं न ददातीत्यर्थः] सती स्वाभिलषितं गाढालिङ्गनरूपमुपभोगं न सम्पादयतीति संभोगाभिलाषः शृङ्गारः। अत्र गाढालिङ्गनाकरणस्य यदुद्यमाशङ्कित्वेन समर्थनात्काव्यलिङ्गमलङ्कारः। 'समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्गं समर्थनम् ।' इति लक्षणात् ॥१२॥ **अये विराध इति** परिजनं प्रति रहस्यगोपनार्थमर्धोक्तिः। प्ररुढश्मश्रुरिति चोक्तवाक्यस्यान्यथाकरणेन पूरणम् । विराधप्ररूढश्मश्रुरित्येककरणम् । विकृतो राधो वेषः तद्रूपाणि प्ररूढानि श्मश्रूणि यस्य। स्वाधिकारमशून्यमिति। [स्वनियोगानुष्ठानपरो भव] परप्रवेशनमदत्वा द्वारि अवहितस्तिष्ठेत्यर्थः। सखे, वर्णय इति। इयं व्यापिनी कथा पताका। [तीक्ष्णरसो विषम् ।]

---

1. जअदु, जअदु अमच्चो—अज्जो, 2. ०क्ते विरूढस्मृतिः, 3. विरूढश्मश्रुः, 4. विनोदयामः, न विनो०, 5. स्वम०. 6. अस्मात्प्राक्—यदाज्ञापयत्यमात्य इति, 7. सखेदं, सबाष्पं नि०, 8. नूनं पुरा०, 9. विराधगुप्त इत्यधिकम्, 10. खलु कसु० तत्कुतः; तदाज्ञापय कुतः कथयामि, 11. प्रणिधिभिः।

(*Aloud*) Victory to the Minister !

Ra‘k—(*Looking at him*) Ah, Virādha—(*Here he breaks off*) I say, what a beard he has got !

Priyaṁvadaka, I wish to have some pastime with the serpents. Let the servants, therefore, retire. You too attend to your duty. other things

Priy.—As you command. [*Exit with* Attendants]

Ra‘k.—Friend Virādhagupta, take this seat.

Vira‘dh.—(*Gesticulates that he sits down*)

Ra‘k.—(*Closely marking him*) Alas ! that this should be the condition of a servant of His Majesty ! (*Weeps*)

Vira‘dh.—Away with this sorrow, Minister. Ere long Your Honour will restore us to our former position.

Ra‘k.—Friend, report the state of affairs in Kusumapura.

Vira‘dh.—Minister, the tale of Kusumapura is very long. Where shall I narrate it from ?

Ra‘k.—Friend, I wish to hear from the beginning the doing of the persons employed by us to give poison, after the formal entry of Chandragupta himself into the city.

(व्यक्त) जय हो, अमात्य प्रवर की जय हो !

राक्षस—हाँ तो कहो, विराध ! (अभी इतना ही कह पाया था कि) अरे दाढ़ी तो ज़रा देखो इसकी किस कदर बढ़ आई है। प्रियंवदक, अब हम ज़रा साँपों का खेल देखेंगे, ये लोग सब जाकर आराम करें। और तू भी जाकर कुछ, बाकी का काम पूरा कर आ।

प्रियंवदक—जो आज्ञा, स्वामी ! (नौकरों-चाकरों के साथ चला जाता है।)

राक्षस—आओ मित्र, इधर आओ आसन पर बैठो।

संपेरा—(बैठता हुआ-सा)

राक्षस—(खूब देखभाल के साथ) महाराज के अनुचर की यह अवस्था ! (रो पड़ता है)

विराधगुप्त—रोते क्यों हैं, मन्त्री ? जल्दी ही तो आप हम सबको अपनी उसी पुरानी हालत में वापिस ले आयेंगे।

राक्षस—हाँ तो, मित्र, कुसुमपुर की कुछ खबर सुनाओ।

विरा०—एष कथयामि । अस्ति तावच्छकयवनकिरातकाम्बोजपारसीकबाह्लीकप्रभृतिभिः चाणक्यमतिपरिगृहीतैश्चन्द्रगुप्तपर्वतेश्वर[1]बलैरुदधिभिरिव प्रलयोच्चलितसलिलैः[2] समन्तादुपरुद्धं कुसुमपुरम् ।

राक्ष०—(शस्त्रमाकृत्य ससम्भ्रमम्) अयि, मयि स्थिते कः कुसुमपुरमुपरोत्स्यति। प्रवीरक[3], प्रवीरक, क्षिप्रमिदानीम्—

प्राकारं परितः शरासनधरैः क्षिप्रं परिक्रम्यतां[1]
  द्वारेषु द्विरदैः प्रति[5]द्विपघटाभेदक्षमैः स्थीयताम् ।
त्यक्त्वा[6] मृत्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले[7] दुर्बले
  ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभीष्टं यशः ।। १३ ।।

विरा०—अमात्य, अलं आवेगेन । वृत्तमिदं[8] वर्ण्यते ।

राक्षस०—(निःश्वस्य) कष्टं वृत्तमिदम् । मया पुनर्ज्ञातं स एवायं काल[9] इति । (शस्त्रमुत्सृज्य) हा देव नन्द, स्मरामि[10] ते राक्षसं प्रति प्रसादातिशयम् । त्वमत्र संग्रामकाले—

यत्रैषा मेघनीला चरति गजघटा राक्षसस्तत्र यायाद्
  एतत्पारिप्लुवाम्भःप्लुति तुरगबलं वार्यतां राक्षसेन ।

अस्तीति क्रियाया वाक्यार्थः कर्त्ता । [चाणक्यमतिपरिगृहीतैश्चाणक्यबुद्ध्यनुवर्तिभिः । प्रलये उच्चलितानि सलिलानि येषां तैः । उदधिभिरिवेत्यनेन बलानां विस्तीर्णत्वमुक्तम् ।] प्रवीरकस्तदानीन्तनः सन्निहितोऽनुचरः । **प्राकारमिति** । [शरा अस्यन्ते क्षिप्यन्ते अनेनेति शरासनं धनुस्तस्य धरैः धानुष्कैः प्राकारं परितः परिक्रम्यताम् । प्रतिगता द्विपाः परगजास्तेषां घटानां भेदने क्षमैः । येषां यशोऽभीष्टं, न तु नश्वरो देहः । ये यशोऽर्थिन इत्यर्थः । ये च त्यक्तमृत्युभयाः शत्रोर्दुर्बले बले प्रहर्तुं मनो येषां ते तथा । ते निर्यान्तु ।] शत्रुबलस्य दुर्बलत्वकथनं सहानुयायिनां प्रोत्साहनार्थम् । इदं रोषसंभ्रमवचनं तोटकम् । अयं वीररसः स्थायी भावः । विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः । आनीयमानः स्वादुत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः ।। [इति दशरूपकम्] ।। १३ ।।

---

1. पर्वतक, 2. प्रलयकालचलितसलिलसञ्चयैः, 3. वीरक, 4. परिक्षिप्यताम्, 5. पर, 6. मुक्त्वा, 7. बलं दुर्बलम्, 8. वृत्तमिदानीम्, 9. कालः वर्तते, 10. स्मरति ते राक्षसः प्रसादानाम् । यस्त्वम०; मेवंविधे काले ।

VIRA'DH.—Here I begin. The city of Kusumapura was blockaded on all sides by the forces belonging to Chandragupta and Parvateśvara, composed of the Śakas, Yavanas, Kirātas, Kāmbojas, Pārasīkas, Bālhikas, and others guided by the directions of Chāṇakya, and resembling the oceans with their water in wild commotion (lit. running) at the time of the world's final destruction.

RA'K.—(*Drawing his sword in great haste*) Ah, who dares blockade Kusumapura while I am living? Pravīraka! Pravīraka! Quickly now—

Let archers move rapidly round this rampart; let elephants able to break through the lines of the elephants of the enemy stand (be posted) at the gates; and let those united in mind with me who are ambitious of glory, and who, regardless of (lit. dismissing) the fear of death, are bent upon attacking the weak force of the enemy, march out with me. (13)

VIRA'DH.—Your honour should spare this agitation. It is the past that is being described by me.

RA'K.—(*Sighing*) Alas, it is a past event! I, however, imagined that it was the same time now. (*Dropping down the sword*) Oh king Nanda, I call to my mind your excessive graciousness towards Rākshasa. For, you at the time of battle.

विराध—अमात्य, कुसुमपुर की खबर तो बहुत लम्बी है। कहाँ से शुरू करूँ ?

राक्षस—मित्र, चन्द्रगुप्त के राजधानी में यथावत् आ चुकने के पश्चात्, हमारे विष देने वाले गुप्तचरों ने क्या-कुछ किया—यह सब मैं शुरू से सुनना चाहूँगा।

विराध—तो कहता हूँ : कुसुमपुर—जिसके चारों ओर चाणक्य के निर्देशन से चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर को—शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारसीक, बाह्लीक—इत्यादि—सेनायें चढ़ आई हों—जैसे सचमुच पृथ्वी को प्रलयकालीन उद्दाम समुद्र घेरे हुए हों।

राक्षस—(तलवार निकालकर आवेश में) अरे, मेरे जीते-जी कौन है जो कुसुमपुर पर चढ़ आये ! प्रवीरक, प्रवीरक ! जल्दी करो, जल्दी करो प्राचीर की रक्षा में सब धनुर्धर उसके गिर्द आ खड़े हों, और हाथी (हमारे), जो शत्रु की सेना को भेद सकने में समर्थ हैं, नगर के द्वारों पर स्थिर कर दिये जायें, और वे वीर भी जिन्हें यश अभीष्ट हो—जो हृदय से हमारे साथ हैं, मृत्यु के भय से मुक्त होकर शत्रु की दुर्बल सेना पर आक्रमण करने के लिये मेरे साथ निकल आवें। (१३)

विराध—मन्त्रि प्रवर, इस तरह आवेश में न आयें। मैं तो कुसुमपुर के अतीत की सुना रहा था।

विरा०—एष कथयामि । अस्ति तावच्छकयवनकिरातकाम्बोजपारसीकबाह्लीकप्रभृतिभिः चाणक्यमतिपरिगृहीतैश्चन्द्रगुप्तपर्वतेश्वर[1]बलैरुदधिभिरिव प्रलयोच्चलितसलिलैः[2] समन्तादुपरुद्धं कुसुमपुरम् ।

राक्ष०—(शस्त्रमाकृत्य ससम्भ्रमम्) अयि, मयि स्थिते कः कुसुमपुरमुपरोत्स्यति। प्रवीरक[3], प्रवीरक, क्षिप्रमिदानीम्—

प्राकारं परितः शरासनधरैः क्षिप्रं परिक्रम्यतां[4]
द्वारेषु द्विरदैः प्रति[5]द्विपघटाभेदक्षमैः स्थीयताम् ।
त्यक्त्वा[6] मृत्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले[7] दुर्बले
ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभीष्टं यशः ॥ १३ ॥

विरा०—अमात्य, अलं आवेगेन । वृत्तमिदं[8] वर्ण्यते ।

राक्षस०—(निःश्वस्य) कष्टं वृत्तमिदम् । मया पुनर्ज्ञातं स एवायं काल[9] इति । (शस्त्रमुत्सृज्य) हा देव नन्द, स्मरामि[10] ते राक्षसं प्रति प्रसादातिशयम् । त्वमत्र संग्रामकाले—

यत्रैषा मेघनीला चरति गजघटा राक्षसस्तत्र यायाद्
एतत्पारिप्लुवाम्भःप्लुति तुरगबलं वार्यतां राक्षसेन ।

अस्तीति क्रियाया वाक्यार्थः कर्त्ता । [चाणक्यमतिपरिगृहीतैश्चाणक्यबुद्ध्यनुवर्तिभिः । प्रलये उच्चलितानि सलिलानि येषां तैः । उदधिभिरिवेत्यनेन बलानां विस्तीर्णत्वमुक्तम् ।] प्रवीरकस्तदानीन्तनः सन्निहितोऽनुचरः । **प्राकारमिति** । [शरा अस्यन्ते क्षिप्यन्ते अनेनेति शरासनं धनुस्तस्य धरैः धानुष्कैः प्राकारं परितः परिक्रम्यताम् । प्रतिगता द्विपाः परगजास्तेषां घटानां भेदने क्षमैः । येषां यशोऽभीष्टं, न तु नश्वरो देहः । ये यशोऽर्थिन इत्यर्थः । ये च त्यक्तमृत्युभयाः शत्रोर्दुर्बले बले प्रहर्तुं मनो येषां ते तथा । ते निर्यान्तु ।] शत्रुबलस्य दुर्बलत्वकथनं सहानुयायिनां प्रोत्साहनार्थम् । इदं रोषसंभ्रमवचनं तोटकम् । अयं वीररसः स्थायी भावः । विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः । आनीयमानः स्वादुत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥ [इति दशरूपकम्] ॥ १३ ॥

---

1. पर्वतक, 2. प्रलयकालचलितसलिलसञ्चयैः, 3. वीरक, 4. परिक्षिप्यताम्, 5. पर, 6. मुक्त्वा, 7. बलं दुर्बलम्, 8. वृत्तमिदानीम्, 9. कालः वर्तते, 10. स्मरति ते राक्षसः प्रसादानाम् । यस्त्वम०; मेवंविधे काले ।

VIRAʼDH.—Here I begin. The city of Kusumapura was blockaded on all sides by the forces belonging to Chandragupta and Parvateśvara, composed of the Śakas, Yavanas, Kirātas, Kāmbojas, Pārasīkas, Bālhikas, and others guided by the directions of Chāṇakya, and resembling the oceans with their water in wild commotion (lit. running) at the time of the world's final destruction.

RAʼK.—(*Drawing his sword in great haste*) Ah, who dares blockade Kusumapura while I am living? Pravīraka! Pravīraka! Quickly now—

Let archers move rapidly round this rampart; let elephants able to break through the lines of the elephants of the enemy stand (be posted) at the gates; and let those united in mind with me who are ambitious of glory, and who, regardless of (lit. dismissing) the fear of death, are bent upon attacking the weak force of the enemy, march out with me. (13)

VIRAʼDH.—Your honour should spare this agitation. It is the past that is being described by me.

RAʼK.—(*Sighing*) Alas, it is a past event! I, however, imagined that it was the same time now. (*Dropping down the sword*) Oh king Nanda, I call to my mind your excessive graciousness towards Rākshasa. For, you at the time of battle.

विराध—अमात्य, कुसुमपुर की खबर तो बहुत लम्बी है। कहाँ से शुरू करूँ?

राक्षस—मित्र, चन्द्रगुप्त के राजधानी में यथावत् आ चुकने के पश्चात्, हमारे विष देने वाले गुप्तचरों ने क्या-कुछ किया—यह सब मैं शुरू से सुनना चाहूँगा।

विराध—तो कहता हूँ: कुसुमपुर—जिसके चारों ओर चाणक्य के निर्देशन से चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर को—शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारसीक, बाह्लीक—इत्यादि—सेनायें चढ़ आई हों—जैसे सचमुच पृथ्वी को प्रलयकालीन उद्दाम समुद्र घेरे हुए हों।

राक्षस—(तलवार निकालकर आवेश में) अरे, मेरे जीते-जी कौन है जो कुसुमपुर पर चढ़ आये! प्रवीरक, प्रवीरक! जल्दी करो, जल्दी करो प्राचीर की रक्षा में सब धनुर्धर उसके गिर्द आ खड़े हों, और हाथी (हमारे), जो शत्रु की सेना को भेद सकने में समर्थ हैं, नगर के द्वारों पर स्थिर कर दिये जायें, और वे वीर भी जिन्हें यश अभीष्ट हो—जो हृदय से हमारे साथ हैं, मृत्यु के भय से मुक्त होकर शत्रु को दुर्बल सेना पर आक्रमण करने के लिये मेरे साथ निकल आवें। (१३)

विराध—मन्त्रि प्रवर, इस तरह आवेश में न आयें। मैं तो कुसुमपुर के अतीत की सुना रहा था।

पत्तीनां राक्षसोऽत्तं[1] नयतु बलमिति प्रेषयन्मह्यमाज्ञाम्
अज्ञासीः प्रीति[2]योगात्स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्रम् ॥ १४ ॥

ततस्ततः ?

विरा०—ततः समन्तादुपरुद्धं कुसुमपुर[3]मवलोक्य वहुदिवसप्रवृत्तम-[4]तिमहदुपरोधवैशसमुपरि पौराणां परिवर्तमानमसहमाने तस्यामप्यवस्थायां पौरजनापेक्षया सुरङ्गामेत्यापक्रान्ते तपोवनाय देवे सर्वार्थसिद्धौ स्वामिविरहात्प्रशिथिलीकृतप्रयत्नेषु युष्मद्बलेषु जयघोषणाव्याघातादिसाहसानुमिते[5]ष्वन्तर्नगरवासिषु पुनरपि नन्दराज्यप्रत्यानयनाय सुरङ्गया बहिरपगतेषु युष्मासु चन्द्रगुप्तनिधनाय युष्मत्प्रयुक्तया विषकन्यया घातिते तपस्विनि पर्वतेश्वरे—

राक्ष०—सखे, पश्याश्चर्यम्—

कर्णेनेव विषाङ्गनैकपुरुषव्यापादिनी रक्षिता
हन्तुं शक्तिरिवार्जुनं बलवती या चन्द्रगुप्तं मया ।

[यत्रेति । एषा मेघवत् श्यामला शत्रुगजघटा यत्र चरति तत्र राक्षसो यातु । तद्वारणायेतिशेषः ।] पारिप्लवाम्भोवत्समीरणलोलसागरकल्लोलवत् प्लुतिरुड्डयनं यस्य तत् । [एवं स्नेहयोगात्कार्यसहस्रकरणाय मामादिशन् राक्षसानां सहस्रं स्थितमिवाज्ञासीः अमंस्थाः] ॥ १४ ॥ [उपरोधवैशसं पुरपरिवेष्टनजनितक्लेशान् । **जयघोषणेति** । पौरजनापेक्षा अनुमतिः । जयस्याघोषणा डिण्डिमाघातरूपा कर्तव्येत्याज्ञापिते तदकरणं जयघोषणाव्याघातः । तदादिसाहसै राजाज्ञाभङ्गादिरूपैरनिष्टाचरणैरनुमितेषु शत्रूजापदूषिता इत्येवमुन्नीतेषु अन्तर्नगरवासिषु युष्मद्बलेषु सत्सु इत्यन्वयः । अतः परमत्रावस्थानमनुचितमिति बहिर्गत्वा सुहृद्बलोत्थापनादिना नन्दराज्यप्रत्यानयनाय युष्मासु बहिरपगतेष्वित्यन्वयः । तपस्विनीति । दीने इत्यर्थः ॥ **कर्णेनेति** । कर्णेनार्जुनं हन्तुं बलवती एकपुरुषव्यापादिनी शक्तिरिव चन्द्रगुप्तं हन्तुं या विषाङ्गना मया रक्षितेति व्यवहितान्वयः । [विष्णुगुप्तहतकस्य

---

1. सस्तन्न०; सोन्तर्न०, 2. स्नेह, 3. पुष्प०, 4. प्रभृतिमह०,
5. ०नुमितान्तर्नगरवासिषु ।

Seemed to think in your affection (for me) that there were a thousand Rākshasas living in the city when you despatched to me order after order, thus :—Where this line of elephants, dark-blue like (a mass of) clouds, moves, there let Rākshasa go ; let this troop of cavalry bounding like heaving waves be warded off Rākshasa ; let Rākshasa destroy the body of infantry ; and the like. (14)

What further ?

VIRA`DH.—Thereupon, when His Majesty Sarvārthasiddhi, seeing Kusumapura besieged on all sides and not bearing to see the great hardships of a siege entailed on the citizens for a long time, came to an underground passage and out of regard for the subjects even in such a state left the city to retire to a penance-grove ; when deprived of their king, your forces, slackened their efforts ; when your partisans residing in the city were found out to be so by their daring acts, such as their obstruction to the proclamation of (Chandragupta's) victory ; when you, too, escaped by the subterranean passage for the restoration of the sovereignty of the Nandas ; and when poor Parvartaka was killed by the poison-maid employed by you for the destruction of Chandragupta.—

RA`K—Friend, see the wonder of it.

राक्षस--अरे, अतीत था यह ? और मैं समझ रहा था आज यही कुछ हो रहा है। (तलवार छोड़ते हुए) हाय महाराज, नन्द, मुझे तो आपके मुझ राक्षस के प्रति किये गये महान् प्रसाद स्मरण आ रहे हैं; किस प्रकार आप युद्ध की वेला में--

और सामने जो यह मेघों की नील घटा-सी वह हाथियों की सेना नज़र आ रही है, वहाँ राक्षस को भेज दो, और यह जो शत्रु के अश्वारोहियों का ज्वार-सा सामने से बढ़ता आ रहा है इसे भी, राक्षस से जाकर कहो कि वही आकर रोके, पैदल लड़ने वालों का ख़ात्मा भी राक्षस के जिम्मे कर दो—इस प्रकार आज्ञा-पर-आज्ञा देते हुए मुझे, अपने प्रेम में, आप समझ बैठते थे जैसे एक नहीं हज़ार राक्षस आपके साथ हों। (१४)

उसके बाद फिर ?

विराध—इसके बाद कुसमपुर की इस प्रकार सब ओर से नाकाबन्दी को देखते हुए, और इतनी देर तक नागरिकों पर उस(नाकाबन्दी)से जो कठिनाइयां आ रही थीं···और देखने की हिम्मत जब रह न गई उनमें—उस हालत में भी प्रजाजन के प्रति प्रेम के कारण जब महाराज सर्वार्थसिद्धि एक सुरंग के द्वारा तपोवन को भाग निकले, और राजा के वियोग में इस प्रकार आपकी सेना के जोश ढीले पड़ गये और नगर में बचे हुए आपके भक्तजनों का साहस अभी नहीं गया था क्योंकि (चन्द्रगुप्त की) विजय की घोषणा में खलल वे तब भी डाल रहे थे, जबकि नन्दराज्य को पुनः प्रतिष्ठित करने की धुन में एक सुरंग

सा विष्णोरिव विष्णुगुप्त[1]हतकस्यात्यन्तिकश्रेयसे[2]
हैडिम्बेयमिवैत्य पर्वतनृपं तद्वध्यमेवावधीत् ।। १५ ।।

विरा०—अमात्य, दैवस्यात्र कामचारः किं क्रियताम्[3] ।

राक्ष०—ततस्ततः ?

विरा०—पितृवधत्रासादपक्रान्ते[4] कुमारे मलयकेतौ विश्वासिते पर्वतकभ्रातरि वैरोचके[5] प्रकाशिते च चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशे चाणक्यहतकेन आहूयाभिहिताः सर्वे एव कुसुमपुरनिवासिनः सूत्रधाराः यथा सांवत्सरिकादेशादर्धरात्रसमये[6] चन्द्रगुप्तस्य[7] नन्दभवनप्रवेशो भविष्यति । ततः पूर्वद्वारा[8]त्प्रभृति संस्क्रियतां राजभवनमिति । ततः सूत्रधारैरभिहितमार्य, प्रथममेव देवस्य चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशमुपलभ्य सूत्रधारेण दारुवर्मणा कनकतोरणन्यासादिभिः संस्कारविशेषैः संस्कृतं प्रथमराजभवनद्वारम् । अस्माभिरिदानीमभ्यन्तरे संस्कार आधेय[9] इति । ततश्चाणक्यबटुना अनादिष्टेनैव सूत्रधारेण दारुवर्मणा संस्कृतं राजभवनद्वारमिति परितुष्टेनेव सुचिरं दारुवर्मणो दाक्ष्यं प्रशस्याभिहितम्[10]—अचिरादस्य दाक्ष्यस्यानुरूपं फलमधिगमिष्यसि दारुवर्मन्निति ।

चाणक्यबटोः आत्यन्तिकश्रेयसे समधिकाभीष्टसिद्धये ।] श्रीकृष्णवध्यं [हिडिम्बाया अपत्यं पुमान् है० तं] हैडिम्बेयं घटोत्कचमिव पर्वतकमेत्य प्राप्य तद्वध्यं तेन विष्णुगुप्तेन परिपणितराज्यार्द्धलुब्धेन वध्यमेवावधीत् ।। १५ ।।

[कामेन चारः कामचारः ।] सूत्रधाराः शिल्पिनः । संस्कारविशेषैरिति । चन्द्रगुप्तोपरि तोरणपातनोद्यमादिरूपैः । अभ्यन्तरे संस्कार इति । तीक्ष्णरसदान-

---

1. चन्द्रगुप्त०, 2. प्रीतये, अत्यन्तनिःश्रेयसे, 3. किमत्र क्रियते, 4. कुसुमपुरादप०, 5. वैरोधके—चने, 6. दत्तलग्नवशात्; रिक्वचनादद्यैवार्ध०, 7. एव अभिमतः चन्द्रगुप्तस्य, 8. पूर्व-अन्तः-पुर-द्वारप्रवेशात्; प्रथमद्वा०, 9. विधेय, 10. अभिनन्द्य ।

The potent poison-maid, destined to kill one man, whom I had reserved for the destruction of Chandragupta, came in contact with king Parvataka, and to the great good luck of Viṣṇugupta, killed him whose very death was sought by him (*i.e.* Viṣṇugupta), just as the powerful missile, the one-man-slayer, which was kept in reserve by Karṇa in order to kill Arjuna, smote, to the great interest of Viṣṇu (Kṛṣṇa), the son of Hidimbā, whom he (Kṛṣṇa) wished to make its victim. (15)

VIRA'DH—Minister, it was the wanton pastime of fate. What could be done ?

RA'K.—Well, proceed with your story.

VIRA'DH.—Then, after prince Malayaketu, frightened at the murder of his father, had fled, and Vairochaka, the brother of Parvataka, had been taken into confidence, the entry of Chandragupta into the palace of the Nandas was publicly announced, when the cursed Chāṇakya called together all the carpenters resident in Kusumapura and addressed them thus—"According to the directions of the astrologers the entry of Chandragupta into the abode of the Nandas will take place at midnight. You will, therefore, decorate the royal palace commencing with the (main) eastern entrance." Then the carpenters said—"Sir, the front gate of the royal palace has already been embellished with special decorations, such as the construction of golden arches, by the carpenter Dāruvarman who had learnt that His Majesty Chandragupta would make his entry into the palace of the Nandas. We shall, therefore, make the decorations in the interier." Then the fellow Chāṇakya, hearing that the carpenter Dāruvarman had, without being ordered, decorated the gate of the palace, bestowed, appearing to be pleased, a long eulogy on the foresight of Dāruvarman and said—"O Dāruvarman, before long you will receive a fitting reward for this your foresight."

से आप भी बाहर निकल चुके थे, और जब आपकी भेजी विषकन्या द्वारा बेचारे पर्वतेश्वर की हत्या कर दी गई ।

राक्षस—मित्र, अजीब बात तो यह हुई, देखो ना—

इतिहास में आता है कि कर्ण ने एक अद्भुत शक्ति खूब संभालकर अर्जुन की जान लेने के लिये ही रखी हुई थी (क्योंकि उसमें एक ही व्यक्ति की जान लेने की सामर्थ्य थी), किन्तु उससे मारा गया बेचारा घटोत्कच, जिसेकि कृष्ण मरवाना चाहते थे । कर्ण की शक्ति और इच्छा पूर्ण कर गई कृष्ण की ! यही कुछ मेरे साथ आज हुआ है । जिस विषकन्या के द्वारा मैं चन्द्रगुप्त की जान लेना चाहता था, उससे मारा गया बेचारा पर्वतेश्वर—वही जिसकी जान का प्यासा चाणक्य था । (१५)

राक्ष०——(सोद्वेगम्) सखे, कुतश्चाणक्यबटोः परितोषः। अफलमनिष्टफलं वा दारुवर्मणः प्रयत्नमवगच्छामि। यदनेन बुद्धिमोहादथवा राजभक्तिप्रकर्षा[1]न्नियोगकालमप्रतीक्षमाणेन जनितश्चाणक्यबटोश्चेतसि वलवान्विकल्पः। ततस्ततः।

विरा०—ततश्चाणक्यहतकेनानुकूललग्नवशादर्द्धरात्रसमये चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशो भविष्यतीति शिल्पिनः पौरांश्च गृहीतार्थान् कृत्वा तस्मिन्नेव क्षणे पर्वतेश्वरभ्रातरं वैरोचकमेकासने चन्द्रगुप्तेन सहोपवेश्य कृतः पृथ्वी[2]राज्यविभागः।

राक्ष०——किं वातिसृष्टः पवर्तक[3]भ्रात्रे वैरोचकाय पूर्वप्रतिश्रुतः राज्यार्धविभागः।

विरा०—अथ किम्?

राक्ष०——(स्वगतम्) नियतमतिधूर्तेन चाणक्यबटुना तस्यापि तपस्विनः कमप्युपांशुवधमाकलय्य पर्वतेश्वरविनाशेन जनितमयशः[4] प्रमार्ष्टुमेषा लोकप्रसिद्धिरुपचिता[5]। (प्रकाशम्) ततस्ततः?

शयनगृहशयितहननादिरूप इति गूढोभिसन्धिः। [दाक्ष्यं दक्षता] अनुरूपं फलं वधरूपं फलमिति गूढम्। **राजभक्तीति**। राज्ञि सर्वार्थसिद्धौ भक्तिप्रकर्षः वैरिनिधनेन भक्त्यतिशयप्रदर्शनम्। अयमपकारिजनाद्भयमुद्वेगः। [नियोगकालमाज्ञाकालमप्रतिपालयता] ततश्चाणक्यहतकेनेत्यादि। [लग्नवशाल्लग्नानुरोधात्।] इदं चाणक्यस्येष्टार्थोपायानुसरणमाक्षेपो नामान्त्यमङ्गम्।

[अतिसृष्टो दत्तः। अपांशुवधो रहसि हननम्] उपचितेति। अभिवर्द्धितेत्यर्थः। किलेत्यलीके। चित्रपटमयेति। [विमलमुक्तामणीनां परिक्षेपेण परितः

---

1. प्रकर्षतया कालमग्र०, नियोग-अभियोग, 2. पृथक्, ०राज्यार्ध-विभागः, 3. पर्वतेश्वरभ्रात्रे अतिसृष्टं प्रतिश्रुतं राज्यार्धम्, 4. अयशसः परिहारार्थम्, 5. प्रतिपत्तिरुप-चरिता।

Ra`k.—(*With agitation*) Whence can there be satisfaction in the case of that fellow, Chāṇakya ! I think the labour of Dāruvarman must have been fruitless or even it must have led to an undesirable end; for, by his not waiting till he received the order, be it through foolishness or through the excess of devotion to the King, a strong suspicion must have been aroused in the mind of the devil, Chāṇakya. What next ?

Vira`dh.—Then that cursed fellow, Chāṇakya, havingmade the artisans and the citizens understand that the entry of Chandragupta would take place at midnight owing to a favourable juncture of stars, seated Vairochaka, the brother of Parvateśvara, at that very time, on the same throne with Chandragupta and divided between them the sovereignty of the world.

Ra`k.—What ? Was half the portion of the kingdom that had already been promised, given away to Vairochaka, brother of Parvateśvara ?

Vira`dh.—Yes, it was.

विराध—यह तो भाग्य का एक खिलवाड़ था, अमात्य ! इसमें किसी की क्या चल सकती थी ?

राक्षस—हाँ तो, उसके बाद फिर—?

विराध—उसके बाद मलयकेतु तो पिता के वध की खबर से ऐसा डर गया कि भाग ही खड़ा हुआ । पर्वतक के भाई वैरोचक को दिलासा दे दिया गया कि तेरा कुछ नहीं बिगड़ने का । जनता में घोषणा करा दी गई कि अब नन्द के प्रासाद में चन्द्रगुप्त का प्रवेश होगा । दुरात्मा चाणक्य ने कुसुमपुर के सभी तरखानों को बुलवाकर कहा कि देखो, 'ज्योतिषियों के आदेश के अनुसार चन्द्रगुप्त नन्दगृह में आधी रात को प्रवेश करेंगे । इसलिये तुम पूर्व की ओर से, मुख्य द्वार से शुरू करके प्रासाद की उचित सजधज शुरू कर दो । दरबानों ने कहा, 'गुरुजी, महाराज चन्द्रगुप्त के नन्दभवन में प्रविष्ट होने की सूचना सुनकर दारुवर्मा ने पहले से ही स्वर्ण-तोरण आदि द्वारा राजभवन के मुख्यद्वार को खूब सजा दिया है, हम चलकर अब अन्दर की साज-सज्जा किये देते हैं । जिस पर दुष्ट चाणक्य ने दारुवर्मा की चातुरी की प्रंशसा करते हुए, जैसे वह वहुत ही खुश हो, कहा कि बिना मेरे आदेश के ही इसने राजभवन को सजा दिया—? इसका फल इसे जल्दी ही मिलेगा !'

राक्षस—(उद्वेग के साथ) मित्र, चाणक्य और खुशी ? मुझे तो लगता है दारुवर्मा का सारा प्रयत्न निष्फल गया; या फिर कुछ-न-कुछ अनिष्ट लाकर ही रहेगा । क्योंकि या तो कुछ मूर्खता से, या फिर अधिक राजभक्ति दिखाकर, ऊपर से आज्ञा आने की प्रतीक्षा भी न करते हुए, उसने ज़रूर चाणक्य के मन में एक महान् सन्देह पैदा कर दिया होगा । हाँ फिर क्या हुआ—?

विराध—उसके बाद—लग्न अनुकूल है, इसलिये चन्द्रगुप्त का नन्दभवन में प्रवेश आधी रात की घड़ी में होगा, नगर के शिल्पियों और नागरिकों

विरा०—ततः प्रथममेव प्रकाशिते[1] रात्रौ चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशे कृताभिषेके किल वैरोचके विमलमुक्तामणि[2]परिक्षेपविरचितचित्रपटमयवारबाणप्रच्छादितशरीरे मणिमयमुकुटनिबिडनियमितरु[3]चिरतरमौलौ सुरभिकुसुमदामवैकक्ष्या[4]वभासितविपुलवक्षःस्थले परिचितत[5]मैरप्यनभिज्ञायमानाकृतौ चाणक्यहतकादेशाच्चन्द्रगुप्तोपवाह्यां चन्द्रलेखां[6] नाम गजवशामारुह्य चन्द्रगुप्तानुयायिना राजलोकेनानुगम्यमाने देवस्य नन्दस्य भवनं प्रविशति वैरोचके युष्मत्प्रयुक्तेन दारुवर्मणा सूत्रधारेण चन्द्रगुप्तोयमिति मत्वा[7] तस्योपरि पातनाय सज्जीकृतं यन्त्रतोरणम् । अत्रान्तरे वहिर्निगृहीतवाहनेषु स्थितेषु चन्द्रगुप्तानुयायिषु नृपेषु[8] युष्मत्प्रयुक्तेनैव चन्द्रगुप्त[9] निषादिना वर्वरकेण कनकदण्डिकान्तर्निहितामसिपुत्रिकामाक्रष्टुकामेनावलम्बिता करेण कनकश्रृङ्खलावलम्बिनी[10] कनकदण्डिका ।

राक्ष०—उभयोरप्यस्थाने[11] यत्नः[12] ।

स्थापनेन विरचितः । चित्रपटमयः वारवाणः कञ्चुकसदृशरचनाविशेष इत्यर्थस्तेन प्रच्छादितं शरीरं यस्य तस्मिन् ।] 'कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री' इत्यमरः । मौलयः संयताः कचाः । ते मुकटे निबिडं नियमिता यस्य । कुसुमदाम्नो वैकक्ष्यमुपवीतत्वेन निधानम् । ['कण्ठाद्वैकक्षिकं तु तद्यत्तिर्यक् क्षिप्तमुरसि ।' इत्यमरः । चन्द्रगुप्त उपवाह्यो यस्यास्तां चन्द्रगुप्तवाहनभूताम् ।] राक्षसेनैव चन्द्रगुप्तोपांशुवधार्थं तस्य निषादित्वेन हास्तिपकत्वेन वर्वरकनामा स्वपुरुषो नियोजितः इत्यर्थः । [असिपुत्रिका छुरिका । उत्प्रेक्षमाणा वितर्कयन्ती ।

---

1. प्रकाशीकृते, 2. हिमविमलमुक्तागुणपरिक्षेपोपरचितपटुवार०, परीक्षेपेणोपरचितपट्टमयप्रावरणप्र०,–बाणवार, 3. नियत, 4. वैकक्षका, 5. चितदर्शनैः, 6. चन्द्रलेखाभिधानां नागवशाम्, 7. मन्यमानेन वैरोचकस्योपरि, 8. भूमिपालेषु, 9. चन्द्रलेखा० 10. ०लामुखाव, 11. (स्वगतम्) उभ०, 12. एतदनन्तरं–ततस्ततः ।

Ra'k.—(*To himself*) The extremely shrewd (or wily) Chāṇakya must have assuredly thought of some secret way of doing away with the poor man, and given rise to this report among the public in order to wipe away the ill-repute (scandal) caused by the murder of Parvateśvara. (*Aloud*) And after that ?

Vira'dh.—Then, the entry of Chandragupta having been already proclaimed as taking place at night, Vairochaka was made to go through the semblance of coronation ceremony; and when the same Vairochaka, whose body was covered with an armour-like robe formed of variegated texture of bright pearls and gems woven cross-wise, whose head looked all the more graceful on account of the close fitting diadem richly set with jewels, on whose broad bosom glittered garlands of fragrant flowers placed cross-wise, and whose form (being thus hid) could not have been recognised even by those who knew him most, had mounted, at the command of the vile Chāṇakya, the female elephant, Chandralekhā, whom Chandragupta used to ride, and, followed by the princes, the (usual) attendants of Chandragupta, was entering the palace of Nanda, the carpenter Dāruvarman, as directed by you, kept his mechanical gateway ready to drop down on him, believing him to be Chandragupta. In the meantime the attendant princes of Chandragupta reined in their steeds and remained outside, when Varvaraka, Chandragupta's driver, also employed by Your Honour, caught hold of a hollow gold stick suspended by a gold chain with his hand with the intention of drawing out the poniard that was concealed in it.

के मन में यह बुद्धि डालकर, उसी क्षण पर्वतेश्वर के भाई वैरोचक को चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के साथ एक ही सिंहासन पर बठाकर—राज्य का मानो विभाजन कर दिया।

राक्षस—क्या कहा ?—अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार पर्वतक के भाई वैरोचक के लिये राज्य के आधे हिस्से का जो वचन दिया हुआ था (इतनी जल्दी) पूरा कर दिया !

विराध—हाँ, सचमुच-सचमुच।

राक्षस—(मन-ही-मन) चाणक्य धूर्त-शिरोमणि है। हो-न-हो अब बेचारे पर्वतेश्वर की बारी है—किस प्रकार वह पीठ में छुरा खाता है ! यह चाल उसने पर्वतेश्वर की मौत के बारे में उड़ती बदनामी को धोने के लिये चली है (और कुछ नहीं)। (व्यक्त) हाँ तो, उसके बाद ?

विराध—तब—क्योंकि चन्द्रगुप्त के भवन-प्रवेश की घोषणा तो पहले ही की जा चुकी थी (कि वह अर्धरात्रि की वेला में होगा), अभिषेक की विधि

विरा०—अथ जघनाभिघातमुत्प्रेक्षमाणा गजवधूरतिजवनतया गत्यन्तरमारूढवती। प्रथमगत्यनुरोधप्रत्याकलितमुक्तेन प्रभ्रष्टलक्ष्यं पतता यन्त्रतोरणेनाकृष्टकृपाणी व्यग्रपाणिरनासादयन्नेव चन्द्रगुप्ताशया वैरोचकं हतस्तपस्वी वर्वरकः। ततो दारुवर्मणा यन्त्रतोरणनिपात[1]नादात्मवधमाकलय्य पूर्वमेवोत्तुङ्गतोरणस्थलमारूढेन यन्त्रघट्टनबीजं लोहकीलकमादाय हस्तिनीगत एव हतस्तपस्वी वैरोचकः।

राक्ष०—कष्टमनर्थद्वयमापतितम्। न हतश्चन्द्रगुप्तो हतौ वैरोचकवर्वरकौ दैवेन। अथ[2] सूत्रधारो दारुवर्मा कथम्?

विरा०—वैरोचकपुरःसरेण पदातिलोकेनैव लोष्टघातं हतः।

राक्ष०—(सास्रम्) कष्टम्। अहो वत्सलेन सुहृदा दारुवर्मणा वियुक्ताः स्मः। अथ तत्रत्येन[3] भिषजा अभयदत्तेन किमनुष्ठितम्।

आरूढवती आश्रितवती। प्रथमगत्यनुरोधाद्गत्यनुसारेण आदौ प्रत्याकलितं पश्चान्मुक्तं च तेन। प्रभ्रष्टं लक्ष्यं यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा। आकृष्टा या कृपाणी असिलता तया व्यग्रः पाणिर्यस्य।] व्यग्रपाणिरनासादयन्निति। वैरोचकं हन्तुमवकाशमनासादयन्नित्यर्थः। लोष्टघातमिति। लोष्टैर्हत्वा लोष्टघातं। हन्तेर्णमुल्। [अथ भिषजाभयदत्तेनेति—तदुक्तं कामन्दकेन। भिषग्भेदेन वा शत्रुं रसदानेन साधयेत्।]

---

1. पातमात्मविनाशफलमवधाय, 2. अस्मात्प्राक्—(सावेगमात्मगतम्) न एतावुभौ हतौ दैवेन वयमेव हताः। (प्रकाशम्), 3. तत्र तेन।

RA`K.—The efforts of both were alike misdirected.

VIRA`DH.—Then the she-elephant anticipating a stroke on the hips took to a different gait with very quick steps. Then the arch which was let fall according to a calculation based on her previous speed, but which fell wide of the mark, smashed poor Varvaraka with the drawn poniard clenched in his hand, ere he reached Vairochaka, whom he had taken for Chandragupta. Anticipating his own execution on account of his having let fall the arch, Dāruvarman, who had already got upon the top of a lofty archway, drew out the iron bolt (or pivot) by which the mechanism could be moved, and killed poor Vairochaka just as he was seated on the female elephant.

RA'K.—Alas ! Two undesirable things (misfortunes) have happened. Chandragupta is left unharmed, while Vairochaka and Varvaraka are killed by fate ! Now, how fared the carpenter Dāruvarman ?

VIRA'DH.—He was stoned to death by the footmen themselves who marched before Vairochaka.

RA'K.—(*With tears in his eyes*) Alas, we are bereaved of our affectionate friend Dāruvarman. Now, what has the physician Abhayadatta, living there, done ?

वैरोचक को लाकर जैसे-तैसे पूरी कर दी गई । और अब चली वैरोचक की सवारी—चन्द्रगुप्त की निजी हथिनी चन्द्रलेखा पर सवार—नन्दभवन में प्रवेश के लिये । वैरोचक—सुच्चे मोतियों-मणियों की खचाखच से सुन्दर और अद्‌भुत कवच—जैसे चोगों में सिर से पैर तक ढका हुआ, मणियों के बने मुकुट से उसका सिर पूरी तरह आवृत और सुसज्जित, छाती पर लहराती सुगन्धित फूलों की मालाएं—ऐसाकि उसके बन्धु-बान्धव भी उसे न पहचान सकें !—चन्द्रगुप्त के अनुगामीजन, चाणक्य दुर्बुद्धि के आदेश से, उसके पीछे-पीछे (चल रहे थे) ! और जैसे ही वैरोचक नन्दभवन में घुसा, आपके आदेश के अनुसार दारुवर्मा पहले से ही तैयार बैठा था कि कब वह यान्त्रिक तोरण द्वार गिराने का मौका आता है—(वह तो यही समझ रहा था न कि यह चन्द्रगुप्त है) ! इसी समय, जब चन्द्रगुप्त के रक्षक सामन्त राजा बाहर घोड़ों पर रुके खड़े थे…… तभी चन्द्रगुप्त के गजवाहक वर्वरक ने—उसे भी तो इस काम पर आपने ही लगाया था, न ?—सुनहरी ज़ंज़ीर के साथ लटकती सोने की सोटी को उठाया कि—उसमें छिपाकर रखी हुई कृपाण को बाहर निकाल लूं !

राक्षस—दोनों ने ही सब अनवसर की कर दिखाई ।

विराध—और तब—…'यह हुआ कि हथिनी को जैसे कुछ पूर्वाभास हो गया हो कि वार मेरी पीठ पर न आ पड़े वह अपनी गति में एकदम अन्तर ले आई। और वह तोरण—उसके उत्थान-पतन की मौलिक गणना कुछ और ही थी—अपने लक्ष्य से भ्रष्ट होकर बेचारे वर्वरक पर आ गिरी—कृपाण हाथ में उठाये एक वर्वरक पर—पूर्व इसके कि उसका अपना वार वैरोचक पर (जिसे वह चन्द्रगुप्त समझ बैठा था) पड़ता, बेचारा मुफ्त में मारा गया । और फिर—

विरा०—सर्वमनुष्ठितम्[1] ।

राक्ष०—(सहर्षम्) किं हतो दुरात्मा चन्द्रगुप्तः[2] ?

विरा०—अमात्य, दैवान्न हतः ।

राक्ष०—(सविषादम्) तत्किमिदानीं कथयसि सर्वमनुष्ठितमिति[3] ।

विरा०—अमात्य, कल्पितमनेन योग[4]चूर्णमिश्रितमौषधं चन्द्रगुप्ताय । तत्प्रत्यक्षीकुर्वता चाणक्यहतकेन कनकभाजने वर्णान्तरमुपलभ्याभिहितश्चन्द्रगुप्तः । वृषल, सविष[5]मिदमौषधं न पातव्यमिति ।

राक्ष०—शठः खल्वसौ बटुः । अथ स वैद्यः कथम् ?

विरा०—तदेवौषधं पायितो मृतश्च[6] ।

राक्ष०—(सविषादम्) अहो[7] महान्विज्ञानराशिरुपरतः । अथ तस्य शयनाधिकृतस्य प्रमोदकस्य किं वृत्तम् ?

विरा०—यदितरेषाम्[8] ।

राक्ष०—(सोद्वेगम्) कथमिव ?

[प्रत्यक्षीकुर्वता पातुं योग्यं न वेत्ति विमृशता । तदेवौषधं पायितः कदाचित्परप्रेरिता भिषजो नृपाय सविषमौषधं दद्युरिति तः प्रथमं पीतं तद्राज्ञा

---

1. अमात्य सर्व०, 2. अपि०, नामसखे हतश्चन्द्रगुप्तहतकः, 3. परितुष्टः सर्व०, 4. विषयोगचूर्णमौ०, 5. न पात०, न पात० सवि०, 6. उपरतः, 7. अहह; महाकार्यंराशिः, 8. आत्मविनाशः ।

VIRA'DH.—He did every thing.

RA'K.—(*Joyfully*) What? Is the wicked Chandragupta killed?

VIRA'DH.—No, Minister; he was not killed, as fate would have it.

RA'K.—(*In dismay*) How do you say then that he did every thing.

VIRA'DH.—Minister, he had prepared a medicine mixed with a powder that kills without rousing suspicion for Chandragupta; but the villainous Chāṇakya, happening to examine it, observed a change of colour in a gold plate, and said to Chandragupta—Vṛshala, this medicine is poisoned; it must not be drunk.

RA'K.—He is a wily fellow indeed. What of the physician?

VIRA'DH.—He was compelled to drink the same medicine and died.

RA'K.—Alas! A great treasure of knowledge is lost! And what became of Pravīraka, who had charge of (the King's) bed-chamber?

VIRA'DH.—He shared the fate of others.

RA'K.—(*In alarm*) How so?

कहीं तोरण-यन्त्र के इस प्रकार गिर जाने से मेरी अपनी मौत ही न आजाय, दारुवर्मा ने—वह पहले से ही तोरण की चोटी पर पहुँच चुका था—यन्त्र को नियन्त्रित करने के लिये डाली गई लोहे की कीली झट-से निकाल ली जिससे कि बेचारा वैरोचक (जिस रूप में वह हथिनी पर बैठा हुआ था, वैसे ही) बैठा-बैठा ढेर हो गया।

राक्षस—क्या मुसीबत है, एक नहीं एक साथ दोहरी। चन्द्रगुप्त तो मरा नहीं, किस्मत ने वैरोचक और वर्वरक को मार गिराया! हाँ, दारुवर्मा का समाचार क्या है?

विराध—वैरोचक के आगे-आगे चल रहे पैदल अनुचरों ने ही पत्थर मार-मारकर उसकी जान लेली।

राक्षस—(आँसुओं में) कितना प्रिय मित्र था दारुवर्मा, वह भी चला गया! अभी—कविराज अभयदत्त भी तो वहीं था, उसने क्या किया?

विराध—सब-कुछ किया।

राक्षस—(खुशी के साथ) क्या दुष्टात्मा चन्द्रगुप्त को खत्म कर दिया?

विराध—नहीं, स्वामी, नहीं; विधि हमारे साथ नहीं था।

राक्षस—(निराशा में) तो फिर यह क्यों कह रहे हो कि सब-कुछ पूरा कर दिया?

विराध—मन्त्रिवर, उसने तो चन्द्रगुप्त के लिये योगचूर्ण मिलाकर एक दवा भी तैयार की थी; लेकिन चाणक्य ने देखा कि इसका रंग सोने के बर्तन में डालते ही बदल गया है, उसने—चन्द्रगुप्त को चेता दिया कि 'इसमें विष मिला हुआ है, नहीं पीना।'

विरा०—स खलु मूर्खस्तं युष्माभिरतिसृष्टं महान्त[1]मर्थराशिमवाप्य महता व्ययेनोपभोक्तुमारब्धवान् । ततः कुतोऽयं भूयान्वनागम इति पृच्छ्यमानो यदा वाक्य[2]भेदान्बहूनगमत्तदा चाणक्यहतकेन[3] विचित्रवधेन व्यापादितः ।

राक्ष०—(सोद्वेगम्[4]) कथमत्रापि दैवेनोपहता वयम् । अथ शयितस्य चन्द्रगुप्तस्य शरीरे प्रहर्तुमस्मत्प्रयुक्तानां राजगृहस्या[5]न्तर्भित्तिसुरङ्गामेत्य प्रथममेव निवसतां बीभत्सकादीनां को वृत्तान्तः ?

विरा०—अमात्य, दारुणो वृत्तान्तः ।

राक्ष०—(सावेगम्[6]) कथं दारुणो वृत्तान्तः । न खलु विदितास्ते तत्र निवसन्तश्चाणक्यहतकेन ।

विरा०—अमात्य, अथ किम् । प्राक् चन्द्रगुप्तप्रवेशाच्छयनगृहं प्रविष्टमात्रेणैव[7]

पातव्यमिति नीतिविदुपदेशात् । तदुक्तं कामन्दकेन–'औषधानि च सर्वाणि पानं पानीयमेव च । तत्कल्पकैः समास्वाद्य प्राश्नीयाद्भोजनानि च ॥' इति] अथ तस्येति । शयनाधिकृतस्य शयनगृहसंस्कारादिना राजप्रलोभनेधिकृतस्येत्यर्थः । [वाक्यभेदानिति यदा परस्परविरोधीनि वाक्यान्याह तदा ।]

---

1. प्रभूतम०, 2. बहुवाक्यभेदमाकुलमकथयत्, 3. हतकादेशाद्विचित्रेण, व०, 4. सविषादम्, 5. नरपतिगृहशयनगृहस्यान्तःसुरङ्गायां निव०, 6. सोद्वेगम्, 7. ०णैव चाणक्यहतकेन शयनगृहं समन्तादवलोकितम् । ततोन्यस्माद्भि०; प्रविष्टमात्रेणैव शयनगृहे चाणक्येन दुरात्मना समन्तादवलोकिते ततस्त्वेकस्माद्भित्ति० ।

VIRA'DH.—That fool having obtained the large treasure given by you began to enjoy pleasures with great extravagance and when questioned as to how he came by so much wealth, he made many contradictory statements, whereupon that rogue Chāṇakya ordered him to be killed in a fearful (lit. strange) way.

RA'K.—(*Sorrowfully*) How, here too, we have been disappointed by fate ! And what news you bring of Bībhatsaka and others who were charged by us to slay Chandragupta when lying down on his bed, and who lay in wait having already occupied a recess in the wall of the royal palace ?

VIRA'DH.—Minister, it is a very heart-rending tale.

RA'K.—(*With uneasiness*) How ? A very heart-rending tale ! Surely they were not found out living there by the villain Chāṇakya.

राक्षस—सचमुच बड़ा ही धूर्त है वह ब्राह्मण । हाँ तो, वैद्यराज अब कहाँ हैं, और कैसे हैं ?

विराध—वही औषधि उसे स्वयं पीनी पड़ी, और वह मर गया ।

राक्षस—(अत्यन्त दुःखित) विज्ञान की एक अद्भुत निधि थी, नष्ट हो गई । अच्छा, राजा के शयनगृह का वह अध्यक्ष था, न, प्रमोद; उसके साथ क्या वीती ?

विराध—वही जो औरों के साथ (बीती) ।

राक्षस—(उद्विग्न) क्या मतलब ?

विराध—बड़ा ही मूर्ख निकला वह । आपने जो उसे विपुल धनराशि दी थी उसे पाकर वह बड़ा ही खुलकर मौज-बहार में लग गया । और उससे जब पूछा गया यह इतनी दौलत तेरे पास आई कहाँ से; उसने कितने ही उलटे-सीधे बयान दे दिये । जिसका परिणाम आखिर यही हुआ कि उसे भी एक अजीव किस्म की मौत ही चाणक्य की कम्बख्ती की वजह से मिली है ।

राक्षस—(बड़े ही दुःख के साथ) यह क्या हुआ, —वहाँ भी किस्मत ने हमें मार गिराया । और सोते हुए चन्द्रगुप्त को मौत के घाट उतारने के लिये जो वीभत्सक आदि हमने नियुक्त किये हुये थे, और जो पहले से ही दीवार में एक सुरंग बनाकर शयनागार में घुस गये थे, उनकी खबर क्या है ?

विराध—बड़ी बुरी खबर है, मन्त्रीजी, बड़ी बुरी ।

राक्षस—(बड़ी घबराहट के साथ) बरी खबर, सो कैसे—कहीं चाणक्य ने उन्हें वहाँ छिपे हुओं को ही तो नहीं पा लिया ?

निपुणमवलोकयता दुरात्मना चाणक्यहतकेन कस्माच्चिद्भित्तिच्छिद्राद्गृहीतभक्तावयवां[1] निष्क्रामन्तीं पिपीलिकापंक्तिमवलोक्य पुरुषगर्भमेतद्गृहमिति गृहीतार्थेन दाहितं तच्छयनगृहम् । तस्मिश्च दह्यमाने धूमावरुद्धदृष्टय:[2] प्रथमविहित[3]निर्गमनमार्गमनधिगम्य द्वारं सर्व एव बीभत्सकादयो ज्वलनमुपगम्य[4] तत्रैव नष्टा: ।

राक्ष०––(सास्रम्) कष्टं भोः कष्टम् । सखे, पश्य दैवसम्पदं दुरात्मनश्चन्द्रगुप्तहतकस्य । कुतः ?—

कन्या तस्य वधाय या विषमयी गूढं[5] प्रयुक्ता मया
दैवात्पर्वतकस्तया स[6] निहतो यस्तस्य राज्यार्द्धहृत् ।
ये शस्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरेव ते घातिता
मौर्यस्यैव फलन्ति पश्य विविधश्रेयांसि मन्नीतय:[7] ।। १६ ।।

विरा०––अमात्य, तथापि खलु प्रारब्धमपरित्याज्यमेव । पश्य—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः[8] पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना[9] न परित्यजन्ति ।। १७ ।।

[गृहीता भक्तावयवा अन्नकणा यया तां ।] कन्या तस्येति । रसेषु विषेषु । 'शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे जले रसः ।' इत्यमरः । मौर्यस्य नाशार्थं प्रणीता मन्नीतयः प्रत्युत तस्यैव श्रेयांसि फलन्तीति पश्य दैवसम्पदं चन्द्रगुप्तस्येति पूर्वेणान्वयः ।। १६ ।। [प्रारभ्यत इति ।। नीचाः कार्यं नैवारभन्ते । मध्या आरभ्य

---

1. वयवानां पिपीलिकानां निष्क्रामन्तीं पंक्ति, 2. माभिरुद्धदृष्टिविषयाः; धूमनिवहनिरुद्धदृष्टिवि०, 3. पिहित, 4. उपगता उपरताश्च; सर्वेपि बिभ० यस्तत्रैव ज्ज्वलिताः, 5. पूर्वं, 6. विनि०, 7. मे नीतयः, 8. सहस्रगुणितैरपि हन्यमानाः, 9. गुणाः,–स्त्वमिवोद्वहन्ति ।

Vira'dh.—Minister, they were. That wicked soul, the cursed Chāṇakya, entered the bed-chamber before Chandragupta's entry, when the very moment, casting a searching look about, he noticed a line of ants with particles of food in their mouths issuing from some crevice in the wall, whence concluding that there were men (assassins) hidden underneath the house, he ordered the bed-chamber to be set on fire. As it was burning, all those, Bībhatsaka and others, with their eyes obstructed by smoke, could not find the outlet through which they had previously arranged to depart, and being enveloped in flames, perished.

Ra'k.—(*Fearfully*) Alas ! What a sad end, oh ! Friend, behold the tide of the good luck of the wicked Chandragupta, of cursed name. For,

The maid with a poisoned body whom I had secretly employed to bring about his death, fortunately for him killed that very Parvataka who was to claim half of his kingdom. Those persons who were employed to use weapons and poisons (against him) were made to suffer death by those very means. Mark, how my schemes yield a rich harvest of blessings to Chandragupta himself. (16)

Vira'dh.—Minister, still what is undertaken must not be given up. See,

Mean (low-spirited) men set not to work from fear of obstacles: ordinary men begin, but desist when confronted with difficulties; but men of exalted qualities (best energy) although again and again assailed by difficulties, do not give up what is once undertaken. (17)

विराध—बिलकुल यही हुआ, अमात्य ! चन्द्रगुप्त से पहले ही अन्दर आकर— और अन्दर घुसते ही—चौकन्ने होकर चाणक्य ने चारों तरफ़ निगाह डाली और देखा कि दीवार के एक छेद में से चावल के टुकड़ों को मुँह में लिये कीड़ियों कि कतार-पर-क़तार चली आ रही है—उसके कान खड़े हो गये कि हो-न-हो यहाँ घातक घात में बैठे हैं, और झट से दुरात्मा ने शयनगृह को ही आग लगवा दी। मकान जलना शुरू हुआ और—अब धुएं में उनकी आँखें देख कैसे पातीं कि उन्हीं का अपना बनाया वह बाहर निकलने का रास्ता कहाँ है—बेचारे ज्वालाओं की लपेट में आकर वहीं मारे गये।

राक्षस—(आंसू भरकर) मुसीबत, मुसीबत ! मित्र, और उधर भाग्य—ने दुष्ट चन्द्रगुप्त के लिये क्या-क्या सम्पत्ति जुटा दी हैं ।

विषकन्या जो मैंने चन्द्रगुप्त को मारने के लिये भेजी थी वह उसीके राज्य के आधे के अधिकारी पर्वतक को मार गई ! और जो-जो आदमी मैंने, शस्त्र द्वारा और विष द्वारा, उसे मारने के लिये लगाये थे,—वे शस्त्र और विष स्वयं उन्हींकी जान लेकर रहे। मेरी सभी चालें देख लो, मौर्य के लिये एक वरदान ही बनकर रह गईं ! (१६)

अपि च—

किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्
किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः ।
किं त्वङ्गीकृतमुत्सृजन्कृपणवच्छ्लाघ्यो[1] जनो लज्जते
निर्व्यूढं[2] प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम् ॥ १८ ॥

राक्ष०—सखे, प्रारब्धमपरित्याज्यमिति प्रत्यक्षमेवैतद्भवताम् । ततस्ततः ?

विरा०—ततः प्रभृति चन्द्रगुप्तशरीरे सहस्रगुणमप्रमत्तश्चाणक्यहतक एभ्य एतदीदृशं भवतीत्यन्विष्य निगृहीतवान्पुर[3]निवासिनो युष्मदीया-[4]नाप्तपुरुषान् ।

राक्ष०—(सोद्वेगम्) कथय, कथय के के निगृहीताः ?

विरा०—प्रथमं[5] तावत्क्षपणको जीवसिद्धिः सनिकारं नगरान्निर्वासितः ।

राक्ष०—(स्वगतम्) एतावत्सह्यम् । न निष्परिग्रहं स्थानभ्रंशः पीडयिष्यति । (प्रकाशम्) वयस्य, कमपराधमुद्दिश्य निर्वासितः ?

जातविघ्नास्तत्परित्यजन्ति । इ०] ॥ १७ ॥ **किं शेषस्येति** [शेषस्यानन्तस्य वपुषि भरव्यथा भूधारणजनिता न जायते किं यस्मात्कारणादि० । अपि तु जायते एव । किंतु] कृपणवत् [कृपणेन प्राकृतजनेन तुल्यम् । अङ्गीकृतं कार्यम् ।] उत्सृजन्निति पूर्वेणान्वयः । प्रतिपन्नवस्तुषु अङ्गीकृतवस्तुषु । निर्व्यूढं निर्वाहः । भावे क्तः । निर्व्यूढमिति यदेतत्सतां कुलव्रतमित्यर्थः । निर्व्यूढिः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेकं हि गोत्रव्रतमिति क्वचित्पाठः । निर्व्यूढिरूपमेकं मुख्यं गोत्रव्रतमित्यर्थः ॥ १८ ॥ [प्रारब्धमपरित्याज्यमहं न परित्यजामीति । आप्ता हिताः । निष्परिग्रहं

---

1. च्चार्यो, 2. निर्वाहः, 3. कुसुमपुरनिवासिनः 4. नन्दामात्यपु०, 5. अमात्य प्रथ० ।

Moreover,

Is it because Śesha does not feel the pain caused by the load of the earth on his body that he does not throw it off? Or does not the Sun feel fatigued that he does not sit down motionless? (Not so). But a praiseworthy man is ashamed to lay aside, like a mean-hearted person, what he has once undertakan. To carry their undertakings to their end—this is, indeed, the family-vow of the good. (18)

RA`K.—Friend, you actually see that we are not giving up what we have undertaken. What further?

VIRA`DH.—The cursed Chāṇakya who thenceforth grew a thousand times more careful about the life of Chandragupta arrested your friends in the city after learning, on enquiry, that such attempts originated from them.

RA`K.—(*With uneasiness*) Oh, tell me who were arrested.

VIRA`DH.—In the first place the Jaina mendicant, Jīvasiddhi, was banished the city with ignominy.

RA`K.—(*Aside*) So far it is bearable. Loss of place will not pain one who has no earthly connections. (*Aloud*) Friend, on what charge was he expelled?

विराध—कुछ हो, मन्त्रि प्रवर, जो काम हाथ में लिया है उसे तो अब छोड़ा नहीं जा सकता। कहा भी है—

कमज़ोर दिल के लोग तो किसी भी ज़िम्मेदारी को अपने हाथ में लेते ही नहीं—विघ्नों के भय से उन्हें हौसला ही नहीं होता। बीच के लोग विघ्नों के थपेड़े खाकर वहीं रुक जाते हैं। किन्तु साहसी वह जो विघ्नों के आघात-पर-आघात खाकर भी जिस काम में हाथ डाला उससे फिर पीछे न हटे। (१७)

और फिर—

क्या शेषनाग को पृथ्वी का भार तकलीफ़ नहीं देता जो वह इसे फेंक नहीं देता? क्या सूरज थकता नहीं जो दो घड़ी ही विश्राम के लिये रुक जाय? बात यह है कि जो बीड़ा उठाना एक बार स्वीकार कर लिया, कायर की तरह उसे उतार फेंकने में—चरित्रवान् व्यक्ति को लज्जा आती है। प्रतिज्ञा को तोड़ तक निभाना—एक यही तो कुलीनता की सच्ची निशानी है, सच्ची साख है। (१८)

राक्षस—और हम भी कौन-सा हाथ में लिये को छोड़ रहे हैं, यह तो तुम खुद अपनी आँखों से ही देख रहे हो। हाँ, तो इसके बाद फिर, क्या हुआ?

विराध—इसके बाद से चाणक्य अब चन्द्रगुप्त के प्राणों के विषय में पहले से हज़ार गुणा अधिक जागरूक हो गया है। और इस सबकी जड़ यही लोग हैं (इस विचार से)—चुन-चुनकर उसने नगरी में रहने वाले आपके अपने आदमियों को कैद करा लिया है।

राक्षस—(उद्विग्नता के साथ) बताओ तो कौन-कौन पकड़े जा चुके हैं?

विराध—सबसे पहले तो जीवसिद्धि को बड़ी ही बेइज्ज़ती के साथ शहर से बाहर निकाल दिया गया।

राक्षस—(मन-ही-मन) यह तो खैर सह्य है, जिसका अपना कोई न हो

विरा०—एष[1] राक्षसप्रयुक्तया विषकन्यया पर्वतेश्वरं व्यापादितवानिति ।

राक्ष—(स्वगतम्) साधु कौटिल्य, साधु । स्वस्मिन्—

परिहृतमयशः पातितमस्मासु च घातितोऽर्धराज्यहरः ।
एकमपि नीतिबीजं बहुफलतामेति यस्य तव ॥ १९ ॥

(प्रकाशम्) ततस्ततः ?

विरा०—ततश्चन्द्रगुप्तशरीरमभिद्रोग्धुमनेन व्यापारिता दारुवर्मादय इति नगरे प्रख्याप्य शकटदासः शूलमारोपितः ।

राक्ष०—(सास्रम्) हा सखे, शकटदास, अयुक्तरूपस्तवायमीदृशो मृत्युः । अथवा स्वाम्यर्थमुपरतो न शोच्यस्त्वम् । वयमेवात्र शोच्या ये नन्दकुलविनाशेऽपि जीवितुमिच्छामः ।

विरा०—अमात्य, स्वाम्यर्थ एव साधयितव्य इति प्रयतसे ।

राक्ष०—सखे—

अस्माभि[2]रमुमेवार्थमालम्ब्य न जिजीविषाम् ।
परलोकगतो देवः कृतघ्नैर्नानुगम्यते[3] ॥ २० ॥

परिवाररहितम् ।] [परिहृतमिति । अयशः पर्वतेश्वरविनाशजनिताऽकीर्तिः । परिहृतमिति एकं फलम् । अस्मासु तत्पातितं संक्रामितमिति द्वितीयम् । अर्धराज्यहरो घातितः । अर्धराज्यं च रक्षितमिति तृतीयम् । एवं] एकमपि नीतिबीजमिति । इदमेकं बीजान्वेषणम् ॥ १९ ॥

[अतिशयेनायुक्तः अयुक्तरूपोऽत्यन्तमनुचितः । अस्माभिरिति । स्वामी सर्वथानुगन्तव्योऽस्माभिस्तथा न कृतमिति कृतघ्नैरस्माभिरमुमेवार्थं स्वाम्यर्थं एव

---

1. एष दुरात्मा, 2. अस्माकममुमेवार्थमवलम्ब्य जिजीविषा, 3. अस्मात्परं—विरा०—अमात्य नैतदेवम् । युष्माभिरमुमेवा…।……कृतज्ञैर्नानुगम्यते ॥ इत्य० क्वचित् ।

Vira`dh.—On the charge that he killed Parvateśvara with the poison-maid employed by you.

Ra`k.—(*To himself*) Cleverly done ! O Kauṭilya, it was a nice stroke of policy on your part !

Removing the ill-repute from yourself, you have cast it upon us, while at the same time the person who would have claimed half the kingdom is done away with. Thus a single seed of your policy (state-craft) bears multifarious fruit. (19)

(*Aloud*) Who else ?

Vira`dh.—Then he ordered Śakaṭadāsa to be impaled after having it proclaimed throughout the city that Dāruvarman and others were instigated by him to plot against the life of Chandragupta.

Ra`k.—(*With tears*) Ah friend Śakaṭadāsa, such an end was quite undeserved by you; or, you who perished for your master, must not be mourned for. But accursed is the life of me who wish to live even after the race of Nanda is destroyed.

Vira`dh.—(But) Minister, you are working purely in the interest of your master.

Ra`k.—Friend,

I, *ungrateful that I am, have not followed His Majesty (*i.e.* have not gone to the other world), having in view this very object (*viz.* the interest of my master) and not through the desire to live (*i.e.* not because I care any thing for life). (20)

देश-निकाला उसे बहुत दुःख नहीं पहुँचा सकता (व्यक्त) परन्तु मित्र, किस अपराध में उसे यह सज़ा मिली ?

विराध—इस अपराध में कि राक्षस की प्रयुक्त विषकन्या द्वारा पवतक के प्राण इसने हरे हैं ।

राक्षस—शाबाश, चाणक्य, शाबाश ! अपने ऊपर आँच आने नहीं दी, और बदनामी मढ़ दी हम पर ! और उसी एक वार से आधे राज्य के अधिकारी पर्वतक को भी मौत के मुँह में झोंक दिया ! एक-एक बीज, राजनीति का, इस प्रकार तेरे लिये कितने-कितने फल एक साथ ला रहा है ! (१९)

इसके बाद (अगला कौन) ?

विराध—इसके बाद शकटदास को सूली पर लटका दिया कि यह घोषित करके कि यह चन्द्रगुप्त को मारने के लिये दारुवर्मा आदि की साज़िश इसीके दिमाग़ की उपज थी ।

---

* If the reading in the foot-note be adopted the meaning would be— I who am ungrateful do not follow my lord...putting forth this excuse and not the love of life. *Vir.*—It is not so—

You who are grateful follow not our royal master......having this very object (the cause of our master) in view, &c.

कथ्यतामपरस्यापि सुहृद्व्यसनस्य श्रवणे सज्जोऽस्मि ।

विरा०—एतदुपलभ्य चन्दनदासेना[1]पवाहितममात्यकलत्रम् ।

राक्ष०—सखे, क्रूरस्य चाणक्यवटोर्विरुद्धमयुक्तमनुष्ठितं तेन[2] ।

विरा०—अमात्य, नन्वयुक्ततरः सुहृद्द्रोहः ।

राक्ष०—ततस्ततः ?

विरा०—ततो याच्यमानेनाप्यनेन न समर्पितममात्यकलत्रं यदा तदातिकुपितेन चाणक्यबटुना—

राक्ष०—(सोद्वेगम्[3]) न खलु व्यापादितः ।

विरा०—न हि । गृहीतगृहसारः सपुत्रकलत्रो बन्धनागारे निक्षिप्तः ।

राक्ष०—तत्किं परितुष्टः कथयसि अपवाहितं राक्षसकलत्रमिति । ननु वक्तव्यं संयमितः[4] सपुत्रकलत्रो राक्षस इति ।

(प्रविश्य[5])

पुरुषः—जयतु अमात्यः । एष खलु शकटदासः प्रतीहारभूमिमुपस्थितः । (जेदु अमच्चो । एसो खु सअडदासो पडिहारभूमिमुवट्ठिदो ।)

राक्ष०—भद्र[6], अपि सत्यम् ?

साधयितव्य इत्येतद्रूपमवलम्ब्य न जीवितुमिच्छामि जिजीविषा तामवलम्ब्य इत्यर्थः ॥२०॥] न खलु व्यापादित इति । एतदप्यपकारिजनाद्भयमुद्वेगः ।

---

1. ०सेनोपरूढसाध्वसेन, दृढसौहार्देन, 2. चन्दनदासेन, इत्य० 3. सावेगम्, 4. गृहीतोनेन, 5. प्रविश्य पटाक्षेपेण, 6. प्रियंवदक ।

Proceed ; I am prepared to hear of the misfortunes of other friends also.

VIRA`DH.—On hearing of these occurrences, Minister's wife was removed by Chandanadāsa.

RA`K.—Friend, he did wrong in thus going against that cruel fellow, Chāṇakya.

VIRA`DH.—But Minister, it would have been worse to betray a friend.

RA`K.—What followed ?

VIRA`DH.—When he did not surrender Minister's (your) wife, although requested to do so, the wretched Chāṇakya flew into rage.

RA`K.—(*In alarm.*) Surely he did not order his execution !

VIRA`DH.—No, with his property sequestered, he was sent to prison with his wife and son.

RA`K.—How do you say then with satisfaction 'Minister's wife was removed' ? You should have rather said that Rākshasa himself, with wife and son, was put into irons.

A SERVANT—(*Entering*) Victory to the Minister ! Śakaṭadāsa is waiting at the door.

RA`K.—Good man, is it true ?

राक्षस—(आँसू भर आते हैं) हाय, परममित्र शकटदास, तेरा भी यही अन्त होना था ! तूने किसी का क्या बिगाड़ा था ? या फिर—अपने स्वामी के लिए तूने जान दे दी। तेरे जाने पर हमें दुःख नहीं करना चाहिये। किन्तु मेरा जीवन अब एक अभिशाप बन चुका है—नन्द का देश ही उजड़ गया, और मेरी हवस—जीने की अब भी नहीं ख़त्म हुई— !

विराध—किन्तु आप भी तो दिन-रात इसी फ़िक्र में हैं कि स्वामी की इच्छा इसी तरह पूरी होती है।

राक्षस—दोस्त—

कितना कृतघ्न हूँ मैं कि मित्र का अनुगमन मैंने नहीं किया। पर तुम भी सच कहते हो कि यह राक्षस की जीवित रहने की कोई हवस नहीं है, अपितु स्वर्गवासी की इच्छा किस तरह पूर्ण हो सके—इसलिये (वह अब भी जीवित है)। (२०)

सुनाते चलो—किसी और मित्र पर हमारे क्या विपत्ति आई ? अब मैं सब-कुछ सुनने के लिये तैयार हूँ।

विराध—यह सब सुनकर चन्दनदास ने आपके घरबार को सुरक्षित कहीं और पहुँचा दिया।

राक्षस—ऐसा करके तो उसने केवल चाणक्य की क्रूरता और दुश्मनी ही मोल ले ली होगी।

विराध—किन्तु मित्र-द्रोह तो उससे बुरा होता, ना।

राक्षस—फिर, उसके बाद ?

विराध—और जब, चाणक्य के कई बार विनती करने पर भी, उसने

पुरु०—किमलीकममात्यपादेषु विनिवेदयामि। (किं अलिअं[1] अमच्चपादेसु विणिवेदेमि।)

राक्ष०—सखे, विराधगुप्त कथमेतत्?

विरा०—अमात्य, स्यादेतदेवं यतो भव्यं रक्षति भवितव्यता।

राक्ष०—प्रियंवदक, किमद्यापि चिरयसि। क्षिप्रं प्रवेशयैनम्[2]।

पुरु०—यदमात्य आज्ञापयति।(इति निष्क्रान्तः) (जं अमच्चो आणवेदि।)

(ततः प्रविशति सिद्धार्थकेनानुगम्यमानः शकटदासः)

शक०—(स्वगतम्)

दृष्ट्वा मौर्यमिव प्रतिष्ठितपदं शूलं धरित्र्यास्तले[3]
तल्लक्ष्मीमिव चेतना[4]प्रमथनीमुन्मुच्य वध्यस्रजम्[5]।
श्रुत्वा स्वाम्य[6]परोपरौद्रविषमानाघाततूर्यस्वनान्
न ध्वस्तं प्रथमाभिघातकठिनं मन्ये[7] मदीयं मनः॥ २१॥

दृष्ट्वा मौर्यमिति। [प्रतिष्ठितपदं निखातमूलं जातप्रतिष्ठं च। चेतनाप्रमथिनीमन्तःकरणविदारिणीं मनोरुजमावहन्तीं च।] अत्र वध्यभूमिखातशूलस्य वध्यस्रजश्च मौर्यतल्लक्ष्मीदृष्टान्तः मत्सरातिशयजनितासूयाकृतः। जीवकर्मेन्द्रियवृत्तीनां मनोवृत्त्यधीनतया प्रकृते दर्शनश्रवणबन्धनक्रियाणां मन एव कर्तृ। अतो ध्वंसनक्रिययैककर्तृत्वात् क्त्वाप्रत्ययः। स्वामिनां नन्दानामपरोपो राज्यभ्रंशस्तद्वद्रौद्रविषमानसह्यानित्यर्थः। यद्यस्मात्प्रथमाभिघातेन पूर्वानुभूतानर्थपरंपरासहनेन कठिनमभूत्तस्मान्नध्वस्तमित्यन्वयः। स्वामिपुरोपरोधविषमानिति

---

1. अमच्चपादोपजीविणो जना न अलिअं मन्तिदु जाणन्ति, 2. प्रवेश्य समाश्वासय माम्, 3. त्र्याः स्थले, 4. चेतसः, 5. मूर्धावबद्ध; मूर्ध्नाविबद्धच, मूढ्वा च; वध्य–कण्ठ०, 6. स्वाम्युपरोध, 7. यत्तन्।

SERVANT—Can I report a falsehood to the Minister ?

RĀK.—Friend, Virādhagupta, how is this ?

VIRĀDH.—Minister, it may be so. Destiny protects one on whom fortune smiles.

RĀK.—Priyaṁvadaka, why do you tarry now ? Quickly usher him in.

SERVANT—As you order. [*Exit.*

(*Enter* ŚAKAṬDĀSA *followed by* SIDDHĀRTHAKA)

ŚAK.—(*To himself*)

That my heart, having seen the impaling stake firmly planted in the ground, like Maurya firmly established on the earth, as also the garland tied round the head which destroys one's consciousness like the sovereignty of Maurya which pains (violently shakes) consciousness, and having heard the sounds of the trumpets of execution sounding as terrific and dismal as at the time of the dethronement of the lord, did not break down, was, meseems, because it was hardened by previous strokes. (21)

अमात्य की गृहिणी को उसके हवाले नहीं किया, तो चाणक्य के गुस्से का कुछ ठिकाना न था—

राक्षस—(उद्विग्नता के साथ) कहीं मरवा तो नहीं दिया ?

विराध—नहीं ! धन-सम्पत्ति से वंचित करके पुत्र-पत्नी समेत जेल में ठूंस दिया।

राक्षस—फिर तू कैसे कह रहा है कि "राक्षस की गृहिणी को कहीं और पहुँचा दिया ?" कहना चाहिये कि राक्षस भी और उसके पत्नी-पुत्र अब काबू में आगये !

(एक ओर से)

एक नौकर—स्वामी, नमस्कार स्वीकार करें । शकटदासजी बाहर खड़े आपकी आज्ञा चाहते हैं।

राक्षस—अरे भाई, क्या ? क्या यह सच है ?

नौकर—और झूठ भी सेवक अमात्य के सम्मुख ही बोलता ?

राक्षस—मित्र विराध, यह क्या चक्कर है ?

विराध—सब-कुछ सम्भव है, भावी की (होनहार की) रक्षा स्वयं विधि करता है।

राक्षस—प्रियंवदक, तो देर क्यों कर रहे हो ? एकदम से अन्दर ले आओ सेठजी को।

नौकर—जो आज्ञा, स्वामी ! (चला जाता है)

(शकटदास पीछे-पीछे उसके सिद्धार्थक)

शकटदास—(मन-ही-मन)

धरती पर, तब, शूली को दृढ़ गड़ी देखकर (जैसे वह चन्द्रगुप्त की तरह ही स्थिर हो); और मौर्य की ही राजलक्ष्मी की तरह मस्तक पर लिपटी उस मृत्यु-माला को प्रत्यक्ष अनुभव करके भी—जो होश-हवास सब गायब करदे;

(अवलोक्य सहर्षम्) अयममात्यराक्षसस्तिष्ठति य एषः—

अक्षीणभक्तिः क्षीणेऽपि नन्दे स्वाम्यर्थमुद्वहन् ।
पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमे स्थितः ॥ २२ ॥

(उपसृत्य) जयत्वमात्यः ।

राक्ष०—(विलोक्य[1] सहर्षम्) सखे शकटदास, दिष्टया कौटिल्यगोचरगतोऽपि त्वं दृष्टोऽसि । तत्परिष्वजस्व माम् ।

शक०—(तथा करोति)

राक्ष०—(चिरं परिष्वज्य) इदमासनमास्यताम् ।

शक०—(नाटयेनोपविष्टः[2])

राक्ष०—सखे शकटदास, अथ कोऽयं मे ईदृशस्य हृदयानन्दस्य हेतुः ?

शक०—(सिद्धार्थकं निर्दिश्य) अनेन प्रियसुहृदा सिद्धार्थकेन घातकान्विद्राव्य वध्यस्थानादपहृतोऽस्मि[3] ।

क्वचित्पाठः ॥ २१ ॥ **अक्षीणभक्तिरिति ।** [क्षीणे नष्टेऽपि नन्दे अक्षीणा । यथापूर्वं स्थिता भक्तिर्यस्य] परमे प्रमाणे प्रथमकोटौ स्थितः । [अत्युत्कटस्वामिभक्तिशालिनामप्यग्रेसर इत्यर्थः] ॥ **आर्योपदेश इति ।** अयं तस्माच्च सुहृत्प्राणपरिरक्षण-परितुष्टादित्यादिः कर्णे एवमेवेत्यंतः पूर्वोक्त आर्योपदेश इत्यर्थः । इदमपरं

---

1. नाटयेनावलोक्य, 2. यदाज्ञापयत्यमात्य इति, 3. अपवाहितः ।

(*Going near and seeing* RA`KSHASA ; *with joy*)

This is minister Bākshasa ; he who, with his devotion (to Nanda) unimpaired though Nanda himself has disappeared, and bearing up the cause of his master, stands on earth like the highest standard (*i.e.* noblest pattern) of those who are loyal to their masters. (22)

(*Approaching*) Victory to the Minister !

RA`K.—(*Seeing him, rejoicingly*) Friend Śakaṭadāsa, it is by good luck that I see you, though fallen into the clutches of Kauṭilya. Do you, therefore, embrace me.

ŚAK.—(*Does accordingly*)

RA`K.—(*After a long embrace*) Take this seat, please.

ŚAK.—(*Gesticulates that he sits down*)

RA'K.—Friend, Śakaṭadāsa—To whom am I beholden for this delight of the heart (*i.e.* this delightful event) ?

ŚAK.—(*Pointing to* SIDDHA`RTHAKA) This dear friend Siddhārthaka, put the executioners to flight and bore me hither.

और मृत्यु की खबर सुना रही तुरही की ध्वनियों को भी सुनते हुए—(जिस भयंकरता के साथ कि वे नन्द के पतन के समय बजी थीं) मेरा मन जो बैठा नहीं, प्रतीत होता है—वह महाराज नन्द के उस अपमान से, पहले ही कुछ कठोर हो चुका था । (२१)

(देखकर, प्रसन्नता के साथ) यह रहा अमात्य राक्षस, जो—नन्द के उठ जाने पर भी स्वामी के कार्य को उसी तरह वहन करता हुआ आज भी वैसा ही स्वामि-भक्त चला आता है । स्वामि-भक्तों के लिए, सचमुच, आदर्श हो तो ऐसा हो ! (२२)

(निकट पहुँचकर) जय हो, स्वामी !

राक्षस—(देखते हुए, प्रसन्नता से) मित्र, शकटदास, क्या सौभाग्य है तेरा कि चाणक्य की दृष्टि पड़ चुकने पर भी तुझे मैं एक बार देख तो सका ! मैं तुझे अपनी बाहों में लेलूँ ।

शकटदास—(बाहों में आ जाता है)

राक्षस—(देर तक आलिंगन कर चुकने के बाद) आओ, यहाँ बैठो ।

शकटदास—(जैसे बैठ ही चुका हो)

राक्षस—यह खुशी मेरे दिल की, किसने सम्भव कर दिखाई ?

शकटदास—(सिद्धार्थक की ओर इशारा करते हुए) यह है मेरा प्रिय मित्र सिद्धार्थक जो, वधिकों में खलबली मचाकर, मुझे मृत्युगृह से बचाकर यहाँ तक ले आया है ।

राक्ष०—(सहर्षम्) भद्र सिद्धार्थक, किं[1] पर्याप्तमिदमस्य प्रियस्य। तथापि गृह्यताम्। (इति स्वगात्रादवतार्य भूषणानि प्रयच्छति)

सिद्धा०—(गृहीत्वा पादयोर्निपत्य[2] स्वगतम्) अयं खलु आर्योपदेशः। भवतु तथा करिष्यामि। (प्रकाशम्) अमात्य, अत्र मे प्रथमप्रविष्टस्य नास्ति कोऽपि परिचितः यत्रेमममात्यस्य प्रसादं निक्षिप्य निर्वृतो भवामि। तस्मादिच्छाम्यहमेतया मुद्रया मुद्रितममात्यस्यैव भाण्डागारे स्थापयितुम्। यदा मे प्रयोजनं तदा ग्रहीष्यामि। (अअं[3] खु अज्जोवदेसो। होदु तह करिस्सं। अमच्च एत्थ मे पढमपविट्ठस्स णत्थि कोवि परिचिदो जत्थ एदं अमच्चस्स पसादं णिक्खिविअ णिव्वुदो भविस्सं। ता इच्छामि अहं इमाए मुद्दाए मुद्दिदं अमच्चस्स एव्व भण्डाआरे ठाविदुं। जदा मे पओअणं[4] तदा गेह्लिस्सं।)

राक्ष०—भद्र[5] को दोषः। शकटदास, एवं क्रियताम्।

शक०—यदाज्ञापयत्यमात्यः। (मुद्रां विलोक्य जनान्तिकम्) अमात्य, भवन्नामाङ्कितेयं मुद्रा।

राक्ष०—(विलोक्यात्मगतम्[6]) सत्यं नगरान्निष्क्रामतो मम हस्ताद्ब्राह्मण्या[7] उत्कण्ठाविनोदार्थं गृहीता। तत्कथमस्य हस्तमुपागता। (प्रकाशम्) भद्र सिद्धार्थक, कुतस्त्वयेयमधिगता?

बीजान्वेषणम्। [निक्षिप्य व्यासीकृत्य।] ग्रहीष्यामीति। भवतोतिसन्धानार्थं यदा कटकान्निर्गमिष्यामि तदा ग्रहीष्यामीति कुटिलो गूढाशयः। [उत्कण्ठाविनोदार्थम्।

---

1. काममपर्याप्तम्, 2. (प्रणिपत्य) अमात्य अत्र, 3. एदं खु अज्जोवदेसेण करिस्सं, 4. एदिणा पओ, 5. भद्र भवतु कः, 6. सविषादं सवितर्कमा० 7. गृहिण्या।

Ra'k.—(*Joyfully*) Good friend, Siddhārthaka, what can be an adequate return for this favour ? Still take these. (*He takes off the ornaments from his body and gives them to* SIDDHA`RTHAKA)

Siddh.—(*Taking them, and falling at his feet ; to himself*) Such, indeed, is the advice of (instructions given me by) my master. I will act accordingly. (*Aloud*) Minister, as I come to this place for the first time, I have no acquaintance here to whom I can entrust this favour of Your Excellency and be free from care (on that score). I should, therefore, like to deposit the ornaments after having sealed them with this seal-ring in your treasury. I will take them away when there is an occasion for them.

Ra`k.—Friend, what harm is there in that ? Śakaṭadāsa, do so.

Śak.—As the Minister commands. (*Looking at the seal-ring; aside*) Minister, the ring has your name inscribed upon it.

Ra'k.—(*Looking at it, to himself*) To be sure, this was taken from me by my wife, when I left the city, as a souvenir (*lit.* the means of beguiling the time of separation) How could it then come into his hands ? (*Aloud*) Friend, Siddhārthaka, how did you come by this ring ?

राक्षस—सिद्धार्थक भैया, इस उपकार का बदला तो हमसे क्या बन सकता है, फिर भी—इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा तुम्हें सिद्धार्थ (अपने तन के आभूषण उतारकर दे देता है) ।

सिद्धार्थक—(आभूषण ग्रहण करते हुए राक्षस के चरणों में गिर पड़ता है; मन-ही-मन) यही कुछ मुझे गुरुजी ने समझाया था । ठीक है, मैं भी वैसे ही करूँगा । (व्यक्त) मन्त्रिवर, मैं यहाँ पहली ही बार आया हूँ, सो मेरा यहाँ कोई भी परिचित नहीं है जिसकी सुरक्षा में यह आपकी अनुकम्पा का प्रसाद समर्पित कर सकूँ । मैं चाहूँगा कि इस अंगूठी से इन पर सुरक्षा की मुहर लगाकर आप ही के खजाने में इसे डाल दूँ । मौका आने पर मैं इसे वापस ले लूँगा ।

राक्षस—मित्र, इसमें क्या बुराई है ? शकटदास, जैसे यह कहता है कर दो ।

शकटदास—जो आज्ञा आपकी । (मुहर को देखकर, एक ओर) अमात्य मुह पर तो आपका नाम है ।

राक्षस—(देखकर मन-ही-मन) सच तो यह है कि शहर छोड़ते समय मेरे हाथ से देवी ने अपना मन परचाने के लिये इसे रख लिया था । किन्तु—सिद्धार्थक के हाथ में यह कैसे आ पहुँची ? (व्यक्त) भाई सिद्धार्थक, यह अँगूठी तुम्हारे हाथ कैसे आई ?

सिद्धा०—अस्ति कुसुमपुरे मणिकारश्रेष्ठी चन्दनदासो नाम । तस्य गेहद्वारपरिसरे पतिता मया आसादिता । (अत्थि कुसुमपुरे[1] मणिआरसेट्ठी चन्दनदासो णाम । तस्स गेह[2]दुआरपडिसरे पडिदा मए आसादिदा ।)

राक्ष०—युज्यते ।

सिद्धा०—अमात्य, अत्र किं युज्यते । (अमच्च एत्थ किं युज्जइ ।)

राक्ष०—भद्र, यन्महाधनानां गृहे पतितस्यैवंविधस्योपलब्धिरिति ।

शक०—सखे[3] सिद्धार्थक, अमात्यनामाङ्कितेयं मुद्रा । तदितो बहुतरेणार्थेन भवन्तममात्यस्तोषयिष्यति । दीयतामेषा ।

सिद्धा०—आर्य, ननु प्रसाद एष यदस्या मुद्राया अमात्यः परिग्रहं करोति । (अज्ज णं पसादो[4] एसो जं इमाए मुद्दाए अमच्चो परिग्गहं[5] करेदि ।) (इति मुद्रामर्पयति)

राक्ष०—सखे शकटदास, अनयैव मुद्रया स्वाधिकारे व्यवहर्तव्यं भवता ।

शक०—यदाज्ञापयत्यमात्यः ।

सिद्धा०—अमात्य, किमपि विज्ञापयामि । (अमच्च किंपि विण्णवेमि ।)

उत्कण्ठा इष्टजनस्य सस्पृहं स्मरणं । चिन्ता तु स्मृतिराध्यानं स्मरणं सस्पृहे पुनः । उत्कण्ठोत्कलिके । इति शब्दार्णवः ।] किमत्र युज्यत इति । मुद्रायाः स्वकीयत्वनिह्नवोनेन क्रियत इति जानन्नप्यजानन्निव पृच्छति । भद्र यदिति । अस्मद्गृहजनस्तत्र वर्तत इत्यस्यार्थस्य गोपनार्थमियमुक्तिः । तद्दितो बहुतरेणेति । इतो मुद्रामूल्यादप्यधिकतरेणेत्यर्थः । परिग्रहमित्यादि यदर्थमियमानीता तत्सिद्धमित्यर्थो गूढः ।

---

1. ०पुरनिवासी, 2. घर०; गेहदुआरे भूमिए, 3. भद्र, 4. एसो मे परितोषो, 5. परिग्गहप्पसादं ।

Siddh.—There is in Kusumapura a jeweller, Chandanadāsa by name. I found this ring fallen near the door of his house.

Ra'k.—That is right.

Siddh.—Minister, what is right in this?

Ra'k.—Friend, that such a thing should be found fallen somewhere in the houses of very rich men.

Śak.—Friend Siddhārthaka, the ring bears upon it the stamp of the Minister's name. Give it to him. The Minister will reward you with money exceeding its value.

Siddh.—I esteem it a favour that the Minister accepts the ring. (*He hands over the ring*)

Ra'k.—Friend, Śakaṭadāsa, you are to use this ring in carrying out the business of your office.

Śak.—As the Minister commands.

Siddh.—Minister, I have a request to make.

सिद्धार्थक—कुसुमपुर में एक सुनार रहता है—सेठ चन्दनदास, उसके घर के दरवाज़े के पास पड़ी मुझे यह मिली थी।

राक्षस—ठीक है।

सिद्धार्थक—इसमें ठीक क्या है, मन्त्रिवर !

राक्षस—यही, भैया, कि बड़े अमीर लोगों के घरों में ही ऐसी कीमती चीज़ें गिरी-पड़ी मिल सकती हैं।

शकटदास—सिद्धार्थक भाई, मुद्रा पर अमात्य का नाम अंकित है। इससे भी कहीं अधिक कीमत का इनाम अमात्य तुम्हें देंगे; यह इन्हें दे दो।

सिद्धार्थक—मेरे लिये सचमुच यह बड़ा अनुग्रह होगा अमात्य का यदि वे इसे मुझसे स्वीकार करलें। (और मुद्रा दे देता है)

राक्षस—शकटदास, अबसे इसी मुहर को इस्तेमाल करके अपने सभी कर्त्तव्य तुम्हें निभाने होंगे।

शकटदास—मालिक का हुक्म सिर-माथे।

सिद्धार्थक—अमात्य, मुझे आपसे कुछ निवेदन करना था।

राक्ष०—ब्रूहि[1] विश्रब्धम् ।

सिद्धा०—जानात्येवामात्यो यथा चाणक्यबटुकस्य विप्रियं कृत्वा नास्ति पुनः पाटलिपुत्रे प्रवेश इति तदिच्छाम्यहममात्यस्य चरणे एव शुश्रूषितुम् । (जाणादि एव्व अमच्चो जह चाणक्कबडुअस्य पिप्पिणं कदुअ णत्थि पुणो पाडलिउत्ते पवेसो त्ति ताइच्छामि अहं अमच्च[2]चलणे एव सुस्सूसिदुम् ।)

राक्ष०—भद्र, प्रियं नः । किंतु त्वदभिप्रायापरिज्ञानान्तरितोऽयमस्मदनुनयः । तदेवं क्रियताम् ।

सिद्धा०—(सहर्षम्) अनुगृहीतोऽस्मि । (अनुगिहिदोह्मि ।)

राक्ष०—सखे शकटदास, विश्रामय सिद्धार्थकम् ।

शक०—तथा । (इति सिद्धार्थकेन सह निष्क्रान्तः)

राक्ष०—सखे विराधगुप्त, वर्णय[3] वृत्तशेषम् । अपि क्षमन्तेऽस्मदुपजापं[4] चन्द्रगुप्तप्रकृतयः[5] ।

विरा०—अमात्य, बाढं क्षमन्ते यथाप्रकाश[6]मनुगच्छन्त्येव ।

राक्ष०—सखे, किं तत्र प्रकाशम् ?

विरा०—अमात्य, इदं तत्र प्रकाशम्[7] । मलयकेतोरपक्रमणात्प्रभृति कुपित[8]श्चन्द्रगुप्तश्चाणक्यस्योपरीति चाणक्योऽप्यतिजितकाशितयासहमानश्चन्द्रगुप्तं तैस्तैराज्ञाभङ्गैश्चन्द्रगुप्तस्य चेतःपीडामुपचिनोतीति । इत्थमपि[9] ममानुभवः ।

त्वदभिप्राय इति । त्वदभिप्रायापरिज्ञानेन [पृष्टोऽस्मत्सेवामङ्गीकरिष्यसि न वेति त्वदभिप्रायाज्ञानेन] अन्तरितो विलम्बितः । [अन्यथा] पूर्वमेवास्माभिरेवं भवाननुनेय इत्यर्थः । **अनुगच्छन्त्येवेति** । चन्द्रगुप्तप्रकृतयः भद्रभटादयः मलयकेतूपेक्षणात्कृतघ्नश्चाणक्यबटुर्न विश्वसनीय इत्येवमस्मदुपजापं यथाप्रकाशमनुगच्छन्त्येव । [यथाप्रकाशं प्रकाशीभवन्तमर्थमनतिक्रम्य तदनुसारेणास्मदुक्तं कर्तुं प्रवर्तन्ते ।] अत्राप्यागन्तुमुद्युञ्जत एवेति भावः । वक्ष्यति चैतत्पञ्चमेऽङ्के । प्राक्परिगृहीतोपजापैरित्यादि ।

---

1. भद्र ब्रूहि, 2. अज्जस्स ज्जेव सुप्पसण्णे पादे सेविदुम्, 3. वर्णयेदानीं, कुसुमपुरवृत्तान्तशेषम्, 4. कुसुमपुरनिवासिनोऽस्म०, 5. प्रकृतिस्था अमात्यादयः, 6. ननु यथा प्रधानं, 7. कारणम्, 8. पीडितश्चन्द्रगुप्तेन चाणक्यः, 9. अयं ।

RA'K.—Speak out unreservedly.

SIDDH.—The Minister knows full well that when any one has given offence to the brat (wretch), Chāṇakya, entry into Paṭaliputra is prohibited to him. I wish, therefore, to remain in Your Honour's service.

RA'K.—Friend, we are pleased at this. It was our ignorance of your intention that prevented us from making this request to you ourselves. Do so then.

SIDDH.—(*Joyfully*) I feel beholden to Your Honour.

RA'K.—Śakaṭadāsa, see that Siddhārthaka takes rest.

ŚAK.—As you command. [*Exit with* SIDDHA'RTHAKA.

RA'K.—Friend, Virādhagupta, go on with the remainder of your tale. Do the subjects of Chandragupta lend a favourable ear to our overtures?

VIRA'DH.—Minister, they do. They are already acting in pursuance of them as certain things are being revealed.

RA'K.—Friend, what are the things that are being revealed there?

VIRA'DH.—Minister, this is what has come to light there, that Chandragupta has got angry with Chāṇakya, ever since Malayaketu's escape. Chāṇakya, of course, in his extreme arrogance, does not bear this, and pains the heart of Chandragupta with various acts of disobedience. Such is *my* experience too.

राक्षस—कहो, बेखटके।

सिद्धार्थक—आप तो जानते ही हैं कि चाणक्य के साथ शत्रुता मोल लेकर अब पाटलिपुत्र तो मैं वापस जा नहीं सकता। सो, मैं चाहूँगा कि आपकी कुछ दिन सेवा करता रहूँ।

राक्षस—भाई, हम प्रसन्न हुए तुम्हारी इस इच्छा को सुनकर। हम तो आप ही तुम्हें यह सुझाने लगे थे; किन्तु तुम्हारे मन की हमें मालूम नहीं थी, सो अब तक स्वयं कह न सके। ठीक है, ऐसे ही ठीक है (खुशी से रहो)।

सिद्धार्थक—(प्रसन्नता के साथ) मैं आपका बड़ा ही अनुगृहीत हूँ।

राक्षस—शकटदास भाई, सिद्धार्थक के विश्रामादि की कुछ व्यवस्था करो।

शकटदास—(सिद्धार्थक के साथ निकल जाता है)

राक्षस—हाँ, तो, विराधगुप्त, अब बची-खुची भी कह डालो। क्या चन्द्रगुप्त की प्रजायें हमारे आजकल के इन कारनामों को पसन्द करती हैं?

विराध—बहुत पसन्द करती हैं—जैसाकि कुछ नये तथ्यों के प्रकाश में आने से भी पता चलता है।

राक्षस—किन तथ्यों के प्रकाश में आने से, भैया?

विराध—अमात्य, एक तथ्य तो उनमें नया यह पता लगा है कि—मलयकेतु के भाग निकल जाने के बाद से चन्द्रगुप्त चाणक्य से कुछ रुष्ट रहने लगा है, और उधर चाणक्य भी अपनी अविरत सफलताओं के नशे में अब चन्द्रगुप्त की

राक्ष०—(सहर्षम्) सखे विराधगुप्त, गच्छ त्वमनेनैवाहितुण्डिकच्छद्मना पुनः कुसुमपुरम् । तत्र मे प्रियसुहृद्वैतालिकव्यञ्जनः स्तनकलशो नाम प्रतिवसति । स त्वया मद्वचनाद्वाच्यः यथा चाणक्येन क्रियमाणेष्वाज्ञाभङ्गेषु चन्द्रगुप्तः समुत्तेजनसमर्थैः[1] श्लोकैरुपश्लोकयितव्यः कार्यं चातिनिभृतं करभकहस्तेन सन्देष्टव्यमिति ।

विरा०—यदाज्ञापयत्यमात्यः । (इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

पुरुषः—जयतु अमात्यः ! अमात्य, शकटदासो विज्ञापयति एते खलु त्रयोऽलङ्कारसंयोगा विक्रीयन्ते ! तान् प्रत्यक्षीकरोत्वमात्य इति । (जेदु[2] अमच्चो । अमच्च सअडदासो[3] विण्णवेदि एदे खु तिण्णि अलङ्कारसञ्जोआ[4] विक्कीअन्दि । ते पच्चक्खीकरेदु अमच्चो ।)

राक्ष०—(विलोक्यात्मगतम्) अहो महार्हाण्याभरणानि[5] । (प्रकाशम्) भद्र, उच्यतामस्मद्वचनाच्छकटदासः परितोष्य विक्रेतारं गृह्यन्तामिति ।

पुरु०—तथा । (तह) (इति निष्क्रान्तः)

राक्ष०—यावदहमपि[6] कुसुमपुराय करभकं प्रेषयामि । (उत्थाय) अपि नाम दुरात्मनश्चाणक्या[7]च्चन्द्रगुप्तो भिद्येत । अथवा सिद्धमेव नः समीहितं पश्यामि । कुतः ?---

---

[जितेन आत्मनो जयेन काशते असौ जितकाशी अतिशयेन जितकाशी अति० तस्य भावः जितकाशिता तया । आत्मनो जयेन अतिदृप्त इत्यर्थः । उपचिनोति पुनः पुनः कृतैराज्ञाभङ्गैर्वर्धयति ।] ममानुभव इति । इत्थं तत्रत्यवृत्तं मयानुभूयैवागतमित्यर्थः । इदमपि बीजान्वेषणम् ।। [—व्यञ्जनः वैतालिकच्छद्मना वर्तमानः] उपश्लोकयितव्यः श्लोकैः स्तोतव्यः ।] अलङ्कारसंयोगा इति । अलङ्कारसंयोगाः सम्यग्घटिता अलङ्कारा इत्यर्थः ।

---

1. रूपैः, 2. जअदु जअदु अज्जो, 3. एसो खु सअड०, 4. विसेसा, 5. महाधनानि, 6. (स्वगतम्) यावत्, 7. वयहतकात् ।

RA`K.—(*Delightfully*) Friend Virādhagupta, go again to Kusumapura in this very disguise of a snake-charmer. There lives a dear friend of mine, Stanakalaśa by name, disguised as a bard. Tell him in my name that as Chāṇakya will be committing acts of disobedience he should praise Chandragupta with stanzas calculated to inflame his spirit (*i. e.* excite his jealousy); and that whatever business he will have to transact, he should send me word, under the profoundest secrecy, through Karabhaka.

VIRA`DH.—As the Minister commands. [*Exit.*

SERVANT—(*Entering*) Minister, Śakaṭadāsa informs you that these three ornaments of a set are offered for sale, and that you should examine them yourself.

RA`K.—(*Looking at them*) Oh, these are very precious ornaments. Friend, tell Śakaṭadāsa in my name that he should satisfy the seller and buy them.

SERVANT—As you command. [*Exit.*

RA`K.—I too will immediately send Karabhaka to Kusumapura. (*Rising*) Would there be a split between Chandragupta and the vile Chāṇakya? Or why? I consider my desire as already fulfilled. For,

जी-हुज़ूरी बरदाश्त नहीं कर रहा—प्रतिदिन राजा की आज्ञाओं को भंग करके चन्द्रगुप्त के दिल को चोट पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ता । मेरा अपना भी कुछ ऐसा ही अनुभव है ।

राक्षस — (प्रसन्नता के साथ) अच्छा, विराधगुप्त, तुम संपेरे के इसी वेष में ही एकदम फिर कुसुमपुर जाओ । वहाँ मेरा एक मित्र वैतालिक रहता है—स्तन कलश । मेरे नाम से उसे कहना कि जब-जब चाणक्य राजाज्ञा का उल्लंघन करे, चन्द्रगुप्त को उत्तेजित करने के लिये, उसके गीत गा दिया करे । और जो कुछ भी प्रगति इस कार्य में उसकी यथासमय हो वह—निहायत सावधानी के साथ, चोरी-छुपके करभक के हाथों हमें पहुँचाता रहे ।

विराध —जो आज्ञा, स्वामी । (चला जाता है)

(एक ओर से)

नौकर—अमात्य की जय हो ! शकटदासजी ने कहला भेजा है कि तीन गहनों का एक सैट कोई आदमी बेचने आया है । पहले अमात्य ज़रा इन्हें देखलें ।

राक्षस—(देखते हुए मन-ही-मन) अरे, ये तो कोई बड़े मूल्यवान् आभरण प्रतीत होते हैं । (व्यक्त) शकटदास से कहो, भैया, बेचने वाले को उचित मूल्य देकर इन्हें खरीद ले ।

नौकर—जी, बहुत अच्छा ! (चला जाता है)

राक्षस—और मैं भी चलूँ, और करभक को कुसुमपुर की तरफ रवाना कर दूँ (उठते हुए) क्या यह सम्भव है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त में सचमुच—

मौर्यस्तेजसि सर्वभूतलभुजामाज्ञापको वर्तते
चाणक्योऽपि मदाश्रयादयमभूद्राजेति जातस्मयः ।
राज्यप्राप्तिकृतार्थमेकमपरं तीर्णप्रतिज्ञार्णवं
सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तरा[1] भेत्स्यति ॥ २३ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति राक्षसविचारो[2] नाम द्वितीयोऽङ्कः ।

चन्द्रगुप्तो भिद्येतेति । ततःप्रभृति चन्द्रगुप्तशरीरे सहस्रगुणमप्रमत्तश्चाणक्य इति श्रुत्वा तद्वधोपाये निराशः सन्राक्षसः—'आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।' इतिन्यायेन—अतः परं स्तनकलशद्वारा मौर्यचाणक्ययोर्मिथो विरोधेन स्वेष्टसिद्धिं समाशसते अपि नामेति ॥

मौर्यस्तेजसीति [मौर्यः सर्वेषां भूतलभुजां राज्ञामाज्ञापकः अतएव तेजसि राजतेजसि वर्तते राजदर्पाध्मात इत्यर्थः। जातस्मयो जातगर्वः।] राज्यप्राप्त्या प्रतिज्ञार्णवतरणेन च लब्धान्तरा [भेदविधौ] प्राप्तावसरा कृतकृत्यतैव उभौ सौहार्दाद्भेत्स्यति। उभयोः सौहार्दं विघटयिष्यतीत्यर्थः। उभौ कृतकृत्यतया परस्परं निरपेक्षौ सन्तौ केनचिन्निमित्तेन विरोधे सति पुनर्न सन्धास्येते इति भावः। इत्थं पताकाप्राप्त्याशानुगुण्येन गर्भसन्धेर्द्वादशाङ्गानि निरूपितानि गर्भसन्धिश्च समाप्तः ॥

इति त्र्यम्बकयज्वप्रभुवर्याश्रितढुण्ढिराजव्यासयज्वविरचिते ।
मुद्राराक्षसनाटकव्याख्याने द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ॥

---

1. ०न्तरं, 2. मुद्रा० नाम्नि नाटके राक्ष० ।

Maurya, ruling over (lit. commanding) all the kings of the earth, has become imperious. Chāṇakya too is full of self-sufficiency at the thought that Maurya became king through his support. The feeling of satisfaction itself, having thus found an opportunity, will certainly alienate them from their friendship—the one happy by his acquisition of the kingdom, the other by his having successfully crossed the ocean of his vow. (23) [*Exeunt Omnes*

END OF ACT II.

फूट पड़ चुकी है—पड़ सकती है ? तब तो मुझे तो लगता है मेरा मनोरथ आज पूर्ण हुआ कि कल हुआ देखो, ना—चन्द्रगुप्त का प्रभाव इतना बढ़ चुका है कि अब वह दुनियाभर के राजाओं पर अपना आदेश चला सकता है, और उधर चाणक्य को भी यह अभिमान हो गया है कि यह चन्द्रगुप्त मेरे ही बल पर राजा बना है। अब दोनों ओर यह सफलता ही है जो--अवसर आने पर—दोनों की मित्रता को चुटकी में तोड़कर रख देगी। एक है कि इसलिए अपने को कृतार्थ मानता है क्योंकि उसे राज्य मिल गया, और दूसरा इसलिये कि उसने एक प्रतिज्ञा-सागर को तर लिया। (२३)

(मंच पर कोई भी नहीं रह जाता)

अंक २ : राक्षस की चिन्ता : समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—(सनिर्वेदम्)

रूपादीन्विषयान्निरूप्य करणैर्यैरात्मलाभस्त्वया
लब्धस्तेष्वपि चक्षुरादिषु हताः[1] स्वार्थावबोधक्रियाः ।
अङ्गानि प्रसभं त्यजन्ति पटुतामाज्ञाविधेयानि ते[2]
न्यस्तं मूर्ध्नि पदं तवैव[3] जरया तृष्णे मुधा[4] ताम्यसि ।। १ ।।

(परिक्रम्याकाशे) भो भोः सुगाङ्गप्रासादाधिकृताः पुरुषाः सुगृहीतनामा[5] देवश्चन्द्रगुप्तो वः समाज्ञापयति । प्रवृत्त[6]कौमुदीमहोत्सवरमणीयतरं[7] कुसुमपुरमवलोकयितुमिच्छामि । तत्संस्क्रियन्ता[8]मस्मद्दर्शनयोग्याः सुगाङ्गप्रासादोपरिभूमय[9] इति । (पुनराकाशे) किं ब्रूथ । आर्य, किमविदित एवायं देवस्य[10] कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेध इति । आः दैवोपहताः किमनेन वः सद्यःप्राणहरेण कथोपोद्घातेन । शीघ्रमिदानीम्—

अथ राक्षसाभिलष्यमाणचाणक्यचन्द्रगुप्तविरोधकथनार्थं विमर्शसन्धिरारभ्यते । तृतीयचतुर्थावङ्कौ विमर्शसन्धिः । 'गर्भसन्धौ प्रसिद्धस्य बीजार्थस्यावमर्शनम् । हेतुना येन केनापि विमर्शः सन्धिरुच्यते ।।' इति लक्षणात् । गर्भसन्धौ प्रसिद्धस्य मुहुरन्विष्टस्य चाणक्यनीतिरूपस्य बीजस्य कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधादिना प्रकरीनाम्न्याल्पया कथया चावमर्शनात् अनुसन्धानात् नियताप्तिप्रकर्योः सम्बन्धस्य चात्र सत्वात् । तृतीयेऽङ्के नियताप्तिः । चतुर्थेऽङ्के राक्षसचारसंवादरूपा कथा प्रकरी वर्ण्यते । नियताप्तिप्रकर्यानुगुण्येनास्य सन्धेस्त्रयोदशाङ्गानि । 'तत्रापवादसंफेटौ विद्रवद्रवशक्तयः । द्युतिः प्रसङ्गश्छलनं व्यवसायो विरोधनम् । प्ररोचनाविचलनमादानं च त्रयोदश ।।'

---

1. हता···क्रिया, 2. मे, 3. तथैव, 4. मुधोत्ता०, 5. नामधेयः, 6. यथा प्र०, 7. ०णीयं०, 8. तत् क्रियन्तां, 9. उपरितन०; दस्योपरि०, 10. देवस्य चन्द्रगुप्तस्य ।

ACT III.

(*Enter the* CHAMBERLAIN)

CHAM.—(*Dejectedly*)

The operations of perceiving their own objects have been lost (or impaired) with regard even to those very organs of sense, the eye and others, by means of which thou hadst derived thy being (or gained thy object), by having perceived the objects of sense such as form and others; the organs of action which were (formerly) obedient to thee, have perforce given up their energy (active vigour): thus, O Desire, old age has planted its foot on thy very head; in vain dost thou pine now. (1)

(*Turning round and looking into the air*) Oh you officials of the Sugāṅga palace, His Majesty Chandragupta, of blessed name, commands you thus—"I wish to enjoy a sight of Kusumapura, now the more delightful on account of the commencement of the Kaumudī festival. You should therefore decorate, for our reception, the upper terraces of *Sugāṅga*." (*Again looking into the air*) What do you say? Do you say "Sir, does not His Majesty know that the festival has been forbidden?" Ah, fie upon you, ill-fated beings! Why should you allude to a subject which will bring about your instantaneous death? Quickly now,

अंक—३

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी— (खिन्न मुद्रा में)—

रूप-गन्ध आदि विषयों के निरूपण में इन्द्रियों के द्वारा जो आत्मलाभ तुझे कभी हुआ करता था, आज उन्हीं आँख आदि में तेरी वे स्वार्थ-पूर्ति (अथवा चेतना) की क्रियाएँ भी व्यर्थ हो चुकी हैं। वही अंगांग जो कभी तेरे आज्ञाकारी थे, किस तेजी के साथ अपनी कार्य-कुशलता को त्यागते जा रहे हैं। अब तो तृष्णा देवि, लगता है, बुढ़ापे ने धृष्टता के साथ तेरे सिर पर ही पैर आ धरा है। व्यर्थ ही अब तू दुःखी हो रही है—मुझे अब भी तरसाती रहती है। (१)

(कुछ कदम चलकर, फिर, आकाश की ओर) ऐ सुगांग-प्रासाद के अधिकारियो, महाराज चन्द्रगुपत का आदेश है कि, "आज मैं कौमुदी-महोत्सव में और भी निखरी हुई कुसुमपुर की शोभा को देखना चाहता हूँ। इसलिए महाराज के स्वागत के अनुकूल हमारे प्रासाद की ऊपरली छतों को सजाना शुरू कर दो।" (फिर आकाश की ओर) क्या कहते हो—"भैया, क्या महाराज को मालूम नहीं कि कौमुदी-महोत्सव पर रोक लग चुकी है ?" अरे

आलिङ्गन्तु गृहीतधूप[1]सुरभीन्स्तम्भान्पिनद्धस्रजः
संपूर्णेन्दुमयूखसंहतिरुचां सच्चामराणां श्रियः ।
सिंहाङ्कासनधारणाच्च सुचिरं सञ्जातमूर्च्छामिव
क्षिप्रं चन्दनवारिणा सकुसुमः[2] सेकोऽनुगृह्णातु गाम् ॥ २ ॥

किं ब्रूथ[3] । आर्य इदमनुष्ठीयते देवस्य शासनमिति । भद्रास्त्वरध्वम्[4] । अयमागत एव देवश्चन्द्रगुप्तः । य एषः—

सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यास्य गुरुणा ।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात्स्खलति च[5] न दुःखं वहति[6] च ॥ ३ ॥

रूपादीति ॥ [हे तृष्णे यैः करणैः ज्ञानेन्द्रियैः शब्दादीन् विषयान् निरूप्य भोग्यतयावधार्य त्वयात्मलाभः स्ववृत्तिलाभः कृतस्तेष्वपि चक्षुरादिषु स्वार्थाववोधक्रियाः स्वस्वविषयग्रहणव्यापारा हता नष्टाः । ते आज्ञाविधेयानि निदेशानुवर्तीनि अङ्गानि प्रसभं प्रसह्य पटुतां स्वव्यापारसामर्थ्यं त्यजन्ति । एवं जरया तवैव मूर्ध्नि पदं न्यस्तमित्यादि ।] यैश्चक्षुरादिभी रूपादिषु विषयेषु गृह्यमाणेषु तत्तद्विषये तृष्णा अभिवर्धते तानीन्द्रियाणि विकलानि सन्ति विषयान्न गृह्णन्ति । यौवने तृष्णावशात् हस्तपादादीन्यङ्गानि स्वक्रियायां व्यापृतान्यासन् तान्यपि संप्रति जरया पटुतां स्वकार्यक्षमतां त्यजन्तीति जरया क्रियमाणं स्वाङ्गवैकल्यं तृष्णायामुपचर्यते ॥ न्यस्तं मूर्ध्नि पदं तवेति । अथापि तृष्णया मुधा ताम्यामीति भावः । कञ्चुकिनिर्वेदो नाटके वर्णनीय इति संप्रदायविदः ॥ १ ॥

अविदित एवायमिति । अयं चाणक्येन क्रियमाण इत्यर्थः । अयं बीजस्य चाणक्यनीतेरवमर्शनम् ॥ **आलिङ्गन्त्विति** । [सम्पूर्णेन्दोः मयूखानां किरणानां संहतेः समूहस्येव रुग् येषां तेषां सच्चामराणां शोभाः गृहीतेन धूपेन सुरभीन् पिनद्धा बद्धाः स्रजो येषु तान् स्तंभानालिङ्गन्तु । चन्दनवारिणा मूर्च्छाहारिणा । सकुसुमः पुष्पयुक्तः सेकः सुचिरं सिंहाङ्कासनधारणात्संजातमूर्छामिव गामनुगृह्णातु सोच्छ्वासां करोतु ।] अत्र चामराणां श्रियः स्तम्भानालिङ्गन्तु इत्युक्त्या कामिनामुपभोगः परिस्फुरतीति समासोक्तिरलङ्कार । अतिगौरवशालि राजसिंहासनं सुगाङ्गभूमौ तिष्ठतीति तद्धारणात्सञ्जातमूर्छामिवेति वस्तूत्प्रेक्षा ॥ २ ॥ **सुविश्रब्धैरिति** । सुविश्रब्धैर्दृढैः सुप्रयुक्ततया कार्यक्षमैश्चाङ्गैरवयवैः स्वाम्यमात्यादिभिश्च । विषमेषु

---

[1] धूमः॰ सुरभिस्त॰, [2] सुकु, [3] (आकाशे) किं कथयन्ति भवन्तः; एते त्वरामह इति । तत्किं चिरयन्ति भवन्तः, [4] त्वरं॰, त्वर॰, [5] न च, [6] न सहते ।

Let beautiful (lit. the beauty of) bright *Chámaras* that rival in splendour the streaming (*lit.* enmassed) rays of the full moon embrace (hang round) the pillars, fragrant by being fumigated with incense, and having garlands fastened round them; let also a sprinkling with sandal-water mixed with flowers quickly favour (refresh) the earth that has long been as it were drooping under the weight of the lion-emblemed throne. (2)

What do you say? 'That you are readily obeying the order of the King?' Make haste, friends. His Majesty Chandragupta is at the gates. He,

Who being strong-minded, has resolved to bear up, even in his prime youth, that very yoke of (responsibility of governing) the earth, which, though heavy, was for a long time borne by his sire, like a trained bull (experienced and able), who did not step amiss even on rough paths (trying situations) on account of his firm limbs (trusty assistants); he stumbles on account of his youthfulness (*i. e.* inexperience) but bears it lightly (*lit.* without feeling pain). (3)

विधि के मारो, क्यों ऐसा किस्सा छेड़ बैठे हो, जिससे, अगले ही क्षण, तुम्हारी जान पर आ सकती है । जल्दी करो, जल्दी—सफ़ेद-सफ़ेद चँवरों की, पूर्णिमा के चन्द्रमा की-सी, छटा—धूप की सुगन्धि से सुगन्धित तथा मालाओं से आवद्ध स्तम्भों को अपनी गति में लपेट ले ! और फूलों की पंक्तियों से मिश्रित चन्दन जल का छिड़काव–सिंहासन ऊरु के भार से मानो निःसंज्ञ हुई पृथ्वी को पुनः रुज्जीवित करदे ! (२)

क्या कहा—"भाई, महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है ?" भैया, जल्दी करो, जल्दी—महाराज आये कि आये ! महाराज चन्द्रगुप्त—जिसके पिता ने, एक धुरीण शक्तिशाली बैल की भाँति, पृथ्वी के भारी भार को शासन के ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर चलते हुए भी—अपने ही सशक्त सहायक अंगों के द्वारा संभाले रखा; उसी को अब पुत्र स्वयं, चढ़ती जवानी में, ऊँचे-से-ऊँचा उठाने की फ़िक्र में है—तरुण, किन्तु मनस्वी। अभी अनुभवहीन है, रास्ते पर फ़िसलता भी है, किन्तु—भार को भार नहीं समझता (ज़रा विचलित नहीं होता) (३)

(नेपथ्ये) इत इतो देवः। (इदो इदो देवो।)

(ततः प्रविशति राजा प्रतीहारी च)

राजा—(स्वगतम्) राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्ति[1]परस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम् कुतः ?——

परार्थानुष्ठाने रहयति[2] नृपं स्वार्थपरता
परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।
परार्थश्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति[3] पुरुषः॥ ४॥

अपि च——

दुराराध्या[4] हि राजलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि[5] राजभिः। कुतः ?——

तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते
मूर्खा[6]न्द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।
शूरेभ्योभ्यधिकं[7] बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनहो
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता[8] दुःखोपचर्या भृशम्॥ ५॥

गहनेषु पथिषु मार्गेषु राज्यतन्त्रेषु चाचलता अस्खलता धुर्येण राज्यभारनिर्वहणक्षमेणास्य गुरुणा तातेन या भुवो धूश्चिरमूढा [तामेव उच्चैः वोढुं व्यसितः कृतोद्यमः मनस्वी] इत्यन्वयः। दम्यत्वादनतिप्रौढत्वात्स्खलति किंचित्खिद्यते मनस्वित्वादुत्साहवत्वाद्दुःखं च न वहति॥ ३॥ इत इत इति। इयं चूलिका। 'अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।' इति लक्षणात्। [राजधर्मानुवृत्तिपरस्य राजधर्माननुवर्तमानस्य।] अप्रीतिस्थानं क्लेशावहमित्यर्थः॥

परार्थानुष्ठान इति। परार्थानुष्ठाने [परेषामर्थः प्रयोजनं तस्यानुष्ठाने सम्पादने] धर्मतः षष्ठांशदानादिप्रकृतिकार्यपरतन्त्रत्वे स्वार्थपरता स्वच्छन्दविहारादिविषयभोगः नृपं रहयति त्यजति। परित्यक्तस्वार्थः राजा नियतमयथार्थः क्षितिपतिः। ईदृशस्य राजत्वमयथार्थं निष्फलं स्वसुखोपभोगाभावादित्यर्थः। अथापि [परार्थः स्वार्थाद् नृपतेः अभिमततरः स्यात्] राजधर्मतया स्वार्थं विहाय प्रजार्थ एवानुष्ठेय इति चेदाग्रहस्तदा [हन्तेति खेदे] राजा परवान् पराधीनो जातः। [परायत्तः पुरुषः प्रीतेः सुखस्य रसमास्वादं कथमिव वेत्ति।] पराधीनस्य भृत्यादेः सौख्यलेशः कुत्रापि नास्तीति लोकानुभवसिद्धमिति भावः॥ ४॥ **आत्मवद्भिरिति**। समाहितचित्तैरित्यर्थः। [यद्वा कामन्दकोक्तात्मगुणसम्पन्नैः।]

तीक्ष्णादिति। [तीक्ष्णादुग्रस्वभावाद् उद्विजते मामयं कदाचित्प्रभ्रंशयेदित्युद्विग्ना भवति।] मृदौ परिभवत्रासान्मृदौ स्थितां मामन्यो बलवान्पराभविष्यतीति

---

1. वृत्तस्य, वृत्तिपरतन्त्रस्य, 2. जडयति; श्लथयति, 3. वेत्तु, 4. ०राधा, 5. विद्भिः, 6. मूर्खं, 7. प्यधिकं, 8. वार०।

(Behind the Scenes)

This way, this way, Your Majesty.

(Then enter the King *and a* Female Door-keeper*)*

King—*(To himself)* Sovereignty is, indeed, a source of great uneasiness to a king who is intent on conforming to the duties of sovereigns (conscientiously doing his duty as a sovereign). For,

If a king (the protector of the people) devotes himself to the interests of others he has to neglect his own interest (lit. his application to his interest abandons him); and a king who abandons personal interest is not the lord of the earth in the real sense of the term. If, moreover, he values more others' interests than his own, then alas, he is dependent (a servant of others); and when a man is dependent, how can he know (enjoy) the flavour of pleasures? (4)

Besides, the goddess of wealth is difficult to be propitiated even by kings possessed of the characteristic excellences of kings (or by self-controlled kings). For,

She shrinks from one who is austere; abides not with one who is meek from fear of insult; hates a fool, but bears no love to the most learned either; she feels exceedingly shy of the brave; but scoffs at those who are always timid: the goddess of wealth is very difficult to please like a harlot, who has gained ascendancy (over her lover). (5)

(नेपथ्य में)

इधर से, महाराज, इधर से ।

(राजा, साथ में प्रतिहारी भी)

राजा—(मन-ही-मन) राजा यदि सचमुच अपने कर्त्तव्य को एक धर्म मानकर चले तो राज्य चलाना उसके लिये कोई फूलों की सेज नहीं है । बात यह है कि—

राजा यदि परोपकार में ही रात-दिन लगा रहे, तो वह अपने स्वार्थ की तनिक भी पूर्ति नहीं कर पायेगा । और यदि वह स्वार्थ की भावना से सर्वथा विहीन हो जाय, तो वह भूमि का पति ही रह जाय । और यदि मनुष्य पराक्रम की वृत्ति को सचमुच स्वार्थ-साधना से श्रेयस्कर मान ले—फिर तो वह सर्वथा पराश्रित हो गया, पराधीन हो गया । और—पराधीन को क्या मालूम जीवन में प्रेम नाम की, रस नाम की, कोई वस्तु है भी ? (४)

और एक बात और भी है, वह यह कि राजगुणों से सर्वांश में विभूषित राजाओं के लिए भी लक्ष्मी का आराधन एक टेढ़ी खीर है, क्योंकि—

तेज-तरार मिजाज़ (के लोगों) से उसे स्वभाव से ही झिझक होती है, और कोमल स्वभाव वालों के यहाँ भी वह नहीं टिकती कि इसमें उसका अपना अपमान होने की सम्भावना बनी रहती है; मूर्खों से उसे घृणा रहती है और विद्वानों से कोई खास प्रेम भी नहीं; शूरवीरों से भय खाती है तो भीरु-हृदयों

अन्यच्च कृतककलहं कृत्वा स्वतन्त्रेण किञ्चित्कालान्तरं[1] व्यवहर्तव्यमित्यार्यादेशः[2]। स च कथमपि मया पातक[3]मिवाभ्युपगतः।

अथवा शश्वदार्योपदेशसंस्क्रियमाणमतयः[4] सदैव स्वतन्त्रा वयम्। कुतः?—

इह हि रचयन्साध्वीं[5] शिष्यः क्रियां न निवार्यते[6]
त्यजति तु यदा मार्गं मोहात्तदा गुरुरंकुशः।
विनयरुचयस्तस्मात्सन्तः सदैव निरंकुशाः
परतरमतः[7] स्वातन्त्र्येभ्यो वयं हि पराङमुखाः॥ ६॥

(प्रकाशम्) आर्य वैहीनरे, सुगाङ्ग[8]मार्गमादेशय।

कञ्चु०—इत इतो देवः। (नाट्येन[9] परिक्रम्य) अयं सुगाङ्गप्रासादः। शनैरारोहतु[10] देवः।

राजा—(नाट्येनारुह्य दिशोऽवलोक्य) अहो शरत्समयसंभृतशोभानां[11] दिशामतिरमणीयता। कुतः[12]?—

तत्र सम्यङ् न तिष्ठति। समवप्रविभ्यः स्थ इति तङ्। [प्रणयितामनुरागित्वम्।] लब्धप्रसरा कामुकवशीकरणेन लब्धप्रागल्भ्या वेशवनितेव श्रीर्दुराराध्येत्यर्थः॥ ५॥

आर्योपदेश इति। आर्योपदेशेन संस्क्रियमाणमतयः शिक्ष्यमाणा इत्यर्थः॥

इह विरचयन्निति। [इह साध्वीं क्रियां रचयन् न्याय्याचरणं कुर्वन्नित्यर्थः।] साध्वाचारः शिष्यः गुरुणा न निवार्यते नियम्यते। अपि त्वनुमोद्यते। त्यक्तसन्मार्गस्य गुरुरंकुशः शिक्षकः। विनये गुरुकृतशिक्षणे रुचिर्येषां ते सदाचारास्तु सदा निरंकुशाः स्वतन्त्रा एव वयम्। हिशब्दस्त्वर्थ उक्तवैलक्षण्यद्योतकः। एवं स्वातन्त्र्ये सिद्धेऽपि वयं त्वत एभ्यः। पञ्चम्यास्तसिल्। उक्तविधेभ्यः कंचित्कालं स्वातन्त्र्येण व्यवहर्तव्यमित्यादिष्टेभ्यः स्वातन्त्र्येभ्यः परतरमत्यन्तं पराङ्मुखाः सर्वथा ईदृशं स्वातन्त्र्यं नेच्छामः। किंचित्कार्यानुरोधात्त्वार्यादेशेनेदं स्वातन्त्र्यमात्मन्यध्यस्य स्वतन्त्रवद्व्यवहराम इति भावः। यद्वा आर्यानुरोधादिदं स्वातन्त्र्यं कथंचिदभ्युपगतम्। अतः परतरं अत उत्तरे काले। कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे द्वितीया। स्वातन्त्र्येभ्यो वयं पराङ्मुखाः। अतः परं कदापि स्वातन्त्र्यं नेच्छामः। आर्याधीना एव सर्वदा वर्तामिहे इति भावः॥ ६॥ [शरत्समयेन सम्भृतोपचिता शोभा यासां तास्तथा तासाम्।] **शनैरिति।** शनैः क्रमेण [अश्यानाः श्याना भूताः] श्यानीभूताः

---

1. कंचित्कालम्, 2. उपदेशः, 3. कथं कथमपि मया महापातकवद०,
4. मनसः, 5. विर०, 6. विचार्यते··· 7. पदमपि यतः···भ्यो न यान्ति परा०,
8. ङ्गप्रासाद०, 9. राजा-परिक्राम्यति। कञ्चुकी-अयं, 10. आरोढुमर्हति,
11. शोभां बिभ्रतीनां, शोभाविभूतीनां दिशामतिरमणीयकम्, 12. संप्रति हि।

Moreover, it is the command of my revered preceptor that I should pick a sham quarrel with him and manage matters independently for some time. I accepted it with great difficulty as if it were a sin; or rather, with my mind (thoughts) properly guided by the preceptor's advice I am always independent. For,

In this world a pupil, acting in the right way, experiences no check (from his preceptor); when, however, he strays from the proper path through delusion, the preceptor becomes a goad to him; hence good men who delight in acting according to instruction are ever free from restraint; we for our part are averse to any independence other than (beyond) this. (6)

(*Aloud*) Venerable Vaihīnari, lead the way to Sugāṅga.

Chamb.—This way, Sire, this way. (*Gesticulating walking on*) This is the palace Sugāṅga. Ascend gently, my lord.

King—(*Gesticulating ascent, and looking at the quarters*) Oh, the extreme loveliness of the directions whose beauty is enhanced by the autumnal season! For,

का वह मज़ाक उड़ाने से बाज़ नहीं आती। लक्ष्मी को खुश रख सकना एक बड़ी मुश्किल चीज है, वैसे ही मुश्किल जैसे—वैश्या को सन्तुष्ट रख सकना जबकि—एक बार—उसकी लाज खुल चुकी हो। (५)

इसके अतिरिक्त, एक बात और, जहाँ तक (राजलक्ष्मी से) सम्बन्ध है, वह यह कि कुछ समय मुझे अपने पैरों पर सबकुछ करना होगा और दुनिया को यह दिखाना होगा कि मैं सचमुच गुरुजी से लड़ बैठा हूँ। स्वयं मुझे यह स्थिति एक बार पाप की-सी लगती है; खैर, जैसे-तैसे मैंने यह आदेश भी उनका मान लिया है। या फिर—दिन-प्रतिदिन जब यह गुरुजी के उपदेश का सिलसिला चल रहा है, हमारी बुद्धि में दिन-दिन निर्बलता आती रहती है, और हम सचमुच स्वतन्त्र होते ही चलते हैं, क्योंकि—

दुनिया में सब-कहीं यही तौर है कि कुछ भी अच्छा काम करते हुए शिष्य को गुरु कभी नहीं रोकता; हाँ जब मोह के वश में आकर वह हाथ से विचलित होने लगता है, तभी गुरुजन अंकुश का प्रयोग किया करते हैं। सज्जन लोग प्रकृति से विनम्र होते हैं, और विनम्रता पर अंकुश कौन चलाता है? और इससे अधिक स्वतन्त्रता से तो हम स्वयं ही विमुख हैं। (मनुष्य को विमुख ही होना चाहिए)

(व्यक्त) हमें सुगांग (प्रासाद) की ओर तो ले चलो।

कंचुकी—इधर, महाराज, इधर। (रास्ता तय करते हुये) यह लीजिये, सुगांग आ गया, आइये और जरा संभलकर—सामने सीढ़ियां हैं।

राजा—(चलते हुए-से; दिशाओं की ओर देखते हुए) शरद् ऋतु में इस प्राकृतिक वैभव से दिशाओं की रमणीयता किस कदर बढ़ आई है। देखो तो—

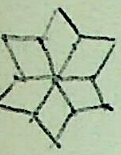

sweet voice

शनैः श्यानीभूताः[1] सितजलधरच्छेदपुलिनाः
समन्तादाकीर्णाः[2] कलविरुतिभिः सारसकुलैः ।
चिताश्चित्राकारैर्निशि विकचनक्षत्रकुमुदैर्[3]
नभस्तः स्यन्दन्ते सरित इव दीर्घा दश दिशः ॥ ७ ॥

अपि च—

शरद् :- Winter

अपामुद्वृत्तानां निजमुपदिशन्त्या स्थितिपदं[4]
दधत्या[5] शालीनामवनतिमुदारे सति फले ।
मयूराणामुग्रं विषमिव हरन्त्या मदमहो[6]
कृतः कृत्स्नस्यायं विनय इव लोकस्य शरदा ॥ ८ ॥

कृशीभूताः । संयोगादेरातोधातोर्यण्वत् इति श्यायतेर्निष्ठानत्वम् । विरलतया प्रतीयमाना दिशः सरितश्च नभस्तः वियत्तः श्रावणमासाच्च । 'नभाः श्रावणिकश्च सः' इत्यमरः । स्यन्दन्ते निःसृता इव दृश्यन्ते । प्रावृषि दिशः सरितश्च घनावृततया सर्वत उत्कूलसलिलाप्लुततया च विविक्तत्वेन न गृह्यन्ते शरदि तु विरलाः स्फुटं प्रतीयन्ते इति भावः । अत्र शरदि दिशां सरितां च वर्ण्यत्वादिवशब्दमावर्त्य दिशः सरित एव सरितश्च दिश इवेति च परस्परमुपमानोपमेयभावः । सितजलधरच्छेदपुलिनाः [सिताश्च ते जलधराश्च त एव तद्वच्च पुलिनानि यासां ताः । चित्राकारैः विकचानी उत्फुल्लानि नक्षत्राण्येव कुमुदानि नक्षत्राणीव कुमुदानि च तैः ।] विकचनक्षत्र कुमुदैरित्यत्र चोपमितसमासः । एवं च 'पर्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमा मता ।' इत्युपमेयोपमालङ्कारः । 'धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरर्थो धर्म इव त्वयि ।' इत्यत्र पूर्णश्रीत्ववत् । श्यानीभूता इत्यादिसाधारणधर्मोपादानम् । अतः पूर्णेयमुपमा । सा च नभस्त इति श्लेषानुप्राणिता । अनेन शरद्गुणकथनेन स्वस्य जैत्रयात्रासन्नाहसमय इति ध्वनितम् । वक्ष्यति च चाणक्यः सोयं व्यायामकालो नोत्सवकाल इति ॥ ७ ॥

अपामिति । [उद्वृत्तानां प्रवृद्धानामपाम् । उद्धतानामिति च ध्वनिः । स्थितिपदमवस्थानभूमिं मर्यादां च । स्थितिपथमिति पाठान्तरम् । उदारे फले सत्यपि कृतः शिक्षितः शालीनां लक्षणया सम्भृतसम्पदामवनतीं नम्रतां । दधत्या

---

1. श्यामी०, शान्ताः, 2. पुरस्तात्, 3. कुसुमैः, 4. पथं, 5. ददत्या, 6. मुदम् ।

Gradually shrinking up, having the strips of white clouds for sand-banks, crowded all round with swarms of sweetly cackling swans, and thick-set at night with asterisms of various forms like so many full-blown lotus flowers, the extensive ten directions flow down from the sky like ten long rivers (flowing in consequence of the rainy season, &c.). (7)

Moreover,

Leading back the turbulent waters to their proper basins, making the paddy-stalks bend low being laden with a wealth of grain and depriving the peacocks of their excessive lust as of virulent poison, Autumn seems to have imparted a proper training to the whole world. (8)

दसों दिशायें किस प्रकार नदियां बनकर, जैसे, आकाश से नीचे की ओर बह निकली हों। धीमे-धीमे अपने में सिकुड़ती हुई-सी--बदलियों के किनारों के बीच--जिन पर कलरव में निरत हंस-हंसिनियां, मानो आ बैठी हैं। और रात्रि में टिमटिमा रहे नक्षत्रपुंजों के साथ ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे, सचमुच, खिले कमलों से भर आई हों। (७)

यही नहीं—

पानी के उफान को, मानो, अपने में ही रहने की शिक्षा देती हुई; धान से भरी शालियों को, मानो, नम्रता की दीक्षा देती हुई; भौरों से मस्ती इस प्रकार छीन लेती हुई जैसे वह, मस्ती नहीं, कोई भयंकर विष हो। शरद् मानो सारी दुनिया को विनय का पाठ पढ़ा रही है! (८)

कुर्वत्या ।] स्पष्टोऽर्थः । अनेन पद्येनोद्वृत्तस्य मलयकेतोर्भावी निग्रहः राक्षसस्य विषवदत्युग्रविक्रमनीतिविषयकमदापहरणं साम्राज्यफलशालिनो महोन्नतेश्चन्द्रगुप्तस्य विनयसंपच्च समासोक्त्या सूचिता ।। ८ ।।

इमामपि[1]—

भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गे कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम् ॥ ९ ॥

(समन्तान्नाटचेनावलोक्य[2]) अये कथमप्रवृत्तकौमुदीमहोत्सवं कुसुमपुरम् । आर्य वैहीनरे, अथा[3]स्मद्वचनादाघोषितः कुसुमपुरे कौमुदीमहोत्सवः ।

कञ्चुकी०—अथ[4] किम् ?

राजा—तत्किं न गृहीतमस्मद्वचनं पौरैः ?

कञ्चु०—(कर्णौ पिधाय) शान्तं[5] पापं, शान्तं पापम् । पृथिव्यामस्खलितपूर्वं देवस्य शासनं कथं पौरेषु स्खलिष्यति ।

राजा—तत्कथम[6]प्रवृत्तकौमुदीमहोत्सवमद्यापि कुसुमपुरम्[7] ?

भर्तुरिति । [बहवो वल्लभा भार्या यस्य तस्य भर्तुः सागरस्य च ।] बहुवल्लभस्येति हेतुगर्भविशेषणम् । बहुवल्लभत्वादिव कलुषितामिति कालुष्यहेतूत्प्रेक्षा । सा च वाचकाभावाद्गम्या । वर्षात्ययेन कृशीभवन्तीं प्रसन्नां स्वच्छसलिलां गङ्गा भर्तुः समुद्रस्य मार्गे कथंचिदवतार्य शरत् सर्वात्मना सिन्धुपतिं नयति । अत्रोपमा । रतिकथाचतुरा दूतीवेति । दूतीदृष्टान्तानुरोधान्नायकापराधकुपितां विरहकृशां नायिकां प्रसादमुखीं कृत्वा नायकं प्रति यथा चतुरदूती प्रापयति तद्वदिति गम्यते । अनेन पद्येन राक्षसमतिपरिगृहीततया कलुषितां संशयितामिव नन्दकुललक्ष्मीं चतुरदूतीवातिगभीरा चाणक्यनीतिः सागरवदतिगभीराशयं चन्द्रगुप्तं सर्वात्मना सर्वप्रकारेण प्रापयतीति रूपकातिशयोक्त्या सूचितम् । अयमपि बीजावमर्शः ॥ ९ ॥

[गृहीतं स्वीकृतम् । पूर्वं स्खलितं स्खलितपूर्वं न स्खलितपूर्वम् । सदैव पालितमित्यर्थः ।]

---

1. अपि च, 2. निर्वर्ण्य, 3. अथ त्वया, 4. देव आघोषितो देवस्याज्ञया कुसुमपुरे कौमुदीमहोत्सवः 5. देव शा०, 6. आर्य वैहीनरे तत्क०; यद्येवं तत्किमर्थमप्र०, 7. पुरं पश्यामि ।

Also,

Like a female messenger adept in love-matters, the Autumnal Season, having with great difficulty brought Gaṅgā who was so much displeased (had become turbid in the rainy season) with her husband for his having (professed love to) many wives, to the proper path as she grew leaner and leaner (shrank within its bed), leads her in a completely pleased (serene) mood to the Lord of rivers (the sea). (9)

(*Taking a view of the region around*) Ah, how is it that the Kaumudī festival has not yet been commenced in Kusumapura? Venerable Vaihīnari, was not the Kaumudī festival proclaimed in Kusumapura at our command?

CHAMB.—Ay, my lord.

KING—Why then have not the citizens obeyed our command?

CHAMB.—(*Stopping his ears*) God forbid, God forbid, Your Majesty's order has never been disobeyed in the world. How can it be disobeyed by the citizens?

KING—How is it then that the festivities have not been commenced in Kusumapura?

और भी—

प्रेम की कथायें सुनाने में एक चतुर दूती की तरह शरद् गंगा को आज, प्रसन्न मुद्रा में, उनके पति (समुद्र) के पास लिये जा रही है। उसी गंगा को जिसके मन में एक खिन्नता-सी ही घर कर गई थी कि मेरा प्रेमी हर किसी कुमारी (नदी) से प्रेम करने लग गया है। आज उसी गंगा के मन से वह कलुष धुल चुका है, वह फिर से तन्वी है। और (फिर से) 'प्रेम के पथ' पर उतर आई है—किस दुर्भरता के साथ, और शरद् उसे···(९)

(चारों तरफ जैसे देखते हुए, देख चुकने पर) अरे बात क्या है—कुसुमपुर में कोई कौमुदी-महोत्सव नहीं मना रहा ? वैहीनरि चाचा, हमारे आदेश से कौमुदी-महोत्सव मनाने की घोषणा तो कर दी थी ना ?

कंचुकी—क्यों नहीं, महाराज ?

राजा—तो क्या नागरिकों ने हमारे आदेश के पालन से इन्कार कर दिया ?

कंचुकी—परमेश्वर क्षमा करें, परमेश्वर क्षमा करें। आज तक महाराज के शासन की अवज्ञा नहीं हुई, आज—आपके नागरिक—क्यों करने लगे ?

धूर्तैरवायमाना:[1] स्फुटचतुरकथाकोविदैर्वेशनार्यो
नालंकुर्वन्ति रथ्याः पृथुजघनभराक्रान्तिमन्दैः प्रयातैः ।
अन्योऽन्यं स्पर्द्धमाना न च गृहविभवैः स्वामिनो मुक्तशंकाः
साकं[2] स्त्रीभिर्भजन्ते विधिमभिलषितं पार्वणं[3] पौरमुख्याः ॥ १० ॥

कञ्चु०—एवमेवैतत्[4] ।

राजा—किमेतत् ?

कञ्चु०—देव इदम् ।

राजा०—स्फुटं[5] कथय ।

कञ्चु०—प्रतिषिद्धः कौमुदीमहोत्सवः ।

राजा०—(सक्रोधम्[6]) आः केन ?

कञ्चु०—देव, नातः परं[7] विज्ञापयितुं शक्यम् ।

राजा०—न खलु आर्यचाणक्येनापहृतः प्रेक्षकाणामतिशयरमणीयश्चक्षुषोः विषयः ।

कञ्चु०—देव कोऽन्यो जीवितुकामो देवस्य शासनमतिवर्तेत[8] ।

धूर्तैरिति । [वेशनार्यो वारस्त्रियः स्फुटाश्च चतुराश्च कथास्तासु कोविदैः पण्डितैः धूर्तैर्विटैरन्वीयमानाः अनुगम्यमानाः पृथुजघनभराक्रान्तिमन्दैः गुरुजघनभराक्रान्त्या अलसैः प्रयातैर्गमनैः रथ्या नालकुर्वन्ति ।] स्वामिनो गृहस्वामिनो [गृहविभवैः अन्योऽन्यं स्पर्धमानाः] वसनभूषणादिसमृद्धिं स्पर्धयान्योऽन्यमाधिक्येन दर्शयन्तः [इति यावत्] । पौरमुख्याः स्वस्त्रीभिः सार्धं राजानुमतत्वान्मुक्तशङ्का अत एव बहिः क्रीडनं विगीतमपि पावनं राजानुमत्या प्रशस्तमित्यर्थः । अभिलषितं चिरादीप्सितं क्रीडाविधिं कुतो न भजन्त इति कञ्चुकिनं प्रति प्रश्नः पार्वणमिति क्वचित्पाठः । पर्वणि कार्तिक्यां पौर्णमास्यां भवं क्रीडाविधिमित्यर्थः ॥ १० ॥

---

1 द्वः, 2. सायं, सार्धम्, 3. पावनम् 4. देव एव०, 5. आर्य स्फुटमभिधीयताम्, 6. सदोषम्, 7. परमस्माभिर्देवो विज्ञापयितुं शक्यते, 8. उल्लङ्घयिष्यति ।

Courtesans accompanied by gay beaux skilled in free and clever talk do not grace the streets with their gaits slow on account of the weight of their plump hips; nor do the leading (or, rich) citizens vying with one another in the display of the wealth of their houses and being free from misgivings partake, along with their consorts, in the desired festivity falling on the full-moon day. (10)

CHAMB.—It is just this—

KING—What is that ?

CHAMB.—My lord, this—

KING—Speak clearly.

CHAMB.—The Kaumudī festival has been prohibited.

KING—(*Angrily*) Ha, by whom ?

CHAMB.—My lord, beyond this it is not possible for me to tell.

KING—Can not the noble Chāṇakya indeed, have deprived the spectators of an exceedingly lovely sight.

CHAMB.—Sire, who else that loves life can transgress the command of Your Majesty.

राजा—तो फिर बात यह है कि अभी तक इस कुसुमपुर में मुझे कौमुदी-महोत्सव मनाने के कुछ भी तो आसार नज़र नहीं आते ? न तो वारनारियाँ ही कहीं अपने प्रेमियों के साथ अद्भुत कथाएँ कहती हुई आज गलियों में चलती नज़र आ रही हैं—उनके भारी अधोभागों की वह मन्दगति कहीं नज़र नहीं आती। और न ही शहर के धनी-मानी गृह-पति लोग— जिन्हें कोई फिकर-फाका नहीं है। (ना ही वे) परस्पर-स्पर्धा में उत्सव के उपयुक्त किसी भी मौज-बहार को अपनी पत्नियों के साथ मना रहे हैं। ऐसा क्यों ? (१०)

कंचुकी—महाराज, बात ही कुछ ऐसी है—

राजा—कैसी ?

कंचुकी—महाराज ऐसी कि—

राजा—साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते ?

कंचुकी—कौमुदी-महोत्सव को रोक दिया गया है।

राजा—(गुस्से में) हैं ! किसने रोका ?

कंचुकी—महाराज इससे अधिक मेरी जबान खुल भी तो नहीं सकती।

राजा—कहीं गुरुवर चाणक्य ने ही तो दर्शकों को एक सुन्दर सुख से वंचित नहीं कर दिया ?

कंचुकी—महाराज, और कौन हो सकता है जिसे जान प्यारी हो और आपके आदेश का उल्लंघन करदे ?

राजा—शोणोत्तरे, उपवेष्टुमिच्छामि ।

पति०—देव इदं सिंहासनम् । उपविशतु देवः । (देव एदं सिंहासणं । उपविसदु देवो ।)

राजा—(नाटचेनोपविश्य[1]) आर्य वैहीनरे, आर्यचाणक्यं द्रष्टुमिच्छामि ।

कञ्चु०—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति आसनस्थः स्वभवनगतः कोपानुविद्धां चिन्तां नाटयंश्चाणक्यः)

चाण०[2]—कथं स्पर्द्धते मया सह दुरात्मा राक्षसः !

कृतागाः कौटिल्यो भुजग इव निर्याय[3] नगराद्
यथा नन्दान्हत्वा[1] नृपतिमकरोन्मौर्यवृषलम् ।
तथाहं मौर्येन्दोः श्रियमपहरामीति कृतधीः[5]
प्रकर्षं[6] मद्बुद्धेरतिशयितुमेष व्यवसितः ॥ ११ ॥

(आकाशे[7] लक्ष्यं बद्ध्वा) राक्षस राक्षस, विरम्यतामस्माद्दुर्व्यसनात्[8] ।

उत्सिक्तः कुसचिवदृष्टराज्यभारो[9]
नन्दोऽसौ न भवति चन्द्रगुप्त एषः ।

एवमेतदिति । चाणक्यकृतं प्रतिषेधं सहसा स्फुटं वक्तुमतिभीतस्येदमस्फुटं सचकितं प्रतिवचनम् । महात्मत्वात्संग्राह्यः । स्वशत्रुपक्षमाश्रित इति रोषावेशाद्दुरात्मेति गालनम् ।

कृतागा इति । नन्दैः कृतमागोऽग्रासनाकर्षणरूपं यस्य सः । अत्र दृष्टान्तानुरोधेन तथाहं मौर्यं हत्वा मलयकेतुं राज्ये स्थापयिष्यामीत्येतावति वक्तव्ये श्रियमपहरामीत्येतावन्मात्रं राक्षससाहसं अनुवदतश्चाणक्यस्यायं भावः । ममेव नास्य बुद्धिबलं परन्तु मत्सरमात्रेण 'अशक्तोऽहं गृहारम्भे शक्तोऽहं गृहभञ्जने' इति न्यायेन कृतधीः मौर्यापकारमात्राय प्रयतमानः सन्केवलं पौरुषबलमवष्टभ्य मद्बुद्धेः प्रकर्षमतिशयितुं व्यवसित इति अहो राक्षसस्य दुर्व्यवसितमिति । वक्ष्यति च केवलं प्रधानवैरं मदनुकृतेः साधर्म्यमिति ॥११॥

[दुर्व्यसनाद् दुःसाध्यऽर्थेभिनिवेशात् ।]

---

1. अस्मात्प्राक्—सक्रोधमित्यधिकम्, 2. आत्मगतम्, इत्यधिकम्, 3. निर्गत्य, 4. नन्दं, 5. हत०, 6. प्रभावं; प्रसादम्, 7. प्रत्यक्षवदा०, 8. व्यवसितात्, 9. तन्त्रः।

KING—Śoṇottarā, I wish to sit down.

FEM. DOOR-KEEPER—Sire, here is the seat of state.

KING—(*Sitting down*) Venerable Vaihīnari, I wish to see the noble Chāṇakya.

CHAMB.—As my lord commands. [*Exit.*

(*Then enter* CHA`ṆAKYA *seated in his house in an angry and contemplative mood*)

CHA`N.—How now ! The wicked-souled Rākshasa keeps up rivalry with me !

"As Kauṭilya, on leaving the town after being insulted, like an (injured) snake, destroyed the Nandas and raised Vṛshala, son of Murā (or Maurya) to the throne, so shall I wrench the sovereignty from the moon-like Maurya—" Thus resolved he is attempting to surpass the excellence of my own genius ! (11)

(*Fixing his glance on vacancy*) Rākshasa, Rākshasa, desist from this vain pursuit.

It is not Nanda who was conceited and whose affairs of state were managed by bad ministers; it is Chandragupta

राजा—शोणोत्तर, कुछ बैठना चाहूँगा ।

प्रतिहारी—यह रहा सिंहासन, बैठिये महाराज ।

राजा—(जैसे बैठ ही रहा हो) वैहीनरि चाचा, आचार्य चाणक्य के दर्शन करना चाहूँगा ।

कंचुकी—जो आज्ञा महाराज ! (चला जाता है)

(अपने ही घर में कोप-स्पृष्ट चिन्ता-मुद्रा में
कुर्सी पर बैठे हुए चाणक्य)

चाणक्य—मेरे साथ वह लानती (राक्षस) मुकाबला कर कैसे रहा है ?—

कौटिल्य का जब अपमान हुआ था, उसने एक कुचले गये सांप की भांति नगर से निकलकर नन्द का उन्मूलन कर दिया था और चन्द्रगुप्त को उसकी जगह प्रतिष्ठित कर दिखाया था । उसी तरह आज इस (राक्षस) के मन में यह समाया है कि (मैं) मौर्य की लक्ष्मी का अपहरण करलूँ । यह तो मुझे बुद्धि के प्रदर्शन में ही मात देने को उतर आया । (११)

(आकाश में कहीं नज़र टिकाते हुए) राक्षस, राक्षस, बाज़ आजा, इस बेहूदगी से बाज़ आजा ।

चाणक्यस्त्वमपि[1] च नैव केवलं ते
साधर्म्यं मदनुकृतेः[2] प्रधानवैरम् ॥ १२ ॥

(विचिन्त्य) अथवा नातिमात्रमत्र वस्तुनि मया मनः खेदयितव्यम् । कुतः ?—

मद्भृत्यैः किल सोऽपि[3] पर्वतसुतो व्याप्तः प्रविष्टान्तरैर्[4]
उद्युक्ताः स्वनियोगसाधनविधौ सिद्धार्थकाद्याः स्पशाः ।
कृत्वा संप्रति कैतवेन कलहं मौर्येन्दुना राक्षसं
भेत्स्यामि स्वमतेन भेदकुशलं[6] ह्येष प्रतीप द्विषः ॥ १३ ॥

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—कष्टं[7] खलु सेवा—

भेतव्यं नृपतेस्ततः सचिवतो राज्ञस्ततो वल्लभाद्
अन्येभ्यश्च वसन्ति येऽस्य भवने लब्धप्रसादा विटाः ।

उत्सिक्त इति [उत्सिक्त उद्रिक्त इत्यर्थः । कुत्सिताः सचिवाः कुसचिवास्तैर्दृष्टः राज्यभारो यस्य तादृशः इति] प्रधानवैरं परिवृढद्वेषः केवलं ते तव मदनुकृतेः मदनुकरणस्य सम्बन्धि मत्स्पर्धाविषयकमिति यावत् । साधर्म्यं समानो धर्मः । स्वार्थे ष्यञ् बहुव्रीहेर्भावे वा । न तु बुद्धिप्रकर्षादिः सत्सादृश्ये तव समानो धर्मोऽस्ति । अनेन यथा नन्दा उन्मूलितास्तथाहमपि मौर्यमुन्मूलयामीति प्रधानवैरमात्रेण मया सह स्पर्धते न तु बुद्धिप्रकर्षेणेति भावः । मदनुकृताविति विषयसप्तम्यन्तः पाठः साधुः ॥ १२ ॥

मद्भृत्यैरिति । [प्रविष्टमन्तरं यैः तैः स्वनियोगस्य साधनविधौ] प्रविष्टान्तरैर्वशीकृतशत्रुहृदयैः [मद्भृत्यैः] भागुरायणादिभिः [स पर्वतसुतोऽपि व्याप्तः परिवृतः किल] स्पशा गूढप्रणिधयः । 'अपसर्पश्चरः स्पशः' इत्यमरः । सिद्धार्थकादयः भेदकर्मणि उद्युक्ता एव वर्तन्ते । अहमपि सम्प्रति मौर्येन्दुना चन्द्रगुप्तेन सह कृतककलहं कृत्वा तेनोपायेन प्रतीपमस्मासु प्रतिकूलचारिणं राक्षसं द्विषः सपत्नान्मलयकेतोः सकाशात् भेत्स्यामि । तयोर्विरोधं सम्पादयिष्यामीत्यर्थः । यद्वा प्रतीपमिति विधेयं विशेषणं द्विष इति षष्ठी । राक्षसं द्विषः प्रतीपं सन्तं भेत्स्यामि प्रतिकूलत्वेनापाद्य विघटयिष्यामीत्यर्थः । एष राक्षसः स्वमतेन

---

1. मसि, 2. कृते, 3. नाम, 4. प्रतिष्ठा०, 5. च, 6. कुशलस्त्वेव; शलो, 7. कष्टा ।

(with whom you have to deal). Nor are you Chāṇakya; enmity to the principal person is the only point of resemblance in your imitation of myself. (12)

(*Musing*) Or rather, I need not much worry my mind in this matter. For,

That son of Parvataka, as I well know, has been circumvented by my servants who have gained his confidence; my spies, Siddhārthaka and others, are intent on executing the mission entrusted to them. Now by my cunning causing a (sham quarrel) with the moon-like Maurya, I shall, in no time separate Rākshasa, who is plotting against me and who, according to his own idea (estimation), is a master of the art of creating discord, from the enemy. (13)

CHAMB.—(*Entering*) Hard, indeed, is service !

In the first place a servant has to be afraid of the king, then of his minister, then of his favourite and also of other voluptuous persons who dwell in his palace having gained his favour.

आज नन्द का युग नहीं-–वह अभिमानी था : जिसके राज्य का प्रबन्ध निकम्मे–नालायक मंत्रियों के हाथों में था, चन्द्रगुप्त का युग है। और ना ही तू चाणक्य है, तेरी मेरी यदि कुछ समानता है भी तो, बस, इतनी ही कि तू भी (मेरी तरह) प्रधान 'प्रकृति' का ('शासक' राजा का) वैरी है। (१२)

(कुछ सोचकर) नहीं, इस ज़रा-से मामले में अपने को व्यर्थ में दुःखी भी क्यों करता रहूँ ?

मेरे अनुचर आज पर्वतक के पुत्र (मलयकेतु) के घर में प्रवेश पाकर उस पर पूरी तरह से छा चुके हैं। उधर, साथ ही सिद्धार्थक आदि गुप्तचर भी अपने-अपने काम में दिन-रात एक किये हैं। यही नहीं—चन्द्रगुप्त के साथ कृतककलह करके तो अब मैं राक्षस को चुटकी में ही—और उसी की (भेद-कुशलता की) चाल चलकर—शत्रु (मलयकेतु) से ही फोड़ लूँगा। (१३)

स्वसंमत्या भेदकुशलोऽस्तु चन्द्रगुप्ताच्चाणक्यं भेत्स्यामीति स्वस्मिन्कुशलंमन्योऽस्तु। न त्वस्य ममेव सामग्रीपौष्कल्यं बुद्धिबलं चास्तीति भावः। इयं नियताप्तिः। 'अपायाभावतः कार्यनिश्चयो नियताप्तिका'। इति लक्षणात् ॥ १३ ॥

दैन्यादुन्मुखदर्शनापलपनैः[1] पिण्डार्थमायस्यतः
सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः ॥ १४ ॥

(परिक्रम्यावलोक्य च) इदमार्यचाणक्यगृहम् । यावत्प्रविशामि । प्रविश्यावलोक्य[2] च) अहो राजाधिराजमन्त्रिणो विभूतिः । तथाहि—

उपलशकलमेतद्भेदकं गोमयानां
बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्[3] ।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिर्
विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ॥ १५ ॥

तत्स्थाने खल्वस्य वृषलो[4] देवश्चन्द्रगुप्तः कृतः ?—

स्तुवन्ति[5] श्रान्तास्याः क्षितिपतिमभूतैरपि गुणैः
प्रवाचः[6] कार्पण्याद्य[7]दवितथवाचोऽपि पुरुषाः[8] ।

कष्टमिति । सामान्ये नपुंसकम् । **भेतव्यमिति** । [लब्धः प्रसादः राज्ञ इत्यर्थः यैस्ते विटाः तेभ्यः] दैन्याद्धेतोः उन्मुखदर्शनानि च अपलपनानि च राजरहस्यगोपनानि च तैः पिण्डार्थमुदरभरणार्थमायस्यतः क्लिश्यमानस्य सेवकजनस्य सेवामित्यन्वयः । [कृतधियः शिक्षितमतयः पण्डिता इत्यर्थः श्ववृत्तिं कुक्कुरवदाचरणं विदुः जानन्ति तत्स्थाने युक्तम् ।] श्वविषये अपलपनं ताडनभयेन गात्रसङ्कोचनम् । सिषाधयिषितकार्यानुरोधादिदमाहितम् । चाणक्यमौर्ययोः कपटवैमत्यं तथ्यत्वेनैव गृह्णतः कञ्चुकिनोऽयं निर्वेदः ॥ १४ ॥

उपलशकलमेतदिति । [गोमयानां भेदकं] त्रेताग्निसंभरणसमिन्धनाद्यर्थं शुष्कगोमयगोलकचूर्णनार्थम् [एतद्] उपलशकलम् । उपलोऽपि सकलो न संगृहीत इति विभूतिनैरपेक्ष्यमस्योपलशकलजीर्णकुड्यादिभिरुक्तम् । [एतद् बटुभिः उपहृतानामानीतानां] बर्हिषां दर्भाणां स्तूपं निधननामकमुष्टिसमूहः । [जीर्णाः कुड्या भित्तयः यस्य तज्जीर्णकुड्यं] शरणं गृहं समिद्भारेण विनमितपटलान्तमतिजीर्णत्वाद्विभुग्नतृणमयकदिप्रान्तं । 'वलीकनीध्रे पटलप्रान्तेऽथ पटलं छदिः ।' इत्यमरः । [दृश्यते] । अनेनास्याप्रतिग्रहत्वकर्मठत्वादयः श्रोत्रियगुणा उक्ताः । तथोक्तं पुरस्तात् । वंशे विशालवंशानामृषीणामिव भूयसाम् । अप्रतिग्राहकाणां यो बभूव भुवि विश्रुतः ॥ इति ॥ १५ ॥

---

1. ०नेन नटनैः, नापनयनैः, दर्शनोपनयनैः 2. नाट्येन प्रवि०, 3. स्तोम एषः, 4. वृषलोद्यश्चन्द्र० इति, 5. स्तुवन्तः; वन्त्यश्रा०, 6. प्रवादैः, 7. ण्यादति०, 8. कृतिनः ।

It is but right that the wise regard the service, which degrades a man, of one who from penury plods for bread by his entreating looks and the concealment of his feelings, as a dog's life. (14)

(*Walking on and looking forward*) This is the house of the venerable Chāṇakya; I will enter. (*Enters and takes a survey of the house*). Oh ! the affluence (or grandeur) of the minister of a universal sovereign ! Thus—

Here is a piece of stone for breaking cow-dung-cakes; here is a stack of the holy Kuśa-grass brought by his young disciples; and the house too, with its dilapidated walls, appears to have the skirt of its roof bent down by these (yonder) holy sticks exposed for drying. (15)

It is but right, therefore, that Chandragupta should be (simply) Vṛshala to him. For,

That persons who (else always) speak the truth, indulge in words through helplessness and praise a king for qualities which he does not even possess, till their tongues are

(एक ओर से)

कंचुकी--सेवा धर्म को निवाहना कितना मुश्किल है! पहले तो मालिक का डर, फिर उसके मंत्रियों का, फिर राजा के मुँहलगों का, और उन लोगों का भी डर जो राजा के यहाँ खासतौर पर, उसकी कृपा से अंतरंग बन चुके हैं, उन धूर्तों का डर। हर वक्त दीन बने मुँह ताकते रहो और गिड़गिड़ाते रहो, दो टुकड़ों के लिए सारा दिन व्यर्थ कर दो, कदम-कदम पर अपमान—और खुद अपनी ही आँखों में भी गिरते चलो। सचमुच नौकरी क्या है, कुत्ते की जिन्दगी है—सयाने ठीक ही कहते हैं। (१४)

(कुछ कदम चलकर, और सामने देखते हुए) यह है आचार्य चाणक्य का घर। तो चलूँ अन्दर। (प्रविष्ट होकर और फिर देखते हुए) राजाधिराज (चन्द्रगुप्त) के मंत्री की भी क्या शान है। देखो ना—

एक ओर पत्थर का एक टुकड़ा पड़ा है कि जिससे पाथियों को तोड़ा जा सके। एक ओर विद्यार्थियों द्वारा लाई हुई कुशाओं का अम्बार ही लग गया है। और स्वयं कुटी को ही देखो तो—जिस पर पड़ी समिधाएं सूख रही हैं, और उनके भार से छत के छोर कुछ झुक गये हैं; और दीवारें भी इसकी पुरानी पड़ चुकी हैं। (१५)

और यही चीज़ है कि केवल चाणक्य को ही महाराज चन्द्रगुप्त को 'वृषल' पुकारने का अधिकार है। बात यह है कि--

जिनके ज़ुबान है—ऐसे चारण तो राजा का गुणगान तब तक करते ही चलें जब तक कि उनकी जिह्वा थक नहीं जाती। भले ही ये लोग दुनिया में

प्रभावस्तृष्णायाः स खलु सकलः स्यादितरथा
निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः ॥ १६ ॥

(विलोक्य सभयम्[1]) अये तदयमार्यचाणक्यस्तिष्ठति ।

यो नन्दमौर्यनृपयोः परिभूय लोकम्
अस्तोदयौ[2] प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम् ।
पर्यायपातितहिमोष्ण[3]मसर्वगामि
धाम्नातिशाययति धाम सहस्रधाम्नः ॥ १७ ॥

(जानुभ्यां भूमौ निपत्य) जयत्वार्यः !

चाण[4]०—वैहीनरे, किमागमनप्रयोजनम् ?

कञ्चु०—आर्य, प्रणति[5]ससंभ्रमोच्चलितभूमिपालमौलिमालामाणिक्य[6]शकलशिखापिशङ्गीकृतपादपद्मयुगलः सुगृहीतनामधेयो देवश्चन्द्रगुप्त आर्यं[7] शिरसा प्रणम्य विज्ञापयति—अकृतक्रियान्तराय[8]मार्यं द्रष्टुमिच्छामीति ।

[तत्तस्मात्स्थाने युक्तं खलु देवः चन्द्रगुप्तः अस्य] वृषलोऽद्यः वृषलशब्देन वदितुमर्हः । सुपि क्यप् चेति क्यप् प्रत्ययः । निस्पृहत्वाद्राजानमपि तृणीकृत्य भृत्यवद्व्यपदिशतीत्यर्थः ।

तदेव विवृणोति । स्तुवन्तीति । अवितथवाचः सत्यवचनशीला अपि पुरुषाः कार्पण्यात्प्रवाचः उद्दण्डवचनाः सन्तः [श्रान्तास्याः आस्यश्रान्ति यावदित्यर्थः । क्षितिपतिं] अभूतैरसत्यैर्गुणैः स्तुवन्तीति यत्स खलु तृष्णायाः प्रभाव इति योजना । [किन्तु निर्गता ईहा तृष्णा येषां ते निरीहास्तेषामीशः प्रभुः तृणमिव तिरस्कारविषयः भवति] ॥ १६ ॥ अये तदयमिति । कर्मधारयसमासः ।

यो नन्देति । लोकं नन्दामात्यादिकं परिभूय स्वमन्त्रशक्त्या मोहयित्वा नन्दमौर्ययोरभिन्नकालं युगपदस्तोदयौ दत्तवान् । अत एव सर्वशत्रुव्यापिना स्वेन धाम्ना असर्वगामि पर्यायेण कालक्रमेण पातितं [निर्मितं] नाशितं हिममुष्णं वा येन तत्सहस्रधाम्नः सूर्यस्य धाम तेजः अतिशाययति अतिक्रामयति । धामातिशेते तेन धाम्ना स्वयं अतिशाययति । सोऽयमार्यश्चाणक्यस्तिष्ठतीति पूर्वेणान्वयः । अतिपूर्वकाच्छीङो हेतुमण्णिच् । अत्र लोकशब्देन लोकालोकपर्वतो

---

1. स्वगतम्, 2. दयावुप०; दयावदिशदप्रति०, 3. ष्णिम, 4. नाट्येनावलोक्य वैही०, 5. प्रणतसमं०, 6. मणिसकलशिखा०, 7. पादपद्मयोरार्यं प्रणिपत्य । 8. क्रियान्तरमन्त०; क्रियान्तरायमन्तरेण ।

wearied—all that, indeed, is the might (result) of desire. Otherwise to those who are free from desire, a king is an object of disregard (little importance) like grass. (16)

(*Looking forward, with awe*) Ah, here is his Honour Chāṇakya,

Who surpassing the world and bringing about, at one and the same time, the rise and fall of the kings, Maurya and Nanda, makes his splendour surpass the splendour of the thousand-rayed Sun which causes heat and cold in alternate succession and which does not pervade all space! (17)

(*Falling on his knees*) Victory to Your Honour!

CHA'N.—Vaihīnari, what brings you here?

CHAMB.—Sir, His Majesty Chandragupta, of blessed name, the couple of whose lotus-like feet is purpled by the rays of the pieces of rubies on the series of the diadems of kings, shaken in the act of their hurried salutation, respectfully bows to Your Honour and says—"I wish to see Your Honour without causing any interruption in your (other) duties (*i. e.* at your leisure)."

कितने ही सच्चे क्यों न प्रसिद्ध हों, और––ऐसे गुण बखानेंगे जो राजा में शायद कहीं हों भी नहीं। (यह गुणगान) सब––तृष्णा की महिमा है। और इसके विपरीत––जो पुरुष सचमुच निरीह हैं (चाणक्य सरीखे) उनके लिये राजसत्ता (या राजा) एक तिनके से भी तुच्छ वस्तु है। (१६)

(देखकर, डरते हुए) अरे, यह रहे आचार्य चाणक्य, साक्षात् मेरे सम्मुख आसीन––

जिसने सम्पूर्ण प्रजाजन पर भी अपना रोब जमा लिया और एक ही दाव में नन्दों का अस्त और मौर्य का उदय सिद्ध कर दिखाया है। सूर्य जिस प्रकार एक ही समय में कहीं सूर्योदय ला रहा होता है, कहीं सूर्यास्त––किन्तु इतना सर्वव्यापी वह भी नहीं होता। तेजस्विता में, इस प्रकार, (मुझे तो चाणक्य) सहस्ररश्मि सूर्य से भी कहीं बढ़-चढ़कर दीखता है। (१७)

(घुटनों के बल पृथ्वी पर गिरते हुए) जय हो आचार्य की !

चाणक्य––क्यों, वैहीनरि, कैसे आना हुआ ?

कंचुकी—आचार्य, जिन्हें प्रणाम करते हुए उतावलेपन में राज-वर्ग की मणि-मालाओं में से, मानो, रत्न-शकल-सी लाल-पीली किरणें फूट निकलती हैं, और, जिनके चरण-युगल को उद्भासित कर जाती हैं––उन्हीं महाराज चन्द्रगुप्त का आवेदन लेकर उपस्थित हुआ हूँ कि, "महाराज का प्रणाम स्वीकार हो और, यदि आपके कार्यक्रम में विघ्न नहीं पड़ता हो तो, महाराज आपके दर्शन के लिये आयें ?"

चाण०—वृषलो मां द्रष्टुमिच्छति । वैहीनरे, न खलु वृषलस्य श्रवणपथं[1] गतोऽयं मत्कृतः कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधः ।

कञ्चु०—आर्य, अथ किम् ।

चाण०—(सक्रोधम्) आः केन कथितम् ?

कञ्चु०—(सभयम्[2]) प्रसीदत्वार्यः । स्वयमेव सुगाङ्गप्रासादगतेन देवेनावलोकितमप्रवृत्तकौमुदीमहोत्सवं पुरम् ।

चाण०—आः ज्ञातम् । ततो भवद्भिरन्तरा[3] प्रोत्साह्य कोपितो वृषलः । किमन्यत् ।

(कञ्चुकी भयं नाटयंस्तूष्णीमधोमुखस्तिष्ठति)

चाण०—अहो राजपरिजनस्य चाणक्यस्योपरि प्रद्वेषपक्षपातः । अथ क्व वृषलः ?

कञ्चु०—(भयं नाटयन्) आर्य, सुगाङ्ग[4]गतेन देवेनाहमार्यपादमूलं प्रेषितः ।

चाण०—(उत्थाय) सुगाङ्गमार्गमादेशय[5] ।

कञ्चु०—इत इत आर्यः । (उभौ परिक्रामतः)

कञ्चु०—एष सुगाङ्गप्रासादः । शनैरारोहत्वार्यः[6] ।

चाण०—(नाट्येनावरुह्यावलोक्य च[7]) अये सिंहासनमध्यास्ते वृषलः । साधु साधु ।

लक्ष्यते । असर्वगामीत्यनेन सूर्यतेजसस्तदनतिक्रमणमुक्तम् । एवं च लोकं परिभूयातिक्रम्य नन्दमौर्ययोर्युगपदस्तोदयौ दिशच्चाणक्यतेजः लोकमनतिक्रामतोत एवासर्वगामिनः क्रमेण हिमोष्णयोरुदयास्तमयौ दिशतः सूर्यतेजसोप्यतिशयितमिति व्यतिरेकालङ्कारः लोकमिति श्लेषानुप्राणितः ।। १७ ।।

[प्रणतीति । प्रणतौ प्रणामक्रियायां यः संभ्रमस्त्वरा तेनोच्चलिता ये भूमिपालास्तेषां मौलिमालासु यानि माणिक्यशकलानि तेषां शिखाभिर्दीप्तिभिः पिशङ्गीकृतं पादपद्मयोर्युगलं यस्य । अकृतः क्रियायामन्तरायो विघ्नः यस्य तम् । पाठान्तरे अन्तरा मध्ये ।]

---

1. थमुप–मा–गतः, श्रवणमुप०, 2. भयं नाटयन्, नाटयित्वा, 3. मदन्तरेणप्रो०, रोषितः, 4. सुगाङ्ग-प्रासाद, 5. कञ्चुकिन्-सु०प्रासाद०, 6. शनैः शनैः आरोढुमर्हत्यार्यः, 7. च सहर्षमात्मगतम् ।

CHA'N.—Vṛshala wants to see me? Vaihīnari, has not, indeed, the prohibition of the Kaumudī festival by me reached the ears of Vṛshala?

CHAMB.—It has, sir.

CHA'N.—(*Wrathfully*) Ah, who told him that?

CHAMB.—(*In alarm*) Please, Your Honour, His Majesty himself, when he went to the Sugāṅga palace, saw that the festival was not commenced in the town.

CHA'N.—Ah, I understand it. So you secretly exasperated Vṛshala and provoked his anger. What else?

CHAMB.—(*Shows fear and hangs down his head in silence*)

CHA'N.—Oh the feeling of hatred entertained by the servants of the king towards Chāṇakya! Where is Vṛshala now?

CHAMB.—(*Showing fear*) Sir, His Majesty who is in the Sugāṅga palace sent me to Your Honour's feet.

CHA'N.—(*Rising*) Lead the way to Sugāṅga.

CHAMB.—This way, Your Honour. (BOTH *walk on*)

CHAMB.—This is the palace, Sugāṅga. Your Honour may gently ascend.

CHA'N.—(*Gesticulating ascent and looking forward*) Ah, Vṛshala is seated on the throne. Very good, very good.

चाणक्य—चन्द्रगुप्त मेरे दर्शन करना चाहता है। वैहीनरि, कहीं उसके कान में तो यह खबर नहीं पड़ गई कि कौमुदी-महोत्सव पर यह रोक चाणक्य ने लगाई ?

कंचुकी—आचार्य, बात आखिर छिपी कैसे रहती ?

चाणक्य—(रोष में) हैं, किसने बताया ?

कंचुकी—(डरते हुए) आचार्य कुछ शान्त हों। स्वयं महाराज ने सुगांग की छत से जाकर देखा कि शहर में कौमुदी-महोत्सव कहीं भी नहीं हो रहा।

चाणक्य--जानता हूँ। तुम्हीं लोगों ने दोगली चलकर चन्द्रगुप्त के कान भरे हैं। और क्या हो सकता है ?

(कंचुकी जैसे भय के मारे, मुँह लटकाकर खड़ा हो जाता है)

चाणक्य—देखो तो–राजा के निजी अनुचरों को चाणक्य से कितनी नफ़रत है। खैर, इस वक्त वह है कहां—वह वृषल ?

कंचुकी--(जैसे डर रहा हो) आचार्य, मुझे तो महाराज ने सुगांग-प्रासाद से यहाँ भेजा था।

चाणक्य--(उठकर) हां, तो चलो, मुझे भी सुगांग ले चलो।

कंचुकी—इधर से, गुरुजी, इधर से। (दोनों जैसे कुछ रास्ता तय कर रहें हों) यह रहा सुगांग-प्रासाद। आइए, और संभलकर चढ़ते आइये।

चाणक्य—(जैसे चढ़ते हुए, और देखकर) अरे, वृषल सिंहासन पर बैठा है। शाबाश, शाबाश !

नन्दैर्वियुक्तमनपेक्षितराजराजैर्[1]
अध्यासितं च वृषलेन वृषेण राज्ञाम् ।
सिंहासनं सदृशपार्थिवसङ्गतं च
प्रीतिं परां[2] प्रगुणयन्ति गुणा ममैते ॥१८॥

(उपसृत्य) विजयतां वृषलः ।

राजा०—(आसनादुत्थाय[3]) आर्य, चन्द्रगुप्तः प्रणमति। (इति पादयोः पतति)

चाण०—(पाणौ गृहीत्वा) उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स !

आ शैलेन्द्राच्छिलान्तस्खलितसुरनदीशीकरासारशीतात्[4]
तीरान्तान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य ।
आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतैः[5] शश्वदेव क्रियन्तां
चूडारत्नांशुगर्भास्तव चरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः ॥१९॥

राजा०—आर्यप्रसादा[6]दनुभूयत[7] एव सर्वम् । तदुपविशत्वार्यः । (उभौ-यथोचितमुपविष्टौ)

नन्दैर्वियुक्तमिति । अनपेक्षितराजराजैस्तृणीकृतकुबेरैः । [यद्वा तिरस्कृत-प्रधाननृपैः वियुक्तं सिंहासनं] राज्ञां वृषेण श्रेष्ठेन [वृषलेनाध्यासितम्] कुबेरवदतिधनाढ्यानपि नन्दान्हत्वा तत्पदे यः कश्चिदयोग्यो न स्थापितः किन्तु नन्देभ्योऽप्यतिशयितो धीरोदात्तत्वादिमहाराजगुणोत्तरश्चन्द्रगुप्तोभिषेचितः । अतः सिंहासनं योग्यपार्थिवसङ्गतं जातमिति शेषः । इति स्वस्योचितकारित्वादिगुणैः स्वयमन्तस्तुष्यंति । प्रीतिं परां प्रगुणयन्ति गुणा ममैत इति । एतेन नन्दोद्धारणादिसाधका मम गुणा मम प्रीतिं प्रगुणयन्ति वर्धयन्ति ॥१८॥ **आ शैलेन्द्रादिति** । [शिलान्तः प्रस्तरान्तरेषु स्खलिता या सुरनदी गङ्गा तस्याः सीकरासारेणाम्बुकणवर्षेण शीतात् शैलेन्द्राद्धिमालयाद् । नैके अनेके रागा यत्र तद्यथा तथा नैकरागम् । ते नैकरागा इति वा । स्फुरिता मणिरुचो रत्नतेजांसि यस्मिन् तस्माद्दक्षिणस्यार्णवस्य तीराच्चागत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतैस्तव चरणयुगलस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः चूडारत्नानामंशवो गर्भे येषां तथा शश्वत् क्रियन्ताम् ।] शिलान्तस्खलितेत्यादिविशेषणात् शैलेन्द्रो हिमवान्गम्यते । आ हिमाचलादासेतोश्च समागत्य सर्वे नृपतयः त्वां प्रणमन्त्वित्याशीः ॥१९॥

---

1. वृत्तैः, 2. भृशम्, 3. सिंहासनात्; उत्थाय चाणक्यस्य पादौ गृहीत्वा, 4. धुनी, 5. भीतप्र०, 6. युष्मत्प्र०, 7. सर्वमेतन्नाशास्यते, नाशास्यं मे ।

The throne wrested from the Nandas, who treated with scorn even Kubera (who were exceedingly wealthy), has been occupied by Vṛshala, the foremost among sovereigns; and it has thus been united with a worthy king. These good occurrences (brought about by me) produce supreme satisfaction in me. (18)

(*Approaching* VṚSHALA) Prosperity to you, Vṛshala!

KING—(*Rising from his seat*) Venerable sir, Chandragupta bows to you. (*Falls at his feet*)

CHA'N.—(*Taking him by the hand*). Rise child.

May kings coming again and again from the lord of mountains cooled by the showers of spray of the celestial river (Ganges) playing about among its rocks, as well as from the farthest extremity of the shores of the southern ocean brilliant with gems flashing with diverse colours, bow to your feet in awe and ever make the interstices of the toes of your feet filled with the rays of their crest-jewels! (19)

KING—All this I find realized through the favour of Your Honour. Your Honour may sit down. (*Both sit down according to rank*)

यह वही सिंहासन है जहाँ कभी नन्द महाराज विराजते थे--नन्द के वंशज जो गर्व में कुबेर को भी कुछ न समझें। और आज राजपुंगव चन्द्रगुप्त उसी की शोभा बढ़ा रहा है। आज ही, सचमुच, इस सिंहासन को इसके योग्य एक राजा मिला है। जब ऐसी मंगल परम्पराएं मैं देखता हूँ, मेरा हृदय सचमुच एक अद्भुत प्रसन्नता से भर आता है। (१८)

(समीप आते हुए) जीते रहो, बेटा !

राजा--(सिंहासन से उठकर) गुरुजी, चन्द्रगुप्त का प्रणाम स्वीकार हो ! (और चरणों में गिर पड़ता है)

चाणक्य—(हाथ पकड़कर उठाते हुए) उठो, बेटा, उठो !

हिमालय के शिखर से—जिसकी शिलाओं में नीचे की ओर उतर रही गंगा की फुहारों से शीतलता भरी हुई है, और विभिन्न वर्णों से रंजित रत्नादि की किरणों से देदीप्यमान दक्षिण समुद्र के तटों से—आ-आकर राजा लोग भय से अपने सिर झुकाते हुए सदा तेरी चरणांगुलियों के रिक्त-स्थानों को अपने मुकुटों की रत्निमाओं से भरते रहें ॥१९॥

चन्द्रगुप्त—यह सब तो, मैं देख रहा हूँ—आपके आशीर्वाद से सम्पन्न ही हो चुका है। आइये, अब जरा बैठें। (दोनों अपने-अपने आसन पर बैठ जाते हैं)

चाण०—वृषल, किमर्थं वयमाहूताः ।

राजा०—आर्यस्य दर्शनेनात्मानमनुग्राहयितुम् ।

चाण०—(सस्मितम्[1]) अलमनेन प्रश्रयेण । न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभुभिराहूयन्ते[2] ।

राजा—आर्य, कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य किं फलमार्यः पश्यति ?

चाण०—(स्मितं कृत्वा) उपालब्धुं[3] तर्हि वयमाहूताः ?

राजा—शान्तं[4] पापं, शान्तं पापम् । न हि न हि, विज्ञापयितुम् ।

चाण०—यद्येवं तर्हि विज्ञापनीयानामवश्यं शिष्येण स्वैररुचयो[5] न निरोद्धव्याः ।

राजा—एवमेतत्कः[6] सन्देहः । किं तु न कदाचिदार्यस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्तिरित्यस्ति[7] नः प्रश्नावकाशः ।

चाण०—वृषल, सम्यग्गृहीतवानसि[8] न प्रयोजनमन्तरा[9] चाणक्यः स्वप्नेऽपि चेष्टत इति ।

श्रु॰ [illegible]

राजा—आर्य, अत एव शुश्रूषा[10] मां मुखरयति ।

स्मितमिति । इत्यादिदोषप्रख्यापनमपवादः । चाणक्येन स्वोपालम्भस्य दोषस्य प्रख्यापनात् । **स्वैररुचय इति** । स्वैररुचयः [यथेच्छं प्रवृत्तयः न निरोद्धव्या न व्याहन्तव्याः । पाठान्तरे अनुरोद्धव्या अनुवर्तितव्याः ।] स्वतन्त्रा गुरवो न निर्बन्धनीया भृत्यवन्नानुयोज्या इति । [सिद्धि राजकार्यसाधनम् । सचिवायत्ता सिद्धिर्यस्य स

---

1. स्मितं कृत्वा, 2. तत्प्रयोजनमभिधीयताम् इत्यधिकम्, 3. वृषल उ०, 4. आर्य नोपा० । चाण०–किं तर्हि । राजा–विज्ञा, 5. रुचयः स्वतन्त्राः, रुचयोनुरोद्धव्याः, 6. आर्य कः०, 7. रुचिः प्रवर्तिष्यत इति, 8. मदाशयमित्यधिकम्, 9. अनवेक्षमाणः, 10. प्रयोजनशु० ।

CHA'N.—Vṛshala, why did you summon me?

KING—To bless myself with Your Honour's sight.

CHA'N.—(*With a smile*) No more compliments, please. Kings do not send for their officers without purpose.

KING—Sir, what good has your honour in view in forbidding the Kaumudī festival?

CHA'N.—(*With a smile*) You have then summoned me for administering a rebuke.

KING—God forbid, God forbid! No, not at all; only to make a respectful representation.

CHA'N.—If so, then the uncontrolled tastes of those who are to be respectfully treated ought by no means to be checked by a pupil.

KING—It is so, no doubt. But Your Honour never does a thing without having some object in view. So there is scope for our question.

CHA'N.—Vṛshala, you have understood it rightly; without an aim *Chāṇakya* does not do a thing even in a dream.

KING—Venerable one, for this very reason, the desire to hear (your motive in prohibiting the festival) makes me speak (*i. e.* put you the question).

चाणक्य—चन्द्रगुप्त, हमें बुलवाया किसलिये था ?

चन्द्रगुप्त—आचार्य के दर्शनों से अपने को कृतार्थ करने के लिए ।

चाणक्य—(मुस्कराते हुए) रहने दो, इन लोकाचार की बातों को। राजालोग अपने अफसरों को बेमतलब नहीं बुलाया करते ।

राजा—आचार्य, कौमुदी-महोत्सव पर रोक लगाने में आपका क्या अभिप्राय था ?

चाणक्य—तो यही उलाहना देने के लिए बुलाया था हमें ?

राजा—भगवान् भला करे, ऐसा भी कभी हो सकता है ? कुछ विनम्रता के साथ एक आवेदन भी करना था, इसलिए ।

चाणक्य—बात अगर इतनी ही है, तब तो—शिष्यों का यह अधिकार कभी नहीं होता (शिष्टाचार कभी नहीं होता) कि वे अपने पूज्यों की स्वच्छन्दता पर तनिक भी रोक लगायें ।

राजा—बात बिलकुल सत्य है, गुरुदेव ! इसमें सन्देह भी किसी को क्या हो सकता है ? किन्तु आचार्य का कोई भी काम बिना प्रयोजन हो ही नहीं सकता । इसलिए प्रश्न का अवकाश था ।

चाणक्य—तुमने ठीक ही पकड़ा है, प्रयोजन के बगैर तो चाणक्य सपने में भी कोई चेष्टा नहीं करता ।

राजा—यही बात थी । और मुझे आपसे उसका कारण सुनने की उत्सुकता निरन्तर बढ़ती ही जा रही है ।

चाण०—वृषल, श्रूयताम् । इह खल्वर्थशास्त्रकारास्त्रिविधां सिद्धिमुपवर्णयन्ति राजायत्तां[1] सचिवायत्तामुभयायत्तां चेति । ततः सचिवायत्तसिद्धेस्तव किं प्रयोजनान्वेषणेन । यतो वयमेवात्र नियुक्ता[2] वर्त्स्यामः[3] ।

राजा—(सकोपं[4] मुखं परावर्तयति)

(नेपथ्ये वैतालिकौ पठतः—)

एकः[5]—

आकाशं काश[6]पुष्पच्छविमभिभवता भस्मना शुक्लयन्ती
  शीतांशोरंशुजालैर्जलधरमलिनां क्लिश्नती[7] कृत्तिमैभीम् ।
कापालीमुद्वहन्ती स्रजमिव धवलां कौमुदीमित्यपूर्वा
  हास्य[8]श्रीराजहंसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्वः ॥ २० ॥

skin

Shiva

अपि च—

प्रत्यग्रोन्मेषजिह्मा[9] क्षणमनभिमुखी रत्नदीपप्रभाणाम्
  आत्मव्यापारगुर्वी जनितजललवा जृम्भितैः साङ्गभङ्गैः[10] ।

तथा तस्य तव ।] वर्त्स्याम इति । वृतुधातोर्भविष्यति लृटि उत्तमपुरुषबहुवचनम् । 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' इतीण्निषेधः । 'वृद्भ्यः स्यसनो'रिति परस्मैपदम् । तत्तत्कार्यानुगुण्येन वर्तिष्यामह इत्यर्थः ॥

आकाशमिति । अपूर्वा कापि लोकोत्तरगुणाभिरामा ऐशी तनुरिव शरद् वः क्लेशं मलयकेतुराक्षसाभियोगजनितं क्लेशं [इति च ध्वनिः] हरतु । कीदृशी ईशतनुः काशपुष्पच्छविमभिभवता तच्छविसदृशेन भस्मना आकाशं शुक्लं कुर्वती शीतांशोश्चूडायां वर्तमानस्यांशुजालैर्जलधरमलिनां जलधरसदृशीं ऐभीं गजासुरसंबन्धिनीं कृत्तिं क्लिश्नती विलष्टां कुर्वती । तन्नैल्यमभिभवन्तीत्यर्थः । कौमुदीमिव धवलां कापालीं स्रजमुद्वहन्ती । शरद्विषये भस्मधवलया काशपुष्पच्छव्याकाशं शुक्लयन्तीत्यादि योज्यम् । हास्यश्रीरिव राजहंस्यो यस्यां शरदि राजहंसीव हास्यश्रीर्यस्यां तनावित्युभयत्र विग्रहः । उपमालङ्कारः ॥ २० ॥

प्रत्यग्रोन्मेष इति । शरदि क्षीरनिधौ शेषशयनादुत्थितस्य हरेराकेकरदृष्टिप्रतिपादकानि प्रत्यग्रेत्यादिविशेषणानि । [तदुक्तं—शेते विष्णुः सदाषाढे कार्तिके च विबुध्यते । इति । उरु फणानां चक्रवालं मण्डलमेव उपधानं यस्मिन् ।

---

1. अस्मात्प्राक्—तद्यथा, 2. अभियुक्ताः, 3. वेत्स्यामः, 4. सकोप इव, 5. प्रथमः, 6. तूल, 7. क्लिन्दतीम्, क्लिश्यति, 8. ह्रास, 9. मन्दा, 10. स्वाङ्ग ।

CHA'N.—Vṛshala, listen. In connection with this topic writers on politics mention three forms of administration:—(1) That dependent (entirely) on the king, (2) that dependent (entirely) on the minister, (3) and that dependent upon both. What have you, then who depend upon your minister, to do with inquiring into the reasons of a thing? For I who am the responsible officer will alone act in this matter.

KING—(*Turns away his face in anger*)

(*Behind the scenes*—TWO BARDS)

FIRST BARD—Whitening the sky with its ashen hue (with its ashes in the act of dancing—in the case of ऐशी तनु) that surpasses the brightness of Kāśa flowers, counteracting the impression of the elephant-hide-like space dark with clouds (of the elephant-hide dark like a cloud) by means of the streaming rays of the moon, bearing the bright moon-light like a white garland of skulls (bearing the white moon-light-like garland of skulls) and displaying its swans like beauteous smiles (with its smiles like swans) may the Autumnal Season, thus unusually accoutred, like the body of Śiva, remove your trouble! (20) *

Moreover,

May the half-closed eyes of Vishṇu when about to leave his broad serpent-bed having the group of hoods for its pillow grant you protection for ever!—the eyes which look slantingly (or, dull) on account of their recent opening, which

चाणक्य—तो लो, सुनो, (अर्थ) शास्त्रकारों ने तीन तरह से सिद्धियों की निष्पत्ति गिनाई है—पहली राजा के अधीन, दूसरी मन्त्री के अधीन, तीसरी राजा और मन्त्री के अधीन। अब तेरा राजतन्त्र समूचा मन्त्री के अधीन है, तुझे प्रयोजन की खोज से मतलब ? जब सारा उत्तरदायित्व ही चाणक्य का है, वह जैसा उचित समझेगा करेगा।

राजा—(क्रोध में मुंह फेर लेता है)

(नेपथ्य में दो वैतालिक गा रहे हैं)

एक वैतालिक—आकाश को काश-कुसुमों से भी अधिक शुभ्रभस्म से मानो शुभ्रतर करती हुई···चन्द्रकिरणों द्वारा (काले) बादलों से जैसे मलिन हो चुके हस्ति-चर्म की कालिमा को हरती हुई···चिट्टी चांदनी को मानो, कपालों की मुण्डमाला की तरह गले का हार बना दें, और राजहंसों की शुभ्रता में मानो, शिव का अट्टहास करती हुई—यह शरद्···इस प्रकार, भगवान् (शिव) के रूप में, तुम्हारे कष्टों को दूर करदे। (२०)

---

* Better translate—May the body of Śiva &c.; see notes.

विशाल

नागाङ्गं[1] मोक्तुमिच्छोः शयनमुरुफणाचक्रवालोपधानं
निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेर्दृष्टिराकेकरा वः ॥ २१ ॥

द्वितीय :—

खजाना

सत्त्वोत्कर्षस्य धात्रा निधय इव कृताः केऽपि कस्यापि हेतोर्-
जेतारः स्वेन धाम्ना मदसलिलमुचां नागयूथेश्वराणाम् ।
दंष्ट्राभङ्गं मृगाणामधिपतय इव व्यक्तमानावलेपा
नाज्ञाभङ्गं सहन्ते नृवर नृपतयस्त्वादृशाः सार्वभौमाः ॥ २२ ॥

अपि च—

भूषणाद्युपभोगेन[2] प्रभुर्भवति न प्रभुः ।
परै[3]रपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते ॥ २३ ॥

तन्नाङ्गाङ्गं शयनं मोक्तुमिच्छोः हरेः ।] प्रत्यग्रेण निद्राच्छेदानन्तरोदितेनोन्मेषणेनोन्मीलनेन जिह्मा कूणितप्रान्ता । [क्षणं रत्नानि शेषफणामणय एव दीपास्तेषां प्रभाणामनभिमुखी आत्मव्यापारे स्वविषयग्रहणरूपे गुर्वी अलसा । अङ्गभङ्गसहितैः जृम्भितैर्मुखविदारणव्यापारैर्जनिता जललवा यस्याः सा उत्पन्नाश्रुकणा । निद्राच्छेदेनाभिताम्रा आकेकरा दृष्टिर्वः चिरमवतु । 'आकुञ्चितपुटापाङ्गा सङ्गतार्धनिमेषिणी । मुहुर्व्यावृत्ततारा च दृष्टिराकेकरामता ॥' इति भरतः ।] स्पष्टमन्यत् । नागाङ्कं शेषपर्यङ्करूपम् । अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः ॥ २१ ॥ आकाशमिति प्रत्यग्रोन्मेष इति चन्द्रगुप्तवैतालिकेन पठितम् । उत्तरपद्यद्वयं सत्त्वोत्कर्षस्येति भूषणाद्युपभोगेनेति च राक्षसगूढप्रणिधिना वैतालिकवेषधारिणा स्तनकलशनाम्ना चन्द्रगुप्ततेजःसमुत्तेजनार्थं पठितमिति ज्ञेयम् ।

सत्त्वोत्कर्षेति । [हे नृवर नरश्रेष्ठ, धात्रा] सत्त्वोत्कर्षस्य वलातिशयस्य केऽपि लोकोत्तरमहिमानः कस्यापि हेतोः विपक्षक्षपणायेत्यर्थः । ['षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी । निधय इव कृताः । स्वेन धाम्ना मदसलिलमुचां नागयूथेश्वराणां जेतारः व्यक्तमानावलेपाः त्वादृशाः सार्वभौमा नृपतयः व्यक्तमानावलेपा मृगाणामधिपतयः दंष्ट्राभङ्गमिव आज्ञाभङ्गं न सहन्ते ।] व्यक्तौ प्रसिद्धौ मानावलेपौ येषां ते ॥२२॥

---

1. नागाङ्कम् 2. उपचारेण; उपयोगेन, 3. रनभि० ।

are turned away for an instant from the beaming lustre of the jewel-lamps, which are (yet) tardy in performing their function, in which particles of water have been produced on account of yawning accompanied with the movements of the limbs, and which are reddish at the corners from break of sleep. (21)

SECOND BARD—O you best of men, universal sovereigns like you, who are supremely eminent and made by the Creator with some object in view*; the receptacles of an excess of valour; who by their peculiar might subdue kings having a force of rut-shedding tuskers and who are distinguished by their sense of self-esteem and pride, do not put up with the infringement of their command, just as the lords of beasts, who are noble and created by the Creator for some reason or other as the store-houses of strength, who by their own might conquer the rut-shedding leaders of elephant-herds, and whose dignity and haughtiness are distinctly manifested, do not brook the breaking of their jaws. (22)

Moreover,

A lord does not become a lord by the wearing of ornaments, &c. *He* is said to be a lord, like you, whose command is not slighted by others. (23)

साथ ही—

अभी-अभी नींद खुलने के कारण जो सम्मुख नहीं देख सकती, जो रत्नदीपों की ज्योति को एक क्षण भी सहन नहीं कर सकती, जिसे अभी खुलकर देखने में भारीपन महसूस हो रहा है, जागते समय टूटते अंगों और जम्हाइयों के कारण जिसमें कुछ बूंद भर आई हैं, ताजा नींद टूटने की वजह से जिनमें कुछ-कुछ लाली आगई है—जागरण वेला में शेष नाग के फणों का तकिया और बिस्तर बनाकर सोने वाले विष्णु की अधखुली दृष्टि तुम्हारी रक्षा करे। (२१)

दूसरा (वैतालिक)—तेरा जैसा सार्वभौम (आत्मसम्मानी) अधिपति, हे राजन् अपनी आज्ञा के उल्लंघन को हरगिज़ सहन नहीं कर सकता। राजाओं में भी आत्म-सम्मान उसी तरह भरा होता है जिस प्रकार (जंगल के राजा) शेरों में—वे क्या कभी यह सहन कर सकते हैं कि कोई आकर मुफ़्त में उनकी दाढ़ तोड़ जाए? नृपति और मृगपति—कुछ ही ऐसे हुआ करते हैं, जिन्हें प्रजापति किसी प्रयोजन-विशेष से अद्भुत सत्य की एक पराकाष्ठा के रूप में ही निर्मित किया करता है कि वे अपने बाहुबल से मस्त हाथियों और राज-प्रवंचनीयों पर विजय पा सकें। (२२)

और फिर—

आभूषणादि के सेवन से कोई अधिपति नहीं बन जाता। अधिपति का आधिपत्य तो इससे होता है कि शत्रुजन उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते। (२३)

---

* See notes.

चाण०—(आकर्ण्य, स्वगतम्) प्रथमं तावद्विशिष्टदेवतास्तुतिरूपेण प्रवृत्तशरद्गुणप्रख्यापनमाशीर्वचनम् । इदमपरं किमिति नावधारयामि । (विचिन्त्य) आः[1] ज्ञातम् । राक्षसस्यायं प्रयोगः । दुरात्मन् राक्षस[2] दृश्यसे भोः जागर्ति खलु कौटिल्यः ।

राजा—आर्य वैहीनरे, आभ्यां वैतालिकाभ्यां सुवर्णशतसहस्रं दापय[3] ।

कञ्चु०—यदाज्ञापयति देवः । (इति उत्थाय परिक्रामति)

चाण०—(सक्रोधम्[4]) वैहीनरे, तिष्ठ न गन्तव्यम् । वृषल, किमयमस्थाने महानर्थोत्सर्गः[5] ।

राजा—(सकोपम्) आर्येणैवं सर्वत्र निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मे बन्धनमिव राज्यं न राज्यमिव ।

चाण०—वृषल, स्वयमनभियुक्तानां राज्ञामेते दोषाः संभवन्ति । तद्यदि न सहसे ततः स्वयमभियुज्यस्व ।

राजा—एते स्वकर्मण्यभियुज्यामहे[6] ।

चाण०—प्रियं[7] नः । वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामहे ।

सक्रोधमित्यादि । एतदादि राजाचाणक्ययो रोषसंभाषणं संफेटः । **वृषलेत्यादि** । स्वयमनभियुक्तानां [राज्यतन्त्रे अदत्तावधानानां] स्वातन्त्र्यमलभमानानामेते दोषा गुरुजनगौरवासहनरूपाः संभवन्ति । स्वस्वातन्त्र्यलिप्सया गुरुजनस्वातन्त्र्यं न सहन्त इति भावः । स्वयमभियुज्यस्व स्वातन्त्र्यमवलम्बस्व । [राज्यतन्त्राधिकारं प्रतिपद्यस्वेत्यर्थः ।] **एते स्वकर्मणीति** । इदं गुरोरवमाननं छलम् ।

---

1. भवतु, 2. राक्षसहतक, 3. दीयताम्, 4. सरोषम्, 5. अर्थव्ययः, व्त्सर्गः क्रियते, 6. महेवयम्, 7. कल्याणम् ।

CHA'N.—(*To himself*) The first is a blessing describing the beauties (lit. qualities) of the autumnal season now set in, in the form of the praise of the supreme deities. What this other is, I do not understand. (*After reflecting*) Ah, I comprehend it now. It is the intrigue of Rākshasa! Vile Rākshasa, you are detected (*lit.* seen), Ho! Kauṭilya, to be sure, is wide awake.

KING—Venerable Vaihīnari, let a hundred thousand gold coins be given to these bards.

CHAMB.—As Your Majesty commands. (*He rises and turns round*)

CHA'N.—(*Angrily*) Stop, Vaihīnari, don't go. Vṛshala, why this large expenditure for a paltry thing?

KING—(*In a rage*) Kingship is like bondage to me, when my course of action is thus checked in every case by Your Honour; it is not like kingship at all.

CHA'N.—Vṛshala, such evils are but the lot of those kings who do not attend personally to their own duties. If you cannot bear them, apply yourself to your duties.

KING—Here do I apply myself to my duties.

CHA'N.—This pleases me. I, too, will apply myself to my duties.

चाणक्य––(कान देकर, मन-ही-मन) पहली, (स्तुति) में तो (अप्रस्तुत) शिव और विष्णु के मिस से प्रस्तुत शरद् की महिमा का गान था और आशीर्वाद था। इस दूसरी (स्तुति) का अर्थ मुझे अभी तक समझ नहीं आ रहा। (कुछ सोचकर) जान गया––राक्षस की चाल है यह। अरे कम्बख्त, अरे राक्षस, हम तुझे यह परचाते हैं। कौटिल्य जाग रहा है ··

राजा––वैहीनरि चाचा, जाओ इन वैतालिकों को एक-एक लाख अशर्फियां दिलवा दो।

कंचुकी––जो आज्ञा, स्वामी! (उठकर चल पड़ता है)

चाणक्य––(गुस्से में) बैठो, वैहीनरि, कहीं नहीं जाना। चन्द्रगुप्त, यह क्या कह रहे हो?––न पात्र देखा, न कुछ और इतनी बड़ी राशि दान कर दी।

चन्द्रगुप्त––(कुपित होकर) इस तरह हर मामले में, मेरी हर गतिविधि पर आपके प्रतिबन्धों से यह राज्य मेरे लिए अब, राज्य नहीं, एक बन्धन ही अधिक बन गया है।

चाणक्य––हाँ, चन्द्रगुप्त, ये मुसीबतें उन राजाओं के भाग्य में लिखी ही होती हैं जिन्हें अपने कर्तव्य को आप संभालने की प्रवृत्ति नहीं होती। मेरे शब्द यदि तुझे अच्छे न लगते हों, तो अपनी कर्तव्यबुद्धि को जगाले।

चन्द्रगुप्त––यह मैं अपने कर्तव्य में ही तो लगा हुआ था।

चाणक्य––बड़ी अच्छी बात है। और मैं भी तो अपने कर्तव्य में लगा था।

राजा—यद्येवं[1] तर्हि कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य तावत्प्रयोजनं श्रोतुमिच्छामि ।

चाण०—वृषल, कौमुदीमहोत्सवानुष्ठानस्य किं प्रयोजनमित्यहमपि श्रोतुमिच्छामि ।

राजा—प्रथमं तावन्ममाज्ञा[2]ऽव्याघातः ।

चाण०—वृषल, ममापि तवाज्ञाव्याघात एव कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य प्रथमं प्रयोजनम् । कुतः? —

अम्भोधीनां तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनानाम्
आपारेभ्यश्चतुर्णां चटुल तिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम् ।
मालेवाज्ञा सपुष्पा[4] तव[5] नृपतिशतैरुह्यते या शिरोभिः
सा मय्येव स्खलन्ती कथयति[6] विनयालंकृतं ते प्रभुत्वम् ॥२४॥

अथ[7] त्वमपरमपि प्रयोजनं श्रोतुमिच्छसि तदपि कथयामि ।

वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामह इति। स्वकर्मण्यग्निहोत्रादाविति बहिरर्थः। अनेन कपटकलहेन राक्षसवशीकरणकर्मणि व्याप्रियामह इति गूढम् । प्रथममिति । ममाज्ञाया व्याघातजनितो मनस्ताप एव प्रथमफलत्वेन पर्यवसित इति सोल्लुण्ठनं वचनम् ।

इदमेव मुख्यप्रयोजनत्वेन श्लाघ्यतया त्वयानुमन्तव्यमिति समाधत्ते **अम्भोधीनामिति**। [तमालेभ्यः प्रभवन्तीति तमालप्रभवाणि तमालः प्रभवो येषां तानि इति वा । यानि किसलयानि तैः श्यामानि वेलावनानि येषां तेषाम् । चटुलानि च तानि तिमिकुलानि तैः क्षोभितमन्तर्जलं येषां तेषां चतुर्णामम्भोधीनां समुद्राणाम् ।] चटुलतिमिकुलेति अम्भोधीनां दुस्तरत्वमुक्तम् । पारेभ्यः परतीरेभ्यः आ पारात्प्राप्नुवद्भिः पारङ्गतैरित्यर्थः । अभिविधावाङ् । नृपतिशतैर्या तवाज्ञा शिरोभिरुह्यते वक्ष्यते । वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवत् । मदाशिषा मन्त्रीतिबलेन चाम्भोधिपारगानपि द्वीपाधिपानाज्ञाविधेयान्करिष्यसीत्यर्थः । सा मय्यैव [स्खलन्ती व्याहता ते प्रभुत्वं विनयालंकृतं कथयति] स्खलति चेत्तव विनयातिशयः प्रभुत्वस्यालङ्करणायैवेति भावः इत्यादि चाणक्यवचनजातं गुरुकीर्तनं प्रसङ्गः । गुरोः कीर्तनं गुरु बहु वा कीर्तनमित्यन्वर्थात् ॥ २४ ॥

---

1. तेन हि, महोत्सवानुष्ठानप्रति०, 2. आज्ञायाः; आज्ञाविधानम्, 3. बहुल, 4. नत, 5. वाम्लानपुष्पा, 6. प्रथ०, 7. राजा–अथापरमपि श्रोतुमिच्छामि । चा०-तदपिकथयामि ।

King—Well then I want to know in the first place your object in prohibiting the Kaumudī festival.

Cha'n.—Vṛshala, I too wish to hear your reason for the celebration of the Kaumudī festival.

King—The first (the most important), indeed, is the non-violation (obedience) of my command.

Cha'n.—Vṛshala, (disobedience) of your command is *my* first purpose too, in forbidding the Kaumudī festival. For,

That order of yours, which is borne like a garland of good fresh flowers on their heads by hundreds of kings up to the shores of the four oceans, the forests on the coast-lines of which are darkened by the leaves of *tamāla* trees and the waters of which are inwardly agitated by the collections of *timi* fishes quickly moving about, when failing in me alone, declares your sovereignty (character as a sovereign) as graced by humility. (24)

And if you wish to hear the second reason, that too, I will tell you.

राजा—यदि वात इतनी ही थी, तो क्या मैं पूछ सकता हूँ कि कौमुदी-महोत्सव पर रोक लगाने में जनाव का प्रयोजन क्या था ?

चाणक्य—चन्द्रगुप्त, और मैं पूछना चाहूँगा कि कौमुदी-महोत्सव को मनाने में ही जनाव का क्या प्रयोजन था ?

चन्द्रगुप्त—पहला तो यह कि मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

चाणक्य—चन्द्रगुप्त, मेरा भी पहला प्रयोजन कौमुदी-महोत्सव पर रोक लगाने का यही था कि तेरी आज्ञा का उल्लंघन होना चाहिए। पूछोगे, क्यों ?—

जिस तेरी आज्ञा को चारों समुद्रों के पार से—उन समुद्रों के पार से जिनके तीरों पर उग रहे वनों के तमाम पत्तों के मिस से उनकी नीलिमा और भी बढ़ गई है, जिनका अंतरंग चंचल बड़ी-बड़ी मछलियों के कारण और भी अधिक तरंगित है, उन समुद्रों के पार से आ-आकर सैकड़ों राजा लोग ताजे पुष्पों की माला समझते हुए (जिस तेरी आज्ञा को) शिरोधार्य करते हैं, उसी की अवेहलना मुझसे जब होती है, उसका अभिप्राय मेरे लिए तुझे मात्र यही बताना होता है कि प्रभुता का आभूषण नम्रता है (उद्दण्डता नहीं)। (२८)

और एक प्रयोजन—यदि यह भी तुझे सुनने की हवस हो, तो वह भी कह दूँ ?

राजा—कथ्यताम्[1] ।

चाण०—शोणोत्तरे, मद्वचनात्कायस्थमचलं[2] ब्रूहि यत्तद्भद्रभटप्रभृतीनां [इतोपरागादपक्रम्य मलयकेतुमाश्रितानां] लेख्यपत्रं[3] तत्तावद्दीयतामिति ।

प्रती०—यदार्य आज्ञापयति । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) आर्य, इदं पत्रकम् । (जं अज्जो आणवेदि । अज्ज इमं पत्तअम् ।)

चाण०—(गृहीत्वा) वृषल, श्रूयताम्[4] ।

राजा०—दत्तावधानोऽस्मि ।

चाण०—(वाचयति) स्वस्ति सुगृहीतनामधेयस्य देवस्य चन्द्रगुप्तस्य सहोत्थायिनां प्रधानपुरुषाणामितोऽपक्रम्य वध्यमलयकेतुमाश्रितानां प्रमाणलेख्यपत्रमिदम्[5] । तत्र प्रथमं तावद्गजाध्यक्षो भद्रभटः अश्वाध्यक्षः पुरुषदत्तः महाप्रतीहारस्य चन्द्रभानोर्भागिनेयो डिङ्गरातः[6] देवस्य स्वजनगन्धी[7] महाराजो बलगुप्तः देवस्यैव कुमारसेवको राजसेनः सेनापतेः सिंहबलस्य[8] कनीयान्भ्राता भागुरायणो मालवराजपुत्रो लोहिताक्षः क्षत्रगणमुख्यो विजयवर्मेति[9] ।

राजा०—अथैतेषामपरागहेतून्विज्ञातु[10]मिच्छामि ।

दृश्यतामिति । रहस्यत्वाद् दृश्यतां न तु स्फुटं वाच्यतामित्यर्थः ।

कुमारसेवक इति । [महाप्रतीहारः प्रधानद्वारपालः भगिन्या अपत्यं पुमान्भागिनेयः । स्वजनस्य गन्धः सम्बन्धोऽस्थास्तीति स्वजनगन्धी ।] देवं कौमारमारभ्य सेवत इति कुमारसेवकः । सादरमात्मगतं वाचयित्वा बहिर्लोकान्प्रत्यवहेल-

---

1. अवहितोऽस्मि इत्यधिकम्, 2. अचलदत्तम्, 3. प्रमाणले०, पत्रं दीय०, 4. दृश्यतामिदम् । राजा–आत्मगतं वाचयति, 5. परिमाण, 6. डिङ्गि०, डिण्डि; हिङ्ग०, 7. संबन्धी, 8. सिंहपालस्य, सिंहबलदत्तस्य, 9. (स्वगतं) एते वयं देवस्य कार्ये अवहिताः स्म इति । (प्रकाशम्) आर्य, एतावदेतत्पत्रकम् । इत्यधिकम्, 10. आर्य एतेषाम० श्रोतुम् ।

KING—Do so.

CHA'N.—Śoṇottarā, tell the Kāyastha Achala that I command him to send me the record-paper (document) in connection with Bhadrabhaṭa and his colleagues [who left us through discontent and went over to Malayaketu].

FEM. DOOR-KEEPER—As Your Honour commands. (*Exit and re-enter*) Your Honour, here is the writing.

CHA'N.—(*Taking it*) Vṛshala, listen.

KING—I am all attention.

CHA'N.—reads—"Reverence to the lord. This is a document containing the list of those principal persons, who once shared in the prosperity of (or, rose along with) His Majesty Chandragupta, of auspicious name, and who having fled from here have gone over to the ill-fated Malayaketu. They are:—In the first place Bhadrabhaṭa, the principal officer of elephant-warriors; Purushadatta, the commander of cavalry; Diṅgarāta, the nephew of Chandrabhānu, the principal warder; Balagupta, a distant kinsman of His Majesty; Rājasena, who was from his boyhood a personal attendant of His Majesty; Bhāgurāyaṇa the younger brother of general Siṁhabala; Lohitāksha, the son of the King of Mālavā; and Vijayavarman, the head of a class of Kshatriyas."

KING—Now I wish to know the causes of their disaffection.

चन्द्रगुप्त—कहिये।

चाणक्य—शोणोत्तरा, जाकर कायस्थ को मेरे नाम से कहना—चन्द्रगुप्त से अपरक्त होकर मलयकेतु से जा मिले। भद्रभटादि के विषय में जो दस्तावेज़ मैंने दिया था, वह ज़रा यहां पहुंचा दे।

प्रतिहारी—जो आज्ञा, स्वामी! (जाकर और फिर लौटकर) यह रहा वह पत्र।

चाणक्य—(हाथ में लेकर) चन्द्रगुप्त, ज़रा सुनते चलना अब।

चन्द्रगुप्त—मेरा ध्यान इसी तरफ़ है।

चाणक्य—(सुनाता है) "नमस्कार हो! यह प्रामाणिक पत्र उन मुख्य-मुख्य पुरुषों के बारे में है जो कभी महाराज चन्द्रगुप्त के उत्थान में सहयोगी थे, किन्तु पीछे, यहाँ से भागकर, दुष्ट मलयकेतु के साथ जा मिले। इनका मुखिया है—गजाध्यक्ष भद्रभट; महाप्रतीहार चन्द्रभानु का भांजा हिंगुरात; स्वयं महाराज का अपना ही आदमी और सम्बन्धी बलगुप्त; महाराज का कौमारावस्था से चला आ रहा निजी सेवक राजसेन; सेनापति सिंहबल का छोटा भाई भागुरायण; मालवराज का पुत्र रोहिताक्ष, और क्षत्रगणों का मुखिया विजयवर्मा।"

चन्द्रगुप्त—और अब—इनके मुझसे अपरक्त होने के कारण?

चाण०—वृषल, श्रूयताम् । अत्र यावेतौ गजाध्यक्षाश्वाध्यक्षौ भद्रभटपुरुषदत्तनामानौ तौ खलु स्त्रीमद्यमृगयाशीलौ हस्त्यश्वावेक्षणेऽनभियुक्तौ मयाधिकाराभ्यामवरोप्य स्वजीवनमात्रेणैव स्थापिताविति[1] परपक्षे स्वेन स्वेनाधिकारेण गत्वा मलयकेतुमाश्रितौ । यावेतौ डिङ्गरातबलगुप्तौ तावप्यत्यन्तलोभाभिभूतौ[2] त्वद्दत्तं जीवनमबहु मन्यमानौ तत्र बहु लभ्यत इत्यपक्रम्य मलयकेतुमाश्रितौ । योऽप्यसौ भवतः कुमारसेवको राजसेन इति सोऽपि तव प्रसादादतिप्रभूतकोशहस्त्यश्वं सहसैव तन्महदैश्वर्यमवाप्य पुनरुच्छेदशङ्कयापक्रम्य मलयकेतुमाश्रितः । योऽयमपरः सेनापतेः सिंहबलस्य कनीयान्भ्राता भागुरायणोऽसावपि तत्र काले पर्वतकेन सह समुत्पन्नसौहार्दस्तत्प्रीत्या च पिता ते चाणक्येन व्यापादित[3] इत्युत्पाद्य रहसि त्रासयित्वा मलयकेतुमपवाहितवान् । ततो भवदपथ्यकारिषु चन्दनदासादिषु[4] निगृहीतेषु स्वदोषाशङ्कयापक्रम्य मलयकेतुमाश्रितः । तेनाप्यसौ मम[5] प्राणरक्षक इति कृतज्ञता[6]मनुवर्तमानेनात्मनोऽनन्तरममात्यपदं ग्राहितः । यौ तौ लेहिताक्षविजयवर्माणौ तावप्यतिमानित्वात्स्वदायादेभ्यस्त्वया दीयमानं मानमसहमानौ मलयकेतुमाश्रितौ । इत्येषामपरागहेतवः ।

राजा—एवमेतेषु[7] परिज्ञातापरागहेतुषु क्षिप्रमेव कस्मान्न प्रतिविहितमार्येण ?

चाण०—वृषल, न पारितं प्रतिविधातुम् ।

यति । **एतावदिति** । इतोऽपरागादपक्रम्य । विपक्षमाश्रितानां किमनेन पत्रदर्शनेनेति भावः । [अनभियुक्तौ अदत्तावधानौ स्वजीवनं वृत्तिस्तदेव जीवनमात्रं तेन । अतिप्रभूताः कोशः हस्तिनोऽश्वाश्च यस्मिन् ।] उच्छेदशङ्कया तदुच्छिन्नं भवेदिति शङ्कमानः ।

इत्युत्पाद्येति । तथ्यमपि तन्मिथ्यात्वेन लोकप्रत्ययनार्थं उत्पाद्येत्युक्तिः । [स्वदोषाशङ्कया स्वदोषो ज्ञातः स्यादिति भयेन । आत्मनोऽनन्तरं स्वामिपदा-

---

1. इत्यपरक्तौ, 2. लुब्धप्रकृती; अतिलोभाभिभूतत्वात्, 3. घातितः, 4. दासप्रभृतिमु, 5. ममानेनप्राणाः परिरक्षिता इति, 6. पैतृकं च परिचयमित्यधिकम्, 7. अस्मात् प्राक्—आर्य ।

CHA'N.—Vṛshala, hear. Those two, by name Bhadrabhaṭa and Purushadatta, respectively the commanders of the elephants and the horse, were addicted to women, wine and chase, and neglected to look after the elephants and the horses; so they were removed by me from their office and kept on mere subsistence-allowance. They, therefore, went over to the enemy and took service under Malayaketu in their respective capacities. As to Diṅgarāta and Balagupta, they were affected by extreme greed and thinking the salaries given by you insufficient, went over to Malayaketu, believing that they could get more there. As to Rājasena, your young page, he too having suddenly through your favour got considerable fortune, consisting of a large treasure, elephants and horses, went and joined Malayaketu from fear of its being taken back. Now about the other fellow, Bhāgurāyaṇa, the younger brother of general Siṁhavarman.—He had at that time formed friendship with Parvataka, and out of affection for him frightened Malayaketu in secret by inventing the story "your father was killed by Chāṇakya" and made him leave the town. When afterwards Chandandāsa and others who acted perfidiously towards you, were arrested, he entertained fear on account of his own misdeeds and fled for protection to Malayaketu. He (Malayaketu) too, thinking that he (Bhāgurāyaṇa) had saved his life, out of gratitude conferred upon him his ministership, a rank next to his own (or appointed him his private secretary.) Lastly, the two, Lohitāksha and Vijayavarman could not bear, in their great vanity, what you gave to their relatives, and went over to Malayaketu. These are the causes of their disaffection.

KING—If the causes of their discontent were known, why did Your Honour not promptly counteract them?

CHA'N.—Vṛshala, it was not possible to counteract.

चाणक्य—वह भी सुन लो—इनमें जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष—भद्रभट तथा पुरुषदत्त—हैं, इन्हें स्त्रीगमन, मद्यपान तथा शिकार की इल्लत थी; हाथियों-घोड़ों की देखभाल में इनका दिल नहीं था। मैंने इन्हें इनके अधिकारों तथा पदों से च्युत कराकर आजीविका-मात्र पर शेष-जीवन के लिए मजबूर कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि ये दोनों हमारे शत्रु, मलयकेतु से जा मिले और वहां जाकर अपने-अपने पुराने पदों पर फिर लग गये। और ये जो हिंगुरात और बलगुप्त हैं—वड़े लोभी-प्रवृत्ति जीव थे। उनका ख्याल था कि आप जो तनख्वाह उन्हें देते हैं वह उनके जीने के लिए अपर्याप्त है; वहाँ जाकर हमें अधिक पैसे मिल जायेंगे—वे भी भागकर मलयकेतु की शरण में चले गये। और वह जो जनाब का कुमारसेवक राजसेन है—आपकी कृपा से कितना ही पैसा, हाथी-घोड़े और सम्पत्ति अकस्मात् पाकर डर गया कि कहीं इसे

राजा—किमकौशलादुत प्रयोजनापेक्षया ?

चाण०—कथमकौशलं भविष्यति । प्रयोजनापेक्षयैव ।

राजा—प्रयोजनमिदानीं[1] श्रोतुमिच्छामि ।

चाण०—श्रूयतामवधार्यतां च । इह[2] खलु विरक्तानां प्रकृतीनां द्विविधं प्रतिविधानमनुग्रहो[3] निग्रहश्च । अनुग्रहस्तावदाक्षिप्ताधिकारयोर्भद्रभटपुरुषदत्तयोः पुनरधिकारारोपणमेव । अधिकारश्च तादृशेषु व्यसनयोगा[4]दनभियुक्तेषु पुनरारोप्यमाणः सकलमेव राज्यस्य मूलं हस्त्यश्वमवसादयेत् । डिङ्गरातबलगुप्तयोरतिलुब्धयोः[5] सकलराज्यप्रदानेनाप्यरितुष्यतोरनुग्रहः कथं शक्यः[6] । राजसेनभागुरायणयोस्तु धनप्रणाशभीतयोः[7] कुतोनुग्रहस्यावकाशः । लोहिताक्षविजयवर्मणोरपि दाया[8]दमानमसहमानयोरतिमानिनोः कीदृशोऽनुग्रहः प्रीतिं जनयिष्यतीति

नन्तरवर्ति । कथमकौशलमित्यादि वचनं विरोधशमनं शक्तिः । किमकौशलादिति कार्यविरोधे पृष्टे तस्य विरोधस्य शमनात् ।] प्रकृतीनां प्रजानाम् । आक्षिप्त आच्छिन्नोऽधिकारोभयोः । व्यसनयोगात्स्त्रीमद्याद्यासक्ततया स्वकर्मण्यवहितेषु ।]

---

1. अप्रतिविधान प्रयोजनम्, 2. अस्मात् प्राक्—राजा—उभयमपि क्रियते । कथ्यताम् । चाण०—वृषल इत्यधिकम्, 3. तद्यथानुग्रहो, 4. दोषा, 5. लुब्धप्रकृत्योः, 6. कर्तुं शक्यते, 7. प्राणनाशः, 8. दायादम० दायादमानप्रदानपीडितयोमनिमप्यपमानं मन्यमानयोरत्यन्तमानिनोः ।

King—Why, owing to want of skill (incompetence) or to some purpose (political object) in view?

Cha'n.—How could there have been want of skill? There was a special purpose in view.

King—That purpose I want now to hear.

Cha'n.—Hear it and bear it well in mind. With regard to the present matter (I have to observe that) there are two ways of dealing with discontented subjects, *viz.* favour or punishment. In the case of Bhadrabhaṭa and Purushadatta who were dismissed from office, to show favcur would have meant re-instating them. And if people like these, not devoted to the discharge of duty on account of their addiction to vice, be restored to office, they would lead to destruction the whole body of horse and elephant, the main prop of the realm. How could it have been possible to win over those extremely covetous fellows, Diñgarāta and Balagupta, who would not be pleased even by the gift of the whole kingdom? In the case of Rājasena and Bhāgurāyaṇa who were afraid of losing their property, there was not the least scope for a kind treatment. What kind of favour would have won the affection of Lohitāksha and Vijayavarman who are

मुझसे वापिस न ले लिया जाये—वह भी जाकर मलयकेतु का आश्रित हो गया। और यह जो सेनापति सिंहबल का छोटा भाई है, भागुरायण—उन दिनों पर्वतक के साथ उसकी मुहब्बत बढ़ गई थी और उसी प्रेम के वश में मलयकेतु के कान में यह भी भरकर कि तेरे पिता को चाणक्य ने मरवाया है, डराकर उसने उसे स्वयं शहर से बाहर निकल जाने के लिए उकसाया। और पीछे, अब आपके जीवन-शत्रु चन्दनदास आदि को पकड़ लिया गया, उसे अपनी पोल का पता था; डर के मारे वह खुद ही भाग खड़ा हुआ—और मलयकेतु के साथ जा मिला! मलयकेतु में भी कृतज्ञता-भाव प्रबल था (कि इसने मेरी जान बचाई है;) सो उसने इसे अपने यहाँ एक मंत्रिपद पर इसकी नियुक्ति कर दी। और वे दो—लोहिताक्ष और विजयवर्मा थे न—यह नहीं सहन कर सके कि तुम उनके रिश्तेदारों को ही मान-धन देते चलो, उन्हें नहीं। स्वाभिमानी थे, मलयकेतु से जा मिले। ये हैं इन सबके तुमसे विरक्त हो जाने के अलग-अलग कारण।

चन्द्रगुप्त—किन्तु इस प्रकार इन सबकी अपरक्ति के विविध-हेतु आचार्य को जब मालूम थे, तो समय पर इनका कुछ प्रबन्ध क्यों नहीं किया आपने?

चाणक्य—प्रतिशोध कठिन होता है, चन्द्रगुप्त!

चन्द्रगुप्त—उसके लिए सामर्थ्य नहीं—इस वजह से, या फिर किसी प्रयोजन विशेष से?

चाणक्य—असामर्थ्य से कैसे सम्भव है; प्रयोजन विशेष से ही।

चन्द्रगुप्त—हाँ तो, वह प्रयोजन भी तो सुनूं ज़रा।

चाणक्य—हाँ तो, सुनो; और सुनकर उस पर गौर भी करना। बात यह है कि प्रजाएं जब विरक्त होने लगती हैं, उनके दो ही उपचार रह जाते हैं—अनुग्रह

परिहृतः पूर्वः पक्षः । उत्तरोऽपि खलु वयमचिरादधिगतनन्दैश्वर्याः सहोत्थायिनं[1] प्रधानपुरुषवर्गमुग्रेण दण्डेन पीडयन्तो नन्दकुलानुरक्तानां प्रकृतीनामविश्वास्या एव[2] भवाम इत्यतः परिहृत एव । तदेवमनुगृहीतास्मत्पक्षो राक्षसोपदेशप्रवणो महीयसा म्लेच्छबलेन परिवृतः पितृवधामर्षी[3] पर्वतकपुत्रो मलयकेतुरस्मानभियोक्तुमुद्यतः । सोयं व्यायामकालो नोत्सवकाल इति दुर्गसंस्कारे प्रारब्धव्ये किं कौमुदीमहोत्सवेनेति प्रतिषिद्धः ।

राजा—आर्य, बहु प्रष्टव्यमत्र ।

चाण०—वृषल, विश्रब्धं पृच्छ। ममापि बह्वाख्येयमत्र[4] ।

राजा—सोप्यस्य[5] सर्वस्या[6]नर्थस्य हेतुर्मलयकेतुः कस्मादपक्रामन्नुपेक्षितः ।

चाण०—वृषल अनुपेक्षणे[7] द्वयी गतिः । निगृह्येत वा प्रतिश्रुतं राज्यार्द्धं प्रतिपाद्येत वा । निग्रहे तावत्पर्वतकोऽस्माभिरेव व्यापादित इति कृतघ्नतायाः

[दायादमानं ज्ञातीनां कृतं मानमित्यर्थः । परिहृतोशक्य इति निराकृतः । अनुगृहीतोऽस्माकं पक्षः अस्मत्पक्षीयवर्गो येन । उपदेशप्रवण उपदेशानुवर्ती । पितृवधामर्षी पितृवधजनितक्रोधः । व्यायामस्य सैन्यप्रगुणीकरणादेः उद्योगस्य कालः। प्रतिपाद्येत दीयेत ।] कृतघ्नतायाः स्वहस्त इति । कृतघ्नता दृढा

---

1. चन्द्रगुप्तसहोत्थायिप्रधानपुरुषमुग्र०, 2. मावयं भूम, 3. मर्षितः, वधादम०, 4. अस्मात्परं–राजा – प्रष्टुमिच्छामि; चाण०—अहमप्येष कथयामि, 5. आर्य, योऽस्य, आर्य, योऽयमस्माकं 6. सर्वस्यानर्थस्यैव, 7. मलयकेतोरपक्रमणानु०; मलयकेतावनुपेक्षितापक्रमणे ।

jealous of their relatives and who are extremely proud? For these considerations I had to abandon the first alternative. The other alternative too (*viz.* of adopting severe measures) had to be given up. For after our recent acquisition of the realm of the Nandas, had we inflicted severe punishment upon the influential persons who were our adherents we should have been distrusted by the subjects who are yet attached to the family of the Nandas. So having thus received our partisans into his favour, and guided by the counsels of Rākshasa, Malayaketu, son of Parvataka, incensed at his father's murder, is preparing to attack us with a large force of Mlechchhas. The present is thus the time for exertion and not for festivities. Thinking, therefore, that we had rather put the fortress in order than celebrate the festival, I forbade it (the latter).

KING—Sir, I have much to ask in this matter.

CHA'N.—Vṛshala, ask without reserve. I too have much to explain.

KING—Why did you allow Malayaketu, the cause of all this mischief, to escape?

और निग्रह। अनुग्रह (लिहाज़) का अर्थ होता—पदच्युत भद्रभट और पुरुषदत्त को फिर से उनके उन्हीं पदों पर अवस्थित कर दिया जाय। और इन्हें अधिकार लौटा देने का अर्थ था—क्योंकि इन्हें अपने काम में वह दिलचस्पी नहीं थी, जो स्त्रीगमनादि व्यसनों में थी—हमारी सारी हाथी-घोड़ों की फ़ौज को तबाह करदे, राज्य के मूल पर ही कुठाराघात करदे। हिंगुरात और बलगुप्त में लालच इस कदर बढ़ चुका था कि सारा-का-सारा राज्य उन्हें उपहार में दे देने पर भी उनकी तुष्टि न हो पाती; अनुग्रह से क्या बन जाता? राजसेन और भागुरायण को हमेशा, खतरा बना हुआ था—उनकी सम्पत्ति उनसे न छीन ली जाय। सो उनके मामले में भी अनुग्रह निरवकाश था। और लोहिताक्ष तथा विजयवर्मा को किस तरह का अनुग्रह उन्हें हमारा अपना बना सकता था जबकि उनके स्वाभिमान को इतना तक सह्य न हो सका कि जो राजसम्मान उन्हें नहीं, उन्हीं के दो-एक सम्बन्धियों को, मिल रहा है। सो, यह अनुग्रह कर सकना तो इस मामले में मेरे लिए असम्भव था; और उसी तरह, दूसरा विकल्प—निग्रह—भी। बात यह है कि नन्दों की सम्पत्ति मिले हमें अभी देर ही कितनी हुई है; यदि अभी से हम अपने मुसीवत के साथियों और प्रधान-प्रधान आफ़िसरों पर इस तरह कड़ाई के साथ बरतने लग गये तो अपनी ही प्रजा के—क्योंकि जनता अभी तक नन्द की अनुरक्त ही चली आती है—अविश्वासपात्र बन जायगें। हमारे पक्ष के ही इन कुछेक आदमियों पर अनुग्रह दिखाकर, राक्षस की कदम-कदम पर सलाह लेता हुआ, मलयकेतु—अपने पिता की मृत्यु से पहले ही बौखलाया बैठा था—अब म्लेच्छों की भारी सेना लेकर हम पर धावा बोलने की ताक में है। अवसर परिश्रम का है (खुद के खपा देने का है) उत्सव—रंगरलियां मनाने का नहीं। हमें अपने किलों आदि की सुध लेनी

स्वहस्तो[1] दत्तः स्यात् । प्रतिश्रुतराज्यार्द्धप्रतिपादनेऽपि पर्वतकविनाशः[2] केवलं कृतघ्नतामात्रफलः स्यादिति मलयकेतुरपक्रामन्नुपेक्षितः ।

राजा—अत्र तावदेवम् । राक्षसः पुनरिहैव वर्तमान आर्येणोपेक्षित इत्यत्र किमुत्तरमार्यस्य ?

चाण०—राक्षसोऽपि[3] स्वामिनि स्थिरानुरागित्वात्सुचिरमेकत्र[4] वासाच्च शीलज्ञानां नन्दानुरक्तानां प्रकृतीनामत्यन्तविश्वास्यः प्रज्ञापुरुषकाराभ्यामुपेतः सहायसंपदाभियुक्तः कोशवानि[5]हैवान्तर्नगरे वर्तमानः खलु महान्तमन्तःकोपमुत्पादयेत् । दूरीकृतस्तु बाह्यकोप[6]मुत्पादयन्नपि कथ[7]मप्युपायैर्वशयितुं शक्य इत्ययमत्रस्थ एव हृदयेशयः शंकुरिवोद्धृत्य दूरीकृतः ।

[अस्माभिरेव दृढीकृता] स्यात् । तथा च राक्षसोपरि पातितं तदयशः परिहृतं स्यात् । तच्चानिष्टम् । राज्यार्द्धप्रदाने तव कृत्स्ननन्दराज्यलाभार्थमुपांशुकृतोऽपि पर्वतकवधो व्यर्थः स्यात् । कृतघ्नतामात्रं फलं यस्य तथोक्तः केवलं स्यात् । किं तया राक्षससाचिव्यलाभविकलया कृतघ्नतया फलम् । अतो मलयकेतूपेक्षणमेव वरम् । अनया प्रकृतया राजकार्यसंविधानप्रणाल्या राक्षसोपसंग्रहसाधकमित्याशयः। कृतघ्नतामात्रफलः स्यादिति । तव संपूर्णनन्दजन्यफलो न स्यादिति भावः ।

अत्र तावदेवमिति । अत्र मलयकेतूपेक्षणे तावदेवमुत्तरं भवतु । राक्षसोपेक्षणं तु सर्वथाऽनुचितमिति राक्षसपक्षपातं दर्शयन्निवाह । **अत्रेत्यादि** । [शीलज्ञानां सच्चरितं जानतां । सहायसंपत्पुरुषबलं तया । अन्तः प्रकोपमन्तर्वर्तिनां पुरोहितामात्यादीनां सेनापत्यादीनां चानुरक्तेर्भ्रंशनम् । हृदये शेते हृदयेशयः ।]

---

1. स्वयं हस्त, 2 विनाशे कृतघ्नतामात्रपरिहारः स्यात्, 3. वृषल रा०; राक्षसोपि खलु निजस्वा०, 4. एवात्र, 5. कोषबलवान्, 6. बाह्यार्थं विकुर्वन्नपि; बाह्यमर्थं, विद्वन्नपि, 7. न दुःखसाध्यो भविष्यतीत्यतोपक्रामन्नुपेक्षितः । **राजा**—तत्किमर्थमिहस्थ एवोपायैर्नोपक्रान्तः ।। **चाण०**—अथ कथमपक्रान्तो भविष्यति । ननूपायैरेवासौ हृदयेशयः शंकुरिवोद्धृत्य दूरीकृतः । दूराकरणस्य चोक्तं प्रयोजन् ।

CHA'N.—In case he was not allowed to escape, there were two courses open—to punish him or to give him half the kingdom as promised. To have punished him would have been ourselves giving support to (the supposition) that the murder of Parvataka was an act of ingratitude perpetrated by us. On the other hand, had the promised half of the kingdom been given him, the only result of the assassination of Parvataka would have been the sin of ingratitude. For these reasons I suffered Malayaketu to escape.

KING—This is your explanation in this case. Then again you neglected to take proper steps against Rākshasa who was living here. What has Your Honour to say to this?

CHA'N.—Rākshasa on account of his unswerving devotion to his master and his long stay in one place enjoys the perfect confidence of the subjects who are attached to the Nandas and who know the character of persons; he is endowed with intelligence and valour, is strong in allies and has a large treasure at his command. If, therefore, he had been allowed to remain in the city itself he would, indeed, have caused serious disturbance within. Whereas, if he were suffered to depart from the city, and then he caused disaffection abroad, it would be possible to manage him with efforts. He was therefore pulled off even as he lived here, like a dart rankling in the heart, and removed to a distance.

चाहिये। सो—मैंने कौमुदी-महोत्सव रोक दिया।

राजा—आचार्य, अभी तो इस मामले में पूछने को बहुत-कुछ बाकी है।

चाणक्य—बेखटके पूछो, चन्द्रगुप्त। मुझे भी बहुत-कुछ कहना बाकी है।

राजा—इस सारी मुसीबत की जड़ था मलयकेतु, जब वह शहर छोड़ रहा था, आपने उसे जाने क्यों दिया?

चाणक्य—तुम कहोगे—उस पर कड़ी निगरानी रखता। उस अवस्था में हमारे लिये दो रास्ते थे—या तो उसे पकड़कर अन्दर कर दिया जाय या फिर उसका आधा राज्य अपने दिये वचन के अनुसार उसे दे दिया जाय। पकड़कर जेल डालने का मतलब होता कि 'पर्वतक को सचमुच हमने ही मरवाया है' इस बात पर हम अपने दस्तखत कर रहे हैं! और अपने वचन को पूरा करते हुए यदि उसे उसका वह राज्यार्ध लौटा देते तो उसका अर्थ भी यही निकलता कि पर्वतक के वध का फलित भी कृतघ्नता ही है। ये कारण थे कि मैंने शहर छोड़ते मलयकेतु की उपेक्षा की।

चन्द्रगुप्त—ठीक है। किन्तु राक्षस भी यहीं था। उसकी उपेक्षा का क्या उत्तर है महामंत्री के पास?

चाणक्य—राक्षस की बात कुछ अलग है। नन्द में उसकी अविचल भक्ति है। कितने ही काल तक वह एक ही स्थान में (यहाँ) रहा जिसके कारण शहर में रहने वाले अनुयायिओं का वह परम-विश्वासपात्र बन चुका है, और फिर

राजा—आर्य, कस्माद्विक्रम्य न गृहीतः ?

चाण०—राक्षसः[1] खल्वसौ । विक्रम्य गृह्यमाणो युष्मद्बलानि बहूनि नाशयेत्स्वयं वा विनश्येत् । एवं सत्युभयथापि दोषः । पश्य—

स हि भृशमभियुक्तो[2] यद्युपेयाद्विनाशं
ननु वृषल वियुक्त[3]स्तादृशेनासि पुंसा ।
अथ तव बलमुख्यान्घातयेत्सापि[4] पीडा
वनगज[5] इव तस्मात्सोऽभ्युपायैर्विनेयः ॥ २५ ॥

राजा—न शक्नुमो वयमार्यस्य वाचा वाचमतिशयितुम् । सर्वथा अमात्यराक्षस एवात्र प्रशस्यतरः ।

चाण०—(सक्रोधम्) न भवानिति वाक्यशेषः[6] । भो वृषल, तेन किं कृतम् ?

[**स इति** । स राक्षसोऽत्यन्तं पीडितः सन् । हे वृषल तादृशेन तादृग्गुणवता कार्यधुरन्धरेण पुरुषेण वियुक्तोऽसि भविष्यसि । यदस्माकमनिष्टतमम् । अथेति पक्षान्तरे । तवप्रधानयोधान् घातयेत् सापि पीडास्माकं हानिकारिणीत्यर्थः ॥२५॥]

न शक्नुम इति । मया क्वचित्कार्यविरोधे पृष्टे मतिबलेन केवलं समाधत्से राक्षसोपेक्षणं तु सर्वथानुचितमिति भावः । **न भवानिति** । वाक्यशेषो मास्तु नाम । तस्मिन्को गुणो दृष्ट इति पृच्छति मा तावदिति ।

---

1. अस्मात्प्राक्—वृषल, 2. उपयुक्तः, 3. वियोगः—नापि, 4. नाशयेत्, 5. नवगज, 6. अस्मात्परं—मा तावदेनम् । मा तावदेवम् ।

KING—Sir, why did you not capture him by force?

CHA'N.—He is Rākshasa, mind you. Had we used violence against him, he would have destroyed many of your soldiers, or, found death himself—an unwelcome result in either case. See,

If being hard-pressed he were to meet with his end, then, O Vṛshala, you would, indeed, have lost such a great person (of such sterling worth); if on the other hand, he were to destroy the flower of your army, that too would have been a serious injury. He must, therefore, be trained (won over) with stratagems like an elephant of the forest. (25)

KING—We are unable to surpass Your Honour in arguing (Lit. make our speech surpass that of Your Honour). But after all, Rākshasa is more praiseworthy.

CHA'N.—(*In anger*) "not you" is the remaining part of the sentence. O Vṛshala, what has he done?

उसमें अपनी बुद्धि भी है, पौरुष भी है, एक अच्छा-ख़ासा मित्रवर्ग, और धन-सम्पद् उसके हाथ में है। ऐसे आदमी को यदि यहाँ राजधानी में रहने दिया जाता तो वह बड़ी गड़बड़ पैदा कर देता—अन्दर-ही-अन्दर से तूफान खड़ा कर देता; दूसरी ओर यदि उसे हम निकाल बाहर करते, तो उसका परिणाम यह होता कि वह बाहर जाकर हमारे विरुद्ध तूफ़ान खड़ा कर देता जिसका इलाज हम कुछ भी कर सकते तो निहायत मुश्किल के साथ। यही कारण था कि हमने उसे—यहीं रहते हुए बड़े ढंग से (हृदय में जा चुभे शल्य के समान) निकालकर परे कर दिया।

राजा—लेकिन प्रभु-शक्ति के द्वारा भी तो उसे पकड़ा जा सकता था।

चाणक्य—भाई, तुम भूल जाते हो वह आखिर राक्षस है, ताक़त सामने दिखाई देने पर तुम्हारी अपनी ही कितनी सेनाओं को नष्ट कर देता या फिर खुद को ख़त्म कर लेता। जो दोनों ही (चीजें) हमारे लिए बुरी होतीं। क्योंकि—लड़ाई में बुरी तरह जूझकर खुद मर जाय, तो ऐसे एक योग्य व्यक्ति से तुम वञ्चित हो जाओगे। और अगर हमारे ही चुने-चुने वीरों को मार गिराये, वह भी हमारा ही नुकसान होगा। जंगली हाथी को जिस प्रकार कुशलता-पूर्वक वश में लाया जा सकता है, राक्षस की भी वही स्थिति है। (२५)

चन्द्रगुप्त—हम आचार्य की युक्तियों का उत्तर युक्तियों से तो दे नहीं सकते। किन्तु, सबकुछ देख-भालकर, लगता यही है कि अमात्य आचार्य से बाज़ी मार ले गया।

चाणक्य—और क्या। जनाब वृषल नहीं (मारा गया)? इतना और मैं भी जोड़ दूँ। किन्तु नहीं; चन्द्रगुप्त, कौन-से मैदान मार लिये उसने?

राजा—यदि न ज्ञायते तदा[1] श्रूयताम् । तेन खलु महात्मना—

लब्धायां पुरि यावदिच्छमुषितं कृत्वा पदं नो गले
व्याघातो जयघोषणादिषु बलादस्मद्बलानां कृतः ।
अत्यर्थं विपुलैः स्वनीति[2]विभवैः संमोहमापादिता
विश्वास्येष्वपि विश्वसन्ति मतयो न स्वेषु वर्गेषु[3] नः ॥ २६ ॥

चाण०—(विहस्य) एतत्कृतं राक्षसेन[4] । वृषल, मया पुनर्ज्ञातं नन्दमिव भवन्तमुद्धृत्य भवानिव भूतले मलयकेतू राजाधि[5]राजपदे नियोजित इति ।

राजा—अन्ये[6]नैवेदमनुष्ठितं किमत्रार्यस्य ।

चाण०—हे मत्सनिन्,

लब्धायामिति । [नः गले पदं कृत्वा लब्धायां पुरि यावदिच्छमुषितम् । अस्मद्बलानां जयघोषणादिषु व्याघातः कृतः ।] अस्यायमर्थः । अस्माभिर्निरुद्धासारप्रसारतया बलवदुपनिरुद्धं पुरमसुरक्षं पश्यन्नभयमस्मत्तो याचमान इव पुरमस्मदधीनं कर्तुमस्मद्बलान्यन्तः प्रवेश्याभिलब्धायां वशीकृतायां पुर्यस्मदीयजयापादनघोषणाय प्रवृत्तान्यपि तानि बलानि बलाद्व्याहृत्य निगृह्य बहिः स्थितान्बलवतोऽप्यस्मानगणयन्नस्मदुपांशुवधाय विषकन्यानियोजनकूटतोरणशयनगृहनिर्माणादिस्वकार्यसाधनपर्यन्तमन्तर्नगर एव कंचित्कालं स्वच्छन्दमुषितवान् । अनन्तरमुपांशु सुरङ्गया सर्वार्थसिद्धिमपवाह्य स्वयमपि निर्गत्य बहिः सुहृद्बलमुत्थाप्य पुनरप्यस्मानभियोक्तुमुद्यतः । [अत्यर्थमिति] एवं विपुलैः स्वनीतिविभवैरनेन [अत्यर्थं संमोहमापादिताः] संमोहिता अस्मन्मतयो विश्वास्येष्वपि जीवसिद्धिभागुरायणप्रभृतिषु स्वेषु वर्गेषु न विश्वसन्ति यतो वयं तानपि पुरान्निःसारितवन्त इत्यहो मतिमानतिशूरः साहसी महात्मा राक्षस इति ॥ २६ ॥

विहस्येत्यादि । इदं राक्षसनीतिविभवाधिक्षेपार्थं सोत्प्रासवचनं स्वशक्तिशंसनव्यवसायः । नन्दोद्धरणमौर्याधिराज्यस्थापनहेतोः स्वशक्तेः प्रशंसनात् । अन्येनैवेदमिति । इदं नन्दोद्धरणमित्यर्थः । इयं गुरुतिरस्कृतिर्द्रवः । हे मत्सरिन्निति । मत्सरः परोत्कर्षासहनम् ।

---

1. एतदन्तं वाक्यं नास्ति क्वचित्, 2. सुनी, 3. वर्ग्येषु, मार्गेषु 4. एतदनन्तरं—**राजा**—अथ किम् एतत्कृतममात्यराक्षसेन; **चाण०**—वृषल, 5. अधिराज्यपदे, ०केतुरधिराज्यमारोपितः, 6. सूपालभ्य; आर्य दैवेनेद० ।

KING—If you cannot know it yourself, then hear it from me. He, a magnanimous soul,

Dwelt in the city, which had been captured by us, as long as he liked planting his foot on our neck, (*i. e.* quite in defiance of us) and forcibly offered resistance to the proclamation of victory, &c. made by our forces. Thus my mind thrown into great bewilderment by the manifold magnificence of his statecraft has no confidence even in our own trusty adherents. (26)

CHA'N.—(*Laughing*) This it was that was done by Rākshasa! I, however, thought he had invested Malayaketu with the post of sovereign of sovereigns on earth like you, having uprooted you as (I did) the Nandas.

KING—It was another that did this; what has Your Honour to boast of in this?

CHA'N.—O you malicious creature,

चन्द्रगुप्त—मन्त्रिवर को स्वयं मालूम नहीं, तो मैं ही सब कहे देता हूँ: कितना बड़ा आदमी है वह—

नगर पर कब्जा हमारा था, किन्तु वह जबतक रहा, स्वच्छन्दतापूर्वक रहा और हमारी गर्दन पर पैर धरकर रहा। हमारी सेनाओं के जयघोष में उसने सदा विघ्न ही उपस्थित किये। उसकी मति का कोई वार-पार ही नहीं था कि सदा हम ही विमूढ़ बनते रहें। और आज स्थिति हमारी यह बन चुकी है कि हमें अपने ही विश्वासपात्र मित्रों पर विश्वास नहीं है। (२६)

चाणक्य—(हंसते हुए) तो ये मैदान मारे राक्षस ने? मैं तो सोच रहा था, चन्द्रगुप्त, कि तुम कहोगे—कि जैसे मैंने नन्द-वंश को उखाड़ा और तुम्हारी प्रतिष्ठा की, वैसे ही, शायद, उधर राक्षस ने (तुम्हें उखाड़कर) मलयकेतु को प्रतिष्ठित करते हुए यही-कुछ कर दिखाया है!

राजा—इसका श्रेय तो किसी और को है; जनाब का इसमें क्या हाथ था?

चाणक्य—ओ इर्ष्या के पुतले—

आरुह्यारूढकोपस्फुरणविषमिताग्राङ्गुलीमुक्तचूडां
लोकप्रत्यक्षमुग्रां सकलरिपुकुलोत्साद[1]दीर्घां प्रतिज्ञाम् ।
केनान्येनावलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते
नन्दाः पर्यायिभूताः[2] पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य ॥ २७ ॥

अपि च—

difficult words गृध्रै[3]राबद्धचक्रं वियति विचलितै[4]र्दीर्घनिष्कम्पपक्षैर्
धूमैर्ध्वस्तार्कभासां सघनमिव दिशां मण्डलं दर्शयन्तः ।
नन्दैरानन्दयन्तः[5] पितृवननिलयान्प्राणिनः पश्य चैतान्
प्रज्वलित निर्वान्त्यद्यापि नैते स्रुतबहलवसावाहिनो[6] हव्यवाहाः ॥ २८ ॥

राजा—अन्येनैवेदमनुष्ठितम् ।

आरुह्यारूढेति [आरूढं यः कोपस्तस्य स्फुरणेन] प्रवृद्धकोपावेशेन विषमिताभिर्विसंष्ठुलं प्रचलिताभिरग्रारंगुलीभिरंगुल्यग्रैर्मुक्ता चूडा शिखा यस्याम् । सकलानां रिपूणामुत्सादनाय कालविलम्बात्प्रतिज्ञाया दीर्घत्वम् । [यद्वा दीर्घां महतीं कठिनामिति यावत् ।] ईदृशीमुग्रां [घोरामुत्सादकारित्वात्] प्रतिज्ञामारुह्य कृत्वा केनान्येन [नवाधिका नवतिः नवनवतिः । नवनवतिसंख्यकानि शतानि । शाकपार्थिवादिः । नव० नि द्रव्यकोटयः तासामीश्वराः] नन्दाः पर्यायभूता एकस्यां तस्यां दामनिबद्धाः पशव इव क्रमेण हता इत्यन्वयः । पश्यतो राक्षसस्य पश्यन्तं राक्षसमनादृत्येर्थः । 'षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी ॥ २७ ॥

गृध्रैरिति । वियति आबद्धचक्रं विरचितमण्डलं यथा तथा विचलितैर्दीर्घा निष्कम्पाः पक्षा येषां तैर्गृध्रैरेव धूमैरिति व्यस्तरूपकम् । चिताग्नीनां ज्वलदङ्गारमात्रशेषतया सहजधूमाभावात् गृध्रा एव धूमत्वेन निरूपिताः । तैर्गृध्रधूमैर्ध्वस्तार्कभासां तिरोहित सूर्यतेजसां दिशां मण्डलं सघनमिव मेघमण्डलप्रच्छादितमिवेत्युत्प्रेक्षा । दर्शयन्तः । बहलवसावशेषैर्नन्दैः श्मशाननिलयान्प्रेतवृकादीन् । एतान्प्राणिनः प्रीणयन्तः एते परितः श्मशानेषु दृश्यमाना हव्यवाहा अद्यापि न निर्वान्ति न शाम्यन्ति । पश्य चेति वाक्यार्थः कर्म । अतिक्रान्तेऽपि विषये रोषावेशवशादेतानेत इति च बुद्धौ प्रत्यक्षीकृत्य निर्देशः । नन्दकुलनिर्दहेनक्रोधोद्यापि न शान्त इत्यर्थः । अयं वधरूपो विद्रवः ॥ २८ ॥

---

1. च्छेद, 2. शूराः (सूनाः ?), 3. रारब्ध०, 4. चलतया; वलनया; विचलितोद्दी०, 5. नन्दानां न परितः 6. गन्धिनः ।

By whom else, having made a dreadful vow in the presence of the people, difficult (lit. long) to be performed on account of the *whole race* of enemies having to be destroyed and in which the knot of hair was loosened by the tips of fingers forcibly agitated by the flashing of anger that was rising within, were the proud nine Nandas, the well known lords of ninety-nine crores (of gold coins), killed in succession like so many beasts under the very eyes of Rākshasa ? (27)

Moreover,

Behold these funeral fires, which containing in them a large store of marrow dripped down, do not cease to burn even yet making the circle of directions appear as if overcast with clouds owing to the rays of the sun being obscured by the smoke-like vultures wheeling round in circles in the sky with their outstretched and motionless wings, and entertaining the animals that haunt the cemetery with a feast on the Nandas. (28)

KING—All this was brought about by some one else.

कौन था वह जिसने सारी दुनिया के सामने शत्रु के सम्पूर्ण वंश को नष्ट करने की घोर प्रतिज्ञा की थी और इस प्रतिज्ञा को पूरा भी कर दिखाया था ? और वह प्रतिज्ञा धारण करते समय भी शिखा-विमोचन जिसने अन्तः-कोप के विस्फुरण से काँप रही अंगुलियों ने किया था (मज़ाक में नहीं)। कौन था वह, जो निन्यानवे करोड़ की सम्पत्ति के स्वामी नन्दों को यूँही हड़प गया था—और राक्षस के देखते-देखते ही हड़प गया था, जैसे सब-के-सब, बली के पशु हों ! (२७)

और—

देख रहे हो इन अग्नि की लपटों को जो आज भी बुझने में नहीं आ रहीं ? आज भी कितनी चरबी भरी हुई है इनमें। श्मशान-भूमि में रहने वाले पशुओं का अब भी मेला लगा रहता है—सदा एक अखण्ड सत्र-सा जुड़ा रहता है। धुआं उठ रहा है और सूर्य-मण्डल को ढंक रहा है, जैसे सब तरफ बादल-ही-बादल छाये हुए हों। और आसमान में, वह देखो, गिद्धों ने मण्डल बाँध लिया है—अपने लम्बे-लम्बे पंखों को निष्कम्प स्थिति में लाकर फैलाते हुए। यह सब क्यों ? (२८)

चन्द्रगुप्त—सब ठीक है, किन्तु यह सब किसी और की करनी थी।

चाण०—आः केन ?

राजा—नन्दकुलविद्वेषिणा दैवेन ।

चाण०—दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति ।

राजा—विद्वांसोऽप्यविकत्थना भवन्ति ।

चाण०—(सकोपम्[1]) वृषल, भृत्यमिव मामारोढुमिच्छसि ।

शिखां मोक्तुं बद्धामपि[2] पुनरयं धावति करः
(भूमौ पादं प्रहृत्य)
प्रतिज्ञामारोढुं पुनरपि चलत्येष[3] चरणः ।
प्रणाशान्नन्दानां प्रशममुपयातं[4] त्वमधुना
परीतः कालेन ज्वलयसि मम[5] क्रोधदहनम् ॥ २९ ॥

राजा—(सावेगमात्मगतम्[6]) अये कथं सत्यमेवार्यः कुपितः । तथाहि—

संरम्भ[7]स्पन्दिपक्ष्मक्षरदमलजलक्षालनक्षामयापि
भ्रूभङ्गोद्भेदधूमं ज्वलितमिव पुरः पिङ्गया नेत्रभासा ।

आः केनेति । इयं तर्जनरूपा द्युतिः । **नन्दकुलविद्वेषिणा दैवेनेति** । एतदादि क्रोधसंरब्धयोरन्योन्याधिक्षेपे विरोधनम् । **आरोढुमिच्छसीति** । अधिक्षेप्तुं प्रवर्तस इत्यर्थः ।

शिखामिति । तीर्णप्रतिज्ञत्वाद्बद्धुमिष्टामपि न बध्नामीत्यर्थः । शिखाया अद्यापि न बद्धत्वान्निर्वहणान्ते भंत्स्यमानत्वात् । तीर्णप्रतिज्ञेन मया केवलं बध्यते शिखेति वक्ष्यति । **प्रतिज्ञामारोढुमिति** । कालेन मृत्युना परीतः वशीकृत इवेति लुप्तोपमा । न तु त्वं कालपरीतः चिरंजीवित्वेन वर्धिष्णुत्वादितिभावः । अत्र वीरो रसः स्थायी क्रोधेनानुभावेन पौष्कल्यं नीतः ॥ २९ ॥

[आवेगेन मनःसंभ्रमेण सहितं यथा तथा सावगेम्]

अये कथं सत्यमेवार्यः कुपित इति । मया तदाज्ञयैव कार्यानुरोधकैतवेन कोपितोऽपीति शेषः ।

संरम्भोत्स्पन्दीति । संरम्भेण क्रोधावेशेनोत्स्पन्दीन्युच्चलितानि पक्ष्माणि यस्याः । अत एव [यद्वा संरम्भस्पन्दीनि पक्ष्माणि तेभ्यः] क्षरता गलतामलजनेन

---

1. कोपं नाटयित्वा, नाटयन्, 2. मुक्तामपि, 3. त्येव, 4. यान्तं, 5. पुनः, 6. स्वग०, सोद्वेगम्, 7. म्भास्पन्दि, –भोत्स्यन्दि ।

Cha'n.—By whom then?

King—By fate which bore inveterate hatred to the family of the Nandas.

Cha'n.—The illiterate alone believe in fate.

King—The literate too are not given to boasting.

Cha'n.—(*In anger*) Vṛshala, you wish to override me like a common servant.

My hand again runs to loosen the knot of hair though (wished to be) tied up. (*Stamping the ground with his foot*).

This foot moves forth to enter upon another vow. Being doomed by the god of death you now inflame the fire of my wrath that was extinguished by the destruction of the Nandas. (29)

King—(*In alarm to himself*) Ah! How is it that His Honour is really angry, For,

चाणक्य—किसकी ?

चद्रगुप्त—नन्दवंश के शत्रु 'भाग्य' की।

चाणक्य—भाग्य पर तो मूर्खों का विश्वास हुआ करता है।

चन्द्रगुप्त—किन्तु समझदार भी तो आत्मश्लाघी नहीं हुआ करते।

चाणक्य—(रोष में) चन्द्रगुप्त, मुझे अपना कोई दो-कौड़ी का (नौकर) समझ रखा है कि छाती पर ही चढ़ते आते हो—एक बार खुल चुकी शिखा को फिर खोल देने को यह हाथ जैसे आज फिर व्याकुल हो रहा है (भूमि पर जोर से पैर मारते हुए) और नयी प्रतिज्ञा करने के लिए, इस मेरे चरण में फिर से गति आ गई है; जो मेरी क्रोधाग्नि नन्दों से विनाश के पश्चात् शान्त हो चुकी थी—काल ने तेरा दिमाग़ फेर दिया है—तू है कि उसे फिर से जलाने की कोशिश कर रहा है। (२९)

चन्द्रगुप्त—(उद्विग्नता के साथ, मन-ही-मन) अरे, क्या सचमुच ही आचार्य कुपित हो गये ?

मन्ये रुद्रस्य रौद्रं रसमभिनयतस्ताण्डवेषु स्मरन्त्या
सञ्जातोग्रप्रकम्पं[1] कथमपि धरया धारितः पादघातः ॥ ३० ॥

चाण०—(कृतककोपं संहृत्य) वृषल वृषल, अलमुत्तरोत्तरेण। यद्यस्मत्तो गरीया[2]न्राक्षसोऽवगम्यते तदिदं शस्त्रं तस्मै दीयताम्। (इति शस्त्रमुत्सृज्योत्थाय चाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा स्वगतम्) राक्षस राक्षस, एष भवतः कौटिल्यबुद्धिविजिगीषोर्बुद्धेः प्रकर्षः।

चाणक्यतश्चलितभक्तिमहं[3] सुखेन
जेष्यामि मौर्यमिति संप्रति यः प्रयुक्तः।
(भेदः किलैष भवतां सकलः स एव
संपत्स्यते शठ[4] तवैव हि दूषणाय ॥ ३१ ॥)

(इति निष्क्रान्तः)

राजा—आर्य वैहीनरे, अतःप्रभृत्यनादृत्य चाणक्यं चन्द्रगुप्तः स्वयमेव राज्यं[5] करिष्यतीति गृहीतार्थाः क्रियन्तां प्रकृतयः।

क्रोधाश्रुणा यत्क्षालनं तेन क्षामया रूक्षयापि क्रोधावेशात्पिङ्गयारुणया नेत्रभासा कर्त्र्या। भ्रूभङ्गोद्भेदः क्रोधजनितभ्रूविकारविशेषः स एव धूमो यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा पुरोभागे ज्वलितमिव दीप्तमिव। भावे क्तः। वह्नेर्ज्वलदवस्थायां धूम उद्गच्छतीति वस्तुस्थितिः। ताण्डवेषु पुरुषकर्तृकनृत्याविशेषेषु रौद्रं रसमभिनयतः अभिनीय दर्शयतः रुद्रस्य स्मरन्त्याः। अधीगर्थदयेशां कर्मणीति षष्ठी। धरया पृथिव्या सञ्जातोग्रप्रकम्पं यथा तथा कथमपि कृच्छ्रादार्यस्य पादघातो धारित इत्यन्वयः। रौद्रताण्डवकारिणो रुद्रस्यपादघात इवातिक्रूरश्चाणक्यपादघात इति रौद्रो रसः। वीररसोऽङ्गम्। इयमुद्वेजनरूपा द्युतिः॥ ३०॥

चाणक्यत इति । [हे शठ, अहं चाणक्यतः चलिता भक्तिर्यस्य तं मौर्यं सुखेन जेष्यामि इति भवता संप्रति यः भेदः प्रयुक्तः स किल तवैव दूषणाय विद्यातान संपत्स्यते हि इत्यन्वयः] दूषणायानिष्टायेत्यर्थः। इदं स्वगुणाविष्करणं विचलनम्॥ ३१॥

---

1. तोग्रप्रक०, 2. वरीयान्, 3. स्ख०, 4. बत, स तु, 5. राज्यकार्याणि; राजा कार्याणि।

His ruddy eyes though dimmed by being washed by the clear water dropping from the eyelids raised up in anger flashed forth, as it were, fire, in which the knittings of the eyebrows appeared like smoke; and methinks, the stamping of his foot was borne with difficulty and with a fearful quaking by the Earth, who must have remembered Rudra exhibiting in his frantic dances the sentiment of terror. (30)

CHA'N.—(*Checking his pretended anger*) Vṛshala, enough of bandying words. If you think Rākshasa is superior to me give him this sword. (*He throws down the sword; then rising and fixing his eyes on vacancy; to himself*) Bākshasa, Rākshasa, this is, indeed, the height of your intellect in your desire to outdo the genius of Kauṭilya!

The whole plan of dissension which has now been devised by you, thinking that you would very easily conquer Maurya when he has swerved from his devotion to Chāṇakya, will end O cunning one, in your own conviction. (31) [*Exit*

KING—Venerable Vaihīnari, let it be proclaimed to the subjects that henceforward Chandragupta himself will rule disregarding (independently of) Chāṇakya.

आख्यान है कि कभी रुद्र भगवान् ने ताण्डव-नृत्यों में रौद्ररस का अभिनय किया था। उसीका स्मरण, आज लगता है धरती को ताज़ा हो आया था जब आचार्य के पदाघात से उसमें अभी कुछ भयावह कम्पन-सा अनुभव होने लगा था। रुद्र की वह आग उगलती लाल-लाल आंख, वह भवों की वक्रता—जिसमें उस आग का ही, मानों धुआँ हो। आग-ही-आग उगलती हुई आचार्य की वह आंख जिसमें कोप के कारण स्पन्दमान आंखों से निकला वह विमल जल उसीको जैसे निरन्तर बुझाने की कर रहा था। (३०)

चाणक्य—(कृतक कोप को शान्त करते हुए) चन्द्रगुप्त, इस उत्तर-प्रत्युत्तर से क्या बनेगा ? अगर सचमुच तेरी निगाह में राक्षस मुझसे बढ़-चढ़कर है, तो यह लो—यह मेरी तलवार उसीको दे देना। (तलवार छोड़कर, शून्य में दृष्टि बाँधते हुए, मन-ही-मन) राक्षस, यह था तुम्हारी—कौटिल्य की बुद्धि को मात देने वाली—बुद्धि का प्रकर्ष।

यह जो तुमने आज चाल चली कि चाणक्य के प्रति जब, इस प्रकार, चन्द्रगुप्त की भक्ति डांवाडोल हो जाएगी; मैं आसानी से विजय पा लूंगा—सारी चाल यह, हे धूर्त, अब स्वयं तेरे को ही पकड़ने के लिए मेरे हाथ में एक शस्त्र बन जायगी। ज़रा देखता चल। (३१) (बाहर चला जाता है)

राजा—वैहीनरि चाचा, प्रजाजनों में घोषणा करदो कि आज से चन्द्रगुप्त चाणक्य की कुछ भी परवा न करता हुआ, स्वयं राज्य-शासन संभालेगा।

कञ्चु०—(आत्मगतम्) कथं निरुपपदमेव चाणक्यमिति नायंचाणक्यमिति । हन्त संगृहीतो[1]ऽधिकारः । अथ वा न खल्वत्रवस्तुनि देवदोषः[2] । कुतः—

स दोषः सचिवस्यैव यदसत्कुरुते नृपः ।
याति यन्तुः प्रमादेन गजो व्यालत्ववाच्यताम् ॥ ३२ ॥

राजा—आर्य, किं विचारयसि ?

कञ्चु०—देव न किंचित्[3] । दिष्टया देव इदानीं देवः संवृत्तः । (निष्क्रान्तः)

राजा—(आत्मगतम्) एवमस्मासु गृह्यमाणेषु स्वकार्यसिद्धिकामः सकामो भवत्वार्यः (प्रकाशम्) शोणोत्तरे, अनेन शुष्ककलहेन शिरोवेदना[1] मां बाधते । शयनगृहमादेशय ।

प्रति०—एतु एतु देवः । (एदु एदु देवो) ।

राजा—(आत्मगतम्[5])

आर्याज्ञयैव मम लंघितगौरवस्य
बुद्धिः प्रवेष्टुमिव[6] भूविवरं प्रवृत्ता ।

स दोष इति । नृपः सचिवमसत्कुरुते नाद्रियते । आदरानादरयोः सदसती । इति यत्स सचिवस्यैव दोषः न नृपस्य । व्यालत्वेन दुष्टगजत्वेन गजः वाच्यतां निन्द्यतां यन्तुः प्रमादेनैव याति न स्वतः । यन्ता शिक्षणेऽवहितश्चेद्गजोपि विनोती वशोभवतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ **एवमिति** । एवमावयोः कृतेपि विरोधे लोकैस्तथ्यत्वेन गृहीते आर्यचिकीर्षितो मलयकेतुराक्षसयोर्विरोधः सुष्ठु संपत्स्यत इति भावः । इदं सिद्धवद्भाविश्रेयःकथनं प्ररोचना ।

---

1. संहृतोधिकारी सत्यं संहृताधि०, 2. देवं दोषेणावगन्तुमर्हामि, 3. किञ्चिद्विचारयामि; किन्वेतच्चिन्तयामि; दिष्टया, 4. शिरोव्यथा, 5. आसनादुत्थायात्म०, 6. मवनेर्वि० ।

Chamb.—(*To himself*) How is it that he calls him Chāṇakya, without any epithet of respect, and not as His Honour Chāṇakya. Alas ! Authority has been withdrawn from him. Or in this matter His Majesty is not to blame. For,

It is the fault of the minister himself if the king dishonours him. An elephant comes to be censured as a vicious animal through the carelessness of the driver. (32)

King—Venerable sir, what are you thinking of ?

Chamb.—Nothing, Sire. I am glad Your Majesty has now become a king in reality.

King—(*Aside*) By our being looked on in this light (*i. e.*, as independent) let His Honour wishing to accomplish his object realize his desire. (*Aloud*) Śoṇottarā, I have got a headache on account of this useless quarrel. Lead the way to the bed-chamber.

Fem. Door-keeper—Come, my lord, come.

King—(*To himself*)

कंचुकी—(मन-ही-मन) सिर्फ चाणक्य, न आचार्य, न गुरुवर ? अर्थात् आज से गुरुदेव के सब अधिकार खत्म हो गये। किन्तु इसमें महाराज का दोष भी क्या हो सकता है ?—राजा यदि कुछ गलती कर बैठता है तो वह दोष भी तो मन्त्री का ही होता है (राजा का नहीं)। हाथी जब बिगड़ खड़ा होता है, दोष सभी कोई महावत के मत्थे ही मढ़ते हैं। (३२)

राजा—क्या सोच रहे हो, चाचा ?

कंचुकी—कुछ भी नहीं, महाराज, बस यही कि आज से ही महाराज सचमुच महाराज बने हैं। (चला जाता है)

राजा—(मन-ही-मन) लोगों में मेरी इस प्रसिद्धि से आचार्य को जो कुछ सिद्ध करना अभीष्ट हो, कर लें। (व्यक्त) शोणोत्तर, इस सूखी कलह से मुझे तो भारी सिर-दर्द ही हो गया। मुझे शयनगृह की ओर ले चलो जरा।

प्रतीहारी—आइये, आइये, महाराज।

ये सत्यमेव हि[1] गुरूनतिपातयन्ति
तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा ॥ ३३ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति कृतक[2]कलहो नाम तृतीयोऽङ्कः ।

आर्याज्ञयैवेति । [आर्यस्य चाणक्यस्य आज्ञया एव लङ्घितं गौरवं गुरौ उचित आदरः येन तस्य मम बुद्धिः] भूविवरं प्रवेष्टुं लज्जातिशयेन स्वविलयमभ्युपगन्तुमिव प्रवृत्तेत्यर्थः । ये सत्यमेव गुरूनतिपातयन्ति अवजानन्ति लज्जा तेषां हृदयं कथं न भिनत्ति नु ।] इत्थमत्र नियताप्तिः प्रदर्शिता ॥ ३३ ॥

इति श्रीत्र्यम्बकयज्वप्रभुवर्याश्रितढुण्ढिराजव्यासयज्वविरचिते
मुद्राराक्षसनाटकव्याख्याने तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ।

---

[1] न गुरून्प्रतिमानयन्ति, [2] मुद्रारा० नाटके कृत० ।

My mind has as it were begun to enter the very cavity of the earth though I overstepped the limits of respectfulness by the command of His Honour himself. How, indeed, does not shame rend the hearts of those who really (wantonly) slight their preceptors? (33) [*Exeunt Omnes.*

END OF ACT III.

राजा—(मन-ही-मन) यह सदाचार-उल्लंघन मैंने फिर आचार्य की आज्ञा से ही किया था; फिर भी मेरी बुद्धि पृथ्वी में मुंह छिपाने को आकुल है। किन्तु जो लोग सचमुच ही आचार्य—गुरु का अपमान करते रहते हैं, लाज स्वयं मूर्त्त होकर उनके हृदय को फाड़ क्यों नहीं देती ? (३३)

(मंच पर कोई नहीं रह जाता)

अंक ३ : कृतक-कलह : समाप्त

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यध्वगवेषः पुरुषः)

पुरु०—आश्चर्यमाश्चर्यम्। (ही हीमाणहे हीमाणहे ।)

योजनशतं समधिकं को नाम गतागतमिह करोति ॥
अस्थानगमनगुर्वी प्रभोराज्ञा यदि न भवति ॥ १ ॥

जोअणसअ[1] समहिअं को णाम गआगअमिह करेइ ।
अठ्ठाणगमणगुव्वी पहुणो अण्णा जइ ण होइ ॥ १ ॥

यावदमात्यराक्षसस्यैतद्गेहं गच्छामि । (श्रान्तवत्परिक्रम्य) कोऽत्रदौवारिकाणाम् । निवेदय भर्त्रेमात्यराक्षसाय एष करभकस्त्वरयन्पाटलिपुत्रादागत इति । (जाव[2] अमच्चरक्खसस्स एदं गेहं गच्छामि । को[3] एत्थ दुवारिआणं । णिवेदेह भट्टिणो अमच्चरक्खसस्स एसो करभओ तुवरन्तो पाटलिपुत्तआदो आगदोत्ति ।)

(प्रविश्य)

दौवारिकः—भद्र मा उच्चैः मन्त्रयस्व। एषोऽमात्यः कार्यचिन्ताजनितेन जागरेण समुत्पन्नशीर्षवेदनोऽद्यापि शयनं न मुञ्चति । तस्मात्तिष्ठ मुहूर्तम् । लब्धावसरस्तव आगमनं निवेदयामि । (भद्द मा[4] उच्चं मन्तेहि । एसो अमच्चो कज्जचिन्ताजणिदेण जाअरेण समुप्पण्णसीसवेअणो अज्जवि सअणं ण मुञ्चदि । ता चिठ्ठ मुहुत्तअं । लद्धावसरो तुह आअमणं णिवेदेमि ।)

अथ चतुर्थेऽङ्के राक्षसचारसंवादरूपाल्पा कथा प्रकरी कथ्यते । ही हीमाणहे इति। अयं निपातसमुदाय आश्चर्यद्योतकः । जोअणसअसमहिअं इति क्वचित्प्रथमपादे पाठः योजनशतसमधिकं यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । **अस्थनगमन इति** । अस्थाने अकाण्डे एव गमने प्रस्थानविषये गुर्वी अनतिक्रमणीया ॥ १ ॥

---

1. राअणिओओ महिओ (राजनियोगो महीयान्), 2. ता जाव, 3. भोः को, 4. सणेहि ।

ACT IV.

(*Enter a* MAN *in a traveller's costume*)

MAN—What wonder, oh !

Who, indeed, would undertake to go and come back again, over a hundred *yojanas* and more, if it were not for the command of the master, inviolable even when one has to go at an unseasonable hour (*i. e.*, ceaselessly or without thinking of rest) ? (1)

This is the house of minister Rākshasa. I will go there. (*Walking on like one tired*) Holla, is there any door-keeper here ? Tell your master, minister Rākshasa, that Karabhaka has come from Pāṭaliputra in great haste.

DOOR-KEEPER—(*Entering*) Good sir, do not speak so loudly. The minister who has been suffering from headache brought on by sleeplessness caused by the cares of state is yet in bed. Wait, therefore, for about an hour. When I find a suitable opportunity I will announce your arrival.

अंक—४

(पथिक के वेष में एक पुरुष)

पुरुष—हैरानी की बात है कि—

राजा के आदेश की, पता नहीं, क्य' महिमा होती है कि मनुष्य को बरबस इधर-से-उधर, उधर-से-इधर, जाना ही पड़ता है। स्वामी का भय और आदेश न हो, तो कौन समय और स्थान का विचार किये बिना घर से बाहर निकले ! (१)

ख़ैर, अब मैं सामने राक्षस के घर को जाता हूं। (थके-चूर कदमों में) अरे भाई, कोई है—कोई द्वारपाल ? जाओ, अपने स्वामी को जाकर ख़बर कर दो कि करभक आया है, और बड़ी तेज़ी में पाटलिपुत्र से चला आ रहा है।

(एक ओर से)

द्वारपाल—भैया ! ऊँचे मत बोलो। तरह-तरह के कार्यों की चिन्ता ने महामन्त्री की नींद हर ली है, और सिरदर्द पैदा कर दिया है, वह बिस्तर से उठ नहीं सकते। तनिक मुझे मौका देखने दो, तुम्हारे आने की ख़बर तुरन्त दे दूंगा।

करभकः—भद्रमुख, तथा कुरु[1] (भद्दमुह तह करेहि[2]।)

(ततः प्रविशति शयनगृहगत आसनस्थः शकटदासेन सह सचिन्तो राक्षसः)

राक्ष०—(आत्मगतम्)

मम विमृशतः कार्यारम्भे विधेरविधेयताम्
अपि च कुटिलां कौटिल्यस्य प्रचिन्तयता मतिम्।
अथ[3] च विहिते मत्कृत्यानां निकाममुपग्रहे
कथमिदमिहेत्युन्निन्द्रस्य प्रयात्यनिशं निशा[4] ॥ २ ॥

5 सन्धि मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण

अपि च—

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्-
बीजानां गर्भितानां फलमतिगहनं गूढमुद्भेदयंश्च।
कुर्वन्बुद्ध्या विमर्शं प्रसृतमपि पुनः संहरन्कार्यजातं
कर्त्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा ॥ ३ ॥

ममेति। मम कार्यारम्भे कार्यारम्भप्रभृति विधेर्दैवस्याविधेयतां [अवशंवदतां] प्रतिकूलतां विमृशतः [चिन्तयतः। तथा च चाणक्यस्य कुटिलां वक्रतया दुरधिगमां मतिं बुद्धिप्रभावं च विशेषेण चिन्तयतः। अथ च] मत्कृत्यानां विषकन्यादिकपटकार्याणामुपग्रहे निरोधे अन्यथाभावे [निकाममत्यन्तं विहिते] कथमिदमिह राजकार्यं भविष्यतीत्युन्निद्रस्य [उद्गता निद्रा यस्य तस्य उन्निद्रस्य गतनिद्रस्य मम] अनिशं निशा प्रयातीत्यन्वयः॥ २ ॥

कविरत्राद्भुततरनीतिविषयक स्वसंविधानक्लेशं राक्षसवचनव्याजेन प्रस्तौति **कार्योपक्षेपमिति**। कार्योपक्षेपं बीजन्यासं तनुं स्तोकोद्दिष्टमादौ मुखसन्धौ रचयंस्तस्य बीजस्य विस्तारं व्यक्तिं प्रतिमुखसन्धाविच्छन्कुर्वन् गर्भितस्य दृष्टनष्टस्य बीजस्य गहनं फलं गूढं यथा तथा गर्भसन्धावुद्भेदयन् अन्विष्यन्विमर्शसन्धौ तस्यैव बीजस्य बुद्ध्या विमर्शमनुसन्धानं कुर्वन् प्रसृतमपि यथायथं विप्रकीर्णमपि कार्यजातं मुखसन्ध्याद्यर्थजातं निर्वहणसन्धौ संहरन्नैकार्थ्यमुपनयन् नाटकानां कर्ता वा तथा आदौ गूढमारब्धं राजकार्यजातं अन्तरान्तरा विस्तारयन्गर्भितानां गूढानां बीजानां मन्त्राणां फलं साध्यं मुहुरुद्भेदयन् उन्नयन् बुद्ध्या विमृशंश्च आयतौ प्रसृतं शुभोदर्कं संहरन्नुपसंहरन् अस्मद्विधो मन्त्री वा महान्तमायासमनुभवतीत्यर्थः॥ ३ ॥

---

1. एसो क्खु भट्टा अमच्चरक्खसो, 2. करोमि; जधादे रोअदि, 3. अहि सुविहिते तत्कृ०;—विहते तत्कृत्या०, 4. प्रयान्य० निशाः।

MAN—Good man, do so.

(*Enter* RA`KSHASA *seated in his bed-chamber, lost in anxious thoughts,* ŚAKATADA`SA *at his side*)

RA`K.—(*To himself*)

While I reflect upon the adverseness (or, uncontrollable nature) of fate at the very outset of my scheme, and seriously take into account the crooked policy of Chāṇakya and further see how all my plans have been completely frustrated, I remain awake thinking "how is this (*i. e.* the object desired) to succeed in the face of all this ?" and thus the night even passes away. (2)

Moreover,

First of all to cast the tiny seeds of the enterprise, then to look to their development, and when the seeds have shot up, to unfold the secret deep-hidden fruit; then to lay on the plot more definitely by the force of intellect, and, finally to make the various incidents converge to the desired issue—such is the trouble which a writer of plays or a person like me (politician) has to undergo. (3)

करभक—यही ठीक रहेगा, भैया।

(शयनगृह में, कुर्सी पर बैठा हुआ, शकटदास के साथ चिन्ता में व्यग्र राक्षस)

राक्षस— (मन-ही-मन) —

किसी भी कार्य को आरम्भ करते हुए मैं सोचने लगता हूं : देखो, भाग्य मेरे विरुद्ध है और, उधर, वास्ता भी मेरा कौटिल्य की कुटिल मति से ही आन बना है। और जब देखता हूं कि मेरे काम सर्वथा निष्फल ही जा रहे हैं, मैं चिन्तित हो जाता हूं कि अब इन परिस्थितियों में यह सब कैसे चलेगा··· और, इस प्रकार, जागते-जागते ही रात व्यतीत हो जाती है। (२)

यही नहीं—

मेरे जैसे आदमी की अवस्था तो सचमुच, हमेशा एक नाटककार की-सी ही रहती है। कार्य का एक नन्हा-सा संकेत छोड़ दिया और फिर उसके विस्तार की चिन्ता की; गर्भ में, जैसे, बीज छोड़ दिया जाए और फिर उसमें प्रच्छन्न-गम्भीर फल को धीरे-धीरे बाहर लाने को करते हुए—बुद्धि के साथ उस पर फिर-फिर विमर्श······और बिखरा हुआ सब-कुछ उपसंहार में संहृत करने की चिन्ता ! (३)

तदपि नाम दुरात्मा चाणक्यबटुः—

(उपसृत्य)

दौवारिकः–जयतु (जेदु[1])

राक्ष०—अति[2]सन्धातुं शक्यः स्यात् ।

दौवा०—अमात्यः । (अमच्चो ।)

राक्ष०—(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा आत्मगतम् ।) दुरात्मा चाणक्यबटुर्जयत्वतिसन्धातुं शक्यः स्यादमात्य इति वागीश्वरी वामाक्षिस्पन्दनेन प्रस्तावगता[3] प्रतिपादयति । तथापि नोद्यमस्त्याज्यः । (प्रकाशम्) भद्र, किमसि वक्तुकामः ।

दौवा०—अमात्य, करभको द्वारि तिष्ठति । (अमच्च करभओ[4] दुआरे चिट्ठदि ।)

राक्ष०—शीघ्रं[5] प्रवेशय ।

दौवा०—तथा (इति निष्क्रम्य पुरुषमुपसृत्य) भद्र, उपसर्प अमात्यम् । (तह[6] । भद्द[7] उपसप्प अमच्चम् ।) (इति निष्क्रान्तः[8])

कर०—(उपसृत्य) जयत्वमात्यः । (जेदु[9] अमच्चो) ।

राक्ष०—भद्र[10], उपविश ।

कर०—यदमात्य आज्ञापयति । (जं अमच्चो आणवेदि ।) (इति भूमावुपविष्टः)

[अतिसन्धातुं प्रतारयितुम् ।] **वागीश्वरीति** । वागीश्वरी उपश्रुतिरूपा [वागीश्वरी वाग्देवता यद्वा ईश्वरी वाक्] वामाक्षिस्पन्दनेन प्रस्तावं संवादं गता प्राप्ता सती पूर्वोक्तमर्थं सूचयतीत्यर्थः । इदं कार्यसंग्रहणमादानं नाम विमर्शसन्धेरन्त्यमङ्गम् । चाणक्यकर्तृकस्य राक्षसातिसन्धानरूपस्य कार्यस्य राक्षसेनैव दुरूपश्रुतिदुःशकुनप्रतिपादनद्वारा संग्रहणात् । [लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुं काममनसोरपि । इति वक्तुकाम इत्यत्र तुमुनो मकारलोपः ।]

---

1. जेदु जेदु, 2. अभिसं, 3. प्रस्तावगतम्, 4. एसो क्खु करभको पाटलिपुत्तादो आअदो इच्छदि अमच्चं पेक्खिदुम्, 5. अविलम्बितं, अवारितं; प्रवेशयैनम्, 6. जं अमच्चो आणवेदिति, 7. भद्द एसो क्खु अमच्चो चिट्ठदि ता, 8. दौवारिकः इत्यधिकम्, 9. जयदु, जयदु, 10. (नाट्येनावलोक्य) करभक स्वागतम् । उपविश्यताम् ।

Would that the wicked fellow Chāṇakya—

Door-keeper—(*Entering*) Be victorious.

Ra'k.—Can still be duped ?—

Door-keeper—Minister.

Ra'k.—(*Indicating that his left eye throbbed; to himself*) The goddess of speech, as manifested in the discourse and coinciding with the throbbing of the left eye, declares that the vile Chāṇakya will be successful, and I, the minister, shall be duped. Still I must not give up my effort. (*Aloud*) Good man, what do you want to say ?

Door-keeper—Minister, Karabhaka is waiting at the door.

Ra'k.—Quickly introduce him.

Door-keeper—As you order. (*Going out and approaching the* Man) Good sir, you may see the minister. [*Exit.*

Kar.—(*Approaching*) Victory to the minister.

Ra'k.—Sit down, friend.

Kar.—As the minister commands. (*Sits on the ground*)

पर क्या यह सम्भव है कि वह दुरात्मा (चाणक्य)...

द्वारपाल—(निकट पहुंचकर) विजयी हो !

राक्षस—अब भी वश में आ जाएगा ?

द्वारपाल—अमात्य !

राक्षस—(बायीं आंख फड़क उठती है, आप-ही-आप) दुरात्मा चाणक्य विजयी हो और अमात्य वश में आ जाएगा—बायीं आंख के साथ इन दो वाक्यों के प्रासंगिक संयोग का संकेत स्पष्ट है। फिर भी, कोशिश नहीं छोड़नी चाहिए। (व्यक्त) भाई, तुम क्या कहना चाहते थे ?

द्वारपाल—स्वामी, करभक द्वार पर है—आपकी अनुमति चाहता है।

राक्षस—एकदम बुला लाओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा। (बाहर जाकर, और पुरुष के निकट पहुंचकर) आओ भैया, चलो, अमात्य के पास चलो। (और वह स्वयं निकल जाता है)

करभक—(निकट पहुंचकर) प्रणाम हो !

राक्षस—बैठो, भैया।

करभक—आपकी अनुमति से। (ज़मीन पर ही बैठ जाता है)

राक्ष०—(आत्मगतम्) कस्मिन्प्रयोजने मयायं प्रहित इति प्रयोजनानां[1] बाहुल्यान्न खल्ववधारयामि । (इति चिन्तां नाटयति)

(ततः प्रविशति वेत्रपाणिर्द्वितीयः[2] पुरुषः)

पुरुषः---अपसरत आर्या अपसरत । अपेत मानवा अपेत । किं न पश्यथ ? (ओसलेह[3] अज्जा ओसलेह । अवेह माणहे अवेह । किं ण पेक्खह ।)

दूर प्रत्यासत्तिर्दर्शनमपि दुर्लभमधन्यैः ।
कल्याणकुलधराणां देवानामिव मनुष्यदेवानाम् ॥ ४ ॥

The mountain where gods live (Meru)

दूले पच्चासत्ती दंदणमवि दुल्लहं अधण्णेहिं ।
कल्लाणकुल[4]हलाणं देआणं[5] विअ मणुस्सदेआणं ॥ ४ ॥

(आकाशे) आर्याः, किं भणथ किं निमित्तमपसारणा क्रियते इति । आर्या एष खलु कुमारो मलयकेतुः समुत्पन्नशीर्षवेदनममात्यराक्षसं प्रेक्षितुमित एवागच्छति । तस्मादपसारण क्रियते । (इति निष्क्रान्तः पुरुषः) (अज्जा किं भणाह किं णिमित्तं ओसालणा[6] करीअदित्ति । अज्जा एसो क्खु कुमालो मलयकेदू समुप्पण्णसीसवेअणं अमच्चरक्खसं पेक्खिदु[7] इदो एव आअच्छदि । ता ओसालणा करीअदि ।)

(ततः प्रविशति भागुरायणेन कञ्चुकिनो चानुगम्यमानो[8] मलयकेतुः)

मल०--(निःश्वस्यात्मगतम्) अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य । न चास्माभिर्वृथापुरुषाभिमानमुद्वहद्भिस्तमुद्दिश्य तोयाञ्जलिरप्यावर्जितः । प्रतिज्ञातमेतत्पुरस्तात्[9]--

---

आत्मगतमिति । राक्षसकरभकसंवादावसरे भागुरायणेन मलयकेतुमतिसन्धातुं तयोः प्रवेशावसरदानाय राक्षसचिन्तानाटनं कविनोपनिबद्धमिति द्रष्टव्यम् । इदमङ्कावतरणम् । अत्र राक्षसं प्रति करभकेण वक्ष्यमाणस्य मौर्यचाणक्ययोर्मिथो विरोधस्य पूर्वकार्यानुसङ्गतत्वात् । लक्षणं तु पूर्वमेवोक्तम्—यत्र स्यादुत्तराङ्कार्थं इत्यादिना ।

राज्ञो गमनत्वरासंभ्रमादपसरतापसरतेति पुनरुक्तिः । **कल्याणकुलधाणामिति** । कल्याणकुलं [कुलस्य] धरन्तीति धराः कल्याणकुलधरा महोन्नतवंशा मनुष्यदेवा राजानः । देवास्तु कल्याणः सुवर्णमयः कुलधरः मेरुर्येषां तथोक्ताः [तेषां प्रत्यासत्तिः संनिधौ स्थितिः ।] ॥ ४ ॥ **आकाशेति** । आकाशलक्षणं पूर्वमुक्तम् । **वक्ष इति** ।

---

1. कार्याणाम्, प्रभूतत्वात्, बहुत्वात् 2. अपरः, 3. ओ० ओसलेह; आअदो, 4. मणहलाणं, 5. देवाणं च भूमिदेवाणम्, 6. लणं, 7. देक्खिदुं, 8. सहा०, 9. अस्मात्प्राक्—अथवा ।

RA‘K.—(*Aside*) I really do not recollect, on account of the multiplicity of affairs, on what errand he was sent.

[*He reflects.*

(*Then enter* ANOTHER MAN *with a cane-staff in his hand*)

MAN—Move away, sirs, move away ! Be off, men, be off. Don't you see ?

Let alone their close proximity; even a sight of kings, the representatives of blessed races, is, like that of gods, difficult to be obtained by the unlucky. (4)

(*Looking into space*) What do you say, noble sirs ? "Why is the passage being cleared ?" Sirs, here is prince Malayaketu coming this very way to see the minister Rākshasa, who has got a headache. I, therefore, ask you to move aside.

[*Exit* MAN.

(*Enter* MALAYAKETU *followed by* BHA‘GURA‘YANA *and the* CHAMBERLAIN)

MAL.—(*With a sigh, to himself*) This is the tenth month since my father's death, and yet through the vain pride of self, I have not offere even one handful of water to his memory. I then solemnly pledged myself to this—

राक्षस—(अपने ही से) किस काम से इसे मैंने भेजा था, कुछ ख्याल नहीं आ रहा; इतने काम एक साथ आ पड़े हैं। (कुछ ख्याल में लाने की कोशिश करता है)

(बेंत हाथ में लिये एक और पुरुष)

पुरुष—हटकर भैया, हटकर। ज़रा परे-परे, ज़रा परे-परे। देखते नहीं हो—

निकटता का तो प्रश्न ही नहीं उठता, भाग्यहीनों के लिए तो—देवताओं की भाँति—कुलीन महात्माओं का दर्शन भी मुश्किल हो जाता है। (४)

(शून्य में) क्यों, भैया, तुम पूछ रहे थे, यह रास्ते में हटकर-हटकर किसके लिए हो रही है ? बात यह है कि अमात्य राक्षस के सिर में सख्त दर्द हो आया है, और उनके दर्शन के लिए यह राजकुमार मलयकेतु की सवारी आ रही है—इसलिए !

(मलयकेतु। पीछे-पीछे भागुरायण तथा कंचुकी भी चले आ रहे हैं)

मलयकेतु—(आहें भरते हुए, अपने से ही) आज पिताजी को स्वर्ग गये दसवाँ महीना लग गया, और हम व्यर्थ ही अपने पौरुष का गर्व करते रहे—किन्तु उन्हें जलांजलि तक न दे सके। पहले मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि—

[illegible]

वक्षस्ताडनभिन्नरत्नवलयं भ्रष्टोत्तरीयांशुकं
हा हेत्युच्चरितार्तनादकरुणं भूरेणुरूक्षालकम् ।
तादृङ्[1] मातृजनस्य शोकजनितं संप्रत्यवस्थान्तरं
शत्रुस्त्रीषु मया विधाय[2] गुरवे देयो निवापाञ्जलिः[3] ॥ ५ ॥

किमत्र[4] बहुना—

[illegible]

उद्यच्छता धुरम[5]कापुरुषानुरूपां
गन्तव्यमाजिनिधनेन[6] पितुः पथा वा ।
आच्छिद्य वा स्वजननीजनलोचनेभ्यो
नेयो मया रिपुवधूनयनानि बाष्पः ॥ ६ ॥

(प्रकाशम्) आर्य जाजले, एक एवाहममात्यराक्षसस्यातर्कितगमनेन प्रीतिमुत्पादयितुमिच्छामि । तदुच्यन्तामस्मद्वचनादनुयायिनो राजानः कृतमनुगमन-[7]क्लेशेनेति ।

कञ्चु०—यदाज्ञापयति[8] कुमारः । (इति परिक्रम्याकाशे) भो भो राजानः कुमारः समाज्ञापयति न खल्वहं केनचिदनुगन्तव्य इति । (विलोक्य सहर्षम्[9]) कुमारस्याज्ञा[10]नन्तरमेव सर्वे राजानः प्रतिनिवृत्ताः । पश्यतु कुमारः—

[वक्षसस्ताडनेन भिन्नानि रत्नवलयानि यस्मिन् । उच्चरितश्चासौ आर्तनादश्च । करुणं दीनम् । भूरेणुभी रूक्षा अलकाश्चूर्णकुन्तला यस्मिन् । तादृङ् मातृजनस्य शोकजनितमवस्थान्तरं सम्प्रति शत्रुस्त्रीषु विधाय मया गुरवे पित्रे] निवापाञ्जलिः श्राद्धतर्पणमिति भावः । पितृदानं निवापः स्यादिति त्रिकाण्डी । देयः । वक्षस्ताडनेत्यादि जातिवर्णनम् ॥ ५ ॥

उद्यच्छतेति । [अकापुरुषानुरूपां धुरमुद्यच्छता मया आजौ युद्धे निधनेन पितुः पथा गन्तव्यं वा ।] उद्यच्छतेत्यत्र यद्यपि 'समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे' इत्यात्मनेपदेन भवितव्यं तथापि 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' इत्यतः सूत्रात्कर्त्रभिप्राय इत्यनुवर्तनात्स्वपौरुषोद्यमनक्रियाफलस्य स्वजननीजनलोचनबाष्पापनयनस्य रिपुवधूलोचनगामित्वाभिप्रायेण परस्मैपदं कविना प्रयुक्तमित्यवधार्य सन्तोष्टव्यं वैयाकरणवर्यैः ।] स्वजननीजनलोचनेभ्यो वा बाष्पः] आच्छिद्यापनीय [रिपुवधूनयनानि नेयः ।] रिपुवधेन तन्नयनबाष्प उत्पादिते स्वजननीजनदुःखमपमार्जितप्रायं स्यादित्यर्थः । सुगममवशिष्टम् ॥ ६ ॥ **कृतमिति** । कृतमित्यव्ययमलमित्यर्थे ।

---

1. यादृक्, 2. निधाय, 3. जलस्या०, 4. तत्किमिह, 5. मरौ, 6. निहतेन, विहि०, 7. ०गमनेन, 8. तथा, 9. दृष्ट्वा, 10. कुमार कुमार एते भवदाज्ञासमन्तरमेव प्रतिनिवृत्ताः सर्व एव राजानः ।

That I should first reduce the wives of my foes to that altered condition which was then brought on on my mothers by grief—a condition, in which they beat their breasts till their pearl-necklaces were shattered, their upper garments fell off, the cries of 'woe' were piteously uttered, and the hair was made rough by the particles of dust—and then I should offer the funeral offerings to my sire. (5)

In short,

पूर्वजा -

Bearing up a yoke worthy of a brave man I will either follow the path of my father by dying in battle, or I shall forcibly take away the tears from the eyes of my mothers and transfer them to the wives of my enemies. (6)

(*Aloud*) Venerable Jājali, going alone I wish to give delight to the minister Rākshasa by my unexpected visit. Say, therefore, in my name to the princes that (from my suite that) they should not trouble themselves by following me further.

CHAMB.—As Your Highness orders. (*Turning round and looking into the air*) Ye kings, the Prince orders you that none of you should follow him. (*Looking on; with joy*) No sooner was the Prince's command proclaimed than the kings have turned back. See my lord,

पहले शत्रुजनों की स्त्रियों की वही हालत करूंगा जो आज मेरे शोक-संतप्त मातृजन की हो चुकी है—निरन्तर छाती पीटते रहने से हारों से बिखर चुके मोती···खिसकते दुपट्टे···और हाय-हाय की हृदय-विदारक ध्वनियों से भरी करुणा···मिट्टी में सने, बिखरे, सूखे बाल ! —(यह सब करके) तभी मुझे अपने पितरों को श्रद्धांजलि देने का सच्चा अधिकार होगा। (५)

सार यह कि—

अपने उत्तरदायित्व को (कायरों की नहीं) वीरों की भाँति उठाते हुए या तो पिता का अनुगमन करते हुए मैं युद्ध में वीरगति पा जाऊँगा, या फिर—मातृजन की आँखों के आँसू बलात् हटाकर शत्रु की औरतों की आँखों में स्थिर कर दूंगा। (६)

(व्यक्त) जाजलि चाचा, आज मैं अकेला ही पहुँचकर अपने अप्रत्याशित आगमन द्वारा अमात्य राक्षस के मन में स्नेह उत्पन्न करना चाहता हूँ; सो, इन पीछे-पीछे चलते आ रहे सामन्त-वर्ग से कह दो कि और आगे आने की तकलीफ़ न करें।

कंचुकी—जो कुमार का आदेश। (कुछ कदम चलते हुए, शून्य में) अरे भाई, राजवर्ग के पुरुषो ! कुमार का आदेश है कि कोई भी मेरे पीछे न आये। (देखकर, प्रसन्नता के साथ) अरे, कुमार की आज्ञा सुनो नहीं कि सब-के-सब राजपुरुष वापिस हो लिये ! देखिये ना, कुमार—

स्रग्धरा छन्दः।
१२५/८ २० ५/२१ and ३४५१

7 8 8
सोत्सेधैः[1] स्कन्धदेशैः खरतर[2]कविकाकर्षणात्यर्थभुग्नैर्
4 6 3 5
अश्वाः कैश्चिन्निरुद्धाः खमिव खुरपुटैः[3] खण्डयन्तः पुरस्तात् ।
केचिन्मातङ्गमुख्यैर्विहतजवतया मूकघण्टैर्निवृत्ता
मर्यादां भूमिपाला जलधय इव ते देव नोल्लंघयन्ति ॥ ७ ॥

मल०—आर्य, त्वमपि सपरिजनो निवर्तस्व । भागुरायण एको मामनुगच्छतु ।

कञ्चु०—यदाज्ञापयति कुमारः । (इति सपरिजनो निष्क्रान्तः)

मल०—सखे भागुरायण, विज्ञप्तो[4]ऽहमिहागच्छद्भिर्भद्रभटप्रभृतिभिर्यथा न वयममात्यराक्षसद्वारेण कुमारमाश्रयणीयमाश्रयामहे किंतु कुमारस्य सेनापतिं शिखरसेनं[5] द्वारीकृत्य[6] दुष्टामात्यपरिगृहीताच्चन्द्रगुप्तादपरक्ताः कुमारमाभिरा[7]मिकगुणयोगादाश्रयणीयमाश्रयामह इति । तन्न मया सुचिरमपि विचारयता तेषां वाक्यार्थोऽवधारितः ।

भागु०—कुमार, न दुर्बोधोयमर्थः[8] । विजिगीषुमात्मगुणसंपन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयणीयमाश्रयेदिति ननु न्याय्य एवायमर्थः ।

मल०—सखे भागुरायण, नन्वमात्यराक्षसोऽस्माकं प्रियतमो हिततमश्च ।

सोत्सेधैरिति । खरतराणां तीक्ष्णलोहकण्टककीलितानां कविकानां खलीनानामाकर्षणादत्यर्थं भुग्नैर्नमितैरत एव सोत्सेधैर्मध्यभागोन्नतैः स्कन्धदेशैः ग्रीवाभागैरुपलक्षिताः [पुरस्तादग्रभागे खुरपुटैः खमाकाशमिव खण्डयन्तः] अश्वाः कैश्चिन्निरुद्धाः । केचित् योधाः । [विहतजवतया] सहसा जवनिरोधे सति मूकघण्टैरिति स्वभावोक्तिः । मातङ्गमुख्यैर्निवृत्ताः । जवनान्मातङ्गान्सहसा सन्निगृह्य निवृत्ता इत्यर्थः । भूमिपालाः जलधय इव हे देव ते मर्यादां नोल्लङ्घयन्ति] ॥ ७ ॥

---

1. सोत्सेकैः, 2. मुखरकविकया, कविकशा, 3. खरपदैः, 4. विज्ञापितः, 5. शिखरकं, 6. ऊरी-उररी-कृत्य, 7. ०गामिक, मानिक, 8. नैवायमत्यन्तदुर्बोधोऽर्थः ।

Some kings have checked (reined in) their coursers whose necks, raised up, are excessively bent on account of the very harsh bridles being pulled in and who are striking, as it were, with their hoofs against the void in front of them, while others have turned back their stately elephants whose bells are silent on account of their speed being checked—Thus my lord, the kings, like the oceans, do not overstep the boundary assigned to them by your order. (7)

MAL.—Noble Kanchuki, you too retire with your followers. Let Bhāgurāyaṇa alone follow me.

CHAMB.—As Your Highness commands.

[*Exit with his train.*

MAL.—Friend Bhāgurāyaṇa, when Bhadrabhaṭa and others came here, they told me that they sought my desirable service not through the minister Rākshasa, but that, being alienated from Chandragupta who was wholly guided by a vile minister, they approached me through my general Sīkharasena, thinking me to be a worthy master on account of my amiable qualities. But I have not been able to grasp the meaning of their words although I have not been long musing upon them.

BHA'G.—The meaning of these words is not hard to understand. This is certainly a very proper course of conduct; since one should resort to a master who is ambitious and endowed with personal qualities through the medium of one who is beloved and friendly.

MAL.—But friend Bhāgurāyaṇa, Rākshasa is certainly our dearest and most well-meaning friend.

ये राजा लोग भी आपकी मर्यादा की अवहेलना उसी प्रकार नहीं करते जैसे पृथ्वी की मर्यादा की समुद्र। कुछ ने तो अपने घोड़ों को रोक लिया है—कर्कश लगाम के कुछ ज्यादा खींचने से उनकी ऊपर को उठी गर्दनें कन्धों समेत बड़ी बुरी तरह, जैसे, झुक-सी गई हों···ऊपर उठे खुरों से जैसे, आसमान को ही तोड़ रहे हों (जमीन को नहीं) ! और दूसरे हैं जिनके हाथी एकदम से रुक गये हैं और उनकी वे बज रही घण्टियाँ भी एकाएक, साथ-ही-साथ, मूक हो गई हैं।

मलयकेतु—चाचा, तुम भी चलो अब, अपने साथियों के साथ, वापिस। भागुरायण अकेला मेरे साथ चलता चले।

कंचुकी—कुमार की जैसी आज्ञा। (साथियों के साथ चला जाता है)

मलयकेतु—मित्र भागुरायण, ये भद्रभट आदि जब यहाँ पहले-पहले आये थे, तब, उन्होंने मुझसे कहा था कि हम अमात्य राक्षस से कोई परवाना लेकर आपकी सेवा में नहीं आ रहे, अपितु—स्वयं कुमार सेनापति शिखरक के परामर्श से—उस कुटिल मन्त्री के चंगुल में फँसे चन्द्रगुप्त से विरक्त होकर और आपके गुणों से मुग्ध होकर ही, आपकी शरण में आये हैं। मैंने उनके इन

भागु०—एवमेतत्[1] । किंत्वमात्यराक्षसश्चाणक्ये बद्धवैरो न चन्द्रगुप्ते । तद्यदि कदाचिच्चाणक्यमतिजितकाशिनमसहमानः स साचिव्यादवरोपयेत्ततो नन्दकुलभक्त्या नन्दान्वय[2] एवायमिति सुहृज्जनापेक्षया[3] चामात्यराक्षसश्चन्द्रगुप्तेन सह सदन्धीत । चन्द्रगुप्तोऽपि पितृपर्यायागत एवायमिति सन्धिमनुमन्येत । एवं सत्यस्मासु[4] कुमारो न विश्वसेदित्ययमेषां वाक्यार्थः ।

मल०—युज्यते । अमात्यस्य[5] गृहमादेशय ।

भागु०—इत इतः कुमारः । (उभौ परिक्रामतः) इदममात्यगृहम्[6] । प्रविशतु कुमारः ।

मल०—एष प्रविशामि ।

राक्ष०—(आत्मगतम्) अये स्मृतम् । (प्रकाशम्) भद्र, अपि दृष्टस्त्वया कुसुमपुरे स्तवकलशः ।

पुरु०—अमात्य, अथ किम् । (अमच्च अह इं ।)

मल०—(आकर्ण्य) भागुरायण,[7] कुसुमपुरवृत्तान्तः प्रस्तूयते । न[8] तत्र तावदुपसर्पामः । श्रृणुमस्तावत् । कुतः ?[9]—

आश्रयामह इति । राक्षसस्य दुष्टत्वं ध्वनयितुं दुष्टामात्येति चाणक्यविशेषणम् । आभिरामिकगुणेति च मौर्यदूषणाय । अवधारित इति । अतः परं भागुरायणस्य मलयकेत्वतिसन्धानवचनं सर्वं बीजार्थस्यावमर्शनम् । [प्रियश्चासौ हितश्च पुरुषः तद्द्वारेण ।] सुहृज्जनेति । सुहृज्जनाश्चन्दनदासशकटदासादयः ।

---

1. कुमार ए०, 2. नन्दकुला०, 3. संजातसु०, 4. स्वपि, 5. अमात्यराक्षसस्य, 6. कुमार इदं; अमात्यराक्षसस्य, 7. सखे भागु०; प्रस्तू०—वर्तते, 8. तन्न ता०, तन्नोपसर्पावः, 9. किं कारणमिति ।

Bha'g.—Yes, he is. But the minister Rākshasa bears fixed enmity with Chāṇakya and not with Chandragupta. So if Chandragupta, not brooking the extreme haughtiness of Chāṇakya, should ever remove him from the post of minister, then on account of his devotion to the family of Nanda, Rākshasa might form an alliance with Chandragupta, as he is after all a scion of the race of the Nandas, as well as for the sake of his friends. Chandragupta too would agree to the alliance thinking him to be the hereditary minister of his father. In that case Your Highness would not trust them (Bhadrabhaṭa and others). This is the import of their words.

Mal.—That is right. Now lead the way to the mansion of the minister.

Bha`g.—This way, this way, Your Highness. (Both *walk forth*)

Bha'g.—This is the mansion of the minister. Your Highness may enter.

Mal.—Here I enter.

Ra'k.—(*To himself*) Ah, I recollect it ! (*Aloud*) Friend, did you see Stanakalaśa in Kusumapura ?

Man—Minister, I did.

Mal.—(*Listening*) Bhāgurāyaṇa, affairs relating to Kusumapura are being talked over. Let us not go forth at once, but overhear them. For,

वचनों पर खूब विचार किया है, और कितने ही दिन विचार किया है। किन्तु उनका अभिप्राय आज तक मेरी समझ में नहीं आ सका।

भागुरायण—जहां तक शब्दों का प्रश्न है, उनका तात्पर्य समझ सकना तो कोई बहुत मुश्किल नहीं है। बड़ा ही उपयुक्त लोकाचार है यह कि पल्ला उसका पकड़ो जो सचमुच आश्रयदाता हो, जिसमें कुछ महत्त्वाकांक्षा हो, कुछ अपनी विशेषतायें हों, और इसके लिए 'मध्यम पुरुष' भी उसीको चुनना चाहिए जो तुम्हारा प्रिय भी हो, हितू भी हो।

मलय—किन्तु, भागुरायण, राक्षस हमारा प्रियतम मित्र है, सबसे बड़ा हितैषी भी है।

भागुरायण—सब ठीक है, किन्तु—अमात्य राक्षस की शत्रुता चाणक्य से है, चन्द्रगुप्त से नहीं। इसलिए—कभी मौका ऐसा आ ही बने कि आत्ममन्य चाणक्य के अभिमान को चन्द्रगुप्त और सहन न कर सके और उसे मन्त्रिपद से मुक्त कर ही दे, तब—उस अवस्था में यह असम्भव नहीं कि अमात्य चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि कर ले कि आखिर है तो नन्द का एक वंशज ही ना; और राक्षस नन्द-वंश का भक्त है कि—और स्वयं राक्षस के मित्र ही उसे शायद ऐसा करने के लिए प्रेरित भी करें। उधर, चन्द्रगुप्त भी यही सोचेगा कि राक्षस मुझसे पहले मेरे पिता का मन्त्री रह चुका है, और वह उस सन्धि

सत्त्वभङ्गभयाद्राज्ञां कथयन्त्यन्यथा पुरः[1] ।
अन्यथा विवृतार्थेषु स्वैरालापेषु मन्त्रिणः ॥ ८ ॥

भागु०—यदाज्ञापयति कुमारः ।

राक्ष०—भद्र, अपि तत्कार्यं सिद्धम् ?

पुरु०—अमात्य[2]प्रसादेन सिद्धम् । (अमच्चप्पसाएण सिद्धम् ।)

मल०—सखे भागुरायण, किं तत्कार्यम् ?

भागु०—कुमार, गहनः[3] सचिववृत्तान्तः । नैतावता परिच्छेत्तुं शक्यते । अवहितस्तावच्छ्रोतुमर्हति[4] कुमारः ।

राक्ष०—भद्र, विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि ।

पुरु०—शृणोत्वमात्यः । अस्ति तावदहममात्येनाज्ञप्तो यथा 'करभक' कुसुमपुरं गच्छ, मम वचनेन भण वैतालिकं स्तनकलशं—यथा चाणक्यहतकेन तेषु तेष्वाज्ञाभङ्गेष्वनुष्ठीयमानेषु चन्द्रगुप्त उत्तेजनसमर्थैः श्लोकैरुपश्लोकयितव्य इति । (सुणादु अमच्चो । अत्थि दाव अहं अमच्चेणाणत्तो जह करभअ कुसुमपुरं गच्छ[5] मह वअणेण भण वेआलिअं त्थणकलसं जह चाणक्कहदएण तेसु तेसु अण्णाभङ्गेसु अणुचिठ्ठीअमाणेसु चन्दउत्तो उत्तेअणसमत्थेहिं सिलोएहिं उवसिलोअइदव्वो त्ति ।)

सत्त्वभङ्गभयादिति। [मन्त्रिणः सत्त्वभङ्गभयात्] सत्वभङ्गो मनोभङ्गः । [राज्ञां पुरः अन्यथा अयथार्थं कथयन्ति ।] विवृतार्थेषु परस्परविस्पष्टार्थेषु । [स्वैरालापेषु अन्यथा याथातथ्येन कथयन्ति ।] ॥ ८ ॥ [उपश्लोकयितव्यः स्तोतव्यः ।]

---

1. पुनः, 2. अमात्यस्य, 3. गहनः खलु, 4. वच्छ्रूणु, 5. गच्छिअ··· भणिदव्वो तुए···लिओ थणकलसो ।

Ministers speak in one way (or, differently) in the presence of their master for fear of discouraging him (lit. causing his courage to fail him or lowering his prestige), but in another way in confidential talks where matters are freely and openly stated (or talks with their friends स्वैः). (8)

Bha`g.—As the Prince commands.

Ra`k.—Friend, did the business succeed ?

Man—Yes, by your favour.

Mal.—Friend, Bhāgurāyaṇa, what might the business be ?

Bha`g.—Prince, the affairs of the minister are mysterious. So it cannot be definitely known at this stage. Your Highness should hear attentively.

Ra`k.—Friend, I wish to hear it in detail.

Man—Your Honour may listen. I was ordered by Your Excellency saying 'Karabhaka, go you to Kusumapura and in my name, tell the bard Stanakalaśa that he should praise Chandragupta in stanzas that might rouse his anger as Chāṇakya would be committing various acts of disobedience'.

को स्वीकार कर लेगा । यदि बात यहां तक बढ़ गई, तो कुमार मलयकेतु हम पर विश्वास नहीं करेगा–इन (भद्रभट आदि) के उस वचन का अभिप्राय यह है ।

मलयकेतु—जंचता है । चलो, अमात्य के घर चलें ।

भागुरायण—आइये, इधर से, इधर से । (और दोनों चल रहे हैं) यह आगया अमात्य का घर । अन्दर चलिये ।

मलयकेतु—हां, तुम भी आओ, भाई !

राक्षस—(अपने ही से) अरे, याद आ गया ! (व्यक्त) भाई, कुसुमपुर में तुम स्तनकलश से मिले थे ?

करभक—क्यों नहीं, अमात्य !

मलयकेतु—भागुरायण, कुसुमपुर की चर्चा हो रही है । अभी हमें नहीं जाना चाहिए । वैसे, सुनते रहेंगे । बात यह है कि—यह जो मन्त्री लोग होते हैं, राजाओं को औरों के सामने कुछ कहते हैं कि जिससे वे हतोत्साह न हो जाएँ । वार्तालाप जब विश्वस्त भाव से होता है, दोनों ओर से दिल खुले होते हैं, तब कुछ और ही कहते हैं । (८)

भागुरायण—कुमार का कथन ठीक ही है ।

राक्षस—भाई, क्या कुछ सफलता मिली तुम्हें अपने उद्देश्य में ?

करभक—क्यों न मिलती, आपके आशीर्वाद से—?

मलयकेतु—मित्र भागुरायण, वह कार्य था क्या, आखिर ?

भागुरायण—मन्त्रियों के काम तो हमेशा ही कुछ उलझे होते हैं । अभी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा । कुछ ध्यान से सुनते रहें तो कुछ-न-कुछ पता चल जाएगा, शायद ।

राक्षस—भैया, ज़रा खोलकर सुनाओ तो ।

करभक—तो सुनिये, मन्त्रिवर । आपके नाम से मुझे आदेश मिला था कि करभक, कुसुमपुर जाकर मेरे बचन से बैतालिक स्तनकलश से कहना कि

राक्ष०—भद्र, ततस्ततः ?

कर०—ततो मया पाटलिपुत्रं गत्वा श्रावितः अमात्यसन्देशं वैतालिकः स्तनकलशः । अत्रान्तरे नन्दकुलविनाशदूनस्य पौरजनस्य परितोषं समुत्पादयता राज्ञा घोषितः कौमुदीमहोत्सवः । स च चिरकालपरिवर्तमानो जनितपरिचयोऽभिमतवधूजनसमागम इव सस्नेहं बहुमानितो नगरजनेन । (तदो मए पाडलिउत्तं गदुअ सुणाविदो अमच्चसन्देसं वेआलिओ त्थणकलसो । एत्थन्तरे णन्दउलविलासदूणस्स पोरजणस्स परितोसं समुप्पादअन्तेण रण्णा[1] आघोसिदो कौमुदीमहोस्सवो। सो अ चिरकाल[2]परिवट्टमाणो जणिदपरिचओ अभिमदवधू[3]जणसमागमो विअ ससिणेहं बहु माणिदो णअरजणेण ।

राक्ष०—(सबाष्पम्) हा देव नन्द !

कौमुदी कुमुदानन्दे जगदानन्दहेतुना ।
कीदृशी सति चन्द्रेऽपि नृपचन्द्र त्वया विना[4] ॥ ९ ॥

कर०—ततः स लोकलोचनानन्दभूतोऽनिच्छत एव तस्य निवारितश्चाणक्यहतकेन । अत्रान्तरे स्तनकलशेन चन्द्रगुप्तसमुत्तेजिका श्लोकपरिपाटी प्रवर्तिता । (तदो[5] सो लोअलोअणाणन्दभूदो अणिच्छन्तस्स एव तस्स णिवारिदो चाणक्कहदएण[6] । एत्थन्तरे त्थणकलसेण चन्दउत्तसमुत्तेजिआ सिलोअपरिपाटी पवट्टिदा ।)

चिरकालेति । चिरकालाद्बहोः कालात्परिवर्तमानः परितो वर्तमानो जायमानः । जनितपरिचयः परिचितपूर्व इत्यर्थः ।

कौमुदीति । कौमुदीमहोत्सवः कुमुदानन्दे कुमुदानां कुवलयानामानन्दजनके चन्द्रे कोः पृथिव्या मुदमानन्दयति समर्धयति कुमुदानन्दे चन्द्रगुप्ते सत्यपि ताभ्यामप्यतिशयितेन सकलजगदानन्दहेतुना त्वया विना कीदृशी व्यर्थेत्यर्थः । व्यति-

---

1. चन्दउत्तेण, 2. चिरआलप्पवत्तणजनिदपरिदोसो, 3. बन्धु, 4. अस्मात्परं–भद्र ततस्ततः, 5. अमच्च–इत्यधिकम्, 6. ०एण कौमुदीमहोस्सवो ।

RA'K.—Friend, what next?

KAR.—Then I went to Pāṭaliputra and communicated Your Honour's message to the minstrel, Stanakalaśa. In the meantime the King desiring to gladden the townsfolk who still lament the destruction of the Nandas, proclaimed the *Kaumudī* festival. That festival, so familiar (with them) returning after a long time, was, like the company of a beloved wife, delightfully welcomed by the citizens.

RA'K.—(*Tearfully*) Alas, O king Nanda!

O you the moon among kings, what *Kaumudī* (festival) can there be without you, the cause of delight to the whole world, even if there were the moon (Chandragupta) the delighter of lotuses (of ordinary men). (9)

KAR.—But the festival, the joy of the eyes of the people, was forbidden by the cursed Chāṇakya in spite of the King. Meanwhile Stanakalaśa sang a series of stanzas that exasperated Chandragupta.

जव-जव भी दुरात्मा चाणक्य, चन्द्रगुप्त के आदेशों की अवहेलना करे, चन्द्रगुप्त को भड़काने वाले गीत गाना।

राक्षस—ठीक है, फिर ?

करभक—हुआ यह कि मैंने पाटलिपुत्र जाकर अमात्य का यह सन्देश स्तनकलश को यथावत् सुना दिया। इसी बीच में उधर यह हुआ कि—नन्दवंश के उन्मूलन से दुःखी प्रजाजन को सन्तुष्ट रखने के लिए चन्द्रगुप्त ने कौमुदी-महोत्सव मनाने का आदेश जारी कर दिया। चिरकाल से लोग उसे मनाते ही आ रहे थे, कोई नयी चीज़ तो थी नहीं—नागरिक लोग बड़ी उत्सुकता के साथ उसकी प्रतीक्षा करने लगे—जैसे कोई अपनी प्रिया के समागम की प्रतीक्षा कर रहा हो!

राक्षस—(आंखें भरकर) हा, महाराज नन्द—

कुमुदों को प्रफुल्लित करने वाले चाँद के होते हुए भी—जगत्-भर को प्रफुल्लित करने वाले तेरे मुखचन्द्र के अभाव में आज कौमुदी—कौमुदी कैसी ? (९)

करभक—किन्तु राजा की आज्ञा घोषित होने पर भी दुरात्मा चाणक्य ने—यद्यपि लोग बड़ी उत्सुकता के साथ महोत्सव की प्रतीक्षा में आँखें बिछाये थे—उत्सव पर रोक लगा दी। इसी समय ऐन मौके पर, स्तनकलश ने चन्द्रगुप्त को उकसाने वाले कुछ गीत गा दिये!

राक्ष०—कीदृशी सा ?

पुरुष०—(सत्त्वोद्रेकस्येत्यादि पूर्वोक्तं पठति)

राक्ष०—(सहर्षम्) साधु स्तनकलश, साधु । काले भेदबीजमुप्तमवश्यं फलमुपदर्शयति[1] । कुतः ?—

अर्थापत्ति अलंकार

3 2 1 4 5
> सद्यः क्रीडारसच्छेदं प्राकृतोऽपि न मर्षयेत् ।
> किमु[2] लोकाधिकं तेजो बिभ्राणः पृथिवीपतिः ॥ १० ॥
6 7 8 9 10

मल०—एवमेतत्[3] ।

राक्ष०—ततस्ततः[4] ?

कर०—ततश्चन्द्रगुप्तेनाज्ञाभङ्गकलुषितेन प्रसङ्गसूचितममात्यगुणं प्रशस्यापभ्रंशितोऽधिकाराच्चाणक्यहतकः । (तदो चन्दउत्तेण अण्णाभङ्गकलुसिदेण[5] पसङ्गसूचिदं अमच्चगुणं पसंसिअ अपब्भंसिदो अहिआरादो चाणक्कहदओ ।)

मल०—सखे भागुरायण, गुणप्रशंसया दर्शितश्चन्द्रगुप्तेन राक्षसे भक्तिपक्षपातः ।

भागु०—न[6] तथा गुणप्रशंसया यथा चाणक्यबटोर्निराकरणेन ।

राक्ष०—किम्[7]यमेवैकः कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधश्चन्द्रगुप्तस्य चाणक्यं प्रति कोपकारणमुतान्यदप्यस्ति ।

मल०—सखे[8], चन्द्रगुप्तस्यापरकोपकारणान्वेषणेन किं फलमेष पश्यति ?

रेकालङ्कारः ॥ ९ ॥ अनिच्छत इति । अनिच्छन्तमनादृत्येत्यर्थः । 'षष्ठीचानादर' इति षष्ठी । [**सद्य** इति । क्रीडायां रसः क्रीडारसस्तस्य च्छेदः । सद्यः सपद्येव यः क्रीडारसच्छेदस्तम् । प्राकृतः साधारणोपि जनः न मर्षयेत् । लोकादधिकं लोकाधिकं धाम तेजः बिभ्राणः पृथिवीपतिः न मर्षयेत् इति किमु वक्तव्यमित्यर्थः ॥ १० ॥

---

[1] दर्शयिष्यति, [2] किंनु; किमु…धाम बिभ्राणाः पृथिवीभुज, [3] अस्मात्परं—सद्यः क्रीडेत्यादि पुनः पठति, [4] भद्र ततः, [5] सिद-कलुस-हिअएण, [6] कुमार न, [7] भद्र किम०, [8] सखे भागुरायण ।

Ra`k.—What were the verses ?

Man—(*Repeats*; "O best of kings, &c.").

Ra`k.—(*With joy*) Bravo, Stanakalaśa, bravo !

The seed of discord sown in time assuredly bears the desired fruit. For,

Even an ordinary person will not brook an abrupt interruption in his eagerly desired festive pleasure; much less than a king possessed of lustre transcending that of all men. (10)

Mal.—It is just so.

Ra`k.—What next ? reference.

Kar.—Then Chandragupta enraged at the infringement of his order praised Your Honour's virtues (naturally) suggested by the drift of conversation and dismissed the vile Chāṇakya from office.

Mal.—Friend Bhāgurāyaṇa, by this praise of his qualities Chandragupta has shown his leaning through affection towards Rākshasa.

Bha`g.—Not so much by the praise of his qualities, as by the removal from office of the cursed Chāṇakya.

Ra`k.—Is this prohibition of the *Kaumudī* festival the only cause of Chandragupta's displeasure towards Chāṇakya or is there any other ?

Mal.—Friend, what good does he see from inquiring into other causes of Chandragupta's displeasure ?

राक्षस—कौन से ?

करभक—"तेरे जैसा सार्वभौम (आत्मसम्मानी) अधिपति, हे राजन्," इत्यादि, और "आभूषणादि के सेवन से कोई अधिपति नहीं बन जाता" इत्यादि (अंक ३. २२–२३)।

राक्षस—(खुशी में) खूब, बहुत खूब, स्तनकलश बहुत खूब ! भेद का बीज भी समय पर ही डाला गया फल लाया करता है। उत्सवादि के बारे में तो नियम ही यह है कि—

रंगरलियों में खटखटाना तो मामूली आदमी भी सहन नहीं कर पाता, रोबदाब से पेश आने वाले, फिर, राजा लोग उसे कैसे सहन कर सकते हैं ? (१०)

मलयकेतु—बात तो बिलकुल सच है।

राक्षस—फिर ?

करभक—राजा के आदेश की इस तरह अवहेलना की गई, इससे चन्द्रगुप्त का मन खिन्न हो गया और, प्रसंगगत आपकी प्रशंसा करते हुए, उसने दुरात्मा चाणक्य को तत्क्षण अधिकार से च्युत कर दिया।

मलयकेतु—भागुरायण, राक्षस का गुणगान करते हुए चन्द्रगुप्त ने दरशा दिया है कि उसकी भक्ति का पात्र कौन है।

भागु०—कुमार, मतिमांश्चाणक्यो न निष्प्रयोजनमेव चन्द्रगुप्तं कोपयिष्यति न च कृतवेदी चन्द्रगुप्त एतावता गौरव[1]मुल्लङ्घयिष्यति । सर्वथा चाणक्यचन्द्रगुप्तयोः पुष्कलात्कारणाद्यो विश्लेष उत्पद्येत स आत्यन्तिको भविष्यतीति ।

कर०—अस्त्यन्यदपि चन्द्रगुप्तस्य कोपकारणम् । उपेक्षितोऽनेनापक्रामन्मलयकेतुः अमात्यराक्षसश्चेति । (अत्थि[2] अण्णं वि चन्दउत्तस्स कोवकारणं । उवेक्खिदो अणेण अवक्कमन्तो मलअकेदू अमच्चरक्खसो अ त्ति ।)

राक्ष०—(सहर्षम्) सखे शकटदास, हस्ततलगतो मे संप्रति चन्द्रगुप्तो भविष्यति । इदानीं चन्दनदासस्य बन्धनान्मोक्षस्तव च पुत्रदारैः सह समागमः[3] ।

मल०—सखे भागुरायण, हस्ततलगत[4] इति व्याहरतः कोऽस्याभिप्रायः ?

भागु०—किमन्यत् । चाणक्यादपकृष्टस्य चन्द्रगुप्तस्योद्धरणान्न[5] किंचित्कार्यमवश्यं पश्यति ।

राक्ष०—भद्र, हृताधिकारः क्व सांप्रतमसौ बटुः ?

कर०—तदेव पाटलिपुत्रमधिवसति । (तहिं एव्व पाडलिउत्ते अहिवसदि ।)

राक्ष०—(सावेगम्) भद्र, तत्रैव प्रतिवसति । तपोवनं न गतः प्रतिज्ञां वा पुनर्न समारूढवान् ?

कर०—अमात्य, तपोवनं गच्छतीति श्रूयते । (अमच्च तपोवणं गच्छदि[6] त्ति सुणीअदि ।)

[कलुषितेनाप्रसन्नेन । कुपितेनेति यावत् ।] न तथेति । गुणवन्तमेनं संग्रहीतुमेव चाणक्यबटुरनेन निराकृत इत्यर्थः । आत्यन्तिक इति । दृढः अप्रतीकार्य इति यावत् ।

---

1. चाणक्यगौ०, 2. अमच्च अत्थि, 3. अस्मादनन्तरं—जीवसिद्धिप्रभृतीनां क्लेशच्छेदः । भागु०—आत्मगतम्; जातः सत्यं जीवसिद्धेः क्लेशच्छेदः, 4. गतो मे···भविष्यतीति, 5. स्योद्धरणेऽसौ कार्यमवश्यमवगच्छति, 6. गमिस्सदि ।

Bha'g.—Prince, the sagacious Chāṇakya will not rouse Chandragupta's anger for nothing. Chandragupta too is grateful and will not, for one single reason, transgress (the bounds of) the respect due to him. He then means that if the breach is due to a number of causes then only it will be lasting.

Kar.—Yes, there is another cause of Chandragupta's anger —that he connived at the escape of Malayaketu and of the minister Rākshasa.

Ra'k.—(*Joyfully*) Friend Śakaṭadāsa, Chandragupta will now come into my power. Now Chandanadāsa will be released from prison and you will be united with your wife and sons.

Mal.—Friend, what does he mean by saying "into my power" ?

Bha'g.—What else ? He does not see any benefit by uprooting Chandragupta when he is estranged from Chāṇakya.

Ra'k.—Friend, deprived of his office, where is the fellow now ?

Kar.—He lives in that very Pāṭaliputra.

Ra'k.—(*In great uneasiness*) What, he stays there ? Did he not go to a penance-forest or enter upon a second vow ?

Kar.—Minister, he means to retire to a penance-grove, I hear.

भागुरायण—गुण-गान द्वारा उतना नहीं, जितना चाणक्य के अपमान द्वारा ।

राक्षस—क्या यही एक कारण है—कौमुदी-महोत्सव पर रोक—जिससे चन्द्रगुप्त चाणक्य के प्रति इस प्रकार कुपित हो गया, या कुछ और भी है ?

मलयकेतु—मित्र, चन्द्रगुप्त के क्रोध का और-कुछ कारण ढूँढकर इसे मिलेगा क्या ?

भागुरायण—कुमार, बात यह है कि चाणक्य स्वयं इतना समझदार है कि बिना प्रयोजन न वह चन्द्रगुप्त को कभी रुष्ट करने लगा है; न चन्द्रगुप्त ही इतनी छोटी-सी बात के कारण गुरु का अपमान करने पर उतर सकता है। इसलिए यदि चाणक्य और चन्द्रगुप्त में यदि यह मनमुटाव किन्हीं प्रबल कारणों पर आश्रित हो तभी वह कुछ गम्भीर और स्थायी हो सकता है (अन्यथा नहीं) ।

करभक—चन्द्रगुप्त की नाराजगी का कारण और कुछ भी है : मलयकेतु और अमात्य राक्षस भाग निकले, और चाणक्य ने इसकी ज़रा परवा न की, ज़रा चौकसी नहीं दिखाई।

राक्षस—(प्रसन्नता के साथ) शकटदास, मेरे मित्र, अब चन्द्रगुप्त मेरी मुट्ठी में आ ही गया समझो। जिसका अर्थ यह हुआ कि चन्दनदास की कारावास से मुक्ति और तेरा अपने परिवार के साथ पुनर्मिलन।

मलयकेतु—मुट्ठी में आ गया—इन शब्दों का अभिप्राय क्या हुआ, भागुरायण ?

राक्ष०—शकटदास[1], नेदमुपपद्यते । पश्य—

देवस्य येन पृथिवीतलवासवस्य
स्वाग्रासना[2]पनयनान्निकृतिर्न सोढा । अर्थापति अलंकार
सोऽयं स्वयंकृतनराधिपतेर्मनस्वी
मौर्यात्कथं नु परिभूतिमिमां सहेत ॥ ११ ॥

मल०—सखे[3], चाणक्यस्य वनगमने पुनः प्रतिज्ञारोहणे वा कास्य स्वार्थसिद्धिः[4] ?

भागु०—नात्यन्त[5]दुर्बोधोऽयमर्थः । यावद्यावच्चाणक्यहतकश्चन्द्रगुप्ताद्दूरीभवति तावत्तावदस्य स्वार्थसिद्धिः ।

शक०—अमात्य, अलमन्यथा विकल्प्य । उपपद्यत एवैतत् । पश्यत्वमात्यः—

चाणक्यादिति । सचिवायत्तसिद्धिः सचिववियोगे हस्ततलगतः सुखेन जेयो भविष्यतीति राक्षसस्य निष्कपटोऽभिप्रायो भागुरायणेनान्यथा बोध्यते । चन्द्रगुप्तस्योद्धरणादुन्मूलनान्न किंचित्कार्यमवश्यं पश्यति नास्त्यात्यन्तिकाभीष्टसिद्धिः । हस्ततलकरणाद्वशीकरणात्तु स्वस्य साचिव्यप्राप्त्या चन्दनदासादीनामापन्निवृत्तिरात्यन्तिकी स्वार्थसिद्धिरित्यस्याभिप्राय इत्यर्थः ।

सावेगमिति । तत्रैवावस्थाने मौर्योन्मूलनप्रतिज्ञाया अकरणे वा कदाचित्पुनः सन्दधीतेत्यावेगः । [येन चाणक्येन पृथिवीतले वासव इन्द्र इव । तस्य देवस्य नन्दस्य । तत्कृतेत्यर्थः । स्वाग्रासनापनयनात् निष्कृतिरवमानना न सोढा । सः] मनस्वी मानशीलः । [स्वयंकृतनराधिपतेः मौर्याद् इमां परिभूतिं कथं सहेत । न कथंचिदपि । अतोऽत्र कश्चिद् गूढो हेतुरस्तीति भावः ।] ॥११॥ **स्वार्थसिद्धिरिति** । स्वस्य साचिव्यपदलाभ इत्यर्थः ।

---

1. (सावेगं) शक०, 2. साग्रा०, पनयजा, 3. भागुरायण इत्य०, 4. कार्यं, 5. कुमार नात्यन्त० ।

Ra‘k.—Śakaṭadāsa, this is not explainable. Just think.

How can that proud fellow, who did not put up with the insult offered to him by His Majesty who was the very Indra on earth, in that he was pulled off from the foremost seat occupied by him, suffer this disgrace at the hands of Maurya, a king of his own creation ? (11)

Mal.—Friend, what object of his can be accomplished by Chāṇakya's retiring to a forest or undertaking a new vow ?

Bha‘g.—The matter is not very difficult to understand. The more Chāṇakya is alienated from Chandragupta, the easier is the accomplishment of his object.

Śak.—Don't take the matter otherwise; it is capable of being explained. Your Ministership should just consider—

भागुरायण—और क्या हो सकता है इसके सिवाय कि—अमात्य की दृष्टि में चाणक्य से विलग हुए चन्द्रगुप्त को उखाड़ फेंकने में कोई बहुत बड़ा लाभ नहीं है।

राक्षस—अधिकार से च्युत होकर, आखिर, वह अब रह कहाँ रहा है ?

करभक—वहीं पाटलिपुत्र में ही, और कहाँ ?

राक्षस—(कुछ निराशा-सी के साथ) वहीं पाटलिपुत्र में ही ? तपोवन नहीं गया, और कोई अन्य प्रतिज्ञा भी नहीं कर बैठा ?

करभक—स्वामी, सुनने में तो यही आया है कि वह अब पुनः वानप्रस्थ हो जायगा।

राक्षस—शकटदास, बात कुछ जंचती नहीं। स्वयं सोचकर देख लो कि—महाराज जो सचमुच पृथ्वी के इन्द्र थे, जब उनके आदेश से आदर के आसन से नीचे उतारे जाने पर जो मनस्वी उस ज़रा-से अपमान को सहन नहीं कर सका, वह भला इस अपने ही हाथ की कठपुतली—मौर्याधम के हाथों इतना बड़ा अपमान सह लेगा ? (विश्वास नहीं आता)।

मलयकेतु—मित्र, चाणक्य वन को चला जाय या कोई दूसरी प्रतिज्ञा कर बैठे, राक्षस का उससे कौन-सा अर्थ सिद्ध होता है ?

भागुरायण—यह कौन-सी कठिन समस्या है ? दुष्ट जितना ही अधिक चन्द्रगुप्त से दूर हटता जाय, उतना ही अधिक राक्षस का स्वार्थ उससे सिद्ध होता जायगा।

शकटदास—अमात्य, मेरे कहे का कुछ और अभिप्राय न ले बैठना। मुझे तो यह बात कोई अयुक्त नहीं जंचती। देखिये ना—

राज्ञां चूडामणीन्दुद्युतिखचितशिखे मूर्ध्नि विन्यस्तपादः
स्वैरेवोत्पाद्यमानं किमिति विषहते मौर्य आज्ञाविघातम् ।
कौटिल्यः कोपनोऽपि[1] स्वयमभिचरणे[2] ज्ञातदुःखः प्रतिज्ञां
दैवात्पूर्ण[3]प्रतिज्ञः पुनरपि न करोत्यायतिग्लानिभीतः ॥ १२ ॥

राक्ष०—सखे शकटदास, एवमेतत् । गच्छ, विश्रामय करभकम् ।

शक०—यथा[5]ज्ञापयत्यमात्यः । (इति करभकेण सह निष्क्रान्तः)

राक्ष०—अहमपि कुमारं द्रष्टुमिच्छामि ।

मल०—(उपसृत्य) अहमेवार्यं द्रष्टुमागतः ।

राक्ष०—(नाटयेनावलोक्य) अये कुमारः । (आसनादुत्थाय) इदमासन् । उपवेष्टुमर्हति कुमारः ।

मल०—अयममुपविशामि । उपविशत्वार्यः । (यथा[6]र्हमुपविष्टौ) आर्य, अपि सह्या शिरोवेदना ।

[राज्ञामिति । चूडायां निबद्धा मणयः चूडामणय इन्दव इव तेषां द्युतिभिः खचिता शिखा यस्य तादृशमूर्ध्नि विन्यस्तपादः । तेषां शासिता सार्वभौम इति यावत् । मौर्यः] स्वैरेव स्वकीयैः सेवकैरित्यर्थः । उत्पद्यमानमाज्ञाविघातं किमिति विषहेत । न विषहेतैव । चाणक्यः कोपनोऽपि स्वयमभिचरणेन—चाणक्यनाम्ना तेनाथ शकटारगृहे रहः । कृत्यां विधाय सप्ताहात्सपुत्रो निहतो नृपः ॥ इति पूर्वोक्तेनाभिचारकर्मणा ज्ञातं अनुभूतं दुःखं क्लेशो यस्यां तादृशी प्रतिज्ञा यस्येति बहुव्रीहिगर्भो बहुव्रीहिः । आयतिग्लानिभीतः प्रतिज्ञातार्थनिर्वहणक्लेशासहिष्णुः प्रतिज्ञाक्लेशं बहुधानुभूय पुनः प्रतिज्ञां कर्तुं बिभीयादित्यर्थः ॥ १२ ॥ [अति-

---

1. कोपितः, 2. अतिचरणे, अभिचरणे दृष्टदोषः; ज्ञातदुःखप्र० अभिचरणज्ञातदुःखप्रतिज्ञः, 3. तीर्णं, 4. ज्यानि, 5. तथैति पुरुषेणसह, 6. इति यथासनमुपविष्टौ ।

How can Maurya, who has planted his foot on the head of kings with their crests adorned with the lustre of their moon-like crest-jewels, put up with the breach of his command committed by his own people? Kauṭilya too, though wrathful, knowing personally from his incantations (practised for the destruction of his foes) the hardships of a solemn vow and having fulfilled one by good luck, does not make another apprehensive of failure in future. (12)

RA'K.—Friend Śakaṭadāsa, go and look to Karabhaka's taking rest.

ŚAK.—As the minister commands. [*Exit with* KARABHAKA.

RA'K.—Now I wish to see the Prince.

MAL.—(*Stepping forward*) I have myself come to see Your Honour.

RA'K.—(*Looking at him*) O, the Prince! (*Rising from his seat*) Here is a seat; please sit down, Prince.

MAL.—Here I sit down. Your Honour, too, should do so. (*They sit down according to rank*) Sir, has your headache moderated?

वही चन्द्रगुप्त है न यह, जिसने बड़े-बड़े राजाओं के चन्द्रमा के समान चमचमाती मुकुटमणियों से सुशोभित सिरों पर किस अवज्ञा के साथ पैर रखा था; वही अपने ही लोगों के द्वारा अपने शासन की अवज्ञा क्या सहन कर लेगा? और कौटिल्य भी कितना ही क्रोधी क्यों न हो, एक बार प्रतिज्ञा पूर्ति के अर्थ अभिचारादि करके देख चुका है कि किसी भी व्रत को निभाने में क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं। पिछली प्रतिज्ञा उसकी आपने पूरी करा दी, अब वह दोबारा ऐसी कोई चेष्टा नहीं करेगा कि इस बार कहीं मुँह की न खानी पड़े।

राक्षस—भाई, बात तो सच्ची है। जाओ, करभक के विश्राम आदि की कुछ व्यवस्था करो।

शकटदास—बहुत अच्छा। (करभक के साथ निकल जाता है)

राक्षस—कुछ तबियत कर रही है, किसी भाँति कुमार से मिल सकें तो?

मलयकेतु—(निकट पहुंचते हुए) मैं स्वयं ही अमात्य के दर्शन करने आया हुआ हूं।

राक्षस—(देखकर मानो अचम्भा करते हुए) अरे सचमुच, कुमार ही। (आसन से उठकर) आइये, यहाँ विराजिये।

मलयकेतु—लीजिये, मैं बैठ गया। आप भी बैठें ना? (अपनी-अपनी जगह सभी लोग बैठ गये) अमात्य हाँ, सिरदर्द में कुछ फर्क पड़ा, या नहीं?

राक्ष०—कुमार, कुमारस्याधिराजशब्देनातिरस्कृते कुमारशब्दे कुतो मे शिरोवेदनायाः सह्यता ।

मल०—ऊरीकृतमेतदार्येण[1] न दुष्प्रापं भविष्यति। तत्कियन्तं कालमस्माभिरेवं संभृतबलैरपि शत्रुव्यसनमुदीक्षमाणै[2]रुदासितव्यम् ।

राक्ष०—कुमार, कुतोऽद्यापि कालहरणस्यावकाशः। प्रतिष्ठस्व विजयाय[3]।

मल०—आर्य[4], शत्रुव्यसनमुपलब्धम्[5]।

राक्ष०—उपलब्धम्[6] ।

मल०—कीदृशं तत् ?

राक्ष०—सचिवव्यसनं किमन्यत्। अपकृष्टश्चाणक्याच्चन्द्रगुप्तः ।

मल०—आर्य, सचिवव्यसनमव्यसनमेव ।

राक्ष०—अन्येषां[7] भूपतीनां कदाचिदमात्यव्यसनमव्यसनं स्यात् । न पुनश्चन्द्रगुप्तस्य[8] ।

मल०—आर्य, नैतदेवम्। चन्द्रगुप्तप्रकृतीनां चाणक्यदोषा एवापरागहेतवस्तस्मिश्च निराकृते प्रथममपि चन्द्रगुप्तेऽनुरक्ताः[9] संप्रति सुतरामेव तत्रानुरागं दर्शयिष्यन्ति ।

रस्कृतेऽतिरोहिते। यावत्कुमारोऽधिराजपदं न लभेत तावदित्यर्थः। ऊरीकृतमङ्गीकृतम् ।]

[अव्यसनमेव न महते फलाय तस्य अकिंचित्करत्वादित्यर्थः ।] न पुनश्चन्द्रगुप्तस्येति। एवं राक्षसेन समाहितोप्यमात्यराक्षसश्चाणक्ये बद्धवैरो न चन्द्रगुप्ते इत्यादिपूर्वोक्तेन बहुविधेन भागुरायणोपजापेन कलुषिताशयो मलयकेतुः पुनः

---

1. उररी०, स्वयमूरी०, 2. अधेक्षमाणैः, 3. रिपुज०, 4. अमात्य, 5. अपि किंचिच्छ०, 6. बाढम्, 7. कुमार अन्येषां, भूमिप०, भूमिपालानां, 8. अस्मात्परम्–मल०–आर्य ननु विशेषतश्चन्द्रगुप्तस्येति। राक्ष०–किं कारणं यदस्यामात्यव्यसनमव्यसनम्। 9. रक्ताः प्रकृतय इदानीं ।

RA`K.—Prince, how can my headache subside, so long as your title of 'Prince' is not supplanted by that of 'Emperor'.

MAL.—This, as it has been undertaken by Your Honour, will not be difficult to attain. How long are we to remain inactive, with our forces thus mustered, in expectation of some weak point of the enemy?

RA'K.—Prince, whence can there be any more time for delay? Start for victory.

MAL.—Sir, have you found out any weak point of the enemy?

RA`K.—Yes.

MAL.—Of what nature is it?

RA`K.—A ministerial one, what else? Chandragupta has fallen off from Chāṇakya.

MAL.—Sir, a weak point arising from the (loss of a) minister is no weak point.

RA`K.—A difficulty arising from a minister may be no difficulty in the case of other kings; but with Chandragupta it is so.

MAL.—Sir, it is not so. The faults of Chāṇakya are the cause of the disaffection of Chandragupta's subjects; since he is removed now, those who were already attached to Chandragupta will manifest a still greater attachment to him.

राक्षस—कुमार, जब तक आपको लोगों से 'कुमार' की बजाय 'राजाधिराज' नहीं कहलवा लेता तब तक मेरा सिरदर्द भला जा कैसे सकता है?

मलयकेतु—जब आपने इस बात का बीड़ा उठा ही लिया, तब यह कौन-सी कठिन बात रह गई? किन्तु, इस प्रकार सब धन-बल एकत्र करके भी हम कब तक, शत्रु पर किसी दैवी आपत्ति आ पड़ने की प्रतीक्षा में, हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहेंगे?

राक्षस—कुमार, अब देरी के लिए हमारे पास समय ही कहाँ है? विजय के लिए प्रस्थान कर दो।

मलयकेतु—किन्तु, शत्रु का कोई छिद्र अमात्य को मिल गया क्या?

राक्षस—मिल गया।

मलयकेतु—वह कैसा?

राक्षस—मन्त्रिगत दुर्बलता। हमें और क्या चाहिए? चन्द्रगुप्त अब चाणक्य से पिण्ड छुड़ाकर स्वतन्त्र हो चुका है।

मलयकेतु—किन्तु, मन्त्रिवर, मन्त्री की आई मुसीबत तो कोई राजा पर आई मुसीबत नहीं बन जाती।

राक्षस—अन्य राजाओं के बारे में शायद यह बात कही भी जा सकती है कि उनके मन्त्रियों पर आई मुसीबत उन पर आई मुसीबत नहीं है; चन्द्रगुप्त के विषय में नहीं।

राक्ष०—मा[1] मैवम् । ताः खलु द्विप्रकाराः प्रकृतयश्चन्द्रगुप्तसहोत्थायिन्यो नन्दानुरक्ताश्च[2] । तत्र चन्द्रगुप्तसहोत्थायिनीनां[3] चाणक्यदोषा एव विरागहेतवो न नन्दकुलानुरक्तानाम्[4] । तास्तु खलु नन्दकुलमनेन पितृभूतं[5] घातितमित्यपरागामर्षाभ्यां विप्रकृताः सत्यः स्वाश्रयमलभमानाश्चन्द्रगुप्तमेवानुवर्तन्ते । त्वादृशं पुनः प्रतिपक्षोद्धरणे संभावितशक्ति[6]मभियोक्तारमासाद्य क्षिप्रमेनं परित्यज्य त्वामेवाश्रयिष्यन्ते । अत्र[7] निदर्शनं वयमेव ।

मल०—आर्य[8], किमेतदेकमेव सचिवव्यसनमभियोगकारणं चन्द्रगुप्तस्याहोस्विदन्यदप्यस्ति[9] ?

राक्ष०—किमन्यै[10]र्बहुभिरपि एतद्धि प्रधानतमम् ।

मल०—आर्य[11], कथमिव प्रधानतमम्[12] । किमिदानीं चन्द्रगुप्तः स्वका[13]र्यधुरामन्यत्र मन्त्रिण्यात्मनि वा समासज्य स्वयं प्रतिविधातुमसमर्थः ?

राक्ष०—बाढमसमर्थः । कुतः[14] । स्वायत्तसिद्धिषूभ[15]यात्तसिद्धिषु वा भूमिपालेषु तत्संभवति । चन्द्रगुप्तस्तु दुरात्मा नित्यं सचिवायत्तसिद्धावेव स्थितश्चक्षुर्विकल इवाप्रत्यक्षलोकव्यवहारः कथमिव स्वयं प्रतिविधातुं समर्थः स्यात् ?

शङ्कते । **चन्द्रगुप्तप्रकृतीनामिति** । राक्षसमेव मनसि विषयीकृत्य चन्द्रगुप्तप्रकृतीनामित्यादि ताटस्थ्येन वचनम् । [अपरागोऽननुरक्तिः अमर्षो क्रोधस्ताभ्यां विप्रकृताः कृतक्षोभाः । स्वाश्रयं शोभनं योग्यमाश्रयम् ।]

---

1. कुमार नैतदेवम्, 2. नन्दकुलानु०, 3. नीनां प्रकृतीनाम्, 4. ०नुगतानाम्, 5. पितृकुलभूतं कृत्स्नं कृतघ्नेन घा०, 6. संभाव्य०, 7. अत्र कुमारस्य, 8. अमात्य, 9. अन्यदपि किंचित्, 10. कुमार कि०, 11. अमात्य, 12. तमं नाम, 13. स्वराज्य०, 14. मल०–किं कारणम्, राक्ष०–स्वाय० कदाचिदेतत्सं०, 15. सिद्धिषु तत्सं० ।

RA'K.—Not so at all. The subjects are divided into two classes; the adherents of (lit. those who owe their rise to) Chandragupta, and the followers of (lit. those attached to) Nanda. The misdeeds of Chāṇakya are the cause of disaffection of the adherents of Chandragupta and not of those attached to the house of Nanda. These (latter) are indeed affected by dislike and resentment, knowing as they do that Chandragupta destroyed the family of Nanda which bore parental affection to them (or relation to him); but not finding an able leader they follow Chandragupta himself. Having on the other hand found a champion like you, acknowledged to possess the power to root out the enemy, they will quickly leave him and come over to your side. In this matter, I am myself an instance.

MAL.—Sir, is Chandragupta's ministerial difficulty the only reason for acting on the offensive, or is there any other ?

RA'K.—What have you to do with a number more ? This is the principal.

MAL.—How do you call it 'the principal' ? Is not Chandragupta now able to resist our attack (or to take countermeasures against us) by entrusting the affairs of his kingdom to another minister or having taken them up himself ?

RA'K.—Oh, no. For this reason, that it is possible only in the case of those kings the accomplishment of whose object depends upon themselves. The vile Chandragupta, however, is habitually dependent on his minister for success in an undertaking and is, therefore, like a blind man, inconversant with the affairs of the world. How will he be able to resist us by himself ?

मलयकेतु—अमात्य, ऐसी बात तो नहीं है । चाणक्य के कुछ निजी दोष ही हैं, जो प्रजा में चन्द्रगुप्त से विरक्ति का एक क्षणिक कारण बने हुए हैं । और, क्योंकि जब कांटा दूर हो गया, चन्द्रगुप्त के प्रेमीजन अब स्वभावतः उसके और भी अधिक अनुरक्त हो जाएंगे ।

राक्षस—बिलकुल नहीं । बात यह है कि पाटलिपुत्र की प्रजा को दो मुख्य वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—चन्द्रगुप्त के साथ उन्नति पाये जन और नन्द के पुराने चले आ रहे भक्त । अब पाटलिपुत्र में यदि चाणक्य के दोष प्रजाजन को कुछ विरक्त कर सकते हैं, तो वह चन्द्रगुप्त के इन अवसर-मित्रों को ही, नन्द के प्रेमियों को नहीं । नन्द के इन भक्तों में यह अमरता और अमर्ष की भावना ही इसीलिए जागी कि उनके लिए जो पितृतुल्य था उस नन्द के सम्पूर्ण वंश को ही इसने मरवा डाला । किन्तु उन्हें कहीं कोई सहारा जब तक नहीं मिल जाता, वे भी चन्द्रगुप्त के अनुगामी रहते चलेंगे । हाँ, आपके जैसा कोई नेता यदि उन्हें आज मिल जाता है, जो उनके शत्रु को उखाड़ फैंकने में समर्थ है, तो उसी क्षण चन्द्रगुप्त को छोड़, वे आप ही का आश्रय स्वीकार कर लेंगे । दूर

2-

अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि पार्थिवे च[1] विष्टभ्य पादावुपतिष्ठते श्रीः ।
सा स्त्री[2]स्वभावादसहा भरस्य तयोर्द्वयोरेकतरं जहाति ॥ १३ ॥
नृपोऽपकृष्टः सचिवात्तदर्पणः[3] स्तनन्धयोऽत्यन्तशिशुः स्तनादिव ।
अदृष्टलोकव्यवहारमन्द[4]धीर्मुहूर्तमप्युत्सहते न वर्तितुम् ॥ १४ ॥

मल०—(आत्मगतम्) दिष्टया न सचिवायत्ततन्त्रोऽस्मि । (प्रकाशम्) यद्यप्येवं[5] तथापि बहुष्वभियोगकारणेषु सत्सु व्यसनमभियुञ्जानस्य[6] शत्रुमभियोक्तुरैकान्तिकी[7] कार्यसिद्धिर्भवति ।

प्रतिविघातुमस्मदभियोगं प्रतिकर्तुमित्यर्थः । तत्संभवतीति । संभवतीत्यनेन सामर्थ्यस्य कादाचित्कत्वमुक्तम् । उभयायत्तसिद्धेरेवोत्तरश्लोके प्राशस्त्यकथनात् । [दुरात्मा बुद्धिविकलः । लोकव्यवहारो राज्यतन्त्रपक्षे लोकेषु व्यवहारो भ्रमणादिव्यापारः ।]

यत्पृष्टं स्वकार्यधुरामन्यत्र मन्त्रिणीति तत्परिहरति । अत्युच्छ्रित इति । श्रीः राज्यश्रीः अत्युच्छ्रितयोः समस्कन्धतयात्युन्नतिं प्राप्तयोः । ऐकमत्येनान्यूनाधिकभावेन वैकीभावमिवोपगतयोरिति यावत् । मन्त्रिपार्थिवयोः पादौ मन्त्रशक्तिप्रभुशक्तिरूपौ विष्टभ्य समवस्थाप्योपतिष्ठते । सुस्थिरा सती तयोः सङ्गता भवतीत्यर्थः । उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति तङ् । यद्यपि प्रभुमन्त्रोत्साहरूपास्तिस्रः शक्तयस्तथाप्युत्साहशक्तेरुभयानुकूलत्वेन द्वयोरन्तर्भावाभिप्रायेणात्र सा पृथग्न गृहीता । तयोर्मन्त्रिपार्थिवयोर्द्वयोः सतोर्वैमत्येन न्यूनाधिकभावमुपेत्य द्वैधीभावेन स्थितयोः सा श्रीर्द्वयोः पादयोः सम्यगवष्टम्भासंभवाद्भरस्यासहा राज्यभारं वोढुमसमर्था सती स्त्रीस्वभावाद्दौर्बल्याच्चापल्याच्चैकतरं मन्त्रिणं वा पार्थिवं वा जहाति । कंचित्कालं प्रभुमात्रमाश्रित्य वर्तमानापि मन्त्रवैकल्येन स्वयमपि नश्यत्येवं मन्त्रिणमाश्रित्य वर्तमानापि प्रभुत्ववैकल्येन नश्यतीति भावः । यथा काचन नर्तकी उच्छ्रितौ समौ वंशस्तम्भौ पादाभ्यां दृढमवष्टभ्य सुस्थिरा तिष्ठति तयोर्वैषम्ये विसंष्ठुलपदतया देहभरं वोढुमसहा एकं हित्वान्यतरमवलम्बमाना तेन सह स्वयमपि पतति तद्वत् । अत्र प्रस्तुतेनाप्रस्तुतस्य स्फोरणात्समासोक्तिरलङ्कारः । एवमुच्छ्रितः संश्चन्द्रगुप्तोऽनुच्छ्रितेन्यस्मिन्मन्त्रिणि धुरमासज्यासमर्थः स्यादिति प्रतिपादितम् ॥ १३ ॥ अथात्मन्यासज्येत्यस्य परिहारमाह । नृप इति । तदर्पणः तस्मिन्नेव सचिवे राज्यतन्त्रं सर्वमर्पयतीति तथाभूतः सचिवायत्तसिद्धिरित्यर्थः । अदृष्टलोकव्यवहारः अत एव मन्दधीरिति विशेषणसमासः । तस्मात्सचिवादपकृष्टः सन् राज्यधुरां वोढुमसमर्थो भवतीत्यर्थः ॥ १४ ॥ दिष्टयेति ।

---

1. वावष्टभ्य, 2. श्रीः, 3. दतन्त्रकः, 4. मूढ, 5. आर्य; अमात्य यद्य०, 6. सचिवव्य०, 7. नैका०, सिद्धिः ।

The goddess of royalty stands with her legs rigidly placed on the king and on the minister (when) grown too powerful; being, as a woman, unable to sustain her weight she abandons one of them. (13)

Just as a very young suckling, drawing suck from (its mother's) breast will not be able to live even for a short time if weaned from its mother's breast, so a king, who entrusts everything to his minister, if drawn away from him, will not be able to act (conduct his affairs) even for a moment, his intellect not being unfolded on account of his inexperience of the affairs of the world. (14)

MAL.—(*Aside*) I am glad that I do not depend on a minister for the management of 'my affairs. (*Aloud*) Although it is so, still certain success is obtained by one carefully trying to find out the difficulty arising from (the loss of) the minister and then assailing the enemy only when there are *many* other reasons for commencing hostilities.

जाकर क्या करना, मै स्वयं इसका दृष्टान्त हूं और अपनी ही (इस) स्थापना का स्वतः-प्रमाण हूं ।

मलयकेतु—चन्द्रगुप्त पर इस समय धावा बोल देने के लिए उसके यहाँ आई एक मन्त्रिगत विपत्ति ही पर्याप्त है, या कोई और कारण भी है ?

राक्षस—अन्य विपत्ति-जाल को लेकर हमें क्या करना ? यही एक मुख्य है ।

मलयकेतु—मुख्य कैसे ? क्या अब चन्द्रगुप्त में इतना सामर्थ्य नहीं आ गया कि अपने कार्यभार को किसी अन्य मन्त्री के सुपुर्द करके, या स्वयं सम्भालते हुए, हमारे आक्रमण का जवाब दे सके ।

राक्षस—बिलकुल असमर्थ है । यह सामर्थ्य तो सिर्फ़ उन्हीं राजाओं में हुआ करता है जिनकी सफलता या तो अपने बाहुबल द्वारा अर्जित होती है या फिर मन्त्री और राजा के परस्पर एकीभाव द्वारा सिद्ध होती है । चन्द्रगुप्त का अभिशाप ही यह रहा है कि वह प्रारम्भ से ही अपने मन्त्री का सर्वथा आश्रित चला आया है—जैसे कोई आँख का अन्धा हो, स्वयं लोक-व्यवहार को प्रत्यक्ष कर सकने में निपट असमर्थ—ऐसा आदमी, भला बाह्य आक्रमणों से अपनी रक्षा कैसे कर सकता है ?

जब मन्त्री की शक्ति बहुत बढ़ जाती है, राजलक्ष्मी मन्त्री और राजा, दोनों पर अपने पैर जमाकर रखती है; किन्तु, स्त्री-स्वभाव के कारण, वह भी तो आखिर अबला ही होती है—दो के भार का वहन कैसे कर सकती है । सो, दोनों में से एक को, आखिर, उसे छोड़ना ही पड़ता है । (१३)

एक बहुत ही छोटा बच्चा जिस प्रकार मां की छाती से क्षणभर का विलगाव भी सहन नहीं कर सकता, अपना सब-कुछ मन्त्री के हवाले कर चुका राजा उस मन्त्री से विमुक्त होने की अवस्था में अपना काम-काज क्षण भर के लिए भी चलाने में अपने को असमर्थ पाता है—क्योंकि लोक-व्यवहार का उसे अनुभव

राक्ष०—ऐकान्तिकीमेव कार्यसिद्धिमवगन्तुमर्हति कुमारः । कुतः ?—

त्वय्युत्कृष्टबलोऽभियोक्तरि नृपे नन्दानुरक्ते पुरे
चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि ।

स्वाधीने मयि । (इत्यर्द्धोक्ते लज्जां नाटयन्[1])

मार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे[2]
त्वद्वाञ्छा[3]न्तरितानि संप्रति विभो तिष्ठन्ति साध्यानि नः ॥ १५ ॥

मल०—यद्येवमभियोगकालमार्यः पश्यति ततः किमास्यते ।

उत्तुङ्गास्तुङ्गकूलं स्रुतमदसलिलाः प्रस्यन्दि[4]सलिलं
श्यामाः श्यामोपकण्ठद्रुममलिमुखराः[5] कल्लोलमुखरम् ।
स्रोतःखातावसीदत्तटमुरुदशनैरुत्सादिततटाः
शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयोऽपास्यन्तु[6] शतशः ॥ १६ ॥

त्वयि विरुद्धवृत्तावपि स्वतन्त्रस्य मे नानिष्टमिति भावः । यद्येवमिति व्यसनमभियुञ्जानस्य अनुसन्दधानस्य व्यसनमन्विष्य शत्रुमभियोक्तुः अभिषेणयत इत्यर्थः । अन्येषु बहुषु कारणेषु सत्सु सचिवव्यसनमपि साधकं न केवलमिति भावः ।

अन्यान्यप्युत्कृष्टबलादीनि कारणानि सन्तीत्याह । त्वयीति । स्वप्रशंसायां लज्जा । प्रशंसामेव निह्नुते । मार्गमात्रकथनव्यापार एव योगः उपायः तत्र उद्यमो यत्नो यस्य सः । त्वद्वाञ्छेति । त्वदाज्ञां प्रतीक्षन्त इत्यर्थः ॥ १५ ॥

उत्तुङ्गा इति । [उत्तुङ्गा अत्युन्नताः मम शतशः गजपतयः शोणं अपास्यन्तु तत्सलिलं विधुन्वन्तु इत्यन्वयः । स्रुतं गलितं मदसलिलं येषां ते । शोणोऽपि प्रस्यन्दि सलिलं यस्य तया । श्यामा उपकण्ठतरवो यस्य तं । स्रोतसा जलप्रवाहेण खातमतएव अवसीदद् भ्रश्यत् तटं यस्य तम् ।] अत्र उत्तुङ्गास्तुङ्गकूलमित्यादिसाधारणधर्मोपादानाद्गजपतीनां शोणसिन्धोश्चोपमा गम्या । शोणमिति श्लेषानुप्राणिता । अत्र स्रग्धरावृत्तस्य एकाक्षरमात्राद्वयस्य न्यूनतया प्रस्तारविशेषः ॥ १६ ॥

---

1. नाटयति, 2. योग्यो, 3. वाक्या०, 4. प्रस्यन्द, 5. अतिमु०, 6. यो या०; यः पास्यन्ति ।

RA`K.—Certain success the Prince should look for (in the present case). For,

When you, the attacking king, possessed of an excellent army, the town is attached to the Nandas, Chāṇakya is adversely disposed owing to his removal from office, Maurya is but a new king, and I am at your disposal—(*Here breaking off through modesty*) whose endeavours to suggest the means will be limited to the mere pointing out of the way, our desired objects are now delayed (lit. screened from us), O mighty Prince, simply by your will (to march out). (15)

MAL.—If Your Honour thinks that this is the fit time for an attack, why should we sit idle?

Let my lordly elephants, red with vermillion, scatter in a hundred ways (or in hundreds) the river Śoṇa (red in name only), my elephants of a towering height, shedding ichoral liquid, darkish in colour, noisy with the hum of bees, and demolishing the banks with their huge tusks,—(matched with) the river with its lofty banks, its dripping waters, dark trees lining its sides, its noisy waves and its banks undermined by the current. (16)

अभी तक हुआ नहीं होता और उसकी बुद्धि में यह परिपक्वता आई नहीं होती। (१४)

मलयकेतु––(अपने से ही) मुझे खुशी है इस बात की कि मैं अपने शासन को सम्भालने में अपने मन्त्री का इस तरह मुखापेक्षी नहीं हूं। (व्यक्त) बात भले ही यह सच हो, फिर भी आक्रमण के लिए यदि अनेकों कारण हमें मिल जाते हैं––उस अवस्था में भी सफलता निश्चित तभी अधिक हो सकती है जब शत्रु की किसी एक ही विपत्ति पर अपना ध्यान-बल केन्द्रित करते हुए उस पर आक्रमण कर दिया जाए।

राक्षस—एक तरह से विजय को अब विनिश्चित ही समझ सकते हैं हम, क्योंकि—

आज यदि हमें अभी तक सिद्धि नहीं मिल सकी तो मात्र इसलिए कि कुमार में वह उत्साह अभी तक नहीं जग पाया था। आक्रमण के लिए आपके-जैसा उत्कृष्ट, सेनाओं से युक्त, नेता मौजूद है; सारा कुसुमपुर आज भी नन्द का अनुरक्त है; अधिकार से च्युत होने के कारण चाणक्य अब चन्द्रगुप्त से विमुख हो चुका है। चन्द्रगुप्त अभी अनुभव-विहीन है, और मैं किसी का दास नहीं हूं (जैसे कहकर स्वयं लज्जित हो) और केवल मार्ग-निर्देशन ही जिसकी उपयोगिता रह गई है। (१५)

मलयकेतु—अगर सचमुच अमात्य का यही ख्याल है कि आक्रमण का समय आ चुका है तो फिर हम हाथ-पर-हाथ धरकर क्यों बैठे हैं ?

सैकड़ों की संख्या में मेरे मस्त हाथी आज निकल क्यों न पड़ें ? सिन्दूर की लाली में लाल-लाल, ऊंचे कद-बुत वाले, मस्ती टपका रहे, श्याम-वर्ण, गरजते

अपि च—

गम्भीरगर्जितरवाः स्व[1]मदाम्बुमिश्रम्
आसारवर्षमिव शीकरमुद्गिरन्त्यः ।
विन्ध्यं विकीर्णसलिला इव मेघमाला
रुन्धन्तु[2] वारणघटा नगरं मदीयाः ॥ १७ ॥

(इति भागुरायणेन सह निष्क्रान्तो मलयकेतुः)

राक्ष०—कः कोऽत्र भोः ?

पुरुषः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु अमात्यः । (आणवेदु अमच्चो ।)

राक्ष०—प्रियंवदक, ज्ञायतां[3] सांवत्सरिकाणां द्वारि कस्तिष्ठति ?

पुरु०—यदमात्य आज्ञापयति । (निष्क्रम्य पुनः[4] प्रविश्य) अमात्य एष खलु सांवत्सरिकः क्षपणकः—(जं अमच्चो आणवेदि । अमच्च एसो खु संवच्छरिओ क्खवणओ ।)

राक्ष०—(आत्मगतम्, अनिमित्तं सूचयित्वा) कथं प्रथममेव क्षपणकः[5] ।

पुरु०—जीवसिद्धिः । (जीवसिद्धी ।)

राक्ष०—(प्रकाशम्) अबीभत्सदर्शनं[6] कृत्वा[7] प्रवेशय ।

गम्भीरेति । [गम्भीरगर्जितस्य बृंहितस्य स्तनितस्य रवो यासां ताः । स्वैः मदाम्बुभिः स्वमदाम्बुभिः मिश्रं शीकरं जलकणसमूहमासारवर्षमिव उद्गिरन्त्यः । मदीया वारणघटाः विकीर्णं सलिलं याभिस्तादृश्यः मेघमाला विन्ध्यमिव नगरं रुन्धन्तु ।] नगरं पुष्पपुरम् । वारणमेघमालयोः पूर्णोपमा ॥ १७ ॥

---

1. समदा०, 2. रोत्स्यन्ति, 3. एतन्नास्ति क्वचित्, 4. क्षपणकं दृष्ट्वा पुनः, 5. णकदर्शनम्, 6. भद्र अबी०, 7. कारयित्वा ।

Moreover,

Let the rows of my elephants uttering a deep thunderous roar, and pouring down a rain of spray mixed with the water of their rut besiege the city, as trains of clouds sending forth peals of deep thunder and pouring an abundance of rain surround the Vindhya mountain. (17) [*Exit* MAL. *with* BHA'G.]

RA'K.—Who waits there ?

MAN—(*Entering*) Your command, sir.

RA'K.—Which of astrologers is in attendance at the door ?

MAN—Kshapaṇaka—

RA'K.—(*Gesticulating that he perceived a bad omen; to himself*) What ! Kshapaṇaka at the first sight !

MAN—Jīvasiddhi.

RA'K.—(*Aloud*) Ask him to enter making him put on a dress not loathsome to look at (*i. e.* auspicious).

हुए, और अपने भारी-भरकम दांतों से नदी-तटों को छिन्न-भिन्न करते हुए··· ऊंचे-ऊंचे तटों वाली, पानी से भरपूर, श्यामवर्ण तमालों से भरे तटों वाली, लहरों की लीला से मुखर, और अपनी ही धाराओं के वेग द्वारा जिसकी तटभूमि खाई जा रही है, ऐसी, शोण नदी की ओर मेरी गज-सेनाएं शतानीकों में निकल क्यों न पड़ें ? (१६)

ये मेरी हस्ति-सेनाएं—

गजघटाएं बनकर कुसुमपुर पर छा जायें और अपने गम्भीर निर्घोषों द्वारा, मस्ती बरसा रही वर्षाधाराओं द्वारा···फुहारों द्वारा, वर्षानन्तर बह रही प्रणालियों द्वारा—विन्ध्याचल के मार्गों को जैसे मेघमालाएं अवरुद्ध कर देती हैं—मौर्यों की राजधानी की सारी गतिविधि स्थगित कर दें। (१७)

(और भागुरायण के साथ निकल जाता है)

राक्षस—भाई, कोई है ?

(एक ओर से)

नौकर—आज्ञा हो स्वामी !

राक्षस—प्रियंवदक, जरूर। ज़रा पता करो कि कोई ज्योतिषी है यहाँ ?

प्रियंवदक—अभी पता करके लाया, सरकार। (जाकर और फिर लौटते हुए) स्वामी, बस एक क्षपणक था, इस समय तो यहाँ।

राक्षस—(अपने ही से, अशुभ शकुन समझते हुए) यह क्या मुहूर्त एक क्षपणक के ही दर्शन का था।

प्रियंवदक—(क्षपणक) जीवसिद्धि।

राक्षस—(व्यक्त) कुछ भद्रवेष में नहीं ला सकते उसे ?

पुरु०—तथा (तह) । (इति निष्क्रान्तः)

क्षपणकः[1]—(प्रविश्य)

शासनमर्हतां प्रतिपद्यध्वं मोहव्याधिवैद्यानाम् ।
ये मुहूर्तमात्रकटुकं पश्चात्पथ्यमुपदिशन्ति ॥ १८ ॥
सासणमलिहन्ताणं पडिवज्जह मोहवाहिवेज्जाणं ।
जे मुत्तमात्तकडुअं[2] पच्छा पत्थं उवदिसन्ति ॥ १८ ॥

(उपसृत्य) धर्मसिद्धिर्भवतु श्रावकाणाम् । (धम्मसिद्धि[3] होदु सावगाणम्[4] ।)

राक्ष०—भदन्त[5], निरूप्यतां तावदस्मत्प्रस्थानदिवसः ।

क्षप०—(नाट्येन[6] चिन्तयित्वा) श्रावक, निरूपिता मया मध्याह्नान्निर्वृत्त-सर्वकल्याणा तिथिः संपूर्णचन्द्रा पौर्णमासी । युष्माकमुत्तरस्या दिशो दक्षिणां दिशं प्रस्थितानां च (अ) दक्षिणं नक्षत्रम् । अपि च—(सावगा णिरूविदा मए

जीवसिद्धीति । प्रथमं क्षपणकसामान्यबुद्ध्या दुर्निमित्तविचिकित्सा । पश्चाज्जीवसिद्धिं ज्ञात्वा प्रस्थानमुहूर्तप्रस्तावार्थं प्रवेशानुमतिः । किंचादौ क्षपणक इति दुरुपश्रुत्या राक्षसस्य प्रकृतनीतितन्त्रव्याकोपः सूचितः । पश्चाज्जीवसिद्धिरिति सूपश्रुत्या मलयकेतौ हन्तुमुद्युक्तेपि भागुरायणनयोपायेनास्य जीवनसिद्धिश्च सूचितेति द्रष्टव्यम् ।

शासन इति [मोह एव व्याधिस्तस्य वैद्यानां चिकित्सकानां ज्ञानोपदेशेन मोहं निरस्यतामित्यर्थः । अर्हतां जैनगुरूणां शासनमादेशं प्रतिपद्यध्वमनुरुध्यध्वम् ।] केशोल्लुञ्चनतप्तशिलाधिरोहणादितीक्ष्णतपसा मोक्ष इत्यार्हतानां मतम् । अनेन गाथार्थेन संप्रति स्वेन वक्ष्यमाणं वचनमापाततो रूक्षमपि परिणामे राक्षसस्य पथ्यमिति सूचितम् ।

श्रावक इति । शुश्रूषुपर्यायशब्दस्तन्मतव्यवहारसिद्धः । भदन्तेति । ज्यौतिषिकनाम तैरेव व्यवहृतम् । अयमत्राभिप्रायः । आश्वयुज्यां पौर्णमास्यां कौमुदी-महोत्सवप्रतिषेधेन व्यायामकालस्योक्तत्वात्तदारभ्य मासद्वयमात्रेणोभाभ्यां चाणक्य-राक्षसाभ्यामुपजापादिना भेदतन्त्रं प्रसाधितम् । अथ मार्गशीर्ष्यां कुसुमपुरोपरोधाय प्रस्थातुकामेन राक्षसेन प्रस्थानदिवसे पृष्टे जीवसिद्धिस्तस्मै मुहूर्तं कथयति । अद्य पौर्णमासी पञ्चचत्वारिंशन्नाडिकेति मध्याह्नपर्यन्तं भद्राभिधं विष्टिकरणं निवृत्त-समस्तकल्याणं प्रयाणे निषिद्धम् । किं चाद्य पूर्वदिशि वर्तमानं मृगशिरोनक्षत्रं

---

1. ततः प्रविशति क्षपणकः, 2. पढममेत्त०, 3. धम्मलाहो, 4. साव-ध-कस्स; धम्मलाहे शाधकाणं, 5. भद्र (एवमन्यत्रापि), 6. नावलोक्य चि० ।

MAN—As you order. [*Exit.*

(*Enter* KSHAPAṆAKA)

KSHAP.—Accept the words of the worthy (Saints), the physicians that heal the disease of delusion; they teach what is bitter only for a moment, but is wholesome afterwards (in its effects). (18)

(*Approaching*) May salvation attend the faithful (*i. e.* the worshippers of Buddha or Jina).

RA'K.—Bhadanta, ascertain an auspicious day for our expedition.

KSHAP.—(*Meditating*) Pupil, I have ascertained that the full-moon-day on which the moon is full is afternoon quite

प्रियंवदक—बहुत अच्छा, सरकार। (चला जाता है)

क्षपणक—(एक ओर से)

मोह की व्याधि को दूर करने वाले इन वैद्यराज-अर्हतों के कहने पर चलो—एक क्षण के लिए तो इनका उपदेश कटु लगेगा, किन्तु इसके अनन्तर वही स्वयं पथ्य बन जाएगा। (१८)

(निकट आकर) श्रावकों के धर्म में सिद्धि-ही-सिद्धि प्राप्त हो !

राक्षस—साधुजी, विजय के लिए हमें किस दिन प्रस्थान करना चाहिए ?—जरा इसकी गणना करके बतलाओ हमें।

क्षपणक—(जैसे बड़ी भारी चिन्ता का विषय हो) बेटा मध्याह्न के अनन्तर जिस दिन पूर्ण चन्द्र निकले, पूर्णमासी की उस पुण्य घड़ी में आपके लिये यात्रा

आमज्झण्णादो णिव्वुत्तसव्वकल्लाणा[1] तिही संपुण्णचन्दा पुण्णमासी । तुह्माणं उत्तलाए दिसाए दक्खिणां दिसं पत्थिदाणं अदस्खिणे णक्खत्ते अवि अ—)

अस्ताभिमुखे सूर्ये उदिते संपूर्णमण्डले चन्द्रे
गमनं बुधस्य लग्ने उदितास्तमिते च केतौ ।। १९ ।।
अत्थाहिमुहे सूरे उदिए संपुण्णमण्डले चन्दे ।
गमण[2] बुधस्सलग्गे उदिदत्थमिदे अ केदुम्मि ।। १९ ।।

राक्ष०—भदन्त, तिथिरेव न शुध्यति ।

क्षप०—श्रावक, (सावगा)—

एकगुणा भवति तिथिश्चतुर्गुणं भवति नक्षत्रम् ।
चतुः षष्टिगुणं लग्नमेष ज्योतिषतन्त्रसिद्धान्तः ।। २० ।।
एक्कगुणा होइ तिथि चउग्गुणे होइ णक्खत्ते ।
चउसत्तिगुणे लग्गे एसे जोइसतन्त[3]सिद्धन्ते[4] ।
लग्नं भवति सुलग्नं सौम्ये ग्रहे यद्यपि दुर्लग्नम् ।
वहसि दीर्घां सिद्धिं चन्द्रस्य बलेन गच्छन् ।। २१ ।।
लग्गे होइ सुलग्गे सोमम्मि[5] गहम्मि जइवि दुल्लग्गे ।
वहेसि दीहं सिद्धिं चन्दस्स बलेण गच्छन्ते ।। २१ ।।

दक्षिणादिशं प्रस्थितानामदक्षिणं वामं प्रतिकूलं च । अथापि त्वरया गन्तव्यमिति चेत् **अस्ताभिमुख इति** । सायं सूर्येऽस्तमिते चन्द्रोदयसमये लग्नं मिथुनं बुधस्तस्याधिपतिः राहुः केतुर्वा तदा उदितास्तमितो भविष्यति । तस्मिन्बुधस्य लग्ने गमनं कर्तव्यमिति शेषः । राहुकेत्वोः सर्पाकारमेकं शरीरं तत्र शिरो राहुः पुच्छं केतुः । शिरस्युदिते पुच्छमस्तमितं भवति पुच्छ उदिते शिरोऽस्तमितमिति ज्योतिःशास्त्रसिद्धम् । उभयोरेकशरीरत्वाद्राहुरिति केतुरिति व्यपदेशः । अत उक्तमुदितास्तमिते च केताविति । एवं च मिथुनं द्विस्वभावं धनुषि सप्तमकेन्द्रे स्थितेन क्रूरणास्तमितेन सूर्येण दृष्टं केतुना पापग्रहेण च युक्तं प्रयाणेऽनिष्टम् । तथा चोक्तम् । द्विमूर्तिराशावुदयं प्रपन्ने क्रूरग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते च । प्रयाति यद्यप्य-

---

1. णिवत्तसत्तमकलणा सोहणातिथी; णिवुत्तसंपुण्णकल्लाणपुण्णमासी, णिउत्तसअलदोशा शोहणा तिथी भोदि, 2. गहवदिबुधश्श लग्गे, 3. दीसदि जोइससि० (दृश्यते ज्योतिषसिद्धान्ते), 4. अतः परं ता तस्मात्—इत्यधिकम् 5. कूलग्गहं पलिहलिज्जाशु (क्रूरग्रहं परिहरआशु) । पाविहि दीहं लाभं (प्राप्नुहि दीर्घं लाभं) ।

auspicious. The constellation also is propitious to you who are to march from the north to the south.

Moreover,

You should go when the sun* is about to set, and the full-orbed Chandra (moon) has risen in conjunction with Budha (the planet mercury); and when Ketu has risen and set (*i. e.* Rāhu's head is rising and its tail disappearing). (19)

Ra`k.—Bhadanta, the day itself is not propitious.

Kshap.—Pupil,

The virtue of the day is one, of the constellation fourfold and of the conjunction sixty-fourfold; such is the conclusion of the science of astrology. (20)

A conjunction although by itself unfavourable becomes favourable when presided over by an auspicious planet; going by the power of Chandra (the moon—Chandragupta) you will secure everlasting benefit. (21)

श्रेयस्कर होगी मेरी गणनाएं ऐसा कहती हैं । और, क्योंकि आपकी यात्रा की दिशा उत्तर से दक्षिण की ओर है, इसी दिन नक्षत्रों का योग भी शुभ बैठता है :–

जब सूर्य की अस्तोन्मुख वेला हो, पूर्णिमा का चंद्रमा उदित हो चुका हो, और बुध के लग्न में केतु का उदय और अस्त हो, शास्त्र कहते हैं—प्रस्थान के लिए वही श्रेष्ठ घड़ी है । (१९)

राक्षस—साधुजी महाराज, यह तो तिथि ही शुभ नहीं बैठती ।

क्षपणक—बेटा,

ज्योतिष का सिद्धान्त ही यही कुछ है (मैं क्या करूं इसमें) कि—तिथि को एक-गुणा कर लो, नक्षत्र को चौगुणा और लग्न को आठ-गुणा । (२०)

कहा भी है कि—

यदि क्रूर-ग्रह से बचकर चलो, तो लग्न आप-से-आप सुलग्न हो जाता है और यदि जययात्रा चन्द्र के बल पर होवे तो उसका लाभ भी स्थायी ही होता है । (२१)

इति । द्विस्वभावात्प्रयाणे निषिद्धं मिथुनं यद्यपि दुर्लग्नं तथापि बुधेन सौम्यग्रहेणाधिष्ठितं सत्सुलग्नं भवति । तदा चन्द्रबलेन गच्छन् दीर्घां चिरेण भाविनीं सिद्धिं वक्ष्यसि । अतस्तत्र गन्तव्यमित्यस्य ग्रन्थस्यार्थः । अत्र श्लेषेणाभिप्रेतोऽर्थो जीवसिद्धिना ध्वनितः । तथाहि । शूरो राक्षसः अर्थाभिमुखः अर्थो मौर्यसाचिव्यरूपोऽभिमुखो यस्येति बहुव्रीहिः । तस्याभिमुख्यत्वेनोपस्थित इति भावः । चन्द्रगुप्तः संपूर्णराष्ट्रः सन्नुदितो मलयकेतुरुदित एवेदानीमतः परमस्तं पराभवमेष्यतीति उदितास्तमितः । पत्थिदाणं अदक्खिणं णक्खत्तं । इत्थं प्रस्थितानां च क्षत्रं न

---

* There is a double *entendre* on this and the other words. सूर—the brave Rākshasa; चन्द्र—Chandragupta firmly established; बुध—Chāṇakya; केतु—Malayaketu.

राक्ष०—भदन्त, अपरैः सांवत्सरिकैः सह संवाद्यताम् ।

क्षप०—संवादयत श्रावकः । अहं पुनर्गमिष्यामि । (संवादेदु सावगो । अहं उण गमिस्स ।)

राक्ष०—न खलु कुपितो भदन्तः ?

क्षप०—कुपितो न युष्माकं भदन्तः । (कुविदे ण तुह्माणं भदन्ते ।)

राक्ष०—कस्तर्हि ?

क्षप०—भगवान्कृतान्तः । येनात्मनः पक्षमुज्झित्वा परपक्षः प्रमाणीक्रियते । (भअवं[1] कअन्तो । जेण अत्तणो पक्खं उज्झिअ परपक्खो प्पमाणीकरीअदि ।) (इति निष्क्रान्तः क्षपणकः)

राक्ष०—प्रियंवदक, ज्ञायतां का वेला वर्तत इति ?

प्रियं०—अस्ताभिलाषी भगवान्सूर्यः । (अत्थाहिलासी[2] भअवं सूरो ।)

राक्ष०—(उत्थाय[3] विलोक्य) अये अस्ताभिलाषी भगवान्भास्करः[4] । संप्रति हि—

बुधस्तिदानीं निवर्तते शत्रुजनाभिभूतः ॥ इति ॥ एवं सन्दिग्धे मुहूर्ते उक्ते लग्ने दक्षिणमिति योजना । एवं प्रस्थितानां च युष्माकं क्षत्रं भद्रभटप्रभृति दक्षिणं न भवति किं तु प्रतिकूलं मलयकेतुनिग्रहोन्मुखमित्यर्थः अस्मिन्समये बुधस्य चाणक्यस्य लग्ने संबन्धे निमित्तभूते सति चाणक्ये त्वत्संबन्धार्थमुद्युक्ते सतीति भावः ।

[यद्यपि दुर्लग्नं भवेत्तथापि सौम्ये ग्रहे सति तत्सुलग्नं भवति ।] चन्द्रगुप्तस्य बलेन भद्रभटादिना गच्छंस्त्वं दीर्घां चिरमनपायिनीं चन्द्रगुप्तस्य साचिव्यपदसिद्धिं वहसीति राक्षसं प्रति गूढाभिसन्धिवचनम् ॥ २० ॥

येन त्वया आत्मनः पक्षं ज्योतिः सिद्धान्तवेदिनं मां परित्यज्य परे सांवत्सरिका अपेक्ष्यन्ते । अतस्त्वज्जयोतिःशास्त्रस्य कृतान्तो यमसिद्धान्तो, व्याकोपित इति मत्वा कृतान्तः कुपित इति निष्ठुरवचनं स्पष्टम् । येन त्वयात्मनः पक्षं नन्दवंशीयं चन्द्रमुपेक्ष्य परपक्षो मलयकेतुः प्रमाणीक्रियतेतस्तव कालः कुपित इति हृदि गूढम् । 'कृतान्तो यमसिद्धान्तौ' इत्यमरः ।

---

1. अतः प्राक्–(स्वगतम्), 2. अस्मात्प्राक्–जं अमच्चो आणवेदि (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य), 3. आसनादुत्थाय, 4. सहस्रदीधितिः; तथाहि ।

श्रावक- बौद्ध भेद

Ra`k.—Bhadanta, compare your decision (see that it agrees) with that of other astrologers.

Kshap.—Compare it yourself. I go.

Ra`k.—Surely Bhadanta is not angry?

Kshap.—Bhadanta is not angry with you.

Ra`k.—Who then?

Kshap.—The worshipful god that reigns over the destinies of creatures. For you have left your own side (despised me) and gone over to that of others (*i. e.* appeal to other persons).
[*Exit* Kshapaṇaka.

Ra`k.—Priyaṁvadaka, see what time it is.

Pri.—His reverence the sun is about to set.

Ra`k.—(*Rising and looking*) Indeed, the divine sun is going to set. For now,

राक्षस—साधुजी महाराज, ज़रा अन्य ज्योतिषियों की गणनाओं के साथ भी तुलना कर देखिये पहले।

क्षपणक—यह तुलना करना बेटा, तुम्हारा काम है। मैं तो चला।

राक्षस—कहीं रुष्ट तो नहीं हो गये, साधुजी ?

क्षपणक—हम साधु-संन्यासी किसी से रुष्ट नहीं हुआ करते।

राक्षस—तो फिर कौन रुष्ट हुआ करता है ?

क्षपणक—भगवान् यमराज, जो तुम्हारे पक्ष को छोड़कर तुम्हारे शत्रु के पक्ष की तरफ़दारी करता रहता है। (निकल जाता है)

राक्षस—प्रियंवदक, ज़रा समय तो देखकर बताना।

प्रियंवदक—सूर्यास्त की वेला हो रही है, सरकार !

राक्षस—(उठकर और स्वयं देखते हुए)

आविर्भूतानुरागाः क्षणमुदयगिरेरुज्जिहानस्य भानोः
पर्णच्छायैः[1] पुरस्तादुपवनतरवो दूरमाश्वेव गत्वा ।
एते तस्मिन्निवृत्ताः पुनर[2]परगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे
प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः ।। २२ ।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति राक्षसोद्योगो[3] नाम चतुर्थोऽङ्कः ।

शूर इति । शूरो मलयकेतुरस्तोन्मुखः शूरो राक्षसश्चार्थाभिलाषी इति चोपश्रुतिर्ध्वनिता । उक्तामेव दुरुपश्रुतिमन्यथयति भास्कर इति ।

आविर्भूतानुरागा इति । [एते उपवनस्य तरवः क्षणमाविर्भूतोऽनुरागो येषां ते आविर्भूतानुरागाः उदयगिरेः] उज्जिहानस्योदयमानस्य भानोः पूर्णच्छायैः पर्णच्छायारूपेण । इत्थंभावे तृतीया । छायाबाहुल्यमिति नपुंसकत्वम् । पुरस्तात्पुरोभागे पुरोगामिसेवकवत् । आशु शीघ्रमेव गत्वा । पूर्वाह्णे वृक्षच्छायाः प्रत्यक्प्रसरन्तीति भानोः पुरोगामिभृत्यत्वेनोत्प्रेक्षिताः । पश्चादपराह्णे तस्मिन्नस्तोन्मुखे सति निवृत्तास्तं परित्यज्य परावृत्ता इव दृश्यन्ते । अपककुभः प्रान्तपर्यस्तबिम्बे इति पाठे अपककुप्पश्चिमदिगेव । प्रायो भृत्या इति [अत्र चतुर्थपादप्रतिपाद्यसामान्यार्थेन पादत्रयप्रतिपाद्यविशेषार्थस्य समर्थनात्सामान्येन विशेषसमर्थनरूपः] अर्थान्तरन्यास अलङ्कारः । तेन च मलयकेतुदुरवस्था ध्वन्यते । इत्थं नियताप्तिप्रकरीरूपो विमर्शसन्धिस्तस्याङ्गानि चापवादादीनि निरूपितानि ।।२१।।

इति श्रीत्र्यम्बकयज्वप्रभुवर्याश्रितढुण्ढिराजव्यासयज्वविरचिते
मुद्राराक्षसनाटकव्याख्याने चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।।

---

1. पत्र, 2. पुनरितरककुष्, 3. मुद्राराक्षसे रा० ।

These garden trees, having manifested their affection in the form of the red tinge and quickly gone in front of the sun as he rose from the Orient Mountain, by means of the shadows of their leaves, have now turned back when his disc is pending on the brim of the Western mountain : generally servants who wait upon their master leave him when he declines in prosperity. [*Exeunt Omnes.*

END OF ACT IV.

तो सचमुच क्या सूर्य भगवान् अस्तोन्मुख हैं ? उदयाचल से जब सूर्योदय हो रहा था तब इन्हीं उपवनतरुओं में कितना अनुराग भर आया था--सूर्य के स्वागत में इनके पत्तों की छायाएँ कितनी दूर तक आगे बढ़ आई थी । और इस समय जब अस्ताचल पर सूर्यास्त हो रहा है, वही सूर्य है—किन्तु वही छाया अब उससे कितनी दूर खिसक गई है । ठीक ही तो है—स्वामी के जब अच्छे दिन नहीं रहते वही सेवक-जन उसके, प्रायः उसे इसी तरह छोड़ जाते हैं । (२२)

(मंच पर कोई नहीं रहता)

॥ अंक ४ : राक्षस का उद्योग : समाप्त ॥

[illegible]

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति लेखमलङ्करणस्थागिकां[1] मुद्रितामादाय सिद्धार्थकः)

सिद्धा०—आश्चर्यमाश्चर्यम् ! (ही हीमाणहे हीमाणहे !)

बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना देशकालकलशैः ।
दर्शयिष्यति कार्यफलं गुरुकं चाणक्यनीतिलता ॥ १ ॥

बुद्धिजलणिज्झरेहिं सिञ्चन्ती देसकालकलसेहिं ।
दंसिस्सदि[2] कज्जफलं गुरुअं चाणक्कणीदिलदा ॥ १ ॥

तद्गृहीतो मयार्यचाणक्येन प्रथमलेखितोऽमात्यराक्षसस्य मुद्रालाञ्छितोऽयं लेखस्तस्यैव मुद्रालाञ्छितेयमाभरणपेटिका । चलितोऽस्मि किल पाटलिपुत्रम् । यावद्गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) कथं क्षपणक आगच्छति । यावदस्याशकुनभूतं दर्शनं मम संमतमेव तस्मान्न परिहरामि । (ता[3] गहीदो मए मुद्दालंच्छिओ अज्जचाणक्केण पढमलिहिदो अमच्चरक्खसस्स अअं लेहो तस्स ज्जेव्व मुद्दालंछिआ इअं आहरणपेडिओ । चलिदोह्मि किल पाडलिउत्तं । जाव गच्छामि । कहं[4] खवणओ आअच्छदि । जाव[5] से असउणभूदं दंसणं मह संमदं एव्व ता ण पडिहरामि ।)

अथ फलागमकार्ययोः सम्बन्धो निर्वहणसन्धिस्त्रिभिरङ्कैरारभ्यते ॥ तल्लक्षणमुक्तम् । बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् । ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ॥ बीजवन्तोऽनुस्यूतबीजाः मुखसन्ध्यादीनामर्था आरम्भबीजसंबन्धादयः यथायथं तत्तत्प्रसङ्गानुसारेण विप्रकीर्णा विशकलिततया यदर्थमारब्धाः सन्तः ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते तस्य फलागमशालिनः कार्यस्य यत्र निर्वाहः सिद्धिर्भवति स निर्वहणसन्धिः । कार्यफलागमौ वक्ष्येते । अस्याङ्गानि फलागमकार्यानुगुण्येन प्रयोक्तव्यानि । 'यथासन्धिर्विरोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणम् । प्रसादानन्दसमयाः कृत्याभाषोपगूहनम् ।' पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश ॥ स्थगिकामिति । राक्षसमुद्रामुद्रितां स्थगिकां पेटिकाम् । हीहीमाणहे इति आश्चर्यद्योतको निपात-

---

1. पेटिकां, 2. दंसइस्सदि; दंसेदि हि (दर्शयति हि), 3. नास्त्येतत्क्वचित्; अस्मात्प्राक्–(आत्मगतं) इत्येकस्मिन्पुस्तके, 4. अये कहं, 5. ता जाव मे असउणभूदं इमस्स दंसणं ता आदित्तदंसणेण–भद्ददंसणेण–पडिहणाभि ।

ACT V.

(*Enter* SIDDHA'RTHAKA *with a letter and sealed box containing ornaments*)

SID.—Wonderful, wonderful !

Sprinkled with streams of the water of intellect from the jars of proper place and season, the creeper of Chāṇakya's policy is about to bear the rich fruit of success. (1)

I have, therefore, taken with me this letter stamped with the seal of the minister Rākshasa, which was first caused to be written by His Honour Chāṇakya, and this box of ornaments also marked with Rākshasa's seal. Now I am ostensibly going to Pāṭaliputra. Let me then start (*Walking forth and looking on*) Holla, here comes Kshapaṇaka. His sight, though an ill-omen, is favourable to me. I will not, therefore, avoid him.

अंक ५

(एक पत्र और गहनों की एक मुहर-बन्द पेटी लिये हुए सिद्धार्थक)

सिद्धार्थक—क्या अद्भुत योग है ! —

आज जाकर कहीं चाणक्य की नीति, लता के समान, फलों के भार से लदने को हुई है। और क्यों न हो—देश और काल ने कलश बन-बनकर बुद्धि के जल द्वारा इसका निरन्तर सिंचन जो किया है। (१)

सब ठीक हो गया—यह वह पत्र था जो आचार्य चाणक्य ने तब लिखाया था, और उस पर अमात्य राक्षस की मुहर लगवाई थी; और यह रही आभूषणों से भरी मेरी पेटी, इस पर भी उसीकी मुहर लगी हुए है। और अब मेरी पाटलिपुत्र जाने की वेला भी आ गई, तो चलूं। (कुछ कदम चलकर, सामने देखते हुए) यह क्या—एक क्षपणक के ही दर्शन पहले-पहल होने थे ? लोग इसे अपशकुन मानते हैं, किन्तु मुझे ऐसी चीज़ें सदा अनुकूल पड़ती हैं—मैं इससे कन्नी नहीं कतराऊंगा।

समुदायः। [बुद्धिजलेति। बुद्धिरेव जलं तस्य निर्झरैः प्रवाहैः। देशाश्च कालाश्च देशकालास्ते एव कलशाः तैः साधनभूतैः सिच्यमाना चाणक्यनीतिरेव लता कार्यमन्तिमोद्देशमेव फलं दर्शयिष्यति ।] ॥ १ ॥ किलेत्यलीके गमनमलीकं छद्मरूपमित्यर्थः । इदं बीजोपगमनं सन्धिर्नामाङ्गम् । बीजस्य चाणक्यनीतेरुपगमनात्कार्यसिद्ध्यर्थमभ्युपगमान्निर्वहणात् ॥ परिहरामीति । अनेनाशकुनेन

क्षपणकः—(प्रविश्य[1])—

आर्हतानां प्रणमामि ये ते गम्भीरतया बुद्धेः ।
लोकोत्तरैर्लोके सिद्धिं मार्गैर्गच्छन्ति ॥ २ ॥
अलहन्ताणं[2] पणमामि जे दे गम्भीलदाए वुद्धीए ।
लोउत्तलेहिं लोए सिद्धिं मग्गेहिं गच्छन्दि[3] ॥ २ ॥

सिद्धा०—भदन्त, वन्दे ! (भदन्त वन्दामि[4] !)

क्षप०—श्रावक, धर्मसिद्धिर्भवतु । (निर्वर्ण्य) श्रावक प्रस्थानसमुद्वहने कृतव्यवसायमिव त्वां पश्यामि । (सावगा धम्मसिद्धी होदु । सावगा पत्थाण[5]-समुव्वहणे किदव्ववसाअं विअ तुमं पेक्खामि ।)

सिद्धा०—कथं भदन्तो जानाति । (कहं भदन्तो जाणादि ।)

क्षप०—श्रावक, किमत्र ज्ञातव्यम् । एष ते मार्गादेशकुशलः शकुनः करगतो लेखश्च सूचयति । (सावगा किं एत्थ जाणिदव्वं । एसो[6] दे मग्गादेस-कुसलो सउणो करगदो लेहो अ सूअदि ।)

सिद्धा०—ज्ञातं भदन्तेन । देशान्तरं प्रस्थितोऽस्मि । तस्मात्कथयतु भदन्तः कीदृशोऽद्य दिवसः । (जाणिदं भदन्तेण । देसन्तरं पत्थिदोह्मि । ता कहेदु भदन्तो कीदिसो अज्ज दिवसो त्ति ।)

क्षप०—(विहस्य) श्रावक, मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि । (सावगा मुण्डि[7]अमुण्डो णक्खत्ताइं पुच्छसि ।)

सिद्धा०—भदन्त, सांप्रतमपि किं जातम् । कथय प्रस्थानस्य यद्यनुकूलं भविष्यति तदा गमिष्यामि । अन्यथा निवर्तिष्ये । (भदन्त, सप्पदं वि किं जादं । कहेहि[8] पत्थाणस्स जइ अणुकूलं भविस्सदि तदो गमिस्सं । अण्णधा निवत्तिस्सं ।)

कुसुमपुरं प्रति गमनप्रतिबन्ध इष्ट एवेत्यर्थः । आर्हतानामिति कर्मणि [कर्मणः शेषत्वविवक्षायां] षष्ठी । [आर्हतानां बौद्धशास्त्रगुरून् जैनगुरून् वा प्रणमामि । अर्हतो मान्यांश्च । चाणक्याचार्यमित्यर्थः । प्रणमामि । पूजार्थं बहुवचनम् । ते अर्हन्तः ये वुद्धेः ज्ञानस्य धियाश्च गम्भीरतया दुरवगाहनीयतया लोकोत्तरैः मार्गैः सिद्धिं मोक्षं स्वकार्यसिद्धिं च गच्छन्ति ।] जलनिमज्जितमुक्तालावुवच्छश्वदुत्प्लुत्योर्ध्वंगमनमेव मुक्तिरित्यार्हतानां मतम् । अनेन लोकोत्तरकार्यसिद्धिप्रदं चाणक्यनीतिगाम्भीर्यं ध्वनितम् ॥ २ ॥ [अप्रस्तुतप्रशंसाश्लेषयोः सङ्करः] ।

---

1. ततः प्रविशति०, 2. अल०; प्पणमामो, 3. मग्गन्ति (मार्गयन्ति), 4. प्पणमामि, 5. अथ्थाणशंतलणकदव्यवशाअं, 6. णं एसो ज्जेव दे मगण्णाओ-कण्णधोर (मार्गनौकर्णधारः) लेहे, 7. मुण्डं मुण्डिअ, ०मुण्डो तुमं, 8. ता कहेहि जइ अत्तणो अणु० ।

(*Enter* KSHAPAṆAKA)

KSHAP.—I bow to the followers of Arhat, who by their profound intellect, accomplish their objects in this world by uncommon paths. (2)

SID.—Bhadanta, I salute you.

KSHAP.—Śrāvaka, salvation to you! (*Eyeing him*) Śrāvaka, I find that you are busy in preparing for a journey.

SID.—How do you know it, Bhadanta?

KSHAP.—What is to be known in that? This good omen (or, song) directing your way properly, and the letter you hold in your hand, tell me that.

SID.—You have rightly guessed. I am going on a journey. Please, therefore, tell me what sort of day I have.

KSHAP.—(*With a laugh*) You inquire about the constellations after getting yourself shaved!

SID.—What harm is there even now? Tell me. If the constellations be favourable to my departure I will go; else I will return.

क्षपणक—(प्रविष्ट होकर)—

अर्हत पुरुषों को मैं नित्य नमस्कार करता हूं जो लोकोत्तर मार्गों का अनुसरण करते हुए भी अपने इहलोक की उपेक्षा नहीं करते। (२)

सिद्धार्थक—साधुजी, प्रणाम स्वीकार हो!

क्षपणक—बेटा, तुम्हारा धर्म-कर्म बना रहे। (ज़रा देख-भालकर) बेटा, देखता हूं तू तो, जैसे किसी यात्रा के लिए तैयार होकर निकला है।

सिद्धार्थक—कैसे जाना, आपने यह, साधुजी?

क्षपणक—बेटा, इसमें जानने को है ही क्या? —

तुम्ह राह दिखाने वाला यह शुभ शकुन और यह तेरे हाथ में पड़ा पत्र—दोनों का इंगित यही है।

सिद्धार्थक—खूब पहचाना, महाराज! मैं सचमुच परदेस चला हूं, तो आदेश दीजिये, महाराज—आज का दिन मेरे लिए कैसा रहेगा?

क्षपणक—नक्षत्र पूछने चले थे, बेटा, और वह भी मूंड मुंडाकर?

सिद्धार्थक—महाराज, अब भी कौन-सा सब-कुछ बिगड़ गया है? मुझे बता दीजिये—अगर मेरे लिए अनुकूल हो तो जाऊँ, अन्यथा रुक जाऊँ।

क्षप०—श्रावक, न सांप्रतमेतस्मिन्मलयकेतुकटकेऽनुकूलं भविष्यति। (सावगा[1] ण संपदं एदस्सिं मलअकेदुकडए अणुकूलं भविस्सदि।)

सिद्धा०—भदन्त, कथय कुत एतत्। (भदन्त, कहेहि कुदो एदम्।)

क्षप०—श्रावक, निशामय। प्रथमं तावदत्र कटके लोकस्यानिवारितो निर्गमप्रवेश आसीत्। इदानीमितः प्रत्यासन्ने कुसुमपुरे न कोप्यमुद्रालाञ्छितो निर्गन्तुं प्रवेष्टुं वानुमोद्यते। तद्यदि भागुरायणस्य मुद्रालाञ्छितस्तदा गच्छ विश्रब्धोऽन्यथा तिष्ठ। मा गुल्माधिकारिकैः संयमितकरचरणो राजकुलं प्रवेश्यसे। (सावगा णिसामेहि। पुढमं दाव एत्थ कडए[2] लोअस्स अणिवारिदो णिग्गमप्पवेसो आसी। दाणीं इदो पच्चासण्णे कुसुमपुले ण कोवि अमुद्दालंच्छिओ णिग्गमिदुं पवेठ्ठुं वा अणुमोदीअदि। ता जदि भाउराणस्स मुद्दालंच्छिओ तदो गच्छ विस्सद्धो अण्णहा[3] चिट्ठ। मा[4] गुम्माहिआरिएहिं सञ्जमिअकलचलणो राअकुलं पवेसीअसि।)

सिद्धा०—किं न जानाति भदन्तो अमात्यराक्षसस्य सन्निहित इति। तदमुद्रालाञ्छितमपि मां निष्क्रामन्तं कस्य शक्तिर्निवारयितुम्। (किं ण जाणादि भदन्तो अमच्चरक्खसस्स[5] सण्णिहिदो त्ति। ता अमुद्दालंच्छिदं वि मं णिक्कमन्तं कस्स सत्ती णिवारेदुं।)

क्षप०—(सावेगम्) श्रावक राक्षसस्य पिशाचस्य वा भव न पुनरमुद्रालाञ्छितस्येतो निष्क्रमणोपायः। (सावगा रक्खसस्स पिसाचस्स वा[6] होहि ण उण अमुद्दालंच्छिदस्स इदो णिक्कमणोवाओ।)

सिद्धा०—भदन्त, मा कुप्य मे कार्यसिद्धिर्भवतु। (भदन्त, मा कुप्य मे कज्जसिद्धी[7] होदु।)

सावेगमिति। कौटिल्यकूटकार्यनिर्वहणार्थं कृतोद्योग इति ज्ञात्वा मनस्यावेग औत्सुक्यम्। **अहमपि इति।** अहमपि चिकीर्षितमहाप्रयोजनसिद्ध्यर्थं मुद्रायाचनव्याजेन भागुरायणं प्रति गमिष्यामीति गूढम्। इदं कार्यमार्गणं विरोधो नामाङ्गम्॥

---

1. सावकाणं (श्रावकानां), ०कडए अणुऊलेण अगणुऊलेन वा अग्गाहिदमुद्देण गच्छीअदि (अगृहीतमुद्रेण गम्यते), इ. पा., 2. मलअकेदुक०, 3. अण्णधा णिवत्तिअ णिउक्कण्ठं चिठ्ठ, चिठ्ठ गिउवके (तूष्णीकः), 4. मा तुमं गुम्मठ्ठाणाधिवेहि (गुल्मस्थानाधिपैः), 5. ०सस्स केलिअरो अन्तिओ, सेवओ सिद्धत्थओ, 6. वा केलिअरो, शेवगे, 7. भण मे कज्ज०।

Kshap.—There will be nothing favourable (*i.e.*, nothing favourable will be of any help to one) at present in Malayaketu's camp.

Sid.—Pray, tell me, whence is this ?

Kshap.—Listen. Formerly people had free ingress and egress in this army. But now that Kusumapura is near, nobody is allowed to go out or to come in without a passport, (lit., a seal impression). If you have a pass from Bhāgurāyaṇa, go in good cheer. Otherwise stay, lest you might be taken to the king's tent by the officers at the out-posts, with your hands and feet in irons.

Sid.—Do you not know that I am a personal attendant of the minister, Rākshasa ? Who will, therefore, have the power to stop me even though I leave without a pass ?

Kshap.—(*With anguish*) You may be a friend of Rākshasa or of the devil; but there is no way for you to get out unless you have a pass.

Sid.—Bhadanta, be not angry that I may succeed in the accomplishment of my object.

क्षपणक—मलयकेतु के 'पक्ष' में इस समय कुछ भी वस्तु अनुकूल नहीं है।

सिद्धार्थक—सो कैसे ?

क्षपणक—सुनो, बेटा ! पहले कभी इस छावनी में लोगों के आने-जाने पर कोई रोक-टोक नहीं लगा करती थी। किन्तु, अब क्योंकि कुसुमपुर निकट पड़ता है, बिना मुद्रापत्र के न कोई इधर से आ सकता है, न जा सकता है। तात्पर्य यह कि आज भागुरायण का मुद्रापत्र तो पास हो, बेटा, तो बेखटके चला जा, अन्यथा रुक जा। कहीं ऐसा न हो कि ये वनान्त पर निगरानी रखने वाले सरदार तुझे हाथ-पैर बांधकर राजकुल ले जायें।

सिद्धार्थक—महाराज को शायद मालूम नहीं कि मैं अमात्य राक्षस का अपना ही आदमी हूं। किसकी सामर्थ्य है मुझे इस तरह रास्ते में रोक सके (मेरे पास कोई मुद्रा-पत्र हो न हो)।

क्षपणक—(खीझकर) तू राक्षस का हो, पिशाच का हो, मुद्रा-पत्र के बिना यहाँ से निकल सकना असम्भव है।

सिद्धार्थक—महाराज मुझ पर कुपित न हों, आपका आशीर्वाद चाहिए—मुझे कार्य में सफलता मिल ही जायगी।

क्षप०—श्रावक, गच्छ भवतु ते कार्यसिद्धिः। अहमपि भागुरायणान्मुद्रां याचे। (सावगा गच्छ। होदु दे कज्जसिद्धि। अहं वि भाउराअणादो मुद्दं जाचेमि[1]।) (इति निष्क्रान्तौ)

इति प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति पुरुषेणानुगम्यमानो भागुरायणः)

भागु०—(स्वगतम्[2]) अहो वैचित्र्य[3]मार्यचाणक्यनीतेः—

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना
मुहुः संपूर्णाङ्गी मुहुरतिकृशा कार्यवशतः।
मुहुर्नश्यद्बीजा[1] मुहुरपि बहुप्रापितफले-
त्यहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः॥ ३॥

(प्रकाशम्) भद्र भासुरक, न मां दूरीभवन्तमिच्छति कुमारः। अतोऽस्मिन्नेवास्थानमण्डपे न्यस्यतामासनम्।

पुरु०—एतदासनम्। उपविशत्वार्यः। (एदं आसणं। उपविसदु अज्जो।)

भागु०—(उपविश्य) भद्र[5], यः कश्चिन्मुद्रार्थी मां द्रष्टुमिच्छति स त्वया प्रवेशयितव्यः।

पुरु०—यदार्य, आज्ञापयति। (जं अज्जो[6] आणवेदि।) (इति निष्क्रान्तः)

भागु०—(स्वगतम्[7]) कष्टमेवमप्यस्मासु[8] स्नेहवान्कुमारो मलयकेतुरतिसन्धातव्य इत्यहो दुष्करम्। अथवा—

प्रवेशक इति। तल्लक्षमुक्तम्। 'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। प्रवेशकस्तु नाटचेङ्के नीचपात्रप्रयोजितः'॥ इति॥

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा इति। [मुहुः लक्ष्योद्भेदा मुहुः अधिगमाभावेन गहना। मुहुः संपूर्णाङ्गी मुहुः कार्यवशतः अतिकृशा।] मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुखसन्धौ स्तोकोद्दिष्टा सती बहुधा विस्तारिणीत्यर्थः। प्रतिमुखे लक्ष्यालक्ष्यायाः पुनर्व्यक्तेः गहनातिकृशा च। गर्भे मुहुर्दृष्टनष्टान्वेषणान्नश्यदिव बीजमुद्योगो यस्याः सा तथोक्ता। विमर्शे बीजस्य स्पष्टमेव दर्शनात्संपूर्णाङ्गीत्युक्तम्। निर्वहणे सर्वार्थोपसंहाराद्बहुप्रापितफलेत्युक्तम्। ईदृशी [इतिं एवं] नयविदः [नयज्ञस्य] चाणक्यस्य नीतिर्नियतिरिव चित्राकारा [बहुप्रकारा।] नियतेश्चाणक्यनीतेश्च कार्याणां विचित्राकारता कारणे उपचर्यते॥ ३॥

---

1. पडिच्छेमि, 2. आत्म०, 3. विचित्रता, 4. भ्रश्य०, 5. भद्र भासुरक, 6. अमच्चो, 7. सकरुणमात्म०, 8. एवमयम०, एवं नामायम०।

KSHAP.—Śrāvaka, go; may success attend you ! I too go to ask for a pass of Bhāgurāyaṇa.

END OF THE PRAVEŚAKA.

(*Enter* BHA'GURA'YAṆA *followed by a* MAN)

BHA'G.—(*To himself*) Oh, the manifold nature of the policy of noble Chāṇakya !

Sometimes its manifestation can be clearly discerned, sometimes it is deep, not being comprehended, now full in all its parts and now very subtle, in accordance with the object to be gained; to day its seed appears to be destroyed, tomorrow laden with an abundance of fruit—Oh, how varied in character, like Destiny, is the strategy of the politician Chāṇakya. (3)

(*Aloud*) Friend Bhāsuraka, the Prince does not wish that I should be far off from him. Place my seat, therefore, in this very council-pavilion.

MAN—Here is the seat; Your Honour may sit down.

BHA'G.—(*Sits down*) Whoever may wish to see me for a pass, bring him to me.

MAN—As Your Honour commands. [*Exit.*

BHA'G.—(*To himself*) Alas ! Even prince Malayaketu, who is kind to me to such an extent, has to be deceived ! Oh ! how hard it is ! Or rather,

क्षपणक—जाओ, वेटा, मेरा आशीर्वाद है, सफलता तुम्हारे कदम चूमे। मैं भी चलूं और भागुरायण से मुहर लगवा लाऊँ। (दोनों निकल जाते हैं)

प्रवेशक समाप्त

(भागुरायण और उसके पीछे-पीछे एक सेवक)

भागुरायण—(अपने ही से) अरे, आचार्य चाणक्य की नीति की भी कुछ त्रिचित्रता है, कुछ आर-पार है !

अभी-अभी उसका अंकुर फूटा था, और अव—पता नहीं किस गहन में जाकर अकस्मात् लुप्त हो गई ! कल तक उसका अंग-अंग प्रत्यक्ष था, और आज कार्यवश कितनी सूक्ष्म हो गई है। कभी बीज का भी नामोनिशान नहीं और फिर, कभी फल-ही-फल से लदी हुई ! भाग्य की ही तरह नीतिज्ञ शिरोमणि की नीति भी कितनी अद्भुत है ! (३)

(व्यक्त) मित्र, भासुरक, कुमार नहीं चाहते कि मैं उनसे दूर रहा करूँ। सो, मेरे लिए आस्थान-मण्डप में, यहीं आसन लगा दो !

सेवक—लीजिये, बैठिये।

भागुरायण—अनुमति-पत्र के लिए कोई आदमी इधर आ निकले, तो उसे इधर ही (मेरे पास) लिवा लाना।

सेवक—जो आज्ञा, स्वामी ! (चला जाता है)

भागुरायण—(मन-ही-मन) कितने दुःख की वात है कि मलयकेतु तो मुझसे इतना प्रेम दिखाये, किन्तु मैं हूं कि उसे ही धोखा देने के लिए उद्यत हूं।

कुले लज्जायां च स्वयशसि च माने च विमुखः
शरीरं विक्रीय क्षणिकधनलोभा[1]द्धनवति ।
तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
विचारातिक्रान्तः[2] किमिति परतन्त्रो विमृशति ॥ ४ ॥

(ततः प्रविशति प्रतीहार्यनुगम्यमानो मलयकेतुः)

मल०—(स्वगतम्) अहो राक्षसं प्रति विकल्पवाहुल्यादाकुला मे बुद्धिर्न निश्चयमधिगच्छति । कुतः ?—

भक्त्या नन्दकुलानुरागदृढया नन्दान्वयालम्बिना
किं चाणक्यनिराकृतेन कृतिना मौर्येण सन्धास्यते ।
स्थैर्यं भक्तिगुणस्य वाधिगणयन्क[3] सत्यसन्धो भवेद्
इत्यारूढकुलालचक्रमिव मे चेतश्चिरं भ्राम्यति ॥ ५ ॥

(प्रकाशम्) विजये, क्व भागुरायणः ?

प्रतीहारी—कुमार, एष खलु कटकान्निष्क्रमितुकामानां मुद्रासंप्रदानमनुतिष्ठति । (कुमार एसो खु कडआदो णिक्कमिदुकामाणं मुद्दासंपदाणं[1] अणुचिठ्ठदि ।)

न्यस्यतामिति । मुद्रादानार्थं कटकद्वार्यवस्थानं दूरीभवनमित्याशयः । **अतिसन्धातव्य इति** । यत्कष्टं पापं दुष्करमित्यन्वयः । उक्तं कष्टं समाधत्ते अथवेति ।

कुले इति । [क्षणिकं यद्धनं तस्य लोभात् कुले च माने च विमुखो भूत्वा धनवति शरीरं विक्रीय परतन्त्रः] विचारातिक्रान्तः अतिक्रान्तविचारसमय इत्यर्थः । तदाज्ञां कुर्वाण इदं हितमिदमहितमित्येतत्किमिति विचारयति । इदं कार्योपक्षेपणं ग्रथनम् । कार्यस्य मलयकेत्वतिसन्धानेन राक्षसवशीकरणस्योपक्षेपणात् ॥ ४ ॥

भक्त्या इति । [नन्दकुले अनुरागस्तेन दृढया भक्त्या । चाणक्यस्य निराकृतं निराकृतिस्तेन कृतिना] नन्दान्वयालम्बिना किं मौर्येण सन्धास्यते किंवा भक्तिगुणस्य मयि मया वा क्रियमाणस्य स्थैर्यं दाढर्यं अधिगणयन् आधिक्येन पश्यन् सत्यसन्धः सत्या सन्धा नन्दराज्यं सर्वं तवैवास्त्विति पूर्वं कृता प्रतिज्ञा यस्य स तथोक्तो भवेत् । [इति एवं मे मनः आरूढं कुलालचक्रं येन तदारूढकुलालचक्रमिव चिरं भ्राम्यति ।] नन्दवंशत्वेन नन्दकुलानुरागजनिता भक्तिर्मौर्ये दृढा भवितुमर्हति सत्यसन्धत्वानुरोधेन मयि च केवलो भक्तिगुणो दृढो भवितुमर्हतीत्युभयकोटिकः संशयः । तत्रापि मौर्यसन्धानकोटिः प्रबलेति ध्वनयितुं चाणक्यनिराकृतेनेति

---

[1]. लाभात्, क्षणिकमपि लोभात्, 2. न्निष्क्रा, 3. विगणयन्, 4. संपादनाधिआरे चिठ्ठदि ।

Why should a man who is in a dependent position, having first turned his back on his pedigree, on the sense of shame, on personal reputation and self-esteem, and sold himself (lit. his body) through the lust of momentary wealth to a rich man, still consider when executing his command, whether a thing is good or bad when he has passed the stage of reflection ? (4)

(*Enter* MALAYAKETU *followed by a* FEMALE DOOR-KEEPER)

MAL.—(*To himself*) Oh, my mind being perplexed by doubts about Rākshasa does not come to a decision. For,

Will he, through his devotion strengthened by his affection for the house of the Nandas, make an alliance with Maurya who is connected with the Nanda family, and who is now happy by having discarded Chāṇakya ? Or will he, counting foremost the firmness of the virtue of fidelity, remain true to his promise ?—Thus does my mind whirl about continually as if mounted on a potter's wheel. (5)

(*Aloud*) Vijyā, where is Bhāgurāyaṇa ?

FE. D.-K.—Here he is, engaged in the work of issuing passes to those who desire to leave the camp.

कुलीनता, लज्जा, कीर्ति-अपकीर्ति, मानापमान के प्रश्न से एक बार विमुख होकर, क्षणिक धन के लोभ में आकर किसी धनिक को अपना तन एक वार बेचकर—और उसीका आदेश पालन करते हुए···एक परतन्त्र व्यक्ति के पास भला क्या है और बुरा क्या ? अब विचार के लिये अवकाश ही कहाँ रह जाता है। (४)

(मलयकेतु और पीछे-पीछे उसके प्रतिहारी)

मलयकेतु—(मन-ही-मन) सच तो यह है कि राक्षस के प्रति सन्देहों से भरी मेरी बुद्धि किसी निर्णय पर ही नहीं पहुंच पा रही :–

क्या वह नन्दवंश के प्रति अपनी दृढ़ भक्ति से प्रेरित होकर चाणक्य का अपमान करने वाले चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि कर लेगा—यह सोचकर कि आखिर यह भी तो नन्दों का एक वंशज ही है ? या फिर—भक्ति की स्थिरता पर टिकते हुए अपनी मुझसे की गई प्रतिज्ञा को हर मूल्य पर पा लेगा ?—इस प्रकार, दो विकल्पों पर सोचता हुआ मेरा मन रात-दिन चक्कर में पड़ा रहता है। (जैसे कोई कुम्हार की चक्की पर चढ़ा घड़ा हो)। (५)

(व्यक्त) विजया, भागुरायण कहाँ है ?

प्रतिहारी—यह रहा; छावनी से बाहर जाने वालों को अनुमति-पत्र वितरित कर रहा है।

मल०—विजये, मुहूर्तमसञ्चारा[1] भव यावदस्य पराङ्मुखस्यैव पाणिभ्यां नयने पिदधामि ।

प्रती०—यत्कुमार आज्ञापयति । (जं कुमारो आणवेदि ।)

पुरुषः—(प्रविश्य) आर्य, एष खलु क्षपणको मुद्रानिमित्तमार्यं प्रेक्षितुमिच्छति । (अज्ज एसो खु खवणओ मुद्दाणमित्तं[2] अज्जं पेक्खिदुमिच्छदि ।)

भागु०—प्रवेशय[3] ।

पुरुषः[4]—तथा (तह) । (इति निष्क्रान्तः)

क्षपणकः—(प्रविश्य) धर्मसिद्धिः श्रावकाणां भवतु । (धम्मसिद्धी सावगाणं होदु ।)

भागु०—(अवलोक्य[5] स्वगतम्) अये राक्षसस्य मित्रं जीवसिद्धिः । (प्रकाशम्) भदन्त, न खलु राक्षसस्य प्रयोजनमेत्र किंचिदुद्दिश्य गम्यते ।

क्षप०—(कर्णौ[6] पिधाय) शान्तं पापं शान्तं पापम् । श्रावक, तत्र गमिष्यामि यत्र राक्षसस्य पिशाचस्य वा नामापि न श्रूयते । (सन्तं पावं सन्तं पावं । सावगा तहिं गमिस्सं जहिं रक्खसस्स पिसाचस्स वा णामं वि ण सुणीअदि ।)

भागु०—वलवान्सुहृदि[7] प्रणयकोपः । तत्किमपराद्धं राक्षसेन भदन्तस्य ?

क्षप०—श्रावक, न मे किमपि राक्षसेनापराद्धम् । स्वयमेव मन्दभाग्य आत्मनोऽपराध्यामि । (सावगा ण मम किंवि रक्खसेण अवरद्धं । सअं जेव्व मन्दभाओ[8] अत्तणो अवलद्धामि ।)

भागु०—भदन्त, वर्द्धयसि मे कुतूहलम् । श्रोतुमिच्छामि ।

विशेषणं राक्षसस्य मौर्यसाचिव्याभिलाषहेतुगर्भम् । कृतिनेति च विशेषणं लब्धदुर्लभराज्यत्वात्कृतकृत्यः सन्पुनश्चाणक्येन जितकाशिना दुर्विधेयेन मौर्यो न सन्दधीतेति ध्वनयितुम् ।। ५ ।।

विजये मुहूर्तमिति । अनेन मलयकेतोरतिबालिशत्वं भागुरायणस्य चैवं तद्वशीकरणप्रावीण्यं च सूचितम् । तेनेदानीं महत्प्रयोजनमनुष्ठेयं भविष्यतीति पूर्वमुपक्षिप्तस्य जीवसिद्धिना संप्रति क्रियमाणस्य मलयकेत्वतिसन्धानरूपस्य महाप्रयोजनस्यावसरदानाय चेदं कविसंविधानमित्यवधेयम् ।

---

1. निभृतपदसञ्चारा, 2. निक्खमणमुद्दा, 3. भासुरक प्र०, 4. भासु०—जं अज्जो आणवेदित्ति, 5. नाट्येनावलोक्य, क्यात्म०, 6. एतन्नास्ति क्वचित्, 7. भदन्त वलवांस्ते; वलीयान्, गरीयान्, 8. हतासो मन्दभाओ अत्तणो कम्मेसु लज्जे ।

Mal.—Vijayā, remain motionless for a moment, so that I may approach from behind and cover his eyes with my hands.

Fe. D.-K.—As the Prince commands.

Man—(*Entering, to* Bhaˋguraˋyaṇa) Sir, here is Kshapaṇaka wishing to see you for a pass.

Bhaˋg.—Let him come in.

Man—As you order.

Kshap.—(*Entering*) Salvation to the faithful !

Bhaˋg.—(*Seeing him, to himself*) Oh ! this is Jīvasiddhi, Rākshasa's friend. (*Aloud*) I believe you are going on some business to be done for Rākshasa ?

Kshap.—(*Stopping his ears*) God forbid !! I will go to a place where I may not hear the name of either Rākshasa or of the devil.

Bha'g.—Great is your love-quarrel with your friend. What wrong has Rākshasa done to you ?

Kshap.—Sir, he has done me no wrong. But an unfortunate wretch that I am, I am wronging myself.

Bhaˋg.—Bhadanta, you rouse my curiosity. I wish to hear what you mean.

मलयकेतु—बेटी, ज़रा चलना-फिरना बन्द करके बुत बन जाना। मैं इसकी पीठ पीछे से जाकर आँखें बन्द करूंगा ।

प्रतिहारी—ठीक है, यह लीजिये ।

सेवक—(एक ओर से) स्वामिन्, यह कोई क्षपणक है, जो परवाने के लिए, आपसे मिलना चाहता है ।

मलयकेतु—ले आओ।

सेवक—बहुत अच्छा, सरकार !

क्षपणक—(एक ओर से) सुनने वालों में धर्मबुद्धि जगे ।

भागुरायण—(देखकर, मन-ही-मन) अरे, राक्षस का मित्र जीवसिद्धि ! (व्यक्त) भदन्त, कहीं राक्षस के किसी काम से तो बाहर नहीं जा रहे ?

क्षपणक—(कानों पर हाथ धरते हुए) भगवान् क्षमा करें। बेटा, मैं तो वहाँ चला हूँ जहाँ न राक्षस का नाम सुनता है न पिशाच का ।

भागुरायण—मित्र-प्रेम में यह क्रोध ! तो क्या कुछ बिगाड़ दिया है राक्षस ने साधुजी का ?

क्षपणक—राक्षस ने मेरा क्या बिगाड़ना था ? मेरा कुछ भाग्य ही आजकल ऐसा हो गया है, मेरा अपना ही दोष है जो भी है ।

भागुरायण—यह कहकर तो, भैया, तुमने मेरा कुतूहल और भी बढ़ा दिया। कुछ सुनें तो ?

मल०—(स्वगतम्) अहमपि श्रोतुमिच्छामि ।

क्षप०—श्रावक, किमनेनाश्रोतव्येन श्रुतेन (सावगा किं अणेण असुणिदव्वेण[1] सुदेण ।)

भागु०—यदि रहस्यं तत्तिष्ठतु ।

क्षप०—श्रावक, न रहस्यं कित्वतिनृशंसम् । (सावगा ण[2] रहस्सं किंदु अदिणिसंसं ।)

भागु०—यदि न रहस्यं तत्कथ्यताम् ।

क्षप०—श्रावक, न रहस्यमेतत्तथापि न कथयिष्यामि । (सावगा ण रहस्सं एदं तहवि ण कहिस्सं ।)

भागु०—अहमपि[3] मुद्रां न दास्यामि ।

क्षप०—(स्वगतम्) युक्तमिदानीमर्थिने कथयितुम् । (प्रकाशम्) का गतिः श्रृणोतु श्रावकः । अस्ति तावदहं मन्दभाग्यः प्रथमं पाटलिपुत्रे निवसन् राक्षसेन मित्रत्वमुपगतः । तस्मिन्नवसरे राक्षसेन गूढविषकन्यकाप्रयोगमुत्पाद्य घातितो देवः पर्वतेश्वरः । (का गदी[4] सुणादु सावेगो । अत्थि दाव अहं मन्दभग्गो पढमं पाडलिउत्ते णिवसमाणे[5] लक्खसेण[6] मित्तत्तणं उवगदे । तहिं अवसले लक्खसेण गूढं विसकण्णआपओअं उप्पादिअ घादिदे देवे पव्वदीसले ।)

मल०—(सबाष्पमात्मगमतम्) कथं राक्षसेन घातितस्तातो न चाणक्येन ।

भागु०—भदन्त, ततस्ततः ?

राक्षसस्य मित्रमिति । अनेन द्वारेणेदानीं मलयकेतुरतिसन्धातव्य इति भावः ।

---

1. एदिणा सुणिदेण, 2. ण हि रइस्सं, **भागु०**—तर्हि कथ्यताम् । **क्षप०**—मावकाणत्थि एदं तथावि, न कयस्तं आदिणिसं सं, 3. भदन्त अहं, 4. अस्मात्परं-एसे णिवेदेमि, 5. अहिणिव, 6. रक्खसस्स ।

MAL.—(*To himself*) I too wish to hear it.

KSHAP.—Śrāvaka, why hear a matter which is not worthy of your ear ?

BHA'G.—If it is a secret, let it go.

KSHAP.—It is not a secret, but something extremely cruel.

BHA'G.—If it be no secret, then tell it.

KSHAP.—Sir, it is no secret; yet I won't tell it.

BHA'G.—Then I won't give you a pass.

KSHAP.—(*To himself*) It is right that I should tell it as he is much pressing me for it. (*Aloud*) What help is there for me ? Listen. I, an unlucky creature, first formed friendship with Rākshasa while residing in Pāṭaliputra. At that time Rākshasa killed Parvateśvara by the mysterious means of a poison-maid.

MAL.—(*Shedding tears, to himself*) What ? Rākshasa killed my father, and not Chāṛakya !

BHA'G.—What next ?

मलयकेतु—हाँ, सुनना तो मैं भी चाहूँगा।

क्षपणक—बेटा, जो बात सुनने की नहीं उसे सुनकर क्या करोगे ?

भागुरायण—कोई रहस्य की बात हो तो, फिर रहने दो।

क्षपणक—रहस्य की कुछ नहीं, बस कुछ हृदयहीन···

भागुरायण—हाँ, कोई रहस्य नहीं है, तो फिर कह डालो, ना ?

क्षपणक—ठीक है, रहस्य-वहस्य तो कुछ नहीं है; फिर भी कहूँगा नहीं।

भागुरायण—सोच लो, फिर मैंने भी अनुमति-पत्र दे दिया।

क्षपणक—(मन-ही-मन) अब, इतना चिपट ही आया है, तो कह ही देना चाहिए। (व्यक्त) और चारा ही क्या है अब ? बात ऐसी है कि पाटलिपुत्र में रहते हुए मैंने राक्षस से मित्रता की थी। तभी की बात है कि एक विषकन्या के प्रयोग द्वारा इसी राक्षस ने महाराज मण्डलेश्वर को मरवा डाला।

मलयकेतु—(आंखें भरकर, अपने ही से) तो क्या राक्षस ने मरवाया था उन्हें (चाणक्य ने नहीं ?)

भागुरायण—उसके बाद फिर ?

क्षप०—ततोऽहं राक्षसस्य मित्रमिति कृत्वा चाणक्यहतकेन सनिकारं नगरान्निर्वासितः। इदानीमपि राक्षसेनानेकाकार्यकुशलेन किमपि तादृशमारभ्यते। येनाहं जीवलोकान्निष्कासिष्ये। (ततो हगे लक्खसस्स मित्तं त्ति कदुअ चाणक्कहदएण सणिकालं णअरादो णिव्वसिदे। दाणीं वि लक्खसेण अणेअअकज्जकुसलेण किंवि तालिसं आलहीअदि जेण हगे जीअलोआदो णिक्कासिज्जेमि[1]।)

भागु०—भदन्त, प्रतिश्रुतराज्यार्द्धमयच्छता[2] चाणक्यहतकेनेदमकार्यमनुष्ठितं न राक्षसेनेति श्रुतमस्माभिः।

क्षप०—(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्। चाणक्येन विषकन्याया नामापि न श्रुतम्। (सन्तं पावं। चाणक्केण विसकण्णाए णामं वि ण[3] सुदम्।)

भागु०—भदन्त[4], इयं मुद्रा दीयते। एहि कुमारं श्रावय।

मल०—(उपसृत्य)

श्रुतं सखे श्रवणविदारणं वचः
सुहृन्मुखाद्रिपुमधिकृत्य भाषितम्।
पितुर्वधव्यसनमिदं हि येन मे
चिरादपि द्विगुणमिवाद्य[5] वर्धते॥ ६॥

क्षप०—(स्वगतम्) अये श्रुतं मलयकेतुहतकेन। हन्त कृतार्थोऽस्मि[6]। (इति निष्क्रान्तः)

अर्थिने इति। अर्थिने आदरवते। आदरेण श्रुतं मत्कथितं तथात्वेनैव गृह्णीयादिति भावः। घातित इति मम हस्तेनेति शेषः। तादृशमिति। तादृशं पर्वतेश्वरघातनसदृशं। मलयकेतुनिग्रहोऽपीति गूढो भावः। इदं भागुरायणभदन्तमिथः परिभाषणं जल्पनम्।

श्रुतमिति। [हे सखे रिपुं राक्षसमधिकृत्य भाषितं श्रवणविदारणं वचः सुहृन्मुखात् क्षपणकात् श्रुतम्। येन इदं मे पितुः वधव्यसनं] चिरादपि चिराज्जातमपि अद्य जातमिव द्विगुणं वर्धत इत्यर्थः॥ ६॥

---

[1] णिव्वासिज्जामि (निर्वासिष्ये), [2] अनिच्छता, [3] ण चाणक्को जाणादि। तेण ज्जेव दुट्ठबुद्धिणा लक्खसेण एसा अकज्जसिद्धी किदा, [4] भदन्त, कष्टमिदं। इयं, [5] मिहा, [6] ०र्थश्चाणक्यः।

Kshap.—Then Chāṇakya thinking me to be a friend of Rākshasa had me disgracefully expelled from the city. And even now, Rākshasa, who is skilled in doing many bad things, has planned something similar to it by which I shall be turned out of this world of living creatures.

Bha'g.—Sir, we had heard that the cursed Chāṇakya, not intending to give the promised half of the kingdom, committed this foul deed.

Kshap.—(*Stopping his ears*) Heaven forbid ! Chāṇakya did not even know the name of the poison-maid.

Bha'g.—Bhadanta, here I give you the pass. Come, tell this to the Prince.

Mal.—(*Approaching*)

I have heard, friend, the words rending the ear with regard to the enemy from the mouth of his friend, by which my grief for my father's murder as if increases twofold even to-day though a long time has elapsed. (6)

Kshap.—(*Aside*) Ah, the wretch Malayaketu has heard it. Hey-day ! I have gained my object. [*Exit.*

क्षपणक—उसके बाद—मैं क्योंकि राक्षस का मित्र था, चाणक्य ने मुझे अपमानित कर नगर से निर्वासित कर दिया। राक्षस की कार्य-कुशलता कुछ ऐसे ही कार्यों में होती है, और आजकल भी वह किसी ऐसे ही एक और प्रयोजन में लगा हुआ है कि मुझे लगता है इस बार मुझे इस जीवन से ही न निर्वासित होना पड़े।

भागुरायण—साधुजी, हमने तो सुना था कि चाणक्य ने जो आधा-राज्य देने का वचन दिया हुआ था, उससे फिर जाने के लिए ही उसने ऐसा किया था। राक्षस का नाम तो इस सम्बन्ध में कभी सुनने में नहीं आया।

क्षपणक—(कानों पर हाथ धरते हुए) भगवान् क्षमा करें। चाणक्य को तो इतना भी मालूम नहीं कि यह 'विषकन्या' किस चिड़ी का नाम है।

भागुरायण—तो यह परवाना लो। आओ कुमार मलयकेतु को भी यह सब सुना दो (लो, वह इधर ही आ रहे हैं)

मलयकेतु—(निकट आते हुए)—

मित्र, आज मैंने तुम्हारे ही मित्र के मुख से जो कुछ सुना, उससे तो मेरे कान ही फटे जाते हैं। मुझे आज मालूम हुआ कि मेरा वास्तविक शत्रु कौन है। आज मुझे पितृघात का दुःख, जैसे, ताजा होकर दुगना हो आया है। यद्यपि देर बाद ही (और प्रसंग से ही) उनका नाम आ गया।

क्षपणक—(मन-ही-मन) तो क्या यह निगौड़ा मलयकेतु सब-कुछ सुन रहा था ? खूब रही, मेरा प्रयोजन स्वतः सिद्ध हो गया। (खिसक जाता है)

मल०—(प्रत्यक्षवदाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) राक्षस राक्षस, युक्तं[1] युक्तम् ।

मित्रं ममा[2]यमिति[3] निर्वृतचित्तवृत्ति
विश्रम्भतस्त्वयि निवेशितसर्वकार्यम् ।
तातं निपात्य सह बन्धुजनाश्रुतोयैर्[4]
अन्वर्थतोपि[5] ननु राक्षस राक्षसोऽसि ॥ ७ ॥

भागु०—(स्वगतम्) रक्षणीया राक्षसस्य प्राणा इत्यार्यदिशः । भवत्वेवं तावत् । (प्रकाशम्) कुमार, अलमावेगेन । आसनस्थं कुमारं किंचिद्विज्ञापयितुमिच्छामि ।

मल०—(उपविश्य) सखे, किमसि वक्तुकामः ?

भागु०—कुमार, इह खल्वर्थशास्त्रव्यवहारिणामर्थवशादरिमित्रोदासीनव्यवस्था न लौकिकानामिव[6] स्वेच्छावशात् । यतस्तस्मिन्काले सर्वार्थसिद्धिं राजानमिच्छतो राक्षसस्य चन्द्रगुप्तादपि बलीयस्तया सुगृहीतनामा देवः पर्वतेश्वर एवार्थपरिपन्थी महानरातिरासीत् । तस्मिंश्च राक्षसेनेदमनुष्ठितमिति नातिदोषमिवात्र[7] पश्यामि । पश्यतु कुमारः—

कृतार्थोस्मीति । तेनेदानीं महत्प्रयोजनमनुष्ठेयं भविष्यतीति पूर्वोक्तमहाप्रयोजनानुष्ठानेन कृतार्थोऽस्मीत्यर्थः । सुहृन्मुखाद्रिपुमधिकृत्येत्यनेन स्वस्य सुहृत्त्वेन विश्वास्यवचनत्वं रिपुत्वं च मलयकेतुना मनसि दृढीकृतमिति च कृतार्थता । इदं बीजानुगुणकार्यप्रख्यापनं निर्णयः ।

मित्रं ममेदमिति । [अयं राक्षसः मम मित्रमिति निर्वृतचित्तवृत्ति विश्रम्भतः त्वयि निवेशितराज्यभारं तातं बन्धुजनाश्रुतोयैः सह निपात्य हे राक्षस अन्वर्थतोऽपि ननु राक्षसोऽसि ।] अनेन ज्ञायते राक्षसपर्वतकयोः पूर्वं महत्सौहृदमासीदनन्तरं चाणक्येन राज्यार्धदानपणनप्रलोभनेन राक्षसाद्विभेद्य स्वकार्यसिद्धये पर्वतकः सहायत्वेन प्रवणीकृत इति । तथाचानुपदमेव कुपितो मलयकेतुर्भागुरायणेन समाधीयते तस्मिन्काले सर्वार्थसिद्धिं राजानमित्यादिना महानरातिरासीदित्यन्तेन ग्रन्थेन ॥ ७ ॥

---

1. युक्तमिदम्, 2. ममेदं, 3. कार्यः, 4. नाक्षि०, 5. ०र्थसंज्ञ, 6. लोकानां, 7. नास्तिदोष एवात्रेति ।

MAL.—(*Looking into space as if he saw* RA`KSHASA *visibly before him*) Rākshasa, Rākshasa, very proper indeed, this !

O Rākshasa, since you caused my father to fall (killed him) along with the tears of his relations, when he, with his mind perfectly at ease at the thought that you were his friend, had trustingly entrusted all his affairs to you, you are indeed, a Rākshasa in the full sense of the word. (7)

BHA`G.—(*Aside*) It is the order of my master that Rākshasa's life should be saved. Well then, I shall thus manage it. (*Aloud*) Prince, do not be excited. Pray sit down. I have to say something to Your Highness.

MAL.—(*Sitting down*) What do you want to say, friend ?

BHA'G.—Prince, in this world, in the case of politicians the consideration of friend, or foe, or neutral, is dependent on interest, and not on personal inclination as with ordinary men. As at that time Rākshasa wished Sarvārthasiddhi to be king, His Highness Parvateśvara, of blessed name, on account of his being more powerful than even Chāṇakya, stood as an obstacle in the way of his project, and was consequently his great foe. So Rākshasa acted against him. I, therefore, see that there was nothing deserving great blame in this. The Prince should just consider.—

मलयकेतु—(प्रत्यक्ष ही जैसे, शून्य में दृष्टि बाँधते हुए) राक्षस, राक्षस ! खूब रही, खूब रही—'तुम मेरे मित्र हो' इस विश्वस्तता के साथ तुम पर सारा कार्यभार छोड़ते हुए मेरे पिता को तुमने कैसे मार गिराया ? और वन्धु-बान्धवों के आँसू भी गिरवाये। सचमुच तू, नाम और अर्थ दोनों दृष्टियों से राक्षस ही है।

भागुरायण—(मन-ही-मन) स्वामी का तो मुझे यही आदेश था कि राक्षस की जान पर न बनने पाये। अस्तु, कुछ-न-कुछ करना ही होगा। (व्यक्त) दुःख में डूबने से क्या लाभ, कुमार ? आइए, कुछ क्षण बैठ जाइए, मुझे भी आपसे कुछ कहना है।

मलयकेतु—(बैठते हुए) क्या कहना चाहते हो, मित्र ?

भागुरायण—कुमार, इस संसार की कुछ करनी ही ऐसी है कि विशेषतः राजनीतिज्ञों के शत्रु-मित्र-उदासीन प्रायः स्वार्थवश ही निर्धारित हुआ करते हैं—सामान्य लोगों की भाँति किन्हीं व्यक्तिगत प्रवृत्तियों के कारण नहीं। उस समय कुछ परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं—राक्षस का विचार सर्वार्थसिद्धि को राजा बनाने का था, और महाराज पर्वतेश्वर तब चन्द्रगुप्त से वह अधिक शक्तिशाली थे, स्वार्थ की दृष्टि से स्वभावतः राक्षस के महान् शत्रु थे। इस प्रकार, यदि राक्षस ने यह अनुचित व्यवहार उनसे कर भी दिया हो, तो मुझे तो कोई बड़ा

मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती[1] मित्रत्वमर्थस्य[2] वशाच्च शत्रून् ।
नीतिर्नयत्यस्मृतपूर्ववृत्तं जन्मान्तरं जीवत एव पुंसः ॥ ८ ॥

तदत्र वस्तुनि नोपालम्भनीयो[3] राक्षसः । आ नन्दराज्यलाभा[4]दुपग्राह्यश्च । परतश्च परिग्रहे वा परित्यागे वा कुमारः प्रमाणम्[5] ।

मल०—एवम्[6] । सखे, सम्यग्दृष्टवानसि । यतोऽमात्यवधे[7] प्रकृतिक्षोभः स्यादेवं च सन्दिग्धो विजयः[8] ।

(प्रविश्य)

पुरुषः—जयतु कुमारः । आर्य, गुल्मस्थानाधिकृतो दीर्घरक्षो विज्ञापयति । एष खल्वस्माभिः कटकान्निष्क्रामन्नगृहीतमुद्रः सलेखः पुरुषो गृहीतः । तत्प्रत्यक्षीकरोत्वेनमार्य इति । (जेदु कुमारो । अज्ज गुम्मट्ठाणाधिकिदो दीहरक्खो[9] विण्णवेदि एसो खु अह्मेहिं कडआदो णिक्कमन्तो अगहीदमुद्दो सलेहो पुरिसो गहीदो । ता पच्चक्खीकरेदु णं अज्जोत्ति ।)

भागु०—भद्र, प्रवेशय ।

पुरु०—यदार्य आज्ञापयति । (जं[10] अज्जो आणवेदि ।) (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति पुरुषेणानुगम्यमानः संयतः सिद्धार्थकः)

सिद्धा०—(स्वगतम्)

आनयन्त्यै गुणेषु दोषेषु पराङ्मुखं कुर्वत्यै ।
अस्मादृशजनन्यै प्रणमामः स्वामिभक्त्यै ॥९॥

मित्राणीति । [अर्थस्य प्रयोजनस्य वशात् मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती शत्रूंश्च मित्रत्वमुपानयन्ती प्रापयन्ती नीतिः जीवत एव पुंसः नरस्य अस्मृतं पूर्ववृत्तं यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा अन्यज्जन्म जन्मान्तरं नयति ।] जन्मान्तरे पूर्वजन्मवृत्तं यथा न स्मर्यते तथा जीवत एव पुंसः राजतन्त्रनीतिवशात्पूर्वापकृतादि विस्मार्यत्वेन प्रसज्यत इति भावः ॥ ८ ॥ तदत्र वस्तुनीति इदं कुपितस्य मलयकेतोः । समाधानरूपं पर्युपासनम् ।

अतः परमङ्कसमाप्तिपर्यन्तं प्रथमेऽङ्के किमत्र लिखामीत्यादिना कर्णे एवमेवेत्यन्तेन ग्रन्थेनोपक्षिप्तस्य बीजस्यानेकधा प्रकीर्णस्यैकार्थीकरणबीजोपगमनस्यैव सन्धेरङ्गस्य प्रपञ्चः । आनयन्त्यै इति । दोषवति कार्ये प्रवृत्त्यापि दोषे पराङ्मुखं दोषानगणयन्तं कुर्वत्यै प्रत्युत गुणेष्वानयन्त्यै गुणपक्ष एव पातयन्त्यै सर्वतो

---

1. ०मिवान०, 2. ०मस्याथ-मप्यर्थं, 3. वस्तुन्यनुपालभ्यः, 4. दन्०, 5. प्रमाणं भविष्यति, 6. एवं भवतु, 7. अन्यथास्य वधे, 8. विजयः स्यादस्माकम्, 9. हचक्खू अज्जं, 10. तहा ।

Turning from considerations of interest friends into foes and foes into friends, policy leads a man, while still living, into another kind of existence in which past conduct (relation) is all forgotten. (8)

Rākshasa, therefore, should not be blamed in this matter, but should be retained in service till you gain the kingdom of Nanda. Afterwards you are free to retain him or to dismiss him from service.

Mal.—Quite so. Your view is right. For if the minister be killed the subjects will be irritated (or will rise into revolt), and thus victory will be rendered dubious.

Man—(*Entering*) Victory to the Prince ! (*To* Bha'g.) Sir, Dīrgharaksha, the superintendent at the out-post, begs to inform you—Here is a person with a letter arrested by us as he was going out of the camp without a pass. Your Honour should be pleased to inspect him personally.

Bha'g.—Good man, introduce him.

Man—As you command. [*Exit.*

(*Enter* Siddha'rthaka *bound hand and foot, followed by the* Man)

Sid.—(*To himself*) I bow to Loyalty, the mother of people of my sort, that turns (all that is commanded) into virtue and makes us blind to faults. (9)

अपराध इसमें दृष्टिगोचर नहीं होता । देखिये ना—यह स्वार्थ है, जो राजनीति में मित्रों के प्रति शत्रुता का और शत्रुओं के प्रति मित्रता का व्यवहार करा देता है । जीते-जी ही मनुष्य, जैसे अपने अतीत को बिलकुल भुलाकर एक और ही जीवन—एक जन्मान्तर-सा गुज़ारने लग जाता है । (८)

सो, इस विषय में राक्षस पर उलाहना डालने का कोई लाभ नहीं । नन्द-राज्य जब तक वापस हाथ में नहीं आ जाता, उसे सेवा में रक्खे ही रहिए । उसके बाद आप स्वतन्त्र होंगे कि उसे रक्खा जाय या सेवाच्युत कर दिया जाय ।

मलयकेतु—ठीक ही कहते हो, मित्र ! तुमने सब तोलकर देख लिया; क्योंकि अमात्य को यदि आज मरवा डाला जाय तो प्रजाजन भड़क उठेंगे, और हमारी विजय के मनोरथ भी सब शंकास्पद हो जायेंगे ।

सेवक—(एक ओर से) कुमार की जय हो !

(भगुरायण से) स्वामी, गुल्माध्यक्ष दीर्घरथ का सन्देश लाया हूँ कि एक अजनबी है जो बिना किसी अनुमति-पत्र के छावनी के बाहर निकल रहा था, उसके हाथ से एक पत्र भी प्राप्त हुआ है । हमारे पास है वह । यदि आप स्वयं देख लें तो ठीक रहेगा ।

भागुरायण—भाई, ले आओ अन्दर ।

सेवक—जो आज्ञा । (नकल जाता है)

सिद्धार्थक—(मन-ही-मन)

आणंतीए गुणसु दोसेसु परंमुहं कुणन्तीए।
अह्मारिसजणणीए पणमामो सामिभत्तीए ॥ ९ ॥

पुरु०—आर्य[1], अयं स पुरुषः। (अज्ज अअं सो पुरिसो।)

भागु०—(नाटयेनावलोक्य[2]) भद्र, किमयमागन्तुक आहोस्विदिहैव कस्यचित्परिग्रहः।

सिद्धा०—आर्य, अहं खलु अमात्यराक्षसस्य सेवकः। (अज्ज अहं खु अमच्चरक्खसस्स सेवओ।)

भागु—भद्र, तत्किमगृहीतमुद्रः[3] कटकान्निष्क्रामसि।

सिद्धा०—आर्य, कार्यगौरवेण त्वरायितोऽस्मि (अज्ज कज्जगोरवेण तुवराविदोह्मि।)

भागु०—कीदृशं तत्कार्यगौरवं यद्राजशासनमुल्लंघयति[4] ?

मल—सखे, भागुरायण लेखमपनय[5]।

भागु०—(सिद्धार्थकहस्ताद्गृहीत्वा[6] पत्रमुद्रां दृष्ट्वा) कुमार अयं लेखः। राक्षसनामाङ्कितेयं[7] मुद्रा।

मल०—मुद्रां परिपालयन्नुद्घाटय[8] दर्शय।

भागु०—(तथा कृत्वा दर्शयति)

मल०—(वाचयति[9]) स्वस्ति यथास्थानं कुतोऽपि कोऽपि कमपि पुरुषविशेषमवगमयति अस्मत्प्रतिपक्षं निराकृत्य दर्शिता कापि सत्यता सत्यवादिना। सांप्रतमेतेषामपि प्रथममुपन्यस्तसन्धीनामस्मत्सुहृदां पूर्व[10]प्रतिज्ञातसन्धिपरिपणन[11]-प्रोत्साहनेन सत्यसन्धः प्रीतिमुत्पादयितुमर्हति। एतेप्येवमनुगृहीताः[12] सन्तः

गरीयस्यै स्वामिभक्त्यै नमः। स्वामिभक्तिवशात्स्वामिकार्यसिद्धयर्थमनुचितमपि क्रियमाणं गुणपक्ष एव भवति न पुनर्दोषपक्ष इति भावः। स्वामिभक्त्यै इति। क्रियया यमभिप्रैति स सम्प्रदानमिति सम्प्रदानत्वम् ॥ ९ ॥

मुद्रां परिपालयन्निति। लेखस्य धारणपेटिकायाश्च मुद्रापरिपालनं राक्षसमुद्रया सह संवाददर्शनार्थम्। **स्वस्ति यथेति**। अस्मत्प्रतिपक्षस्य चाणक्यस्य निराकरणं पूर्वमेव त्वया प्रतिज्ञातमासीत्। किलेति बलादापादानार्थम्।

---

1. उपसृत्य इत्यधिकम्, 2. पुरुषमव०, 3. किमर्थंम० 4. यसि, 5. मुपा०; अस्मात्परं-सिद्धा०, भागुरायणाय लेखमर्पयति, 6. स्ताल्लेखं, 7. नामाङ्केयं, राक्षसमुद्राङ्कितः; ०नामाङ्कोऽयं, लेखः, 8. उद्वेश्य, 9. गृहीत्वा वाच०, 10. संप्रति०, 11. परिपणवस्तुप्रतिपादन०, 12. उपगृहीतः।

MAN—Here is the man, Your Honour.

BHA`G.—(*Looking at him*) Is he a stranger or an attendant of some one here ?

SID.—Sir, I am an attendant of the minister Rākshasa.

BHA`G.—Friend, why do you then leave the camp without a pass ?

SID.—Sir, I was obliged to act with despatch owing to the importance of the business.

BHA`G.—What is the important business that makes you transgress the royal order ?

MAL.—Friend Bhāgurāyaṇa, take the letter from him.

BHA`G.—(*Taking it from* SID.'s *hand and seeing the seal*) Prince, here is the letter. The seal bears Rākshasa's name.

MAL.—Open the letter preserving the seal, and show it to me.

BHA`G.—(*Does accordingly and shows him the letter*)

MAL.—(*Reads*) After compliments some body from some place informs some important personage in the proper place. The veracious one has shown an indescribable truthfulness in dismissing our adversary. Now, the truthful one will be pleased to give pleasure to these our friends with whom an alliance has already been proposed by encouraging them with

हम तो, भाई, स्वामिभक्ति के सेवक हैं और उसीकी सेवा करते हैं—उसीकी पूजा करते हैं। स्वामिभक्ति ही, सच पूछो तो, हमारे-जैसों की सच्ची माँ है; जो गुण-ही-गुण तो सम्मुख लाती है किन्तु दोषों से जैसे हमारी दृष्टि ही मोड़ देती है। (९)

सेवक—(निकट आकर) स्वामी, यह रहा वह व्यक्ति।

भागुरायण—(देखकर, पहचानने की कोशिश करते हुए) भैया, यह कोई परदेशी अजनबी है या यहीं रहने वाले किसी का आश्रित—सेवक है ?

सिद्धार्थक—स्वामी, मैं अमात्य राक्षस का एक दास हूँ।

भागुरायण—तो फिर, भाई, बिना अनुमति-पत्र के ही छावनी से क्यों निकल रहे थे ?

सिद्धार्थक—काम बड़ा ही आवश्यक आ पड़ा था (कि मुझे समय की सुध-बुध ही नहीं रही)।

भागुरायण—ऐसा भी क्या आवश्यक काम हुआ कि राज-शासन की भी परवा नहीं की तुमने ?

मलयकेतु—भागुरायण, और यह पत्र छीन लो इसके हाथ से।

भागुरायण—(सिद्धार्थक के हाथ से लेकर, पत्र पर लगी मुहर को जांचते हुए) कुमार, यह रहा पत्र। किन्तु इस पर तो सचमुच राक्षस के नाम की मुहर लगी हुई है।

मलयकेतु—खोलकर दिखाओ, लेकिन ध्यान रखना मुहर न टूटने पाये।

भागुरायण—(वैसे ही, सावधानी के साथ पत्र खोलकर दिखलाता है)

स्वाश्रयविनाशेनोपकारिण[1]माश्रयिष्यन्ति । अविस्मृतमेतत्सत्यवतः स्मारयामः । एतेषां मध्येः केचिदरेः कोषहस्तिभ्यामर्थिनः[2] केचिद्विषयेणेति । अलङ्कारत्रयं[3] च सत्यवता यदनुप्रेषितं तदुपगतम् । मयापि[4] लेखस्याशून्यार्थं किंचिदनुप्रेषितं तदुपगमनीयम् । वाचिकं चाप्ततमादस्मा[5]च्छ्रोतव्यमिति । सखे, भागुरायण कीदृशो लेखः[6] ।

भागु०—भद्र सिद्धार्थक कस्यायं लेखः ?

सिद्धा०—आर्य न जानामि । (अज्ज ण जाणामि ।)

भागु०—हे धूर्त, लेखो नीयते न ज्ञायते कस्यायमिति । सर्वं तावत्तिष्ठतु । वाचिकं त्वत्तः केन श्रोतव्यम् ।

सिद्धा०—(भयं नाटयन्) युष्माभिः । (तुह्मेहिं ।)

भागु०—किमस्माभिः ?

सिद्धा०—मिश्रैर्गृहीतो न जानामि किं भणामीति । (मिस्सेहिं[7] गिह्णीदो ण आणामि किं भणामि त्ति ।)

अस्मत्सुहृदां कौलूतादीनामित्यर्थः । सन्धिपरिपणनस्य सन्धिसमये पूर्वदित्सितस्य प्रोत्साहनम् । अवश्यं दास्यामीत्याश्वासनम् । अविस्मृतमिति सत्यवत्त्वात्त्वं न विस्मरस्यथापि स्मारयाम इत्यर्थः । लेखस्येति । रिक्तहस्तेन प्रभुं प्रति लेखो न लेख्य इत्याचाराल्लेखसाद्गुण्यार्थं किंचित्प्रेषितमिति भावः

भागुरायण इति । कं प्रति केन लिखितमिति प्रष्टव्यमिति भावः । **वाचिकमिति ।** वाचिकं त्वत्तः केन श्रोतव्यमिति पृष्टे प्रस्तुतत्वाच्चन्द्रगुप्तेनेत्येव

---

1. आश्रयन्ति, आराधयिष्यन्ति, 2. दण्डाभ्याम्, 3. अस्मान्प्रति अलं०, 4. अस्माभिरपि, 5. सिद्धार्थकात्, 6. लेखार्थः, 7. तुह्मेहिं ।

the gift of the already stipulated exchange for the alliance. These on their part, when thus favoured, will come over to their benefactor after destroying their present master. We remind the truthful one of this, though it has not been forgotten. Of these some desire the treasure and elephants of the enemy, and others his territory. The three ornaments that were sent by the truthful one were received. I have also sent something as an accompaniment to the letter which should be accepted. The verbal message should be heard from this most trusty person.

MAL.—What sort of letter is this ?

BHA'G.—Friend, Siddhārthaka, whose is the letter ?

SID.—Sir, I don't know.

BHA'G.—You knave, you carry the letter and don't know whose it is. Never mind other things. By whom is to be heard your oral message ?

SID.—(*Showing fear*) By you.—

BHA'G.—What ? By us ?

SID.—Arrested by you, I don't know what I should say.

मलयकेतु—(पढ़ता है) "प्रणाम। यहीं से कोई किसी पुरुष-विशेष के नाम यह सूचना दे रहा हूँ। 'सत्यवादी' ने हमारे प्रतिपक्षी को पदच्युत करते हुए कुछ अद्भुत ही सत्यप्रियता प्रमाणित कर दिखाई है। अब सत्यवादी के लिए उचित यही होगा कि वह हमारे मित्रों को प्रसन्न रखे, इनसे प्रेम बढ़ाये—इनके साथ कुछ सन्धि-सी हमारी पहले ही तय हो चुकी है। और उस सन्धि के अनुसार, उस मित्रता का मूल्य चुकाते हुए, एक तरह से इन्हें हम इस दिशा में प्रोत्साहित भी करते आये हैं। इस प्रकार अनुगृहीत होकर ये लोग, अपने वर्तमान स्वामी को नष्ट करके, नये आश्रयदाता की शरण में आ जायेंगे। आप 'सत्यवादी' हैं—यह नहीं कि आप यह सब भुला बैठे हों—किन्तु आपको, फिर भी, स्मरण दिलाना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। इनमें से कुछ शत्रु का खजाना, हाथी-घोड़े लेना चाहेंगे, कुछ उसका राज्य। जो तीन अलंकार आपने भेजे थे, वे हमें मिल गये हैं। इस पत्र के साथ मैं भी कुछ उपहार-स्वरूप भेज रहा हूँ क्योंकि मात्र पत्र ही नहीं भेजना चाहिए—जिसे आप स्वीकार करें। कुछ मौखिक सन्देश भी है जो हमारे इस परम विश्वस्त पुरुष से सुन लेना।"

भाई भागुरायण, कैसा पत्र है यह ?

भागुरायण—भैया सिद्धार्थक, किसका पत्र है यह ?

सिद्धार्थक—मालूम नहीं मुझे।

भागुरायण—धूर्त कहीं का, पत्र लिये फिरता है, और यह भी नहीं जानता कि किसका है यह ? बाकी सब छोड़ दो। मौखिक सन्देश तुझे किसे सुनाना था ?

सिद्धार्थक—(जैसे सचमुच डर गया हो) आपको !

भागुरायण—हमें सुनाना था ?

सिद्धार्थक—आपने मुझे पकड़ लिया। मुझे तो अब होश ही नहीं रहा, मैं क्या बके जा रहा हूँ।

भागु०—(सरोषम्[1]) एष जानासि[2]। भासुरक, बहिर्नीत्वा तावत्ताड्यतां यावत्कथयति[3]।

पुरु०—यदमात्य आज्ञापयति। (जं अमच्चो आणवेदि।) (इति तेन सह निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) आर्य इयं मुद्रालाञ्छिता पेटिका तस्य ताड्यमानस्य कक्षातो निपतिता। (अज्ज इअं[4] मुद्दालञ्छिदा पेडिआ तस्स ताडिअमाणस्स कक्खादो णिवडिदा।)

भागु०—(विलोक्य) कुमार, इयमपि राक्षसमुद्राङ्कितैव।

मल०—सखे, अयं लेखस्याशून्यार्थो भविष्यति। इमामपि मुद्रां परिपालयन्नुद्घाट्य दर्शय।

भागु०—(तथा कृत्वा दर्शयति)

मल०—(विलोक्य) अये तदिदमाभरणं मया[5] स्वशरीरादवतार्य राक्षसाय प्रेषितम्[6]। व्यक्तं चन्द्रगुप्तस्य लेखः।

भागु०—कुमार, एष निर्णीयत एव संशयः। भद्र, पुनरपि ताड्यताम्।

पुरु०—यदार्य[7] आज्ञापयति।(जं अज्जो आणवेदि।) (इति निष्क्रम्य सिद्धार्थकेन सह पुनः प्रविश्य) एष खलु ताड्यमानः कुमारस्यैव निवेदयामीति भणति। (एसो क्खु ताडिअमाणो[8] कुमारस्स एव्व णिवेदमित्ति[9] भणादि।)

वक्तव्यत्वेन प्रसक्तेऽपि युष्मच्छ्रवणगोचरीकर्तुमेवायं सर्वः समारम्भ इति गूढाभिसन्धिः युष्माभिरित्यर्द्धोक्त्या उत्तरयति। श्रोतव्यमिति वाक्यशेषो गूढः। उक्तमुत्तरं ताडनव्याजेनान्यथयति मिश्रैरित्यादिना। अत्र युष्माभिरिति पूर्वोक्तमन्वेतव्यम्। मिश्रशब्दः पूज्यवचनः।

---

1. सक्रोधम्, 2. ज्ञास्यसि, 3. सर्वमनेन कथितं भवेत्, 4. णाममुद्दा०, 5. यन्मया, 6. तमासीत्, 7. तह (तथा) इति नि०, 8. माणो विण्णवेदि, 9. विण्णवेमि।

Bha`g.—(*Angrily*) You shall soon know it. Bhāsuraka, take him out and beat him till he confesses.

Man—As the minister commands. (*Going out with him and re-entering*) Sir, this sealed box dropped from his arm-pit, as he was being beaten.

Bha`g.—(*Looking at it*) This too is sealed with Rākshasa's seal.

Mal.—Friend, this must be the present accompanying the letter. Open it also preserving the seal and show it.

Bha`g.—(*Does accordingly and shows it*)

Mal.—(*Looking at it*) Ah, these are the ornaments which I took from my person and sent to Rākshasa. Clearly the letter is meant for Chandragupta.

Bha'g.—Prince, we shall just have the doubt cleared up. Friend, beat him again.

Man—As you order. (*Going out and re-entering with* Sid.) The fellow, being punished, says that he will confess the matter to the Prince alone.

भागुरायण—(गुस्से में) अभी जान लेगा। भासुरक, बाहर ले जाकर इसकी पिटाई करो जब तक इसकी वाणी यहीं खुल जाती।

सेवक—जो आज्ञा, महाराज। (फिर उसके साथ लौटकर) स्वामी यह मुहरबन्द पेटी है जो पिटते हुए इसकी बग़ल से नीचे आ पड़ी।

भागुरायण—और, कुमार, इस पर भी राक्षस की ही मुहर लगी हुई है।

मलयकेतु—पत्र का तात्पर्य अब साफ़ हो जाएगा। मुहर टूटने न पाये—किसी विधि से खोलकर दिखाओ, तो बने।

भागुरायण—(उसी तरह अत्यन्त सावधानी से खोलकर दिखाते हुए)

मलयकेतु—(देख-भालकर) अरे, ये तो वही आभूषण हैं जो मैंने अपने तन से उतारकर राक्षस को भिजवाये थे। स्पष्ट है कि पत्र चन्द्रगुप्त का लिखा हुआ है।

भागुरायण—कुमार, इस संशय का भी निर्णय अभी हुआ जाता है। भैया, जाकर इसे दो-चार और लगाओ।

सेवक—जो आज्ञा, स्वामी। (जाकर, और फिर सिद्धार्थक के साथ लौटकर) जब मार पड़ी तो कहने लगा—चलो, कुमार के सम्मुख ही सब-कुछ कह देता हूँ।

मल०—तथा[1] भवतु ।

सिद्धा०--(पादयोर्निपत्य) अभयेन मे प्रसादं करोत्वार्यः । (अभएण मे पसादं करेदु अज्जो ।)

मल०—भद्र, अभयमेव परवतो[2] जनस्य । निवेद्यतां यथावस्थितम्[3] ।

सिद्धा०--निशामयतु कुमारः । अहं खल्वमात्यराक्षसेनेमं लेखं दत्वा चन्द्रगुप्तसकाशं प्रेषितः । (णिसामेदु कुमारो । अहं खु अमच्चरक्खसेण इमं लेहं देइअ चन्दउत्तसआसं पेसिदो ।)

मल०—वाचिकमिदानीं[1] श्रोतुमिच्छामि ।

सिद्धा०--कुमार आदिष्टोस्म्यमात्येन यथा–एते मम प्रियवयस्याः पञ्च राजानस्त्वया सह समुत्पन्नस्नेहाः ते यथा कुलूताधिपश्चित्रवर्मा मलयनगराधिप सिंहनादः काश्मीरदेशनाथः पुष्कराक्षः सिन्धुराजः सिन्धुसेनः पारसीको मेघनाद इति । एतेषु प्रथमगृहीतास्त्रयो राजानो मलयकेतोर्विषयमिच्छन्त्यपरी हस्तिबलं कोषं च । तद्यथा चाणक्यं निराकृत्य महाभागेन मम प्रीतिः समुत्पादिता तथैतेषामपि प्रथमभणितोऽर्थः संपादयितव्य इत्येतावान्वाक्सन्देशः । (कुमाल आदिट्ठोह्मि अमच्चेण[5] जहा एदे मह पिअवअस्सा पञ्च राआणो तुए सह समुप्पण्णसिणेहा[6] । ते जहा कुलूदाहिवो चित्तवम्मो मलअणअराहिवो सिंहणादो कह्मीरदेसणाहो पुक्खरक्खो सिन्घुराओ सिन्धुसेणो पारसीओ मेहणादोत्ति । एदेसु पढमगिहीदा तिण्णि राआणो मलअकेदुणो विसअं इच्छन्ति[7] अवरे हत्थिबलं कोसं अ । ता जहा चाणक्कं णिराकरिअ महाभाएण मह पीदी समुप्पादिदा तहा एदाणं वि पढम पणिदो अत्थो संपादइदव्वोत्ति एत्तिओ वाआसन्देसो ।)

व्यक्तं चन्द्रगुप्तस्येति । राजार्हाभरणप्रेषणाच्चन्द्रगुप्तं प्रति राक्षसेन प्रेषित इत्यर्थः ।

पूर्णमस्मद्बलमिति । चन्द्रगुप्तबलैर्भद्रभटप्रभृतिभि रस्मद्बलं व्याप्तमिति कृत्वा मनो मे सन्दिग्धमिति भावः ।

---

1. प्रवेशय, पुरु०–जं कुमारो आणवेदि (इति निष्क्रम्य सिद्धार्थकेन सह प्रविशति) इत्य०, 2. परतः, परायत्त, 3. यथा–यथावत्–स्थितम्, 4. अस्मात्प्राक्–भद्र, 5. ०च्चरक्खसेण, 6. सन्धाणा, 7. अहिलसन्ति ।

Mal.—Let him do so.

Sid.—(*Falling at his feet*) Your Highness will favour me by granting me amnesty.

Mal.—A dependent person is always exempt from punishment. Tell everything as it happened.

Sid.—Please Your Highness, the minister Rākshasa gave me this letter and sent me to Chandragupta.

Mal.—I wish to hear the verbal message now.

Sid.—The minister ordered me to say—"Here are my dear friends, five princes, who feel affection for you. They are—Chitravarman, the chief of the Kuluta country, Siṁhanāda, lord of the city of Malaya, Pushkarāksha, king of Kāshmīra, Sindhusena, sovereign of Sindh, and Meghanāda, of Persia. Out of these, the first mentioned three kings desire the dominion of Malayaketu, and the last two his elephants and treasury. Just as, therefore, the magnanimous one delighted me by dismissing Chāṇakya, so he should please them by granting them the aforesaid things." This much is the oral message.

मलयकेतु—यही सही, ठीक है ।

सिद्धार्थक—(चरणों में गिरकर) पहले मुझे अभयदान दे दें, स्वामी !

मलयकेतु—विवश आदमो को हमेशा अभय ही दिया जाता है । किन्तु सब सच-सच कहना होगा ।

सिद्धार्थक—सुनिये, कुमार ! अमात्य राक्षस ने यह पत्र देकर चन्द्रगुप्त के यहाँ भेजा था ।

मलयकेतु—और अब मौखिक सन्देश भी ज़रा सुनूं तो ?

सिद्धार्थक—अमात्य ने मुझे स्पष्ट करने के लिए आदेश दिया था कि "ये मेरे पाँच मित्र हैं जो तुम्हारे प्रति आकृष्ट हुए हैं । इनके नाम हैं :—कुलूत का अधिपति चित्रवर्मा, मलय का सिंहनाद, काश्मीर का पुष्कराक्ष, सिन्धु का सिन्धुसेन और पारस का मेघनाद । इनमें पहले तीन तो मलयकेतु का राज्य चाहते हैं और पिछले दोनों की दृष्टि उसके हस्तिबल और कोष पर है । इसलिए, ज़िस प्रकार चाणक्य को बाहर निकालकर पहले भी कृपालु ने मुझ पर अनुग्रह दरशाया था, इन्हें भी यथावांछित वस्तुएँ भेंट कर देना ।'—यह था वह मौखिक सन्देश ।

मल०--(स्वगतम्) कथं चित्रवर्मादयोपि माम्[1]भिद्रुह्यन्ति। अथवात एव राक्षसे निरतिशया प्रीतिः। (प्रकाशम्) विजये, राक्षसं[2] द्रष्टुमिच्छामि।

प्रती०—यत्कुमार आज्ञापयति। (जं कुमारो आणवेदि।)(इति निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशत्यासनस्थः स्वभवनगतः पुरुषेण[3] सह सचिन्तो राक्षसः)

राक्ष०--(आत्मगतम्) पूर्णमस्मद्बलं चन्द्रगुप्तबलैरिति यत्सत्यं न मे मनसः परिशुद्धिरस्ति। कुतः?—

साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं बिभ्रत्सपक्षे[4] स्थितिं
व्यावृत्तं च विपक्षतो भवति यत्तत्साधनं सिद्धये।
यत्साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षे विरुद्धं च यत्
तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात्स्वामिनो निग्रहः॥ १०॥

साध्ये निश्चितमिति। साध्ये सिद्धिविषये पक्षे निश्चितमसन्दिग्धमन्वयेनान्वयव्याप्त्या घटितं विशिष्टं सपक्षे महानसादौ विद्यमानं विपक्षाद्ध्रदाद्व्यावृत्तं धूमरूपं साधनं हेतुः सिद्धये वह्न्यनुमितये समर्थं भवति। एवं चाणक्यनीतिरूपं साधनं साध्ये चन्द्रगुप्तलक्ष्मीस्थिरीकरणरूपे निश्चितमवश्यसाधकत्वेनाध्यवसितमन्वयेन व्यतिरेकव्याप्त्या च घटितं मौर्यप्रतिष्ठापननन्दोन्मूलनादिना दृष्टसारमिति यावत्। समक्षे भद्रभटभागुरायणादौ स्थिति बिभ्रद्विपक्षान्मलयकेतोर्व्यावृत्तं सत्सिद्धये मौर्यलक्ष्मीस्थैर्याय समर्थं भवति इति दार्ष्टान्तिके योजनीयम्। यत्साधनं स्वयमेव साध्यं साध्याभिन्नं यथा—ज्ञानं प्रमाणं तद्वति तत्प्रकारत्वात् अत्र साधनं साध्येन प्रामाण्येनाभिन्नं समम्। यच्च साधनमुभयोः सपक्षविपक्षयोः वृत्तिमत्वेन व्यावृत्तत्वेन वा तुल्यम्। आद्ये उदाहरणं शब्दपक्षकानित्यत्वसाधकप्रमेयत्वं तत्र प्रमेयत्वं सपक्षे घटादौ विपक्षे आकाशादौ च वृत्तिमत्त्वेन तुल्यम्। द्वितीये शब्दपक्षकानित्यत्वसाधकशब्दत्वं सपक्षे घटादौ विपक्षे गगनादौ च व्यावृत्तत्वेन तुल्यम्। यच्च साधनं पक्षे विरुद्धं साध्यासमानाधिकरणम्। यथा शब्दपक्षकनित्यत्वसाधककृतकत्वम्। अत्र कृतकत्वं हेतुः पक्षे विरुद्धः साध्येन नित्यत्वेनासमानाधिकरणः नित्यत्वविरुद्धस्यानित्यत्वस्य साधक इति यावत्। एवमुक्तप्रकारं त्रिविधं यत्साधनं हेत्वाभासस्तस्याङ्गीकरणेन वादिनो निग्रहः

---

1. मह्यम्, 2. अमात्यरा०, 3. षेणानुगम्यमानः, 4. स्वपक्षे।

MAL.—(*To himself*) Strange that Chitravarman and the others also conspire against me! Or why? This accounts for their unbounded love for Rākshasa. (*Aloud*) Vijayā, I want to see Rākshasa. [*Exit.*

FE. D.-K.—As the Prince commands.

(*Enter* RA'KSHASA *seated in his mansion with a* FOLLOWER, *full of anxious thoughts*).

RA'K.—(*To himself*) My mind is not really at ease since our army is quite filled with Chandragupta's warriors. For,

That *Sādhana* (army—middle term) alone leads to *Siddhi* (victory—conclusion) which has the *Sādhya* (a particular aim—major term) established, which has *Anvaya* (union,—capability of being joined in an affirmative proposition) which has *Sapaksha* (is faithful to its side—a corroborative instance on the same side), and is turned away from *Vipaksha* (enemy's side *i. e.* has no hostile element in it—negative instance); but where the *Sādhana* is identical with *Sādhya* (an army seeks its own interest—the middle term is itself the major term) or is equal to both sides (is indifferent to the result—can be joined in an affirmative proposition with both *Sapaksha* and *Vipaksha*), or is adverse to the *Daksha* (faithless through treachery—it cannot be joined with the minor term), reliance upon it is fatal to the king as it is to the disputant. (10)

मलयकेतु—(अपने ही से) आश्चर्य है कि चित्रवर्मा आदि भी मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे। किन्तु इसमें भी आश्चर्य सम्भवतः कुछ नहीं—राक्षस के प्रति उनकी भक्ति जो अगाध है। (व्यक्त) विजय, में ज़रा राक्षस के दर्शन करना चाहूँगा।

प्रतिहारी—जो आज्ञा, महाराज।

(भवन में बैठा हुआ राक्षस, एक अनुचर भी साथ है। चिन्तित मुद्रा में)

राक्षस—(अपने ही से) हमारी सेनाओं में ये चन्द्रगुप्त के आदमी भर आये हैं, जब से यह सुना है मेरे पिता को चैन नहीं। बात यह है कि—

विवाद में वही **साधन सिद्धि** के लिए समर्थ हुआ करता है, जिसका **साध्य** कुछ विनिश्चित हो, जिसमें **अन्वय** की एकपरत हो, जिसे **समक्ष** का समर्थन प्राप्त हो और जो **विपक्ष** वृत्ति से सर्वथा मुक्त हो। किन्तु यदि वही साधन साध्य से एकरूप हो, अथवा समक्ष-विपक्ष में उभयथा प्रयोज्य हो, अथवा अपने ही विरुद्ध पड़ता हो, तो स्वयं वादी ही आप उसकी पकड़ में आ जायगा।

इसी प्रकार युद्ध में कोई **सेना** भी **विजय** प्राप्त कर सकती है जब उसका **लक्ष्य** कुछ विनिश्चित हो, जिसमें आन्तर **एकता** हो, जिसे **मित्र-सेनाओं** का समर्थन प्राप्त हो तथा जो **शत्रु-अंशों** से सर्वथा मुक्त हो। अन्यथा—उसके स्वीकार द्वारा राजा की अपनी मृत्यु ही आई समझो। (१०)

अथवा विज्ञाता[1]परागहेतुभिः प्राक्परिगृहीतोपजापैरापूर्णमिति न विकल्पयितुमर्हामि । (प्रकाशम्) भद्र प्रियंवदक, उच्यन्तामस्मद्वचनात्कुमारानुयायिनो राजानः । संप्रति दिने दिने प्रत्यासीदति कुसुमपुरम् । [2]तत्परिकल्पितविभागैर्भवद्भिः प्रयाणे प्रयातव्यम्[3] । कथमिति—

प्रस्थातव्यं पुरस्तात्खसमगधगणैर्मामनु व्यूह्य सैन्यैर्
गान्धारैर्मध्ययाने सयवनपतिभिः संविधेयः प्रयत्नः ।
पश्चाद्गच्छन्तु[4] वीराः शकनरपतयः संभृता[5]श्चीणहूणैः
कौलूताद्यश्च[6] शिष्टः पथि परिवृणुया[7]द्राजलोकः कुमारम् ॥ ११ ॥

प्रियं०—तथा । (तहा[8] ।) (इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जयत्वमात्यः । अमात्य इच्छति त्वां कुमारः प्रेक्षितुम् । (जेदु अमच्चो । अमच्च इच्छदि तुमं कुमारो पेक्खिदुं ।)

राक्ष०—भद्रे, मुहूर्तं तिष्ठ । कः कोत्र भोः ?

(प्रविश्य)

पुरुषः—आज्ञापयत्वमात्यः । (आणवेदु अमच्चो ।)

राक्ष०—उच्यतां[9] शकटदासः । यथा परिवापिताः कुमारेणा[10]भरणानि वयम् । तन्न युक्त[11]मनलंकृतैः कुमारदर्शनमनुभवितुम् । अतो यत्तदलङ्करणत्रयं क्रीतं तन्मध्यादेकं दीयतामिति ।

पराभवः स्यात् । एवं प्रकृतेऽपि मलयकेतुबलं भद्रभटादिभिराक्रान्तत्वादुभयत्र तुल्यवदाभासमानं वस्तुतः पक्षे मलयकेतौ भद्रभटाद्यंशेन विरुद्धमत एव स्वयमेव साध्यकोटिप्रविष्टमस्मदिष्टं साधयेद्वा न वेति सन्दिग्धमिति यावत् । एतादृशबलाभासाङ्गीकरणेन स्वामिनो राक्षसमलयकेत्वोर्निग्रहोऽवश्यं भावीति दार्ष्टान्तिकेऽवश्यं योजनीयम् ॥ १० ॥ एवं सन्दिह्य पुनः समाधत्ते अथवेति । अस्माभिर्विज्ञाताश्चन्द्रगुप्तापरागहेतवो येषां तैः प्राक्परिगृहीतः अस्माकमुपजापो यैस्तथाभूतैर्भद्रभटादिभिरापूर्णमिति न संशयितव्यमिति भावः । प्रस्थातव्यमिति । [खसाश्च मगधाश्च तेषां गणा येषु तः सैन्यैः मामनुपुरस्तात्प्रस्थातव्यम् । मध्ययाने गान्धारैः प्रयत्नः संविधेयः । पश्चाच्चीणहूणैः सम्भृताः संमिलिताः गच्छन्तु । कौलूत आद्यो यस्य स कौलूताद्यः शिष्टः अवशिष्टः राजलोकः पथिकुमारं परिवृणुयात् ॥११॥]

---

1. तैस्तैर्विज्ञा०, 2. अतः, 3. प्रस्था०, 4. तिष्ठन्तु, 5. संवृताः, 6. ०द्यो विशि०, 7. पथि वृ०, 8. जं अमच्चो आणवेदि, 9. भद्र शकटदासं प्रति ब्रूहि, 10. वयमाभरणं कुमारेण, 11. क्तमिदानीमस्माभिरन० ।

Or rather, I ought not to have any misgivings, since our army is nearly full of persons the causes of whose disaffection were fully ascertained, and who had already accepted our overtures. (*Aloud*) Friend, Priyaṁvadaka, in my name let the kings, the allies of the Prince, be told, that as Kusumapura is being drawn in closer and closer proximity every day, they should proceed on their march after forming detachments; and in the following manner (*lit.* if you ask how,—thus)—

Let the troops consisting of the Khasas and the Magadhas follow me in the van, drawn up in battle-array. Let the Gāndhāras, along with the Yavana chieftains take care about the march of the central division. After them should march the valiant Śaka kings with the Chinese and the Hūṇas; while the other kings, Kaulūta and others, should guard (*lit.* surround) the person of the Prince while on the way (march). (11)

Priy.—As you command. [*Exit.*

Fe. d.-k.—(*Entering*) Victory to the minister. Minister—the Prince wishes to see you.

Ra'k.—Good woman, wait a little while. Holla, who is here ?

Man—(*Entering*) Your order, Minister ?

Ra'k.—Say to Śakaṭadāsa—The Prince has given me ornaments; it is not, therefore, becoming in me to see him without decoration. Send me, therefore, one of the three (sets of) ornaments that have been purchased.

शायद—क्योंकि अपने सिपाहियों के अपराग के हेतुओं की जाँच-पड़ताल हमने पहले ही कर ली थी—और सभी ने एक स्वर से हमारी नीति को अंगीकार किया हुआ है—मुझे इस तरह के सन्देह करना उचित नहीं है। (व्यक्त) प्रियंवदक भैया, कुमार के अनुयायी राजा लोगों को हमारी ओर से जाकर कहो कि अब तो दिन-प्रतिदिन कुसुमपुर हमारे निकटतर आता जा रहा है, सभी का कर्तव्य है कि यथोचित विभाग-रचना करके ही, इस प्रकार प्रयाण में अग्रसर हों :—

खस तथा मगध गणों के व्यूह आगे-आगे मेरे नेतृत्व में प्रस्थान करेंगे। मध्य भाग में गान्धारों तथा यवनों के सरदार जागरूक रहेंगे। और पृष्ठ भाग में शक, चीन तथा हूण जातियों के अधिपति स्थिरता के साथ बढ़ते जायेंगे। कुलूत आदि से हमारे में आ मिलो, शेष सेनाएं कदम-कदम पर कुमार की रक्षा में व्यग्र रहें। (११)

प्रियवदंक—जो आज्ञा, स्वामी। (चला जाता है)

प्रतिहारी—(एक ओर से) अमात्य की जय हो ! स्वामी कुमार आपकी सेवा में दर्शनों के लिए पधारे हैं।

राक्षस—बेटा, एक क्षण ठहरना। अरे, कोई है ?

पुरु०—तथा । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) अमात्य इदमाभरणम् । (तहा[1] । अमच्च इदं आहरणं ।)

राक्ष०—(नाट्येनात्मानमलंकृत्योत्थाय च) भद्रे, राजो[2]पगामिनं मार्गमादेशय ।

प्रती०—एत्वमात्यः । (एदु अमच्चो ।)

राक्ष०—(आत्मगतम्) अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापि पुरुषस्य महदाशङ्कास्थानम् । कुतः ?—

भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनं
ततः प्रत्यासन्नाद्भवति हृदये[3] चैव निहितम् ।
ततोऽध्यारूढानां पदमसु[4]जनद्वेषजननं
गतिः[5] सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं[6] कलयति ।। १२ ।।

(परिक्रम्य) **प्रती०**—अमात्य, अयं कुमारः । उपसर्पत्वेनममात्यः । (अमच्च अअं कुमारो[7] । उपसप्पदु णं अमच्चो ।)

भयं तावदिति । भयं कर्तृ सेव्याद्राज्ञः सकाशात्सेवकजनमभिनिविशते अभितः सर्वतः प्राप्नोति । नेर्विद इति तङ् । ततः राजप्रत्यासन्नाद्भयं भवति । अस्मात्कारणादध्यारूढानामधिकारिणां पदमसुजनानां दुर्जनानाम् । यद्वा असुमज्जनानां प्राणिमात्रस्यति यावत् । द्वेषजननं भवति । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति । **गतिरिति** । सोच्छ्रायाणामुन्मत्तानां गतिरवस्था अनुकूलमवश्यंभावित्वेनोचितं पतनं कलयति । पतनान्ताः समुच्छ्राया इति भावः । मतिरिति पाठेप्ययमेवार्थः । सर्वदा समुच्छ्रयाद्भीताः पतनमेव चिन्तयीरन्मतिमन्त इत्यर्थः ।। १२ ।।

---

1. जं अमच्चो आणवेदि, 2. राजकुल०, 3. येष्वेव, 4. अनु०, जनोद्वेग, 5. मतिः, 6. मनुरूपं, 7. रो चिट्ठदि (तिष्ठति) ।

MAN—As you command. (*Exit and re-enter*) Minister, here is the decoration.

RA'K.—(*Gesticulating his pulling on the decoration and rising*) Good woman, show the way leading to the king.

FE. D.-K.—Come, Minister.

RA'K.—(*To himself*) A post of authority is, indeed, a source of great apprehension (or misgivings) even to an innocent man. For,

In the first place the fear from the master takes entire possession (of the mind) of the servant, then the same from those about him gets planted in his heart itself; and after that the position of those who have risen very high provokes the jealousy of the wicked. (Hence) the rise (or, condition) of those risen to a high station considers a fall to be close at hand. (12)

(*They walk forth*)

FE. D.-K.—Minister, here is the Prince. You may approach him.

भृत्य—आज्ञा कीजिए, सरकार।

राक्षस—शकटदास से जाकर कहो कि स्वयं कुमार ने हमें आभूषण पहनाये थे। यह अच्छा नहीं लगता कि कुमार हमारे दर्शनों के लिए यहाँ आयें और हम आभूषणहीन बैठे हों। वह जो तीन गहने हमने खरीदे थे, उन्हींमें से एक भेज दें।

भृत्य—बहुत अच्छा, स्वामी। (जाकर और फिर लौटकर) लीजिये स्वामी, यह रहा वह गहना।

राक्षस—(जैसे सचमुच पहन रहा हो, उठकर) बेटी, कुमार जहाँ भी हों, हमें ले चलो।

प्रतिहारी—आइये।

राक्षस—(अपने से ही) कोई अधिकार-पद मिला नहीं कि अबोध पुरुष के हृदय में भी आशंका उत्पन्न कर देता है :—

पहले तो स्वामी का भय प्रतिक्षण हृदय में घर किये रहता है; फिर निकट के बन्धु-बान्धवों से; फिर भाग्य से किसी ऊँचे पद पर पहुँच गये, तो दुष्टों के हृदयों में ईर्ष्या का कारण हो गये; सचमुच, विशेषतः उच्चपदस्थ को तो यही आशंका बनी रहती है कि अब गिरे कि अब गिरे। (१२)

प्रतिहारी—(कुछ क़दम चलकर) अमात्य, यह रहे कुमार। आइये।

राक्ष०—(विलोक्य[1]) अयं कुमारस्तिष्ठति य एष—

पादाग्रे दृशमवधाय निश्चलन्तीं[2]
शून्यत्वादपरिगृहीततद्विशेषाम् ।
वक्त्रेन्दुं वहति करेण दुर्वहाणां
कार्याणां कृतमिव गौरवेण नम्रम् ॥ १३ ॥

(उपसृत्य) विजयतां कुमारः ।

मल०—आर्य, अभिवादये । इदमासनमास्यताम् ।

राक्ष०—(तथा[3] करोति)

मल०—आर्य[4], चिरदर्शनेनार्यस्य वयमुद्विग्नाः ।

राक्ष०—कुमार, प्रयाणे[5] प्रतिविधानमनुतिष्ठता मया कुमारादयमुपालम्भोऽधिगतः ।

मल०—आर्य, प्रयाणे कथं प्रतिविहितमिति श्रोतुमिच्छामि ।

राक्ष०—कुमार, एवमादिष्टा कुमारानुयायिनो[6] राजानः । (प्रस्थातव्यमिति पूर्वोक्तं पठति)

मल०—(स्वगतम्) कथं य एव मद्विनाशेन चन्द्रगुप्तमाराधयितुमुद्यतास्त एव मां परिवृण्वन्ति । (प्रकाशम्) आर्य, अस्ति कश्चिद्यः कुसुमपुरं प्रति गच्छति तत् आगच्छति वा ।

पादाग्रे इति । शून्यत्वान्मनोवृत्तिराहित्याद् [अपरिगृहीतस्तस्या विषयो यया तां] अज्ञाततद्विषयविशेषामित्यर्थः । [निश्चलन्तीं स्थिरां दृशं पादाग्रे अवधाय दुर्वहाणां कार्याणां गौरवेण भारेण नम्रं कृतमिव वक्त्रेन्दुं करेण वहति ।] ॥ १३ ॥ इदं मलयकेतोः स्वविषयकदौर्मनस्यमजानन् राजकार्यगौरववैयग्र्येण गृह्णाति ।

---

1. नाटचेनावलोक्य, 2. श्चलाङ्गीं, 3. उपविशति, 4. अमात्य; चिरमद०, 5. प्रयाणप्रति०, 6. कुमारस्यानु० ।

RA'K.—Here is the Prince, who

With his motionless eyes fixed on the forepart of his feet and not perceiving their particular objects through their vacant staring, is supporting by his hand his moon-like face, bent down, as it were, under the weight of his arduous undertakings. (13)

(*Approaching*) Victory to the Prince !

MAL.—Minister, I bow to you. Please take this seat.

RA'K.—(*Does so*)

MAL.—Minister, we felt uneasy since we did not see you so long.

RA'K.—Prince, engaged in adopting precautionary measures (in the course of) the march, I came to have this taunt from the prince.

MAL.—Minister, I want to know what arrangements you have made with regard to the march.

RA'K.—Prince, the allied kings who have to follow you, have been thus orderd:—(*He repeats* "Let the troops" &c.).

MAL.—(*Aside*) What ! The very kings surround me who are endeavouring to please Chandragupta by ruining me ! (*Aloud*) Minister, is there any one who goes to or comes from Kusumapura ?

राक्षस—(देखकर) यह हैं कुमार, जिनकी—

निश्चल दृष्टि अपने ही चरणों पर टिकी हुई है—किन्तु किसी वस्तु-विशेष को न भाँपती हुई, शून्य में ही स्थिर दुर्वह कार्यों के भार से मानो, नम्र हुए मुख को अपने एक हाथ पर थामे बैठे हैं। (१३)

(निकट पहुँचकर) जय हो कुमार की !

मलयकेतु—आइये, प्रणाम स्वीकार हो दास का। आइये, बैठिये।

राक्षस—(बैठ जाता है)

मलयकेतु—चिरकाल से दर्शन नहीं किये थे, मन कुछ बेचैन हो गया था।

राक्षस—जययात्रा के प्रवन्ध में व्यग्र होने के कारण ही मैं स्वामी के इस उपालम्भ का पात्र बना हूँ।

मलयकेतु—हाँ, प्रस्थान के लिए हमने क्या-क्या तैयारियाँ कर ली हैं, कुछ सुनायें।

राक्षस—आपके अनुपस्थित मित्रों को यह आदेश भेज दिया गया है:—("खस तथा मगध गणों के व्यूह" वाली व्यवस्था सुना देता है)

मलयकेतु—(मन-ही-मन) यह क्या वही रजवाड़े जो मेरा विनाश करके चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करने में जी-जान से लगे हुए हैं—वही मेरी रक्षा पर नियुक्त हैं। (व्यक्त) कोई ऐसा व्यक्ति ध्यान में हो जो कुसुमपुर से आता-जाता रहता है ?

राक्ष०—अवसितमिदानीं[1] गतागतप्रयोजनम् । अल्पै[2]रहोभिर्वयमेव तत्र गन्तारः[3] ।

मल०—(स्वगतम्) विज्ञायते । (प्रकाशम्) यद्येवं ततः किमार्येणायं सलेखः पुरुषः प्रेषितः[4] ?

राक्ष०—(विलोक्य) अये सिद्धार्थकः ! भद्र, किमिदम् ?

सिद्धा०—(सबाष्पं लज्जां नाटयन्) प्रसीदत्वमात्यः । ताड्यमानेन मया न पारितं रहस्यं धारयितुम् । (पसीददु[5] अमच्चो । ताडीअन्तेण मए ण पारिदं रहस्सं[6] धारिदुं ।)

राक्ष०—भद्र, कीदृशं रहस्यमिति न खल्ववगच्छामि ।

सिद्धा०—ननु विज्ञापयामि ताड्यमानेन मया (णं विण्णवेमि ताडिअन्तेण मए[7]) (इत्यर्द्धोक्ते सभयमधोमुखस्तिष्ठति)

मल०—भागुरायण, स्वामिनः पुरस्ताद्भीतो लज्जितो वा नैष कथयिष्यति । स्वयमेवार्याय कथय ।

भागु०—यदाज्ञापयति कुमारः । अमात्य, एष कथयति यथाहममात्येन[8] लेख दत्वा वाचिकं सन्दिश्य चन्द्रगुप्तसकाशं प्रेषित इति ।

राक्ष०—भद्र सिद्धार्थक, अपि सत्यम् ?

आर्य चिरदर्शनेनेति । चिरदर्शनेन दर्शनविलम्बकरणेनोद्विग्नाः कार्यत्वरया व्यग्रा इति वाक्यार्थः । त्वद्दर्शनमिदानीमस्माकमरुन्तुदमिति गूढम् । कुमार प्रयाणे प्रतिविधानमनुतिष्ठतेतीदमजानानस्योत्तरम् ।

परिवृण्वन्तीति । कौलूताद्याः पञ्च राजान इत्यर्थः । विज्ञायत इति । वयमेवात्र चन्द्रगुप्तं निग्रहीतुं गन्तार इति राक्षसस्य ऋजुराशयो मलयकेतुनान्यथा गृहीतः । चन्द्रगुप्तसाचिव्यार्थं गन्तार इति विज्ञायत इति । विज्ञापयामि ताड्यमानेनेति अस्यार्धोक्तस्य पूरणवाक्यमेवमतिताड्यमानेनेति वक्ष्यमाणं द्रष्टव्यम् ।

---

1. कुमार अत्र०, 2. ननु पञ्चषैः, 3. यास्यामः, 4. कुसुमपुरं प्रस्थापितः, 5. पसी० पसी०, 6. तद्र०, 7. अमच्चस्स रहस्सं इत्य०, 8. अमात्यराक्षसेन ।

RA`K.—The purpose of going there and coming back is at an end. We ourselves shall go there in a few days.

MAL.—(*Aside*) I understand it. (*Aloud*) If so, why did you send this man with a letter ?

RA`K.—(*Looking at him*) Ah ! Siddhārthaka ! Friend, what is this ?

SID.—(*With tears, and gesticulating shame*) Excuse, Minister. Being beaten I could not keep the secret.

RA`K.—Friend, I don't understand what secret you mean.

SID.—Do not I say that being beaten I—(*He breaks off in fear and casts down his head*)

MAL.—Bhāgurāyaṇa, he will not tell it before his master, either through fear or shame. You yourself tell it to the Minister.

BHA`G.—As the Prince commands. Minister, he says that you sent him to Chandragupta with a letter and an oral message.

RA`K.—Friend, Siddhārthaka, is this true ?

राक्षस—अब तो आने-जाने का कुछ अर्थ ही नहीं रह गया। कुछ ही दिनों में हम स्वयं वहाँ पहुँच रहे हैं।

मलयकेतु—(मन-ही-मन) वह तो मैं भली-भाँति जानता हूँ। (व्यक्त) यदि बात सचमुच ऐसी ही है तब पत्र देकर इस व्यक्ति को आपने किस उद्देश्य से उधर भेजा था ?

राक्षस—(देखकर) अरे, यह तो सिद्धार्थक है ! बेटा, मामला क्या है ?

सिद्धार्थक—(जैसे सचमुच आँखें भर आई हों, पर लज्जित हो) भगवन्, मुझे क्षमा करें। जब मार पड़ने लगी मैं सहन नहीं कर सका और रहस्य को और संभाल नहीं सका।

राक्षस—कौन-सा रहस्य, मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा।

सिद्धार्थक—कहा तो न, मैंने कि जब मार पड़ने लगी मैं···

(इतना ही कह पाता है और भय के मारे, मुंह नीचे करके बैठ जाता है)

मलयकेतु—भागुरायण, भय और लज्जा के मारे इसकी अपने मालिक के सामने वाणी नहीं खुल पायेगी, तुम्हीं बता दो मन्त्रीजी को सब-कुछ।

भागुरायण—जो आज्ञा कुमार की। स्वामी, यह कह रहा था कि आपने मुझे एक पत्र और कुछ मौखिक सन्देश देकर चन्द्रगुप्त की सेवा में भेजा था।

राक्षस—सिद्धार्थक, क्या यह सच है ?

सिद्धा०—(लज्जां नाटयन्) एवमतिताड्यमानेन मया निवेदितम्। (एवं अतिताडिअन्तेन मए णिवेदिदं।)

राक्ष—अनृतमेतत्[1]। ताड्यमानः पुरुषः किमिव न ब्रूयात्।

मल०—सखे भागुरायण, दर्शय लेखम्। वाचिकमेष भृत्यः कथयिष्यति।

भागु०—अमात्य, अयं लेखः।

राक्ष०—(वाचयित्वा) कुमार शत्रोः प्रयोग एषः।

मल०—लेखस्याशून्यार्थमार्येणेदमप्याभरणमनुप्रेषितम्। तत्कथं शत्रोः प्रयोग एषः[2]।

राक्ष०—(आभरणं निर्वर्ण्य) कुमारेणै[3]तन्मह्यमनुप्रेषितम्। मयाप्येतत्कस्मिंश्चित्परितोषस्थाने सिद्धार्थकाय दत्तम्।

भागु०—ईदृशस्य[4] विशेषतः कुमारेणात्मगात्रादवतार्य प्रसादीकृतस्येयं परित्यागभूमिः।

मल०—वाचिकमप्याप्ततमादस्मा[5]च्छ्रोतव्यमिति लिखितमार्येण।

राक्ष०—कुतो वाचिकं कस्य वाचिकम्। लेख एवास्मदीयो न भवति।

मल०—इयं तर्हि कस्य मुद्रा ?

राक्ष०—कपट[6]मुद्रामुत्पादयितुं शक्नुवन्ति धूर्ताः।

भागु०—कुमार, सम्यगमात्यो विज्ञापयति। भद्र सिद्धार्थक, केनायं लिखितो लेखः ?

सिद्धा०—(राक्षसमुखमवलोक्य तूष्णीमधोमुखस्तिष्ठति)

कुमारेत्यादिना एवं वदता राक्षसेन समाहितेऽपि सोल्लुण्ठनं तदन्यथयति भागुरायणः। ईदृशस्येत्यादिना। अस्मादिति। वाचिकमप्यस्माच्छ्रोतव्यमित्यार्येण लिखितमिति व्यवहितेनान्वयः। **कुमार यदि शकटदासेनेति**। शकटदासः सर्वथा

---

1. कुमार अनृ०, 2. एष स्यात् (इत्याभरणं दर्शयति) 3. कुमार नैतन्मया प्रेषितं—अनुप्रे०। कुमारेणै०, 4. स्याभरणविशेषस्य, 5. सिद्धार्थकात्, 6. कुमार ०मुद्रामपि।

Sid.—(*Gesticulating shame*) When soundly beaten, I said so.

Ra`k.—It is untrue. What will not a man say when beaten?

Mal.—Friend Bhāgurāyaṇa, show him the letter. The verbal message the servant will tell.

Bha`g.—Minister, here is the letter.

Rak.—(*Having read it*) Prince, this is the work of the enemy.

Mal.—You also sent this ornament as a present accompanying the letter. How can it then be the work of the enemy?

Ra`k.—(*Closely looking at the ornament*) This was sent to me by the Prince (you). I too made a present of it to Siddhārthaka on some occasion of joy.

Bha`g.—Is this the fit person for the gift of such an ornament, especially one sent as a favour by the Prince after taking it off from his body?

Mal.—You also write that Siddhārthaka will communicate the verbal message.

Ra`k.—What message can there be, and to whom? The letter itself is not mine (from me).

Mal.—Then whose seal is this?

Ra'k.—Rogues can manufacture a counterfeit seal.

Bhag.—Prince, the minister speaks truly. Friend Siddhārthaka, by whom was this letter written?

Sid.—(*Looks at* Rak. *and keeps silent with his face hung down*)

सिद्धार्थक--(जैसे लज्जित हो) जब मेरी खूब पिटाई हुई, मैं कुछ तो कहने के लिए विवश ही था।

राक्षस--झूठ है। पिटने पर कोई भी क्या-कुछ नहीं कह देगा ?

मलयकेतु--भागुरायण, ज़रा वह पत्र दिखा दो स्वामी को। और मौखिक सन्देश यह 'इन्हीं का अपना' व्यक्ति कह सुनायेगा।

भागुरायण--यह रहा वह पत्र, महामात्य !

राक्षस--कुमार, शत्रु की चाल है यह।

मलयकेतु--किन्तु पत्र कोरा नहीं जाना चाहिए, सो--और यह आभूषण भी साथ ही भेजे गये; क्या यह कोई शत्रु की चाल ही थी ?

राक्षस—(आभूषणों को खूब देख-भालकर) स्वयं कुमार ने ही ये मुझे भेजे थे, और मैंने इन्हें किसी अवसर पर परितुष्ट होकर—सिद्धार्थक को उपहार-स्वरूप दे दिया था।

मलयकेतु—और विशेषरूप में उन आभूषणों को जिन्हें स्वयं कुमार अपने शरीर से उतारकर दे, इस तरह उतार-फेंकना था ?

मलयकेतु—"और कुछ मौखिक सन्देश भी है" पत्र के अन्त में लिखा हुआ है; "जो यह हमारा परम-विश्स्त आपको खुद सुनायेगा।"

भागु०—भद्र, अलं पुनरात्मानं ताडयित्वा[1] । कथय ।

सिद्धा०—आर्य शकटदासेन । (अज्ज सअडदासेण ।)

राक्ष०—कुमार, यदि शकटदासेन लिखितस्ततो मयैव लिखितः ।

मल०—विजये, शकटदासं द्रष्टुमिच्छामि ।

प्रती०—यत्कुमार आज्ञापयति । (जं कुमारो आणवेदि ।)

भागु०—(स्वगतम्) न खल्वनिश्चितार्थमार्यचाणक्यप्रणिधयोऽभिधास्यन्ति । भवत्वेवम् । (आगत्य शकटदासो वा सोयं लेख इति प्रत्यभिज्ञाय पूर्ववृत्तं प्रकाशयेत् । एवं सति सन्दिहानो मलयकेतुरस्मिन्प्रयोगे श्लथादरो भवेत्[2] ।) (प्रकाशम्) कुमार, न कदाचिदपि शकटदासोऽमात्यस्याग्रतो मया लिखितमिति प्रतिपत्स्यते । अतोऽन्य[3]लिखितमस्यानीयतां वर्णसंवाद एवैतंविभावयिष्यति ।

मल—विजये, एवं क्रियताम् ।

भागु०[4]—कुमार, मुद्रामप्यानयत्वियम् ।

मल०—उभयमप्यानीयताम् ।

प्रती०—यत्कुमार आज्ञापयति । (जं कुमारो आणवेदि ।) (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) कुमार, इदं तच्छकटदासेन स्वहस्तलिखितं पत्रं मुद्रापि । (कुमार इदं तं सअडदासेण सहत्थलिहिदं पत्तअं मुद्दावि ।)

न लेखिष्यतीति तस्मिन्विस्रम्भप्रत्ययादियमुक्तिः । [अनिश्चितोऽनिर्णीतोऽर्थो यस्य तत्] **भवत्वेवमिति** । पूर्वं शकटदासहस्तेन छलाच्चाणक्येन लेखितमित्यजानत इयमुक्तिः । आर्यचाणक्येनैव केनचिद्व्याजेन सिद्धार्थकप्रेरणेन शकटदासं वञ्चयित्वा तद्धस्तेनेदं लिखितं स्यात् । अतः परं शकटदास इहानीतश्चेत्कुसुमपुर एवानेन सिद्धार्थकेन मद्धस्ताल्लिखितोऽयं लेख इति स्पष्टं वदेत् । ततः सर्वोऽप्ययं चाणक्यकूटनीतिप्रयोगो व्याकोपितः स्यादित्याशयेन प्रत्युत्पन्नमतिर्भागुरायण आऽह भवत्वेवम् । शकटदासागमनं परिहरामीत्यर्थः । **कुमार न कदाचिदिति** । अमात्येन लेखितमपि स्वेन लिखितमपि स्वामिद्रोहभयान्न कथयिष्यतीत्यर्थः । अतः प्रतिलिखितमिति । एतमर्थं परिच्छेत्स्यतीत्यर्थः । **कुमार मुद्रापीति** । आनीयतामिति पूर्वेण प्रश्लिष्य प्रश्नः ।

---

1. ताडयितुम्, 2. एतदधिकं क्वचित्, 3. प्रतिलि०, लिखितान्तरम्, 4. प्रती०—कुमार मुद्दावि ।

Bha'g.—Friend, do not provoke a second beating. Tell it.

Sid.—By Śakaṭadāsa, sir.

Ra'k.—If written by Śakaṭadāsa then it is as good as written by me.

Mal.—Vijayā, I want to see Śakaṭadāsa.

Bha'g.—(*To himself*) The emissaries of His Honour Chāṇakya will not say anything that has not been well ascertained. But Śakaṭadāsa, if he comes here, may recognize the document as the same that he was made to write once and may disclose all that passed between him and Siddhārthaka. In that case Malayaketu will be distrustful and the plan will fail. (*Aloud*) Prince, perhaps Śakaṭadāsa will not admit in the presence of his master that he wrote the letter. Let us therefore get another writing of his. The similarity of letters will at once decide the matter.

Mal.—Vijayā, do so.

Bha'g.—Prince, let her get the seal-ring also.

Mal.—Get both.

Fe. d.-k.—As the Prince commands. (*Exit and re-enter*) Here is a letter written by Śakaṭadāsa, and the ring.

Mal.—(*Gesticulating looking at both*) Minister, the characters agree.

राक्षस—किसके मुख से, और किसके लिए सन्देश ? मेरा तो यह पत्र ही नहीं है ।

मलयकेतु—फिर यह मुहर किसकी है ?

राक्षस—नकली मुहर बनाने में कुशल कितने ही धूर्त्त-कपटी मिल जायेंगे ।

भागुरायण—कुमार, अमात्य का वचन भी सच हो सकता है । सिद्धार्थक, यह पत्र किसका लिखा हुआ हैं ?

सिद्धार्थक—(राक्षस का मुंह देखकर सिर नीचा कर लेता है, और वैसे ही बैठा रहता है)

भागुरायण—बेटा, सच-सच कह दो, नहीं तो और मार पड़ेगी (यह ध्यान रहे) ।

सिद्धार्थक—शकटदास का, स्वामी ।

राक्षस—अगर शकटदास का लिखा हुआ है, तो, मेरा ही लिखा हुआ है ।

मलयकेतु—विजय, जाओ और अब शकटदासजी को लाकर प्रस्तुत करो ।

प्रतिहारी—जो आज्ञा, महाराज ।

भागुरायण—(मन-ही-मन) बात यह है कि चाणक्य के गुप्तचर ऐसी कोई बात मुंह से मरकर नहीं निकालेंगे जिसके बारे में उन्हें तनिक भी सन्देह हो । अब, हो यह भी सकता है कि शकटदास यहाँ आये और इस पत्र को पहचान ले और जो कुछ पहले कभी हो गुजरा है, सब बक दे । और यदि सचमुच ही ऐसा हो गया तो मलयकेतु सन्देह के वश में आकर, सारी योजना से विमुख हो जायगा । (व्यक्त) मेरा तो ख्याल है, कुमार, शकटदास अमात्य के सम्मुख

मल०—(उभयमपि नाट्येन[1] विलोक्य) आर्य, संवदन्त्यक्षराणि ।

राक्ष०—(स्वगतम्) संवदन्त्यक्षराणि । शकटदासस्तु मित्रमिति च विसं[2]वदन्त्यक्षराणि । किं नु[3] शकटदासेन—

स्मृतं स्यात्पुत्रदाराणां[4] विस्मृत[5]स्वामिभक्तिना ।
चलेष्वर्थेषु लुब्धेन न यशःस्वनपायिषु ॥ १४ ॥

अथवा कः सन्देहः—

मुद्रा तस्य करांगुलिप्रणयिनी सिद्धार्थकस्तत्सुहृद्
तस्यैवापरलेख्यसूचितमिदं लेख्यं[6] प्रयोगाश्रयम् ।
सुव्यक्तं शकटेन भेदपटुभिः[7] साधय सार्धं परैर्
भर्तृस्नेहपराङमुखेन कृपणं प्राणार्थिना चेष्टितम् ॥ १५ ॥

मल०—(विलोक्य) आर्य, अलङ्कार[8]त्रयं श्रीमता यदनुप्रेषितं तदुपगतमिति यल्लिखितं तन्मध्यात्किमिदमेकम् । (निर्वर्ण्यात्मगतम्) कथं[9] तातेन धृतपूर्वमिदमाभरणम् । (प्रकाशम्) आर्य, कुतोऽयमलङ्कारः ?

राक्ष०—वणिग्भ्यः क्रयादधिगतः ।

संवदन्तीति । शकटदासस्तु मित्रमित्ययमर्थो विसंवदति विरुध्यते । तस्याप्ततमत्वे संशयो जायत इत्यर्थः । **स्मृतमिति** । पुत्रदारस्येऽत्यधोगर्थेति कर्मणि षष्ठी । स्वामिभक्तिं यशश्च परिमृज्य चलेषु नश्वरेष्वर्थेषु पुत्रदारादिषु च लुब्धः स्यादित्यर्थः ॥ १४ ॥ **मुद्रेति** । [करांगुलिप्रणयिनी करांगुलिवर्थिनी ।] प्रयोगाश्रयं कूटप्रयोगरचितमित्यर्थः । [सुव्यक्तं भर्तृस्नेहपराङ्मुखेन प्राणार्थिना शकटेन भेदे पटुभिः भेदपटुभिः परैः सन्धाय] कृपणं दीनं कृत्यं चेष्टितं व्यवसितम् ॥१५॥

---

1. नावलोक्य, 2. न संव०, 3. तत्किं नु, किमिदानीम्, 4. दारस्य, 5. विस्मृताः स्वामिभक्तयः, 6. पत्रं, 7. पटुना, 8. अलंकरण, 9. कष्टम् ।

Ra'k.—(*Aside*) The letters agree; but Śakaṭadāsa is my friend; so they cannot agree. May it be that Śakaṭadāsa—

Forgetting his loyalty, and coveting transitory wealth and not imperishable fame, should have thought only of his wife and children? (14)

Or what doubt is there?

The ring is ever on his finger and Siddhārthaka is his friend; the letter, the basis of the plot, is proved to be his by the other writing; evidently Śakaṭa wishing to save his life has turned his back on loyalty and stooped to this mean act, having entered into an alliance with the foes who are skilled in causing dissension. (15)

Mal.—(*Looking at* Ra'k.) Minister, you say in your letter that you duly received the three ornaments sent by His Majesty. Is this (one that you wear) one of them? (*Looking at it more carefully, to himself*) This is the very ornament that my father wore. (*Aloud*) Minister, where did you get these ornaments from?

Ra'k.—From merchants, by purchase.

यह बात कभी भी स्वीकार नहीं करेगा कि यह मेरा लिखा हुआ है। सो, उसका लिखा हुआ कुछ और हस्तलेख मंगा लिया जाय, दोनों की तुलना से सब-कुछ स्पष्ट हो जायगा।

मलयकेतु—विजया, जाओ बेटी, ऐसा ही करो।

भागुरायण—और कुमार, इसे मुहर लाने के लिए भी कह दीजिये।

मलयकेतु—हाँ, विजय, दोनों चीज़ें संभालकर लेती आना।

प्रतिहारी—जो आज्ञा, सरकार। (जाकर, और पुनः आकर) लीजिये, सरकार—यह रहा शकटदास का हस्तलेख और यह रही मुहर।

मलयकेतु—(दोनों का एक साथ मिलान करते हुए-जैसे) भाई, अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस—(मन-ही-मन) अक्षर-रचना मिलती है? शकटदास मेरा मित्र है—और अक्षर कभी भी नहीं मिल सकते। या फिर, हो भी सकता है कि शकटदास को—

पुत्र-कलत्र की याद आ गई हो, उसकी स्वामिभक्ति पुरानी पड़ गई हो, या फिर क्षणिक कमाई के लालच में आकर उसने (मित्रता की) सम्पद् को भी भुला दिया हो। (१४)

अब सन्देह की गुन्जाइश ही क्या रह गई है?—

अंगूठी यह सचमुच उसीकी अंगुली के माप की है; सिद्धार्थक उसीका मित्र है; और यह लेखन-शैली भी तो, जो सारी इस मुसीबत की जड़ है, उसीकी है—यह भी परस्पर तुलना द्वारा सिद्ध ही हो चुका है। स्पष्ट है कि दो मित्रों को फोड़ने में चतुर शत्रुओं के हाथ में खेलते हुए शकटदास ने यह कुत्सित कार्य अपने प्राणों के लोभ के लिए अवश्य किया है। दुःख इस बात का है कि उसे अपने स्वामी की वह पुरानी मित्रता एक क्षण में भूल कैसे गई? (१५)

मल०—विजये, अपि प्रत्यभिजानासि भूषणमिदम् ?

प्रतीहारी—(निर्वर्ण्य सबाष्पम्) कुमार, कथं न प्रत्यभिजानामि। इदं सुगृहीतनामधेयेन पर्वतेश्वरेण धारितपूर्वम्। (कुमार, कहं ण पच्चभिजाणामि। इदं[1] सुगिहीदणामधेएण पव्वदीसरेण धारिदपुव्वं।)

मल०—(सबाष्पम्) हा तात !

एतानि तानि तव भूषण[2]वल्लभस्य
गात्रोचितानि कुलभूषण भूषणानि।
यैः शोभितोऽसि[3] मुखचन्द्र कृतावभासो
नक्षत्रवानिव शरत्समय[4]प्रदोष ॥ १६ ॥

राक्ष०—(स्वगतम्) कथं पर्वतेश्वरेण[5] धृतपूर्वाणीत्याह। व्यक्तमेवास्य भूषणानि चाणक्य[6]प्रयुक्तेन वाणिग्जनेनास्मासुविक्रीतानि।

मल०—आर्य, तातेन धृत[7]पूर्वाणां विशेषतश्चन्द्रगुप्तहस्तगतानां क्रया[8]दधिगमः कथं युज्यते। अथवा युज्यत एवैतत्। कुतः ?—

एतानीति। वल्लभानि प्रियाणि भूषणानि यस्येति बहुव्रीहिः। शेषं स्पष्टम् ॥ १६ ॥

---

1. इदं क्खु, 2. वल्लमभू०; गुणवल्लभ वल्लभानि, 3. शोभितोऽभिमुख, 4. समये, 5. श्वरधृत०, 6. (प्रकाशम्) एतान्यपि चा०, 7. ०पूर्वाणामाभरणविशेषाणां, 8. वणिग्भ्यः क्रयाधि०, वणिग्विक्रय इति न।

Mal.—Vijayā, do you recognize this decoration?

Vija.—(*Marking closely, with tears*) Prince, how can I not recognize it? It was worn by Parvateśvara, of blessed name.

Mal.—(*Tearfully*) Alas! Father!

The ornament of the race. These are the ornaments, worthy of your person who loved ornaments, by which you, illumined with your moon like face, were graced like an autumnal evening with the moon and the stars. (16)

Ra`k.—(*To himself*) What? These were worn by Parvateśvara, he says! Evidently they must be his, sold to us by some merchants set on by Chāṇakya.

Mal.—Minister, how can it be possible that these ornaments, which were worn by my father, and especially which were in the possession of Chandragupta, could be got by purchase. Or, this is quite possible. For,

मलयकेतु—(देखते हुए) महामात्य "तीन अलंकार जो अपने पत्र के साथ भेजे थे मिल गये हैं।" पत्र में ऐसा लिखा है, क्या उन्हींमें से एक यह है ? (खूब देख-भाल करके, अपने से ही) अरे, यह तो कभी पिताजी पहना करते थे। (व्यक्त) मन्त्रिवर, यह आपके हाथ कहाँ लगा ?

राक्षस——खरीदा था।

मलयकेतु——विजया, पहचाना तुमने इसे ?

प्रतिहारी——(पहचानकर, आँखें भरती हुई) कैसे नहीं पहचानूंगी ? इसे तो हमारे स्वामी—स्वनामधन्य पर्वतेश्वर पहना करते थे कभी।

मलयकेतु——हाय, पिताजी—

आपको इन आभूषणों का शोक था, आप कुलभूषण थे——आपके ही उपयुक्त ये आभूषण भी थे, जिन्हें पहनकर आपकी शोभा एक शारद सन्ध्या की-सी बन आया करती थी——मुखचन्द्र के साथ टिमटिमा रहे तारे हों, मानो। (१६)

राक्षस—(मन-ही-मन) क्या ?——ये आभूषण पहले पर्वतेश्वर कभी पहना करते थे, ऐसा कह रहा था कुमार ? सब साफ़ हो गया अवश्य—चाणक्य द्वारा भेजे गये किसी धूर्त बनिये की चाल में हम आ गये।

मलयकेतु—मन्त्रिप्रवर, ये गहने कभी हमारे पूज्य पिताजी के शरीर पर शोभायमान हुआ करते थे, और ये तो थे ही चन्द्रगुप्त के अधिकार में; और तुम कहते हो कि खरीदकर इन्हें प्राप्त किया है तुमने ? हो कैसे सकता है ? शायद हो भी सकता है, क्योंकि——

चन्द्रगुप्तस्य विक्रेतुरधिकं लाभमिच्छतः[1] ।
कल्पिता मूल्यमेतेषां क्रूरेण भवता वयम् ॥ १७ ॥

राक्ष०—(स्वगतम्) अहो, सुश्लिष्टोऽ[2]भूच्छत्रुप्रयोगः । कुतः ?—

लेखोऽयं न ममेति नोत्तरमिदं[3] मुद्रा मदीया यतः
सौहार्दं शकटेन खण्डितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम् ।
मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावयेत्
तस्मात्संप्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम् ॥ १८ ॥

मल०—एतदार्यं पृच्छामि ।

राक्ष०—[4]कुमार, य आर्यस्तं पृच्छ । वयमिदानीमनार्याः संवृत्ताः ।

मल०—

मौर्योऽसौ स्वामिपुत्रः परिचरणपरो मित्रपुत्रस्तवाहं
दाता सोर्थस्य तुभ्यं स्वमतमनुगत[5]स्त्वं तु मह्यं ददासि ।
दास्यं सत्कारपूर्वं ननु सचिवपदं तत्र ते स्वाम्यमत्र
स्वार्थे कस्मिन्समीहा पुनरधिकतरे त्वामनार्यं करोति ॥ १९ ॥

लेखोयमिति । शकटदासेन सौहार्दं परित्यज्येयः लिखितमिति ग्राम्ये परिहारे उक्ते कः श्रद्दध्यादित्यर्थः ॥ १८ ॥ [स्वामिपुत्रस्त्वया परिचर्य इति शेषः । स त्वयानुगतः स्वमतं यथा तथा तुभ्यमर्थस्य दाता । अत्र मयानुगतस्त्वं मह्यं स्वमतमर्थं ददासि] एवं मौर्यसेनातोप्यतिशयिते मयि तव स्वातन्त्र्ये स्थिते [पुनः कस्मिन्नधिकतरे स्वार्थे समीहा इच्छा त्वामनार्यं करोति ।] इतोऽप्यधिकतरं कं स्वार्थमवलम्ब्यैवमनार्यो जातोऽसीति निष्ठुर उपालम्भः ॥ १९ ॥

---

1. इच्छतां, 2. ०ष्टोयं भूषणप्र०, 3. पदं, 4. सबाष्पमित्यधिकम्, 5. ०मतभूतनुत्वं च ।

By you, a cruel man, ourselves have been offered as the price for these to Chandragupta who sells them wishing to make a more valuable acquisition (in return). (17)

Ra'k.—(*To himself*) Oh, the snares were skilfully laid by the foe (lit. the enemy's plan proves to be cleverly arranged). For,

To say that the document is not mine is not a proper reply, since it bears my seal. And how can it be believed that Śakaṭadāsa broke the ties of friendship? Again who will possibly expect king Maurya to sell the ornaments? A fair admission, therefore, is better in this case than a churlish reply. (18)

Mal.—I ask Your Honour this—

Ra'k.—(*With tears*) Prince, ask him who is a man of honour. I am no longer a man of honour.

Mal.—That Maurya is the son of your master (one to be served), while I am the son of your friend, intent upon serving you. He, well served (lit. obeyed), is the giver of wealth to you according to his pleasure, while you, whom I obey, give it to me, according to your pleasure. There you will have, indeed, the post of a minister which is but honourable servitude, while here you are the master. What greater interest could there be, the desire for which makes you act in a dishonourable way? (19)

चन्द्रगुप्त को अधिक लाभ चाहिए, सो तुमने हमें ही—इनकी कीमत के तौर पर भुगतान के लिए उसके साथ यह सौदा कर लिया है? सचमुच क्रूरता की भी कोई हद होती है। (१७)

राक्षस—(मन-ही-मन) खूब चतुराई के साथ ही शत्रु ने यह जाल बिछाया था, अब समझ में आया।

पत्र यह मेरा नहीं है, यह उत्तर बन नहीं पाता—क्योंकि मुहर जो मेरी लगी हुई है इस पर। शकटदास ने मित्र की लाज नहीं निभाई—यह भी मैं कैसे मान लूं? और कौन है जो यह मान लेगा कि मौर्य ने गहनों का यह सौदा किया था? अब तो स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर है, न कि गँवारों की तरह जवाब पर जवाब देते जाना। (१८)

मलयकेतु—मन्त्रिवर से मुझे सिर्फ इतना पूछना है—

राक्षस—जो मन्त्रिवर हो उसीसे अब पूछना, हम तो अब कहीं के भी नहीं रह गये—भद्रजन तक नहीं रहे।

मलयकेतु—चन्द्रगुप्त है तो आखिर तेरे स्वामी का ही पुत्र, और मैं तुम्हारे एक मित्र का पुत्र हूँ। वहाँ तू उसका मुखापेक्षी होता—जो कुछ भी वह तुझे देता, कृपा करके ही देता; और यहां देने वाला तू, और माँगने वाला मैं! कहने को वहाँ तेरा जो सत्कार होता, वह यथार्थ में तो, एक तरह की दासता ही होती; और यहाँ तू मन्त्रिप्रवर है—स्वामी है (मैं तेरा दास हूँ)। कौन-सी

राक्ष०—कुमार, एवमयुक्त[1]व्याहारिणा भवतैव निर्णयो दत्तः। भवतु। तव को दोषः (मौर्योऽसौ स्वामिपुत्र इति युष्मदस्मदोर्व्यत्ययेन पठति)

मल०—(लेखमलंकरणस्थगिकां च निर्दिश्य) इदमिदानीं[2] किम्।

राक्ष०—(सबाष्पम्) विधिविलसितम्। कुतः ?—

भृत्यत्वे परिभाव[3]धामनि सति स्नेहात्प्रभूणां सतां
पुत्रेभ्यः कृतवेदिनां कृतधियां[4] येषां न[5] भिन्ना वयम्।
ते लोकस्य परीक्षकाः क्षितिभृतः पापेन येन क्षतास्
तस्येदं विपुलं[6] विधेर्विलसितं पुंसां प्रयत्न[7]च्छिदः ॥ २० ॥

मल०—(सरोषम्[8]) किमद्यापि निह्नूयत एव ? विधेः किलैतद्व्यवसितं न लोभस्येति। अनार्य

कन्यां तीव्रविषप्रयोगविषमां कृत्वा कृतघ्न[9] त्वया
विश्रम्भप्रवणः पुरा मम पिता नीतः कथाशेषताम्।

[व्यत्ययेन पठति–मित्रपुत्रो मम त्वं···मह्यं···गतोऽहं तु तुभ्यं ददामि इ०]

इदमिदानीं किमिति। अयं कस्य दोष इत्यधिक्षेपः।

भृत्यत्वे इति। [कृतं विदन्ति इति कृतविदस्तेषां कृतवेदिनां कृतधियां येषां सतां प्रभूणां नृपाणां वयं अहमित्यर्थः। परिभावस्यावमानस्य धाम स्थानं तस्मिन् परिभावधामनि भृत्यत्वे सति अपि स्नेहात्पुत्रेभ्यः न भिन्नाः। यैः पुत्रवत् पालिता इत्यर्थः। ते लोकस्य परीक्षकाः क्षितिभृतः येन पापेन दुरात्मना विधिना क्षताः तस्य पुंसां प्रयत्नच्छिदः विधेः दैवस्येदं विपुलं विलसितं] परिभवो न्यक्कारः तद्विषयो भृत्योऽप्यहं प्रभुभिर्न्यक्कारं कर्तुं समर्थैरपि यैः कृतज्ञैः सर्वज्ञैः स्वामिभिरपत्यनिर्विशेषतया दृष्टोऽस्मि ते दैवेन हता इत्यर्थः ॥ २० ॥

---

1. अभियुक्तव्याहारिणा, व्यवहारिणा, 2. विधेयि॰ मिदम्, 3. परिभूति, 4. कृतधियः, 5. मभिन्नाः, 6. विफलं विधेर्व्यवसितं, 7. प्रयत्नो वृथा, 8. (सक्रोधम्) कथमद्यापि···एव विधेर्विलसितमिदं न ममेति। 9. कृतघ्नात्मना।

RA'K.—Prince, in uttering these unworthy things you have yourself given the decisive answer. Well, it is not your fault. (*He repeats the verse* "That Maurya" &c. *substituting the second personal pronoun for the first, and vice versa*)

MAL.—(*Pointing to the letter and the box containing the ornaments*) And what is this here?

RA'K.—(*Tearfully*) The wanton play of my fate. For,

It is the grand work of that Fate, the frustrator of men's exertions, which, the accursed one, destroyed those kings who were the proper judges of (the characters of) men, and who, masters as they were, being grateful and of refiend intellect, did not, out of affection, regard me as different from a son although there was the relation of servitude, which is subject to humiliation. (20)

MAL.—(*Angrily*) What! You still hide it saying that it is the sport of Fate and not of your greed! You, unworthy of the name of Ārya,

Having employed the maid, rendered dangerous by the use of virulent poison (administered to her), you, O ungrateful one,

वड़ी स्वार्थपूर्ति ने आखिर, तुझे यह भद्रजनोचित मार्ग छोड़ देने के लिए विवश किया था ? (१९)

राक्षस—ऐसी अनुचित वातें मुँह से निकालते हुए—कुमार, तुमने अपना निर्णय तो पहले से ही दे दिया। अस्तु, इसमें तुम्हारा भी दोष क्या है ?—

(चन्द्रगुप्त आखिर है तो मेरे स्वामी का ही पुत्र···इत्यादि दोहराता है, बस जहाँ-जहाँ पहले तू था वहाँ-वहाँ मैं और जहाँ मूल में 'मैं' था वहाँ 'तू'—इसे अदल-वदल के साथ)

मलयकेतु—(पत्र और आभूषण-पेटिका की ओर संकेत करते हुए) इसकी कहानी क्या है ?

राक्षस—(आँखें भरकर) भाग्य का खेल, और क्या ?

मेरी उनके आगे हैसियत ही क्या थी——उनका, एक सेवक ही तो था, ना ? किन्तु उन मेरे स्वामियों की सज्जनता देखो—मुझे उन कृतज्ञकृतबुद्धि-महात्माओं ने कभी-भी अपने पुत्रों से किसी प्रकार भी कम नहीं समझा। वे राजा लोग थे—लोकाचार के पारखी थे; किन्तु जिसने उन्हें भी समाप्त कर दिया, उसी क्रूर नियति का यह खेल है—मनुष्य करता कुछ है, और वह आकर सब क्षणों में उथल-पुथल कर देती है। (२०)

मलयकेतु—(कुंठित होते हुए) अब भी परदा डालना चाह रहा है कि सब नियति का खेल है——और तेरे लालच का नहीं ? तू भद्र था कब ?

प्रतिदिन विष-ही-विष खिलाकर एक भोली-भाली कन्या को तूने सचमुच विष की पुतली बना दिया और उसका प्रयोग भी किया तो किस कृतघ्नता के साथ——एक विश्वास के पुतले पर (मेरे पिता पर) ! और वह जब स्वर्ग सिधार

संप्रत्याहितगौरवेण भवता मन्त्राधिकारे रिपौ[1]
प्रारब्धाः प्रलयाय[2] मांसवदहो विक्रेतुमेते वयम् ॥ २१ ॥

राक्ष०—(स्वगतम्) अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः[3]। (प्रकाशम् कर्णौ पिधाय) शान्तं पापं शान्तं पापम् । नाहं[4] पर्वतेश्वरे विषकन्यां प्रयुक्तवान् ।

मल०—केन तर्हि व्यापादितस्तातः ?

राक्ष०—दैवमत्र प्रष्टव्यम् ।

मल०—(सक्रोधम्) दैवमत्र प्रष्टव्यम् । न क्षपणको जीवसिद्धिः ?

राक्ष०—(स्वगतम्) कथं जीवसिद्धिरपि चाणक्यप्रणिधिः । हन्त रिपुभिर्मे हृदयमपि स्वीकृतम् ।

मल०—(सक्रोधम्) भासुरक, आज्ञाप्यतां शिखरसेनः[5] । य एते राक्षसेन सह सुहृत्ता[6]मुत्पाद्यास्मच्छरीरद्रोहेणचन्द्रगुप्तमाराधयितुकामाः[7] पञ्च राजानः[8] कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादः काश्मीरः पुष्कराक्षः सिन्धुराजः सुषेणः पारसीकाधिपो[9] मेघनाद इति । एतेषु[10] त्रयः प्रथमे मदीयां भूमिं कामयन्ते ते[11] गम्भीरश्वभ्रमभिनीय पांशुभिःपूर्यन्ताम् । इतरौ तु हस्तिबलकामुकौ[12] हस्तिनैव घात्येतामिति ।

कन्यामिति। मन्त्राधिकारे मौर्यस्य मन्त्रित्वे आहितगौरवेण धृताभिलाषेणेत्यर्थः । रिपौ चन्द्रगुप्ते प्रलयाय नाशाय मांसवद्विक्रेतुमारब्धा नियोजिता इत्यन्वयः । इदानीमपि राक्षसेनानेकराजकार्यकुशलेन किमपि तादृशमारभ्यत इति पूर्वं जीवसिद्धिनोपक्षिप्तस्योपजापदुर्विकल्पस्यायमुद्गार इत्यवधेयम् ॥ २१ ॥

अयमपर इति । मर्मस्थानव्रणस्योपरि व्रणान्तरमित्यर्थः । **दैवमत्रेति** । चाणक्यनामागृहीत्वा दैवमिति वदन्स्वस्य परदोषानाविष्करणरूपं महामनस्त्वं सूचितवान् ।

---

1. रिपोः, 2. प्रणयाय; पुनराममांसव०, 3. विस्फोटः,–टकः, 4. नाह विषकन्यामारोपितवानपापोऽहं पर्वतेश्वरे; प्रयुक्तवान् । अपापोऽहं, 5. सेनापतिः इत्य०, 6. सौहार्दम्; शरीराभिद्रोहेण, 7. तुमुद्यताः, 8. राजानः । तद्यथा, 9. धिराजो मेघाक्षः, 10. अत्र ये एतेषां, प्रधानतमाः, काम०–प्रार्थयन्ते, 11. तेभ्योभूमिरेव दीयताम् । ते, 12. कामौ ।

formerly consigned my father, trustingly following you, to the domain of history. And now coveting (lit. attaching a high value to) the office of (the enemy's) minister, you have commenced, in order to work my destruction, to sell me off to the enemy like meat. (21)

Ra`k.—(*Aside*) This is a pimple on a boil. (*Stopping his ears*) (*Aloud*) God forbid, God forbid! I never set the poison-maid against Parvateśvara.

Mal.—Who then killed my father?

Ra`k.—Ask Destiny.

Mal.—(*Angrily*) I should ask Destiny, and not Kshapaṇaka, Jīvasiddhi?

Ra`k.—(*Aside*) What? Jīvasiddhi too a spy of Chāṇakya! The enemies have captured my very heart.

Mal.—(*In a rage*) Bhāsuraka, give my order to Śekharasena thus:—The five princes, Chitravarman of Kulūta, Siṁhanāda, king of Malaya, Pushkarāksha, the Kāshmīra king, Susheṇa, king of Sindhu, and Meghanāda of Persia, having formed a close friendship with Rākshasa wish to gain Chandragupta's favour by designing against our person. Of these the first three covet my territory; they should be taken to a deep pit and buried with earth; the other two who wish to have elephants should be killed by means of an elephant.

गया, तव—इस प्रकार जब शक्ति सारी अपने हाथ में आ गई—आज, तेरी दृष्टि मेरे शत्रु के मन्त्रिपद पर जा टिकी है ! क्या तू सचमुच मेरे लिए यह प्रलय लाकर ही रहेगा, मुझे माँस के एक टुकड़े की तरह वेचकर ही रहेगा ? क्यों ? (२१)

राक्षस—(मन-ही-मन) यह लो और—छाला था ही, उस पर यह फुन्सी निकल आई। कानों पर हाथ करते हुए) परमेश्वर साक्षी है—पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग मैंने नहीं किया।

मलयकेतु—तो फिर मेरे वाप के प्राण किसने लिये ?

राक्षस—यह प्रश्न तो हमें भाग्य से पूछना चाहिए।

मलयकेतु—(कुपित होते हुए) भाग्य से पूछना चाहिए ! और क्षपणक-जीवसिद्धि से नहीं ?

राक्षस—(मन-ही-मन) यह क्या मामला है : जीवसिद्धि भी चाणक्य का ही एक गुप्तचर था ? क्या कहूँ ? शत्रुओं ने तो, लगता है, मेरे हृदय पर भी अपने झण्डे गाड़ रखे हैं !

मलयकेतु—(क्रोध में) भासुरक, जाकर शिखरसेन को हमारा यह आदेश सुना दो कि : 'ये पांच राजा जो राक्षस के साथ मैत्री करके मेरे प्राणघात की योजना बना रहे थे (और चन्द्रगुप्त के भले की चिन्ता कर रहे थे)—कुलूत का चित्रवर्मा, मलय का सिंहनाद, कश्मीर का पुष्कराक्ष, सिन्धु का सुषेण और पारस का मेघनाद—इनमें पहले तीन की तो मेरी भूमि पर दृष्टि थी और

पुरुषः—तथा । (तहा[1] ।) (इति निष्क्रान्तः)

मल०—(सक्रोधम्) राक्षस राक्षस, नाहं विश्रम्भघाती राक्षसो मलयकेतुः खल्वहम् । तद्गच्छ समाश्रीयतां[2] सर्वात्मना चन्द्रगुप्तः । पश्य—

विष्णुगुप्तं च मौर्यं च सममप्यागतौ[3] त्वया ।
उन्मूलयितुमीशोऽहं त्रिवर्गमिव दुर्नयः ।। २२ ।।

भागु०—कुमार, कृतं कालहरणेन । सांप्रतं[4] कुसुमपुरोपरोधायाज्ञाप्यन्ता[5]मस्मद्बलानि ।

गौडीनां लोध्रधूलीपरिमलबहुला[6]न्धूमयन्तः कपोलान्
क्लिश्नन्तः कृष्णिमानं भ्रमरकुलरुचः[7] कुञ्चितस्यालकस्य ।
पांशुस्तम्बा[8] बलानां तुरगखुरपुटक्षोभ[9]लब्धात्मलाभाः
शत्रूणामुत्तमाङ्गे गजमदसलिल[10]च्छिन्नमूलाः पतन्तु ।। २३ ।।

विष्णुगुप्तमिति । दुर्नयदृष्टान्तेन स्वस्य दौरात्म्यं रोषावेशवशादुद्घाटितम् ।। २२ ।।

स्वपक्षबलहीनमेनं भद्रभटादिभिर्निग्राहयितुं त्वरयति । गौडीनामिति । लोध्रपुष्पाणां धूली परागस्तस्य परिमलः लेपजनितो गन्धविशेषस्तेन बहुलान्व्याप्तान् गौडीनां गौडस्त्रीणां कपोलान्धूमयन्तः धूमवतः कुर्वन्तः । मलिनयन्त इति यावत् । णाविष्टवद्भावेन मतुपो लोपः । गौडस्त्रियः कपोलान्लोध्ररजोभिरलंकुर्वन्तीत्यतस्तेषां तत्परिमलबहुलत्वम् । तथा तासामेव भ्रमरकुलरुचः नीलस्य कुञ्चितस्य संयमितस्यालकस्य कृषिमानं नैल्यं क्लिश्नन्तोऽभिभवन्त इत्यर्थः । बलानां सैन्यानां तुरगखुरपुटक्षोभेण लब्धात्मलाभाः जनिताः पांशुस्तम्बाः गजमदसलिलैः छिन्नमूलाः सन्तः शत्रूणामुत्तमाङ्गे पतन्तु ।। २३ ।।

---

1. जं कुमारो, आणवेदित्ति, 2. समाश्रय–चन्द्रगुप्तम् 3. सार्धम०, 4. शीघ्रमेव, ०पुररोधाय, 5. प्रतिष्ठन्ताम्, 6. धवलान्, धूम्रयन्तः, 7. ०निभं, 8. व्यूहा, स्तम्भाः, 9. क्षोद, 10. क्लिन्न ।

MAN—As Your Highness commands. [*Exit*

MAL.—(*In anger*) Rākshasa, Rākshasa, I am not Rākshasa, a treacherous murderer. I am, indeed, Malayaketu. Go, therefore, and serve Chandragupta with all your heart. See,

I am able to uproot Vishṇugupta and Maurya though advancing in combination with you, as improper conduct does the three objects of life. (22)

BHA`G.—Prince, we must no longer delay. Let our forces be now ordered to lay siege to Kusumapura.

Let the columns of dust risen from the tread of the hoofs of horses in the army, and having their roots severed by the rut-water of the elephants, fall on the heads of the enemies, imparting a smoky hue to the cheeks of the women of Gauḍa richly perfumed with the pollen of *Lodhra* flowers, and obscuring the black colour of their curly hair resembling a swarm of black bees. (23) [*Exit* MALAYAKETU *and suite*

पिछले दो की मेरे हाथी-घोड़ों पर। भूमि के भूखों को एक गहरा गड्ढा खोदकर उसमें दफ़ना दिया जाये और हस्तिसेना के कामुकों को हाथियों के पैरों तले रौंदवा दिया जाये।

सेवक—वहुत अच्छा, स्वामी।

मलयकेतु—(क्रोध में) राक्षस, ओ राक्षस: मैं कोई विश्वसघाती नहीं हूँ, राक्षस नहीं हूँ—मलयकेतु हूँ। तुझे छुट्टी है, जाकर अब तू चन्द्रगुप्त की हार्दिक सेवा कर सकता है। किन्तु याद रखना—

विष्णुगुप्त, चन्द्रगुप्त और तू—तीनों मिलकर भी मुझ पर धावा बोल दो: तीनों को अकेले ही उखाड़-फेंकने की सामर्थ्य अकेले मुझमें है, वैसे ही जैसे एक ही आचार-दोष मनुष्य के त्रिवर्ग को—भय, क्रोध, काम को नष्ट कर सकता है। (२२)

भागुरायण—कुमार, हमारे पास समय वहुत थोड़ा है। एकदम कुसुमपुर पर हमला बोल देने के लिए अपनी सेनाओं को आदेश दे दीजिये।

घोड़ों के खुरों से उखड़ चुकने के कारण जिन्हें मानो मुक्ति मिल गई है—इसे धूल के बादल—हाथियों की टपकती मस्ती के साथ (और शिथिल-बन्धन हुए-हुए)—शत्रुओं के सिर पर पड़े और गौड़ युवतियों के लोध्र-धूलि से सुवासित कपोलों को धूमिल कर दें, उनके भ्रमर-पंक्ति के समान लहराते, घुंघराले-काले बालों की नीलिमा को भी नष्ट कर दें। (२३)

(सपरिजनो निष्क्रान्तो मलयकेतुः)

राक्ष०—(सावेगम्) हा धिक्कष्टम् । तेऽपि घातिता[1]श्चित्रवर्मादयस्तपस्विनः । तत्कथं सुहृद्विनाशाय राक्षसश्चेष्टते न रिपुविनाशाय । तत्किमिदानीं मन्दभाग्यः करवाणि ।

किं गच्छामि तपोवनं न तपसा शाम्येत्सवैरं मनः[2]
कि भर्तृननुयामि जीवति रिपौ स्त्रीणामियं योग्यता ।
किं वा खड्गसखः पताम्यरिबले नैत[3]च्च युक्तं भवेच्-
चेतश्चन्दनदासमोक्षरभसं रुन्ध्यात्कृतघ्नं[4] न चेत् ॥ २४ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

कि गच्छामीति । जीवति रिपाविति शत्रुवैरनिर्यातनमकृत्वा स्त्रीवदनुमरणमयुक्तमिति भावः । खड्गसख इति । खड्गमात्रसहायेनारिबलं कृत्स्नं क्षपयितुं समर्थोऽस्मि । अथापि चन्दनदासस्योपकारिणो मोक्षो न भवेदिति रभसं रभसवदुत्सुकं चेतः रुन्ध्यात् अरिबलक्षपणान्मां रोद्धुं प्रवर्तत इत्यर्थः । प्रवर्तनायां लिङ् । न चेत् न रुन्ध्याच्चेत्कृतघ्नं भवेदित्यन्वयः । पराक्रमपक्षे चन्दनदासविषये कृतघ्नतादोषः स्वस्यापरिहार्यः स्यादिति भावः । अप्यकार्यशतं कृत्वा येन केनाप्युपायेन चन्दनदासमोचनमेव संप्रत्यावश्यकत्वेनापतितमतस्तत्रैव प्रयतिष्य इत्यत्र तात्पर्यम् ॥ २४ ॥

इति श्रीत्र्यम्बकयज्वप्रभुवर्याश्रितढुण्ढिराजव्यासयज्वविरचिते
मुद्राराक्षसनाटकव्याख्याने पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।

---

1. हतास्तप० नश्चित्र०, 2. पुनः, 3. नेदं न युक्तं, 4. कृतशं ।

RA'K.—(*With anguish*) Oh, fie ! What a misfortune ! Poor Chitravarman and the others too are slain ! How is it that Rākshasa is working for the destruction of his friends and not of his enemies ? What can I do now, an unlucky man !

Shall I go to a penance-grove ? There my revengeful mind will feel no relief. Shall I follow my master (in death) ? That is a course fit for women, so long as my foe is alive. Or shall I, having the sword for my companion, fall on the forces of the enemy ? No. This step too is not proper. My heart which is anxious to bring about the release of Chandanadāsa would not allow me to do that; else it would be ungrateful. (24) [*Exeunt Omnes*

END OF ACT V.

(मलयकेतु और परिजन सब चले जाते हैं)

राक्षस—(खिन्नता के साथ) कैसा संकट है—बेचारे चित्रवर्मादि भी व्यर्थ ही मारे गये । आखिर बात क्या है कि मेरी हर चेष्टा से मेरे मित्रों को ही हानि पहुँच रही है, शत्रुओं को नहीं ? कितना अभागा हूँ मैं, और अब करूँ भी क्या ?

क्या वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर लूँ ? किन्तु उससे तो मन में घर कर चुकी शत्रुता शान्त नहीं हो सकेगी । फिर क्या—शत्रु मेरे जीते रहें और मैं महानन्दों का अनुसरण करूँ (विष खाकर मर जाऊँ; भस्म हो जाऊँ) ? नहीं, यह अधिकार तो केवल स्त्रियों को ही हुआ करता है । या फिर—तलवार लेकर मैदान में उतर जाऊँ और शत्रुओं से जूझता हुआ वीरगति पा लूँ ? यह भी ठीक नहीं, क्योंकि मन मेरा अब भी, यदि वह पहले ही कृतघ्न नहीं हो चुका, चन्दनदास को छुड़ा लाने के लिए आकुल है । (२४)

(मंच पर कोई भी नहीं रहता)

अंक ५ समाप्त

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यलंकृतः सहर्षः सिद्धार्थकः)

सिद्धा०—

जयति जलदनीलः केशवः केशिघाती
जयति च जनदृष्टिचन्द्रमाश्चन्द्रगुप्तः ।
जयति जयनकार्यं यावत्कृत्वा च सर्वं
प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः ॥ १ ॥

जअदि जलदणीलो[1] केसवो केसिघादी
जअदि अ जणदिट्ठीचन्दा चन्दउत्तो ।
जअदि जअणकज्जं[2] जाव काऊण सव्वं
पडिहदपरपक्खा अज्जचाणक्कणीदी ॥ १ ॥

तावच्चिरस्य कालस्य प्रियवयस्यं समिद्धार्थकं पश्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) एष मे प्रियवयस्यः समिद्धार्थक इत एवागच्छति । यावदेनमुपसर्पामि । (दाव चिरस्स कालस्स पिअवअस्सं समिद्धत्थअं पेक्खामि । एसो मे पिअवअस्सओ इदो एव्व आअच्छदि[3] । जाव[4] णं उपसप्पामि ।)

(ततः प्रविशति समिद्धार्थकः[5])

समिद्धा०—

सन्तापे तारेशानां गेहोत्सवे सुखायमानानाम् ।
हृदयस्थितानां विभवा विरहे मित्राणां दूनयन्ति ॥ २ ॥

संदावे[6] तारेसाणं गेहूसवे सुहाअत्ताणं ।
हिअअठ्ठिदाणं विहवा विरहे मित्ताणं दूणन्दि ॥ २ ॥

इत्थं मलयकेतुनिग्रहरूपमवान्तरकार्यनिर्वहणं कृतम् । अतः परं राक्षससंग्रहणरूपप्रधानकार्यनिर्वाहार्थं चन्द्रगुप्तलक्ष्मीस्थैर्यरूपस्य महाफलस्य च सिद्ध्यर्थं षष्ठसप्तमावङ्कावारभ्येते । जयतीति । कृतकार्यतया चन्द्रगुप्तेन भूषणादिनालंकृतेन सिद्धार्थकेनेष्टदैवतराजचाणक्यनीतीनां जय आघोष्यते । जयत्यनेनेति । जयनं सैन्ययुद्धादि । करणे ल्युट् । जयनेन जयकारणेन सेनादिनैव यत्कार्यं तद्यावत्सर्वं स्वयमेव कृत्वा चाणक्यनीतिर्जयतीत्यन्वयः । सेनासन्नाहयुद्धादिकमनपेक्ष्य नीत्यैव सर्वं राजकार्यं चाणक्यः साधितवानित्यर्थः । बहोः कालात्तस्य दर्शनमावश्यकमित्यर्थः ॥१॥

---

1. दवण्णो, 2. सज्जं–सव्वं–सेण्णं, 3. उपसप्पदि, 4. ताजाव, 5. समृद्धा, 6. सन्तावेन्ता आवाणेसुं महूसवेसुं रुआवेन्ता । हिअअठ्ठिदावि विहवा विरहे मित्ताणं दूमेन्ति ॥ (सन्तापयन्त आपानेषु महोत्सवेषु रोदयन्तः (रुजायन्तः) हृदयस्थिता अपि विभवा विरहे मित्राणां दुन्वन्ति ॥ सम्भावेन्ता आत्ताणेसु गेहूसवे वरुआवेन्ता । हिअअठ्ठिदा वि विरहे मित्तं वित्ताइ दूमेन्ति ॥

ACT VI.

(*Enter* SIDDHA'RTHAKA *decorated and in high spirits*)

SID.—Glory to the cloud-coloured Keśava, the slayer of Keśin! Glory to Chandragupta, the moon to the eyes of the people; and glory to the Diplomacy of the noble Chāṇakya that has destroyed the party of the enemy, having accomplished all that may be gained by means of an army (lit. the instrument of victory)! (1)

I will now see my dear friend Samiddhārthaka after a long time. (*Walking round and looking forward*) Here comes my dear friend, Samiddhārthaka. I will, in the meanwhile, approach him.

(*Enter* SAMIDDHA'RTHAKA)

SAMID.—Riches give pain when there is separation from friends who are (ever) present in the heart, who are like the moon in times of affliction, and who feel delight on occasions of house-festivals. (2)

अंक—६

(आभूषणों से सुशोभित प्रसन्न-वदन सिद्धार्थक)

सिद्धार्थक—केशी को मार गिराने वाले घनश्याम (श्याम) की जय हो और लोकनयनानन्दकर चन्द्र की तरह सौम्य, चन्द्रगुप्त की जय हो; और प्रतिपक्ष को सर्वथा अवरुद्ध करके, विजय के लिए मार्ग प्रशस्त कर देने वाली चाणक्य-नीति की जय हो ! (१)

आज—चिरकाल बाद अपने प्रिय मित्र समिद्धार्थक से मिलूँगा। (कुछ क़दम चलकर, सामने देखते हुए) अरे यह समिद्धार्थक तो इधर ही चला आ रहा है। दो पग मैं भी उसकी ओर बढ़ूं।

(समिद्धार्थक)

समिद्धार्थक—मित्र-विरह में यह धन-दौलत दुःख का एक कारण ही बन सकती है, बस ! मित्र वह जो नित्य हृदय में बसे रहे, सन्ताप में चन्द्रमा बन जायं, और घर के उत्सवों में सुख-सामग्री बन जायं।

श्रुतं मया मलयकेतुकटकात्प्रियवयस्यः सिद्धार्थक आगत इति । तद्यावदेनमन्वेषयामि । (इति परिक्रामति । विलोक्य) एष सिद्धार्थकः । (सुदं मए मलअकेदुकडआदो पिअवअस्सओ सिद्धत्थओ आअदोत्ति । ता जाव णं अण्णेसामि । एसो सिद्धत्थओ ।)

सिद्धा०—(उपसृत्य[1]) कथं समिद्धार्थकः ? अपि सुखं प्रियवयस्यस्य ? (कहं समिद्धत्थओ । अवि सुहं पिअवअस्सस्स ।)

(इत्य[2]न्योन्यमालिङ्गतः)

समिद्धा०—(वयस्य कुतो मे सुखं येन त्वं चिरप्रवासप्रत्यागतोप्यद्य न मे गेहमागच्छसि । (वअस्स कुदो मे सुहं जेण तुमं चिरप्पवासपच्चागदो वि अज्ज[3] ण मे गेहं आअच्छसि ।)

सिद्धा०—प्रसीदतु वयस्यः । दृष्टमात्र एव आर्यचाणक्येनाज्ञप्तोऽस्मि यथा सिद्धार्थक गच्छ इमं प्रियोदन्तं देवस्य चन्द्रश्रिये निवेदयेति । तत एतस्मै निवेद्यैवमनुभूतपार्थिवप्रसादोऽहं प्रियवयस्यं प्रेक्षितुं तवैव गेहं चलितोऽस्मि । (पसीददु[4] वअस्सो । दिठ्ठमेत्तो एव्व अज्जचाणक्केण आणत्तोह्मि जह सिद्धत्थअ गच्छ एदं[5] पिओदन्तं देवस्स चन्दसिरिणो णिवेदेहित्ति । तदो एदस्स णिवेदिअ एव्वं अणुभूदपत्थिवप्पसादो अहं पिअवअस्सं पेक्खिदुं तुह एव्व गेहं चलिदोह्मि ।

समिद्धा०—वयस्य, यदि मे श्रोतव्यं भवति ततः कथय किं तत्प्रियं यत्प्रियदर्शनाय चन्द्रश्रिये निवेदितम् । (वअस्स जदि मे सुणिदव्वं भोदि तदो[6] कहेहि किं तं पिअं जं पिअदंसणस्स चन्दसिरिणो णिवेदिदं ।)

सन्तापे इति । सन्तापे तारेशानां चन्द्राणां [चन्द्रवत्] सन्तापहारिणामित्यर्थः । **गेहोत्सवे इति** । [सुखायमानानां सुखमनुभवतां] मित्रैर्विना गेहोत्सवा व्यर्था इत्यर्थः । हृदयस्थितानां सर्वदा चिन्त्यमानानां मित्राणां विरहे विभवा ऐश्वर्याणि दुःखायैव भवन्ति इति सिद्धार्थकविरहेण क्लिश्यते ।। २ ।।

---

1. (विलोक्य) कधं इदो ज्जेव पिअवअस्सओ सुसिद्धत्थओ । (उपगम्य), 2. उभाव०, 3. अआणिअ वुत्तन्तं अण्णदो गदोसि त्ति, 4. पसी० पसी० 5. वुत्तन्तं पिअं पिअदंसणस्स, णस्स एदस्स, 6. ता मं पि सुणावेहि ।

I hear that my dear friend Siddhārthaka has arrived from Malayaketu's camp. I will then find him out. (*He walks forth and looks forward*) Oh, here is Siddhārthaka.

Sid.—(*Approaching*) Holla, Samiddhārthaka, how do you do, dear friend? (*They embrace each other*)

Samid.—Friend, how can I be happy, when you did not come to my house to-day, though you returned from your long journey?

Sid.—Excuse me, friend. The moment the noble Chāṇakya saw me, he ordered me to communicate the happy tidings to His Majesty, the moon-like Chandragupta. Then having communicated the news to him and received this royal favour, I am just on my way to your house to see you, my dear friend.

Samid.—Friend, if I may hear it, then tell me what the agreeable news is, that you communicated to the worthy Chandragupta of lovely appearance.

कानों में मेरे भनक पड़ी थी कि मलयकेतु के शिविर में मेरा प्रिय दोस्त सिद्धार्थक लौट आया है। चलो, उसीको ही अब खोज निकाला जाय (कहां है)। (कुछ कदम चलता है। सामने देखकर) अरे, सिद्धार्थक तो यह रहा।

सिद्धार्थक--(निकट पहुँचकर) अरे, समिद्धार्थक! मज़े से तो है, ना, मित्र ?

समिद्धार्थक--मज़े की पूछ रहा है ? इतने दिनों बाद बाहर से लौटा, और सीधा मेरे घर नहीं चला आया ? भला, मुझे आनन्द किस बात का होता ?

सिद्धार्थक—क्षमा करना, भाई। आचार्य चाणक्य ने आते ही आदेश दे दिया—खुशी की इस खबर को जाकर एकदम से महाराज चन्द्रगुप्त को सुना आऊँ। यह बात थी। मैंने समाचार चन्द्रगुप्त को जा सुनाया; वहाँ से मुझे यह राजकीय प्रसाद मिला, और अब सीधा तुझसे मिलने तेरे ही घर की ओर आ रहा था।

समिद्धार्थक—दोस्त, वही ख़बर मुझे सुनाने में कोई आपत्ति न हो, तो पूछूं—महाराज के लिए वह प्रिय वस्तु क्या थी ?

सिद्धा०—वयस्य, किं तवाप्यश्रोतव्यमस्ति तन्निशामय। अस्ति तावच्चाणक्यनीतिमोहितमतिना मलयकेतुहतकेन निष्कास्य राक्षसं हताश्चित्रवर्मप्रमुखाः प्रधानाः पञ्च पार्थिवाः। ततोऽसमीक्ष्यकार्येषु दुराचार इत्युज्झित्वा मलयकेतुकटकभूमिं कुशलतायै भयविलोलशेषसैनिकपरिवारेषु स्वकं स्वकं विषयं सभयं प्रस्थितेषु पार्थिवेषु निर्विण्णहृदयेषु सकलसामन्तेषु भद्रभटपुरुषदत्तडिङ्गरातबलगुप्तराजसेनभागुरायणरोहिताक्षविजयवर्मप्रमुखैः संयम्य गृहीतो मलयकेतुः। (वअस्स किं तुहवि असुणिदव्वं[1] अत्थि ता णिसामेहि। अत्थि दाव चाणक्कणीदिमोहिदमदिणा मलअकेदुहदएण णिक्कासिअ[2] रक्खसं हदा चित्तवम्मप्पमुहा प्पहाणा पञ्च पत्थिवा। तदो असमिक्खकारी[3] एसो दुराआरोत्ति उज्झिअ[4] मलयकेदु[5]कडअभूमिं कुसलदाए[6] भअविलोलसेससैणिक[7]परिवारेसु सकं सकं विसअं सभअं प्पत्थिदेसु पात्थिवेसु णिव्विण्णहिअएसु सअलसामन्तेसु भद्दभट्टपुरिसदत्तडिङ्गरादबलउत्तराअसेणभागुराअणरोहिदक्खविजअवम्मप्पमुहेहिं संजमिअ गिहीदो[8] मलयकेदु।)

समिद्धा०—वयस्य, भद्रभटप्रमुखाः किल देवाच्चन्द्रगुप्तादपरक्ता मलयकेतुं समाश्रिता इति लोके मन्त्र्यते। तत्किं निमित्तं कुकविकृतनाटकस्येवान्यन्मुखेन्यन्निर्वहणे। (वअस्स भद्दभटप्पमुहा किल देवस्स चन्दउत्तस्स[9] अवरत्ता मलअकेदुं समस्सिदा त्ति लोए मन्तीअदि। ता किंणिमित्तं कुकविकिदणाडअस्स विअ अण्णं मुहे अण्णं णिव्वहणे)।

सिद्धा०—वयस्य दैवगत्या इवाश्रुतगत्यै नम आर्यचाणक्यनीत्यै। (वअस्स[10] देवगदीए विअ असुणिदगदीए णमो अज्जचाणक्कणीदीए।

---

1. अकहिदव्वं, 2. णिराकरिअ, 3. असमिक्खिदका, 4. कदुअ उ०,
5. हदअ, 6. णिअभूभिकु०, 7. सेण्णतणूकिदप, 8. णिग्गिहीदो, णिगहिदो०,
9. चन्दसिरिणो, 10. ०स्स सुणु दाव, देव०—देवणदीए।

Sid.—Friend, is there anything that I should withhold from you? Listen then. First the cursed Malayaketu, whose mind's eye was bedimmed by the policy of Chāṇakya, discarded Rākshasa, and killed five of the principal kings, Chitravarman and others. Then thinking that he was rash and wicked, the allied kings left the camp of Malayaketu for safety and set out in fear for their respective dominions followed by their remaining soldiers and attendants trembling with fear, while all his vassals became sick at heart. Whereupon Bhadrabhaṭa, Purushadatta, Ḍingarāta, Balagupta, Rājasena, Bhāgurāyaṇa, Rohitāksha, Vijayavarman and others seized Malayaketu and made him captive.

Samid.—Friend, it was talked of among the people, that Bhadrabhaṭa and others, being discontented with king Chandragupta, had joined the side of Malayaketu. Why is there then one thing in the laying out, and another in the consummation of, the plot, as in the play of a bad poet?

Sid.—Bow to the state-craft of the noble Chāṇakya, the course of which is inscrutable like that of Destiny.

सिद्धार्थक—मित्र, क्या तुझसे छिपाने को भी मेरे पास कुछ हो सकता है ? ले सुन। चाणक्य की नीति से जब उसकी अक्ल मारी गई, तब, मलयकेतु ने राक्षस को निकाल बाहर किया और चित्रवर्मा आदि पाँच प्रमुख राजाओं को मरवा डाला। जिस पर, उसके मित्र राजाओं ने सोचा कि यह न तो सोच-समझकर ही कुछ करता है और न ही इसकी नियत कुछ साफ़ लगती है; परिणामस्वरूप मलयकेतु को उसके मित्र अकेला छोड़ अपनी जान बचाने के लिए, भाग खड़े हुए और, डर के मारे, अपने-अपने राज्य की ओर चल पड़े—उनके सैनिक परिजन भी उनके साथ ही आ गये। सब जगह आतंक-ही-आतंक। सामन्तों के तो, सबके दिल ही जैसे बैठ गये। उसी समय—भद्रभट, पुरुषदत्त, डिंगरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताश्व, विजयवर्मा आदि ने मिलकर मलयकेतु को घेर लिया और कैद में डाल दिया।

समिद्धार्थक—भाई, लोगों में तो यह प्रसिद्ध है कि ये भद्रभट आदि चन्द्रगुप्त से अपरक्त होकर मलयकेतु से जा मिले हैं। आखिर कहानी क्या है—यह क्यों सब एक, अकुशल नाटककार की रचना की तरह, आरम्भ (मुखसन्धि) में कुछ और प्रतीत होता है और अन्त (निर्वहण) में बिलकुल कुछ और ? (इतनी असंगति भी आखिर क्यों हो ?)

सिद्धार्थक—बस, यही कि हम निर्वंश हैं—जैसे भाग्य के सम्मुख—हमें चुपचाप अपने उद्देश्य में तत्पर चाणक्य-नीति के सम्मुख हार माननी पड़ती है; और कुछ नहीं।

समिद्धा०—ततस्ततः (तदो[1] तदो ?)

सिद्धा०—ततः प्रभूतसारसाधनसमेतेनेतो निष्क्रम्यार्यचाणक्येन प्रतिपन्नमराजलोकमशेषं म्लेच्छबलम् । (तदो[2] पभूदसारसाहणसमेदेण[3] इदो णिक्कमिअ अज्जचाणक्केण पडिवण्णं अराअलोअं[1] असेसं मिलेच्छबलं ।)

समिद्धा०—वयस्य, कुत्र तत् ? (वअस्स कहिं तं ?)

सिद्धा०—यत्रैते (जहिं एदे)—

अतिशयगुरुकेण दानदर्पेण दन्तिनः
सजलजलदलीलामुद्वहन्तो नदन्ति ।
कशाप्रहारभयेन जातकम्पोत्तरङ्गा
गृहीतजयनशब्दाः संपतन्ति संप्लवन्ते तुरङ्गाः ॥ ३ ॥

अदिसअगुरुएण दाणदप्पेण दन्ती
सजलजलदलीला[5]मुव्वहन्तो णदन्ति ।
कसपहरभएण जाअकम्पोत्तरङ्गा[6]
गिहिदज अणसद्दा[7] संपअन्ते[8] तुरङ्गा ॥ ३ ॥

समिद्धा०—वयस्य, एतत्तावत्तिष्ठतु । तथा सर्वलोकप्रत्यक्षमुज्झिताधिकारः स्थित्वा आर्यचाणक्यः किं पुनरपि तदेव मन्त्रिपदमारूढः । (वअस्स एदं दाव चिठ्ठदु । तहा सव्वलोअपच्चक्खं[9] उज्झिआहिआरो चिठ्ठिअ[10] अज्जचाणक्को किं पुणो वि तं एव्व मन्तिपदं आरूढो ?)

चन्द्रगुप्तस्येति । चन्द्रगुप्ते अपरक्ता इत्यर्थः । शेषे षष्ठी ।

अतिशयेति । [यत्र अतिशयगुरुकेणातिमहता दानदर्पेण हेतुना । उद्दामदानप्रवाहादित्यर्थः । सजला ये जलदाः तेषां लीलां चेष्टितमुद्वहन्तः नदन्ति गर्जन्ति ।] जातकम्पा अतएवोत्तरङ्गाः । कशाताडनभयेन अत्यन्तं कम्पमानाश्चपला अश्वाः गृहीतजयनशब्दाः जयनं जयस्तस्य शब्दः गृहीतो ज्ञातो जयनशब्दो यैस्ते तथाभूताः । जयघोषणां श्रुत्वा सर्वतः संपतन्तीत्यर्थः । जयनसज्जा इति पाठे जयावहवेषधारिण इत्यर्थः ॥ ३ ॥

---

1. वअस्स तदो, 2. वअस्स तदो; तदोपहुदि (ततः प्रभृति), 3. समुदाएण, 4. सअलराअलो-असहिअं असेसराअबलं; सराअकं, 5. ०दणीला (दनीला) उब्भमन्तो (उद्धमन्तः) 6. ०म्पा तुरन्ता (त्वरयन्तः त्वरमाणाः), 7. सज्जा, 8. सम्पदन्ते, 9. लोकस्स, 10. चिरं चि०

Samid.—What next ?

Sid.—Thereupon noble Chāṇakya marched out from here with a large picked force and vanquished (or encountered) the entire army of the Mlechchhas deserted by the chieftains.

Samid.—Friend, where did that happen ?

Sid.—There,

Where the elephants, resembling (imitating) the action of clouds charged with water, are roaring in their excessive pride of rut, and where the horses, bouncing about with a start (resembling waves) from fear of the stroke of the whip and catching the sounds of victory, rush forth together. (3)

Samid.—Friend, let all this aside. How did noble Chāṇakya having in that manner resigned his post of authority in the presence of all men, accept again the very post of minister ?

समिद्धार्थक—ठीक है। उसके बाद क्या हुआ ?

सिद्धार्थक—उसके बाद पाटलिपुत्र से चुनी हुई सेनाएं लेकर चाणक्य ने सम्पूर्ण म्लेच्छ-बल पर धावा बोल दिया। सेनापति तो—उन सबके—उन्हें पहले ही छोड़कर जा चुके थे।

समिद्धार्थक—यह सब कहाँ हुआ, किस जगह हुआ ?

सिद्धार्थक—वहीं, जहाँ—

मस्ती टपकाते मदमाते हाथी, झूमते हुए पानी से भरे बादलों की-सी लीला करते हैं, और—कहीं चाबुक पीठ पर न पड़ जाय, पहले से ही काँप उठे, तरंगित-तन, घोड़े जयघोष को सुनकर और भी जोश के साथ आगे बढ़ने लगे—वहाँ। (३)

समिद्धार्थक—मित्र, यह मामला तो यहीं तक काफ़ी है। पहले मुझे यह समझाओ कि उस प्रकार, सारी दुनिया के सामने अपना पद और अधिकार त्याग करके भी चाणक्य फिर से कैसे उसी मन्त्रिपद को स्वीकार कर बैठा ?

सिद्धा०——अतिमुग्धोऽसीदानीं त्वं यदमात्यराक्षसेनाप्यनवाहितपूर्वमार्यचाणक्यचरितमवगाहितुमिच्छसि। (अदिमुद्धोसि दाणी तुमं जो अमच्चरक्खसेण वि अणवगाहिदपुव्वं अज्जचाणक्कचरिदं[1] अवगाहिदुं इच्छसि।)

समिद्धा०—वयस्य, अमात्यराक्षसः सांप्रतं कुत्र ? (वअस्स अमच्चरक्खसो संपदं कहिं ?)

सिद्धा०—तस्मिन्भयविलोले वर्धमाने मलयकेतुकटकान्निष्क्रम्योदुम्बरनामधेयेन चरेणानुसन्वीयमान इदं पाटलिपुत्रमागत इत्यार्यचाणक्याय निवेदितम्। (तस्सिं[2] भअविलोले वढ्ढमाणे[3] मलअकेदुकडआदो णिक्कमिअ उदुम्भरणामहेएण चरेण अनुसन्वि[4]ज्जमाणो इमं पाडलीउत्तं आअदोत्ति अज्जचाणकस्स णिवेदिदं।)

समिद्धा०——वयस्य, तथा नामामात्यराक्षसो नन्दराज्यप्रत्यानयने कृतव्यवसायो निष्क्रम्य सांप्रतमकृतार्थः पुनरपीदं पाटलिपुत्रमागत एव। (वअस्स तहा णाम अमच्चरक्खसो णन्दरज्जपच्चाणअणे किदव्ववसाओ णिक्कमिअ संपदं अकिदत्थो पुणोवि इमं[5] पाडलिउत्तं आअदो। एव्व।)

सिद्धा०——वयस्य, तर्कयामि चन्दनदासस्नेहेनेति। (वअस्स तक्केमि चन्दणदास[6]सिणेहेणत्ति।)

समिद्धा०——वयस्य, चन्दनदासस्य मोक्षमिव प्रेक्षे। (वअस्स चन्दणदासस्स[7] मोक्खं विअ पेक्खामि।)

सिद्धा०——कुतोऽस्याधन्यस्य मोक्षः। स खलु सांप्रतमार्यचाणक्यस्याज्ञप्त्या द्वाभ्यामावाभ्यां वध्यस्थानं प्रवेश्य व्यापादयितव्यः। (कुदो से अधणस्स मोक्खो। सो क्खु संपदं अज्जचाणकस्स आणत्तीए दुवेहिं अह्मेहिं[8] वज्झट्ठाणं पवेसिअ वावादइदव्वो।)

आगत एवेति। तस्यागमनमश्लाघ्यमित्यर्थः।

---

1. बुद्धि, 2. सो क्खु तस्सिं, 3. वट्टमाणे (वर्तमाने), 4. उन्दुर०—अनुसरन्तो इमं ज्जेव्व कुसुमपुरं, 5. कधं इमं एव्व, 6. दासस्स, 7. सच्चं चन्दनदासस्स सिणेहेणत्ति। अध इत्यधिकम्; मोक्खं पेक्खसि, 8. पि अह्मे०।

Sid.—You are extremely simple-minded since you wish to fathom the deeds of His Honour Chāṇakya, not fathomed before even by the minister Rākshasa.

Samid.—Friend, where is the minister, Rākshasa now?

Sid.—It has been reported to His Honour Chāṇakya that as the frightful tumult (of war) thickened, he issued from the camp of Malayaketu and came here to Pāṭaliputra, his steps being dogged by a spy named Udumbara.

Samid.—Friend, has the minister Rākshasa after all come back to this Pāṭaliputra, with his object unaccomplished, having left it in that manner, resolved to restore the sovereignty of Nanda?

Sid.—He came here, I think, out of his affection for Chandanadāsa.

Samid.—I fancy Chandanadāsa will be set free.

Sid.—Whence can the unfortunate man obtain his release? By the order of His Honour Chāṇakya we two have ourselves to take him just now to the place of execution and to kill him.

सिद्धार्थक—तू भी मित्र बड़ा ही भोला है : जिस चाणक्य के चरित (की थाह) को अमात्य राक्षस भी आज तक न पा सका, तेरा खयाल है—तू उसे ज़रूर पा लेगा ? हैं ?

समिद्धार्थक—खैर, मित्र, अमात्य राक्षस आजकल कहाँ है ?

सिद्धार्थक—उधर जब भय का राज्य था (और सब-कुछ अस्त-व्यस्त था), मलयकेतु के शिविर से चुपचाप खिसककर इधर, पाटलिपुत्र ही आ चुका है वह : ऐसी कुछ खबर उसका पीछा कर रहे गुप्तचर (उदुम्बर) ने चाणक्य को आ सुनाई है।

समिद्धार्थक—भाई, (मुझे कुछ समझ नहीं आता) किस तरह वह नन्द-साम्राज्य पुनः प्रतिष्ठित करने का एक बार निश्चय करके आज, इस निष्फलता के साथ, किस मुंह से पाटलिपुत्र ही लौट आया है ?

सिद्धार्थक—मेरा विचार है चन्दनदास के प्रति उसका यह प्रेम ही था जो उसे वापिस यहाँ ले आया है।

समिद्धार्थक—मुझे तो लगता है, अब चन्दनदास के भी मुक्ति के दिन आ गये।

सिद्धार्थक—उस अभागे की अभी मुक्ति कहाँ से आई ? आर्य चाणक्य तो पहले ही हम दोनों के नाम आज्ञा निकाल चुके हैं कि वध्य-गृह ले जाकर 'चन्दन' का काम तमाम कर दो।

समिद्धा०—(सक्रोधम्) किमार्यचाणक्यस्य घातकजनोऽन्यो नास्ति येनावामीदृशेषु अतिनृशंसेषु नियोगेषु नियोजयति। (किं अज्जचाणक्कस्स घादअजणो अण्णो णत्थि जेण अह्मे ईदिसेसु[1] अदिणिसंसेसु णिओएसु णिओएदि।)

सिद्धा०—वयस्य, को जीवलोके जीवितुकाम आर्यचाणक्यस्याज्ञप्तिं प्रतिकूलयति। तदेहि चण्डालवेशधारिणौ भूत्वा चन्दनदासं वध्यस्थानं नयावः। (वअस्स को[2] जीवलोए जीविदुकामो अज्जचाणक्कस्स आणत्तिं पडिऊलेदि[3]। ता एहि चण्डालवेसधारिणा भविअ चन्दणदासं वज्झठ्ठाणं णएम। (इत्युभौ निष्क्रान्तौ)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति रज्जुहस्तः पुरुषः)

पुरुषः—

षड्गुणसंयोगदृढा उपायपरिपाटिघटितपाशमुखी।
चाणक्यनीतिरज्जू रिपुसंयमनोद्यता जयति॥ ४॥
छग्गुणसंजोअदिढा उवाअपरिवाडिघडिअपासमुही।
चाणक्कणीतिरज्जू रिपुसंजमअज्जआ[4] जअदि॥ ४॥

(परिक्रम्यावलोक्य च) एष स प्रदेश आर्यचाणक्याय उदुम्बरेण कथितो यत्र मया आर्यचाणक्याज्ञप्त्या अमात्यराक्षसः प्रेक्षितव्यः। (विलोक्य) कथमेष खल्वमात्यराक्षसः कृतशीर्षागुण्ठन इत एवागच्छति। तद्यावदेभिर्जीर्णोद्यानपादपैरन्तरितशरीरः प्रेक्षे कुत्रासनपरिग्रहं करोतीति। (एसो सो पदेसो अज्जचाणक्कस्स[5] उदुम्बरेण कहिदो जहिं मए अज्जचाणक्काणत्तिए अमच्चरक्खसो पेक्खिदव्वो। कहं एसो क्खु अमच्चरक्खसो किदसीसावगुण्ठणो इदो एव्व आअच्छइ। ता जाव इमेहिं जिण्णुज्जाणपादवेहिं अतरिद[6]सरीरो पेक्खामि कहिं आसनपरिग्गहं करेदि त्ति। (परिक्रम्य स्थितः[7])

अथ कथंचिदगतिकतया चन्दनदासमोचनरभसेन समायातो राक्षसः साहसी महावीरः शस्त्रपाणिर्वशयितुमशक्य इति तद्धस्ताच्छस्त्रं त्याजयितुं पुनरपि चाणक्य

---

1. ईदिसेसु णिओजिआ (आवां नियोजितौ) ; ईदिसे निसंसे कम्मे णिजुञ्जीअदि (ईदृशे नृशंसे कर्मणि नियुनक्ति), 2. ण, णिवसिदुकामो, 3. पडिऊलयस्सदि, 4. ऋजुआ, 5. कस्स पुरदो, उदु० चरेण, 6. अववारिद, 7. तथास्थितः।

SAMID.—(*Angrily*) Does His Honour Chāṇakya find no other hangmen that he appoints us to such exceedingly cruel tasks ?

SID.—Who, in this world of mortals, that desires to live, can oppose the order of His Honour Chāṇakya ? Come, let us dress ourselves as Chāṇḍālas and take Chandanadāsa to the place of execution. [*Exeunt.* BOTH

END OF THE PRAVEŚAKA.

(*Enter a* MAN, *rope in hand*)

MAN—

Glory to the rope of Chāṇakya's policy, which is strong by the combination of six *guṇas* (strings-expedients), the noose of which is formed with (of) a series of efforts (political tactics or stratagems) and which is ready to capture the enemy ! (4)

(*Walking forth and looking about*) This is the region mentioned to His Honour Chāṇakya by Udumbara, where I have to see Rākshasa by the order of His Honour Chāṇakya. (*Looking about*) Ah, the minister Rākshasa is coming in this very direction, with his head veiled. Hidden by the trees of the old garden I will just see where he takes his seat. (*He walks forth and waits*)

समिद्धार्थक—(कुछ रोष से) क्या चाणक्य के पास और कोई वधिक रह नहीं गये कि ऐसे क्रूर कामों के लिए वह हमें ही भेजा करता है ?

सिद्धार्थक—कोई भी आदमी, अगर जीने की इच्छा उसमें बाकी है, इस दुनिया में चाणक्य की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता। चलो, जल्दी से चाण्डालों का नेपथ्य कर लें और चन्दनदास को वध्यभूमि ले चलें।

प्रवेशक समाप्त

(रस्सी हाथ में लिये एक पुरुष)

पुरुष—शत्रु को पकड़ में लाने के लिए यह रस्सी, देखो, कितनी मज़बूत है—सूत्रों में गुंथी हुई, और सिरे पर इसके कितना पक्का फंदा है। यह रस्सी कोई मामूली रस्सी नहीं—यह है चाणक्य की नीति-रज्जु जो तन्त्र के छहों गुणों से युक्त है, और दृढ़ है, और उपायों की परम्परा से भी पूर्णतः युक्त—इसके फंदे में एक बार पड़कर कोई फिर छूट नहीं सकता। (४)

(कुछ कदम चलकर और सामने देखते हुए) यही है वह स्थान जहाँ, उदुम्बर के द्वारा चाणक्य को दी गई सूचना के अनुसार, मुझे अमात्य राक्षस के दर्शन करने हैं। (इधर-उधर नज़र डालते हुए) अरे, यह क्या ? अमात्य राक्षस तो यह सामने, परदे में मुंह छिपाये, इधर ही चला आ रहा है ! बगीची के बूढ़े बरगदों की ओर होकर ज़रा देखता हूँ—कहाँ आकर दम तोड़ता है। (दो कदम चलकर एक जगह खड़ा हो जाता है)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः सशस्त्रो[1] राक्षसः)

राक्ष०—(सास्रम्[2]) कष्टं भोः कष्टम् ।

उच्छिन्ना[3]श्रयकातरेव कुलटा गोत्रान्तरं श्रीर्गता
तामेवानुगता गतानुगतिकास्त्यक्तानुरागाः प्रजाः ।
आप्तैरप्यनवाप्तपौरुषफलैः कार्यस्य धूरुज्झिता
किं कुर्वन्त्वथ[4]वोत्तमाङ्गरहितैरङ्गैरिव स्थीयते ॥ ५ ॥

अपि च—

पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनं
गता छिद्रेण श्रीर्वृषलमविनीतेव[5] वृषली । s'udri
स्थिरीभूता चास्मिन्किमिह करवाम स्थिरमपि
प्रयत्नं नो येषां विफलयति दैवं द्विषदिव ॥ ६ ॥

उपायमारचयति । **षड्गुण इति** । समागतं राक्षसमतिसन्धातुं चाणक्यादिष्टोपायचिकीर्षया करे गृहीतामुद्बन्धनरज्जुं चाणक्यनीतित्वेन निरूपितवान् । [षड्गुणाः सन्धिविग्रहादयस्तेषां संयोगेन संपीडनेन दृढा । उपायाः युक्तयस्तेषां परिपाट्या क्रमरचनया घटितः सम्पादितः यः पाशः स मुखे यस्याः । तादृशी रिपुसंयमनोद्यता चाणक्यनीतिरेव रज्जुः सा जयति ।]

उच्छिन्नाश्रय इति । [उच्छिन्नो ध्वस्त आश्रयो यस्याः सा चासौ कातरा भीता च । श्रीः लक्ष्मीः कुलटा पुंश्चली इव गोत्रान्तरं नन्दवंशादन्यवंशं गता । गतानुगतिकाः त्यक्तो नन्दकुलेऽनुरागो याभिस्ताः प्रजाः तामेवानुगताः । अनवाप्तं पौरुषस्य पुरुषकारस्य फलं यैस्तैः आप्तैः हिततमैरपि कार्यस्य धूर्भार उज्झिता त्यक्ता ।] आप्तैरप्यस्माभिदवोपहतपौरुषफलैरुद्योगः परित्यक्तः [इत्यर्थः] अथ अतःपरं कर्तव्यप्रयत्नाभावात्किं वा कुर्मः । वा शब्दो भिन्नक्रमः । उत्तमाङ्गरहितैरङ्गैः शवैरिवेति यावत्स्थीयते स्थातव्यं प्रसक्तमित्यर्थः ॥ ५ ॥ **पतिमिति** । उच्चैरभिजनः वंशो यस्य तं भुवनपतिं पतिं देवं त्यक्त्वा श्रीः अविनीता दुर्वृत्ता वृषली शूद्रा इव वृषलं कुलहीनं चन्द्रगुप्तं छिद्रेण रन्ध्रेण गता । छिद्रेण कपटेन । स्थिरं दृढमपि येषां नः प्रयत्नं द्विषदिव शत्रुवद्दैवमेव द्विषद्भूत्वा

---

1. सशङ्कः, 2. सबाष्पम्, 3. उच्छन्ना, उत्सन्ना, 4. कुर्मस्त्व०, 5. लमिव नीचेव, गता सा श्रीः; शीघ्रं ।

(*Enter* RA'KSHASA, *armed with a sword, as already described*)

RA'K.—(*Shedding tears*) Alas ! alas !

Like a harlot, Royalty has gone to another house being alarmed as it were at the loss of her support; the subjects forsaking their love (loyalty) have gone just after her, being blind followers; even our trusty friends, not having obtained the reward for their manly efforts, have given up the arduous task (they had undertaken); but what could they do ? They have to live like bodies without heads. (5)

Moreover,

The goddess of Sovereignty having abandoned the king, her husband, the lord of the world and of illustrious descent, has, by taking advantage of a weak point, gone to Vṛshala, like an immodest wench, and has settled firmly with him. What can we do in the matter since fate, like an enemy, thwarts our efforts, howsoever persistent ? (6)

(मुंह को परदे में छिपाये, और तलवार हाथ में लिये, राक्षस)

राक्षस--(आँसू भरकर) क्या मुसीबत है !

पैर जब उसके उखड़ गये थे, और कोई आश्रय दीखता न था, जब राज्यलक्ष्मी ही डर की मारी एक वेश्या की तरह—एक पराये वंश में जा पहुँची, तब---प्रजाजन का भी अनुराग शिथिल हो गया और वे भी उसीका अनुसरण करते हुए, भेड़-चाल वहीं पहुँच गए । और जो हमारे विश्वस्त-जन थे—परीक्षित जन थे—उन्हें भी जब अपने पौरुष का कुछ फल मिलता नहीं नज़र आया—कार्यंभार को छोड़ बैठे । आखिर, वे भी और क्या करते : सिर धड़ से जुदा हो जाय, बाकी जिस्म तब कर ही क्या सकता है ? (५)

यही नहीं—

अभिजात वंश में उत्पन्न हुए भूपति नन्द को छोड़कर राज्यलक्ष्मी, एक छिद्र में से, चन्द्रगुप्त के यहाँ पहुँच गई है—जैसे कोई कुलीनताशून्य कुलटा हो ! (वृषली, वृषल के यहाँ नहीं तो, और कहाँ जायगी ?) और जाकर वहीं टिक गई है । आखिर हम भी इस मामले में क्या करें ? जो कुछ भी तन-मन, सब, लगाकर करते हैं, किस्मत—जैसे उसने हमसे दुश्मनी ही ठान रखी हो—हर काम पर हमारे पानी ही डालती चल रही है ! (६)

मया हि—

देवे गते दिवमतद्विधमृत्यु[1]योग्ये
शैलेश्वरं तमधिकृत्य कृतः प्रयत्नः ।
तस्मिन्हते तनयमस्य तथाप्यसिद्धिर्
दैवं हि नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः ॥ ७ ॥

अहो विवेकशून्यता म्लेच्छस्य[2] । कुतः ?—

यो नष्टानपि बीज[3]नाशमधुना शुश्रूषते स्वामिनस्
तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ सन्धास्यते राक्षसः ।
एतावद्धि[4] विवेकशून्य[5]मनसा म्लेच्छेन नालोचितं
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा[6] विपर्यस्यति ॥ ८ ॥

तदिदानीमपि तावदरातिहस्तगतो विनश्येन्न तु राक्षसश्चन्द्रगुप्तेन सह सन्दधीत[7] । अथवा मम काममसत्यसन्ध इति वरमयशो न तु शत्रुवञ्चनपराभूत[8] इति । (समन्तादवलोक्य सास्रम्) एतास्ता[9] देवपादक्रमणपरिचयपवित्रीकृततलाः कुसुमपुरोपकण्ठभूमयः । इह हि—

शार्ङ्गाकर्षावमुक्त[10]प्रशिथिलकविकाप्रग्रहेणात्र देशे
देवेनाकारि चित्रं[11] प्रजवितुरगं बाणमोक्षश्चलेषु ।
अस्यामुद्यानराजौ[12] स्थितमिह कथितं राजभिस्तैर्विनेत्थं
संप्रत्यालोक्यमानाः कुसुमपुरभुवो भूयसा दुःखयन्ति ॥ ९॥

विफलयति चेत्किं कुर्मः ॥ ६ ॥ देवे गत इति । अतद्विधः तत्स्वरूपानर्हः मृत्युयोगो यस्य तस्मिन्देवे नन्दे दिवं गते सति तं शैलेश्वरं पर्वतकमधिकृत्यावलम्ब्य सर्वार्थसिद्धिप्रतिष्ठापनार्थं कृतः प्रयत्नः । अनन्तरं चाणक्येन राज्यार्धपरिपणनप्रलोभनेन मत्तो विभेद्य स्वायत्तीकृते छद्मना विषकन्यया तस्मिन्पर्वतके हतेऽस्य तनयं मलयकेतुमधिकृत्य कृतः प्रयत्न इत्यनुषङ्गः । दैवमेव प्रबलं किमनेन ब्राह्मणमात्रेण कर्तुं शक्यमित्यनादरेण विप्र इत्युक्तम् ॥ ७ ॥ यो नष्टानिति । बीजनाशमिति णमुलन्तं समूलं नष्टानित्यर्थः । अक्षतः [अभिन्नशरीरः] दृढगात्रः [इत्यर्थः] स्पष्टमन्यत् ॥ ८ ॥

---

1. त्युयोगं 2. मलयकेतोरित्यधिकम्, 3. जीव, 4. तावद्बुद्धिवि०, 5. मूढमतिना, 6. सर्वं, पूर्वं सर्वात्मना क्षीयते, 7. सन्धिं कुर्यात्, 8. भूतिः; शत्रोर्वञ्चनापरिभूत इति; वरमसमर्थ इति मे यशो न त्वनायासेन शत्रुणा पराभूत इति, 9. तावद्देवस्य पादचङ्क्रमण, 10. ०र्ङ्गज्याकृष्टि, चापाकृष्टेर्वि०, 11. पूर्वं०, 12. पंक्तौ ।

For I,

When His Majesty had gone to heaven, not at all deserving the kind of fate he met with, made a vigorous effort, having placed Parvateśvara at the head of affairs and after he was killed, his son, but attained no success. Fate, therefore, is the enemy of the house of Nanda, and not that Brāhmaṇa. (7)

Oh the want of judgment on the part of the Mlechchha!

How can that Rākshasa, who still serves his masters even when they are destroyed to the very seed, enter as long as he is sound in body, into an alliance with the foes? Of this much even, the Mlechchha, his mind being devoid of discrimination, did not think. Or why, the reason of those doomed by destiny, becomes entirely vitiated. (8)

Even now Rākshasa will rather die, falling into the hands of the enemy, than treat with Chandragupta; or I would rather have the infamy of being false to my word than that of being duped by my adversary. (*Looking about, with tears*) These are the border grounds of Kusumapura the surface of which is rendered holy by the frequent treadings of the feet of His Majesty. For, in this place

His Majesty, loosening his grasp of the bridle cast down when drawing his bow, discharged in a wonderful way his arrows at moving marks while his horse galloped at full speed. In this grove of trees the king sat; here he talked with his feudatories; the sight of these grounds of Kusumapura, now bereaved of those kings, causes very great pain. (9)

मैंने तो—

महाराज के उस प्रकार नृशंसता के साथ बलि हो जाने पर पर्वतेश्वर को उसी अधिकार-भूमि में प्रतिष्ठित करने की भरपूर कोशिश की और—पर्वतेश्वर के भी मर जाने पर, तब उसके पुत्र को प्रतिष्ठित किया; किन्तु कुछ भी सफलता अधिगत नहीं हुई । नन्दवंश का शत्रु भाग्य है, कुटिलमति ब्राह्मण (चाणक्य) नहीं । (७)

हाय—मलेच्छराज में ही कुछ विवेकशीलता होती—

जो बीजनाश तक की स्थिति तक विनष्ट हो चुके अपने मालिकों की आज भी सेवा करता आ रहा है, क्या वही राक्षस अपने होश-हवास कायम रहते उनके दुश्मनों के साथ, मरकर भी, किसी तरह का समझौता कर सकता है ? अक्ल के मारे ने इतना तक भी न सोचा । शायद—किस्मत जब साथ छोड़ जाती है, इन्सान का दिमाग भी बिलकुल जवाब दे जाया करता है । (८)

आज भी दुश्मनों के हाथ पड़ गया राक्षस मर जायगा, पर चन्द्रगुप्त के साथ किसी तरह की भी समझौतेबाजी—हरगिज-हरगिज नहीं करेगा । यही नहीं, लोग भले ही यही समझते रहें कि राक्षस अपने दिये वचन को (की गई प्रतिज्ञा को) तोड़-मरोड़ सकता है—यह बदनामी भी, मुझे स्वीकार है, लेकिन दुश्मन मेरा उल्लू बना रहे हैं—? (यह कलंक मुझे स्वीकार नहीं ।) (चारों तरफ

तत्क्व नु गच्छामि मन्दभाग्यः। (विलोक्य) भवतु दृष्टमेतज्जीर्णोद्यानम्। अत्र प्रविश्य कुतश्चिच्चन्दनदास[1]प्रवृत्तिमुपलप्स्ये। अहो[2] अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति। कुतः ?—

पौरैरंगुलिभिर्नवेन्दुवदहं निर्दिश्यमानः शनैर्
यो राजेव पुरा पुरान्निरगमं राज्ञां सहस्रैर्वृतः।
भूयः संप्रति सोऽहमेव नगरे तत्रैव वन्ध्यश्रमो
जीर्णोद्यानकमेष[3] तस्कर इव त्रासाद्विशामि द्रुतम् ॥ १० ॥

अथवा येषां प्रसादादिदमासीत्त एव न सन्ति। (नाटयेन प्रविश्यावलोक्य च) अहो जीर्णोद्यानस्यारमणीता। अत्र[4] हि—

विपर्यस्तं सौधं कुलमिव महारम्भरचनं
सरः शुष्कं साधोर्हृदयमिव नाशेन सुहृदाम्[5]।

सन्दधीतेति। पूर्वोक्तार्थपरित्यागेनासत्यसन्धो जात इति अयशः मम कामं वरं प्रशस्तमित्यर्धाङ्गीकारे अथवाशब्दः। कदाचिद्दैवगत्या चन्द्रगुप्तसन्धानप्रसक्तिर्वरं न तु शत्रुणा चाणक्येन वञ्चनपराभूत इत्ययशो वरम्। वञ्चनेनैवंभूतेन पराभूततया सुहृत्तमचन्दनदासविपद्दुःखानुभवो न वरमिति भावः। **शार्ङ्गाकर्षावमुक्त इति**। शार्ङ्गाकर्षविमुक्तः अत एव प्रशिथिलः कविकाप्रग्रहः खलीनवल्गा यस्य अत एव प्रजविततुरगं यथा तथा चलेषु लक्ष्येषु स्वयमपि तुरङ्गवेगवशादतिचलेन देवेन नन्देन पूर्वं बाणमोक्षः कृतश्चित्रमाश्चर्यमिति चललक्ष्यवेधनकौशलमुक्तम्। स्थितं कथितमिति भावे क्तः। तैस्तदादिभिः राजभिर्नन्दैर्विना संप्रतीत्थं शून्या जीर्णाश्च विलोक्यमाना भूयसा बाहुल्येन दुःखयन्ति दुःखवन्तं कुर्वन्ति। णाविष्ठवद्भावेन मतुपो लोपः ॥ ९ ॥ अलक्षितनिपाता इति अतर्किताऽऽगमाः।

---

1. ०सस्य वृत्तान्तम्, 2. (परिक्रम्य स्वगतम्) अहो, 3. शीर्णो०, मेकत०, 4. तथाहि, 5. सुहृदः।

Whither can I go then, an ill-starred man? (*Looking about*) Ah, here is the old garden. I will enter it and obtain some tidings about Chandanadāsa from some one. Oh, the favourable and unfavourable turns of life fall to the lot of men without their being foreseen! For,

I, who formerly walked forth with gentle steps from the town like a king surrounded by thousands of feudatory princes, pointed on with their fingers by the citizens, like the new moon, I, the very same person, am now in that very city again entering this wretched old garden in fear, like a thief, with all efforts turned fruitless. (10)

But why, *they* themselves are no more, to whose favour all this was due. (*Entering and looking about*) Oh the sad appearance of the old garden! For here,

The mansion, (a grand work of masonry) is in ruins (dilapidated) like a family that once performed mighty deeds; the

नज़र डालते हुए, आँखें भरकर) यह है कुसुमपुर की सीमान्त-भूमि जहाँ महाराज नन्द रोज़ सैर करने आया करते थे; आज, बस, उसकी एक पवित्र स्मृति ही शेष रह गई है।

यहीं पर धनुष खींचने की धुन में महाराज के घोड़े की लगाम कुछ ढीली पड़ने लगी थी—क्योंकि घोड़ा उनका अब भी सरपट ही दौड़ रहा था, किन्तु लक्ष्य की चंचलता के बावजूद—उनके तीर अद्भुत सफाई के साथ अपने ठिकाने पर जाकर ही विश्राम लेते थे। यही उपवन है जहाँ सामन्तों के साथ उनकी मन्त्रणाएं होती थीं। आज वह सब कुछ-भी नहीं रहा—कुसुमपुर के वही स्मृति-स्थान आज कितने दुःखद बन चुके हैं? (९)

अब मैं 'जाऊं तो जाऊं कहां' किस्मत का मारा? (इधर-उधर देखते हुए) चलो, यह ऐतिहासिक उपवन भी देख लिया। अब नगर में जाकर कहीं से पता करूं चन्दनदास की हालत कैसी है। इन्सान के अच्छे-बुरे दिन आते हैं, लेकिन पहले से ही उसे क्यों कुछ मालूम नहीं हो जाता? मेरी अपनी ही देख लो—

कभी यही नागरिक मेरी ओर अँगुलियां उठा-उठाकर औरों को दिखाया करते थे—जैसे मैं प्रतिपदा का चन्द्रमा होऊं (सामन्तों से घिरे) एक राजा की तरह मैं यहां मृदु पदों से आया था। वही नगर है, मैं भी वही हूं—किन्तु आज मेरे सब यत्न असफल हो चुके हैं, आज—मैं इसी अपने पुराने उपवन में एक चोर की भाँति प्रविष्ट हो रहा हूं, डरते-डरते और—तीन कदम जल्दी में भागकर चलते हुए।

शायद यही ठीक है—क्योंकि जिनकी कृपा से यह सब था, वही अब नहीं रहे। (जैसे सचमुच बगीचे में घूम रहा हो, इधर-उधर नजर डालते हुए) यह ऐतिहासिक उपवन भी क्या-से-क्या हो गया है? उपवन के साथ जुटा—

फलैर्हीना वृक्षा त्रिगुणविधि[1]योगादिव नयास्
तृणैश्छन्ना भूमिर्मतिरिव कुनीतैरविदुषः[2] ॥ ११ ॥

अपि च[3]——

क्षताङ्गीनां[1] तीक्ष्णैः परशुभिरुदग्रैः[5] क्षितिरुहां
रुजा कूजन्तीनामविरतकपोतोपरुदितैः ।
स्वनिर्मोकच्छेदैः परिचितपरिक्लेशकृपया
श्वसन्तः शाखानां व्रणमिव निबन्धन्ति फणिनः ॥ १२ ॥

एते च तपस्विनः[6]

अन्तःशरीरपरिशोषमुदग्रयन्तः[7]
कीटक्षतिं[8] शुचमिवातिगुरुं वहन्तः ।
छायावियोगमलिना[9] व्यसने निमग्ना
वृक्षाः श्मशानमुपगन्तुमिव प्रवृत्ताः ॥ १३ ॥

विपर्यस्तमिति । महारम्भा रचना शिल्पं यस्य सौधस्य महारम्भरचना धर्मादिपुरुषार्था क्रिया यस्य कुलस्य । अविदुषो मूर्खस्य मतिः कुनीतैः कूटनयैः कपटोपदेशैरिव । अत्र जीर्णोद्यानवर्णनव्याजेन सौधकुलादीनामुपमया नन्दकुलविनाशस्तेन स्वहृदयपरिशोषः मलयकेतुयोगात्स्वनयवैफल्यं मलयकेतुमतिविमोहकभागुरायणकुनीतिश्चेत्येते अर्थाश्च ध्वनिताः ॥ ११ ॥

क्षताङ्गीनामिति । उदग्रक्लमभूतानां अत्यन्तशुष्काणां रुजा कूजन्तीनामिवेति गम्योत्प्रेक्षा । परिचितपरिक्लेशनिमित्तकृपयेवेति फणिनां स्वाभाविकं श्वसनं कृपाहेतुत्वेनोत्प्रेक्ष्यते । यथा केचित्कृपालवः परिचितजनानां रुजाक्लिश्यमानानां तीक्ष्णशस्त्रव्रणान्कृपया दुःखेन निश्वसन्तः पटच्छेदैर्निबन्धन्ति तद्वदित्युत्प्रेक्षा ॥१२॥ **अन्तःशरीरेति** । तपस्विनो दीना जलसेकाभावात् अन्तःशोषमुपदर्शयन्तः कीटक्षतिस्रुतिभिः कीटक्षतिरन्ध्रनिर्यासैरस्रमश्रु उद्वमन्त इव । छायावियोगेन निष्पर्णतया छायाभावेन मलिनाः शुष्का इत्यर्थः । वृक्षाश्छायावियोगमलिना आतपक्लिष्टा व्यसने निमग्ना नन्दबन्धव इव नन्दानां श्मशानं तत्रैव विद्यमानमुपगन्तुं प्रवृत्ता इवेत्युत्प्रेक्षा ॥ १३ ॥

---

1. ॰नृप, 2. कुनीतैव विदुषः, 3. अपि चात्र, 4. क्षताङ्गानाम्, 5. उदग्रक्लमभृतां, 6. ॰स्विनो वृक्षाः, 7. उपाश्रयन्तः, उदीर॰, उदग्रयन्तीं, 8. कीटक्षतिस्रुतिमिरस्रमिषोद्वमन्तः, 9. मलिनैर्व्यसनैः ।

tank is dried up like the heart of a good man by the destruction of his friends; the trees bear no fruits like political schemes formed under adverse destiny; and the ground is covered with grass like the mind of a foolish man with bad counsels. (11)

Moreover,

The serpents hissing (heaving sighs) are, through pity excited by the sufferings of their acquaintances, bandaging, as it were, with the pieces of their sloughs, the wounds of the branches of the trees which are uttering cries of pain in the form of the cooings of the pigeons, being hacked with large and sharp-edged axes. (12)

Again, these unfortunate

Trees, prominently disclosing the drying up within (their trunks), bearing the holes bored in them by worms like very heavy (corroding) grief, gloomy-looking from want of shade and plunged into misery, are, as it were, proceeding to the cemetery. (13)

वह प्रासाद देखो—न, किस तरह जीर्ण-शीर्ण हो चुका है, राजवंश ही की तरह—उसका भी सभी कुछ, जो इतनी मेहनत से खड़ा किया गया था, नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है !

और, मित्र के उन्मूलित हो जाने पर जैसे भले आदमियों का दिल बुझ जाया करता है, उपवन का यह सरोवर भी बिलकुल सूख चुका है। वृक्ष हैं, तो उन पर भी पत्ते नहीं रहे, हरियाली नहीं रही—वैसे ही जैसे किस्मत उलट जाने पर राजनीति की सब चालें व्यर्थ हो जाती हैं। ज़मीन पर सूखे तिनके सब-कहीं पड़े हैं और उड़ रहे हैं—जैसे किसी बेवकूफ़ की खोपड़ी गन्द से और उल्टे-पुल्टे विचारों से ठसाठस भरी हो। (११)

और इन वृक्षों को देखो—

तीखे और ज़ोरदार कुल्हाड़ों से जिनका अंग-अंग विक्षत हो चुका है, मानो पीड़ा से कराह रहे हों, यह कबूतरों की गुटरगूं नहीं। और इनके कोटरों में आश्रित साँप, मानो पुराने परिचय के कारण इनकी यह व्यथा सहन न करते हुए, फूंक मार-मारकर अपनी कंचुली के द्वारा किस प्रकार इनके घावों की जैसे मरहम-पट्टी कर रहे हैं। (१२)

बेचारों की क्या हालत बन आई है—

शरीर में जैसे रक्त की एक बूंद रह नहीं गई—यहां तक सूख चुके हैं, और कीड़े-मकौड़े जो रात-दिन उन्हें खाते रहते हैं—उससे ही इन्हें निरन्तर कितनी तकलीफ़ पहुंचती होगी सहचरी (छाया) के विरह की स्मृति में वैसे भी उनकी कान्ति पहले ही उड़ चुकी है—मौत के मुंह में पड़े हों जैसे; बस, श्मशान तक पहुंचने की कसर रह गई है। (१३)

यावद[1]स्मिन्विषमदशापरिणामसुलभे भिन्न[2]शिलातले मुहूर्तमुपविशामि। (उपविश्याकर्ण्यं च) अये किम[3]यमाकस्मिकः पटुपटहशङ्खमिश्रो नान्दीनाद श्रूयते। य एषः—

प्रमृद्ग[4]ञ्छ्रोतॄणां श्रुतिपथमसारं गुरुतया
बहुत्वात्प्रासादैः सपदि परिपीतोज्झित इव।
असौ[5] नान्दीनादः पटुपटहशङ्खध्वनियुतो
दिशां द्रष्टुं प्रैर्घ्यं प्रसरति सकौतूहल[6] इव॥ १४॥

(विचिन्त्य) आः ज्ञातम्। एष हि मलयकेतुसंयमनसंजातो[7] राजकुलस्य (इत्यर्द्धोक्ते सासूयम्) मौर्यकुलस्याधिकपरितोषं पिशुनयति। (सबाष्पम्) कष्टं भोः कष्टम्।

श्रावितोऽस्मि श्रियं शत्रोरभिनीय च दर्शितः।
अनुभावयितुं मन्ये यत्नः संप्रति मां विधेः॥ १५॥

पुरु०—आसीनोऽयम्। यावदार्यचाणक्यादेशं संपादयामि। (आसीणो अअं। जाव अज्जचाणक्कदिसं संपादेमि।)

(राक्षसमपश्यन्निव तस्याग्रतो रज्जुपाशेन कण्ठमुद्बध्नाति)

यावदिति। विषमदशापरिणामवत्सुलभे विषमदशा संप्रति सुलभा अतर्कितोपनता तथेदं शिलातलं दैवाल्लब्धमित्यर्थः।

प्रमृद्गन्निति। नान्दीनादो मङ्गलतूर्यध्वनिः। अविद्यमानः सारः प्रसारो विस्तारो यस्य तमसारं संकुचितमित्यर्थः। श्रुतिपथं गुरुतया प्रभूततया प्रमृद्गन्पीडयन्। यथा संकुचिते रन्ध्रे गुरुर्मुद्गरादिः प्रविशंस्तदुपमृद्गाति तद्वदित्यर्थः। वहुपीतं जलादि यथोद्गिरन्ति तथान्तरं नान्दीनादं प्रतिध्वनिव्याजेन सौधा उद्गिरन्तीवेत्युप्रेक्षा। दिशांदैर्घ्यं द्रष्टुमिति सकलदिग्व्यापित्वमुक्तम्॥ १४॥

सासूयमिति। एष नान्दीनादः। मौर्ये राजशब्दं वक्तुमसूया। **अनुभावयितुमिति**। चन्दनदासविपद्विमोक्षानुरोधेनेदमिव विधिवलादागत्य गले पतितमिति भावः॥ **हे व्यसन०** इति। व्यसनसब्रह्मचारिन् समानव्यसन। भारिकं

---

1. तद्यावत्, 2. भिन्नाग्र, 3. अये किमिदमस्मिन्काले पटुपटहशंखमिश्रो। 4. प्रमथ्नन्ः प्रगृह्णन्, प्रकुर्वन्, 5, अहो, महान्, 6. हलमिव, 7. कृतः-नं।

In the meanwhile I will sit on this broken stone-slab, easy to be obtained in the adverse condition of life. (*Sitting down and hearing*) Ah, whence is this sudden sound of rejoicing mixed with the sound of drums and conches?

This tumult of rejoicing blended with the sound of deep-sounding drums and conches, which, on account of its heavy swell, overpowers (stuns) the narrow cavity of the ear of the hearers, and which on account of its magnitude is drunk in and then vomited forth as it were by the mansions, spreads as if curious to measure the expanse of the quarters. (14)

(*Musing*) Ah, I have it. This sound arising from the capture of Malayaketu indicates the increased joy in the royal place—(*Breaking off through jealousy*) in the palace of Maurya. (*Weeping*) Alas! alas!

I have been made the hearer of the prosperity of my foe; I have been made to see it after being brought here; and I think the effort of Fate now is to make me feel it! (15)

MAN—He has sat down. I shall now execute the command of His Honour, Chāṇakya. (*He throws the noose of the rope round his neck in front of* RAK. *feigning not to have noticed him*)

सब-कुछ बुरे दिनों का शिकार हो चुका है——यहाँ तक कि इस पत्थर की शिला में तरेड़ें पड़ चुकी हैं; किन्तु, बैठा तो इस पर अब भी जा सकता है। (बैठे हुए, कान देते हुए) अरे, यह बिना कारण शंख और दुंदुभियाँ एक-साथ कैसे गूंज उठीं। यह मंगल गीत-सा क्या है ?

और यह ध्वनि—इतनी गम्भीर और प्रबल है कि मामूली कानों को तो वैसे ही फाड़ दे, और विपुल भी इतनी ही है—जैसे ऊंचे-ऊंचे प्रासाद उसके प्रवाह को पी-पीकर उगल रहे हों—नगाड़ों, दुदुंभियों और शंखों की यह व्यामिश्र ध्वनि मानो, कौतूहलवश दिशाओं के विस्तार को अपनी बाहों में लेने के लिये उठ निकली हो। (१४)

(कुछ सोचकर) लग गया पता——यह राजकुल में मलयकेतु के बंदी बन चुकने पर (ईर्ष्या की रेखाओं में) मौर्यों के 'उत्सव' की द्योतक हैं——ये खुशियाँ। (आँखें भरकर) विधि का कटाक्ष है——

शत्रु की समृद्धि का मैं श्रोता भी हो लिया और, समय पर पहुंचकर, प्रत्यक्ष-द्रष्टा भी हो लिया। बस एक ही वासना रह गयी थी——अब बस किस्मत का आखरी खेल ही रह गया है (वह भी होले)। (१५)

पुरुष——यह लो, बैठ गया। अब मैं भी चाणक्य के आदेश को कार्यान्वित करूं। (जैसे राक्षस को न देख रहा हो, किन्तु उसीके सामने अपने गले में फंदा डालने लगता है)

राक्षस०—(विलोक्य[1]) अये कथमात्मानमुद्बध्नात्ययम् । अहमिव दुःखितस्तपस्वी[2] । भवतु पृच्छाम्येनम् । (उपसृत्य) भद्र, किमिदमनुष्ठीयते ?

पुरुषः—(सबाष्पम्) आर्य, यत्प्रियवयस्यविनाशदुःखितोऽस्मादृशो मन्दभाग्योऽनुतिष्ठति । (अज्ज जं पिअवअस्सविणासदुःखिदो अह्मारिसो मन्दभग्गो णुचिठ्ठदि ।)

राक्ष०—(आत्मगतम्) प्रथममेव मया ज्ञातं नूनमहमिवार्तस्तपस्वीति । (प्रकाशम्) हे व्यसनब्रह्मचारिन्यदि न गुह्यं[3] नातिभारिकं वा ततः श्रोतुमिच्छामि[4] ।

पुरु०—आर्य[5], न रहस्यं नातिगुरुकं किं तु न शक्नोमि प्रियवयस्यविनाशदुःखितहृदय एतावन्मात्रमपि मरणस्य कालहरणं कर्तुम् । (अज्ज ण रहस्सं णादि[6]गुरुअं किंदु ण सक्णोमि पिअवअस्सविणासदुक्खिदहिअओ एत्तिअमेत्तं वि मरणस्स कालहरणं कादुं ।)

राक्ष०—(निःश्वस्यात्मगतम्) कष्टमेते[7] सुहृद्व्यसनेषु परवदुदासीनाः[8] प्रत्यादिश्यामहे वयममेन । (प्रकाशम्) भद्र, यदि न रहस्यं नातिगुरु वा तच्छ्रोतुमिच्छामि[9] ।

पुरु०—अहो निर्बन्ध आर्यस्य । का गतिः । निवेदयामि । अस्ति तावदत्र नगरे मणिकारश्रेष्ठी विष्णुदासो नाम । (अहो णिब्बन्धो अज्जस्स । का गई । णिवेदेमि[10] । अत्थि दाव एत्थ णअरे मणिआरसेठ्ठी विह्णुदासो णाम ।)

राक्ष०—(आत्मगतम्) अस्ति विष्णुदासश्चन्दनदासस्य परमसुहृत्[11] । (प्रकाशम्) किं तस्य ?

भारवत् । मत्वर्थीयष्ठन् । यदि नातिभारिकं नातिमहत्तर्हि कथयेत्यर्थः । प्रत्यादिश्यामह इति । प्रत्यादेशः प्रतिषेधः । उपालभ्यामह इति यावत् । किमौषधपथातिगैरिति । औषधानां पन्थाः औपधपथस्तमतिगच्छन्तीति तादृशैः महाव्याधिभिरुपहत उपसृष्टः । अचिकित्स्यमहाव्याधी राजक्रोधोऽगम्यगुरुदारादिप्रधर्षणम-

---

1. क्य स्वगतम्, 2. आर्तोयं, 3. रहस्यं, 4. अतः परम्—किं ते प्राणपरित्यागकरणम् इत्यधिकम्, 5. (निरूप्य) आर्य, 6. णवादि०, 7. एतेषु, 8. परमु०, 9. अस्मात्परं—कथ्यतां का गतिर्दुःखस्येति, 10. एसो णिवे०, 11. परं मित्रम् । (प्रकाशं) बाढमस्ति । ततः किम्; भद्र किं तस्य ।

Ra`k.—(*Looking at him*) Oh, the man is hanging himself up. The poor fellow must be as miserable as myself! Well, I will ask him. (*Approaching him*) Good man, what are you doing?

Man—(*Weeping*) Sir, the same that an unlucky man like myself does, when grieved at the loss of his dear friend.

Ra`k.—(*To himself*) I already knew that the fellow was miserable like myself. (*Aloud*) O my companion in misery, if it is not a secret, nor very painful, I wish to hear your account.

Man—Sir, it is neither secret nor very painful; but with my heart afflicted with the loss of a dear friend, I cannot afford to brook even so much delay in death.

Ra`k.—(*Breathing a sigh, to himself*) Woe to me! Here I am put to shame by this man, since I am apathetic like a stranger in the calamity of my friend. (*Aloud*) Friend, if it is neither secret nor painful then I wish to hear it.

Man—Oh, Your Honour is very pressing. What help! I will tell it. There is in this town a jewel-merchant named Vishṇudāsa.

Ra`k.—(*To himself*) There is, Vishṇudāsa, a great friend of Chandanadāsa. (*Aloud*) What of him?

राक्षस—(नज़र पड़ती है) अरे यह क्या—? अपने ही गले में फाँसी डाल रहा है। कोई मेरे जैसा ही मुसीबत का मारा होगा। चलकर पूछता हूं। (निकट पहुंचकर) भैया, यह क्या कर रहे हो?

पुरुष—(आँसुओं में) बाबूजी, जो कुछ—अपने दिली-दोस्तों की मौत आने पर मेरे जैसा हर अभागा आदमी करने के लिए विवश हो जायगा।

राक्षस—(अपने ही से) मुझे तो पहले ही लग रहा था कि यह कोई मेरे जैसा ही मुसीबत का मारा है। (व्यक्त) मेरे विपत्ति के मित्र, अगर कोई बहुत बड़ा हरस्य न हो और तुम्हारी कथा और न बढ़ती हो, तो मेरे आगे अपना दिल कुछ हल्का कर लो भैया!

पुरुष—बाबूजी, न कोई रहस्य की बात है और न ही कोई हृदय का बहुत बड़ा भार है; लेकिन, मित्र के कष्ट से हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है मेरा—अब मैं मौत की इतनी भी प्रतीक्षा नहीं कर सकता।

राक्षस—(आह भरते हुए, अपने ही से) कितनी लज्जा की बात है—मेरे जैसों के लिए, जो मित्रों की विपत्तियों में हाथ-पर-हाथ घरकर विवशता का नाटक खेल रहे हैं। (व्यक्त) हां, भाई, बात बहुत गोपनीय न हो, और कुछ सह्य हो, तो कह डालो।

पुरुष—बाबूजी जोर दे रहे हैं, क्या करूं? बात यह है कि यहाँ इसी नगर में एक सुनार रहता है—सेठ विष्णुदास।

राक्षस—(अपने ही से) हां, है तो—जो चन्दनदास का एक़ अन्तरंग मित्र है। (व्यक्त) क्या हुआ उसे?

पुरु०—स मम प्रियवयस्यः । (सो मम पिअवअस्सो ।)

राक्ष०—(सहर्षमात्मगतम्) अये प्रियवयस्य इत्याह । अत्यन्तसन्निकृष्टः संबन्धः । हन्त ज्ञास्यति चन्दनदासस्य वृत्तान्तम्[1] ।

पुरु०[2]—संप्रति दीनजनदत्ताभरणादिविभवो ज्वलनं प्रवेष्टुकामो नगरान्निष्क्रान्तः। अहमपि यावत्तस्याश्रोतव्यं न शृणोमि तावदात्मानमुद्बध्य व्यापादयितुमिदं जीर्णोद्यानमागतः । (संपदं दीणजणदिण्णा[3]भरणादिविहवो जलणं पवेसिदुकामो णअरादो णिक्कन्तो । अहं वि जाव तस्स[4] असुणिदव्वं ण सुणोमि ताव अत्ताणं उब्बन्धिअ वावादइदुं इमं जिण्णुज्जाणं आअदो ।)

राक्ष०—भद्र, अग्निप्रवेशे सुहृदस्ते को हेतुः ?

किमौषधपथातिगैरुपहतो महाव्याधिभिः

पुरु०—नहि नहि । (णाहि[5] णाहि ।)

राक्ष०—किमग्निविषकल्पया नरपतेर्निरस्तः क्रुधा ।

पुरु०—आर्य, शान्तं पापं शान्तं पापम् । चन्द्रगुप्तस्य जनपदे न नृशंसा प्रतिपत्तिः (अज्ज[6] सन्तं पावं सन्तं पावं । चन्द्रउत्तस्स जणवदे ण णिसंसा पडिवत्ती)

राक्ष०—अलभ्यमनुरक्तवान् किम[7]यमन्यनारीजनम्

पुरु०—(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् । अभूमिः खल्वेषोऽविनयस्य । (सन्तं पावं । अभूमी क्खु ऐसो अविणअस्स ।)

राक्ष०—किमस्य भवतो यथा सुहृद एव नाशोऽवशः[8] ।। १६ ।।

प्रतीकार्यसुहृद्विनाशश्चैतान्यात्मघातनिमित्तानीति भावः ।। [णहीति] रोगाक्रान्ततया तस्य न मरणव्यवसाय इत्यर्थः ।

ईषदसमाप्ते अग्निः विषं च अग्निविषकल्पा तया । आवशो प्रतीकार्यः चलितमेवास्त इति । चलितमास्त इति यत्तद्युक्तमेवेति व्यवहितेनान्वयः ।

---

1. अस्मात्परं–(प्रकाशं) । भद्र किं तस्य, पु०–सो संपदं इ, 2. सबाष्पमित्यधिकम्, 3. दीआदिजणदिण्णविहवो, 4. तस्य पिअवअस्सस्स, 5. अज्ज णहि०, 6. पदं वि णत्थि, 7. कथय किं नु, 8. विषम् ।

MAN—That dear friend of mine—

RA'K.—(*With joy to himself*) Ah, his dear friend, he says—That is a very close connection. I am glad he may be knowing Chandanadāsa's account.

MAN—Having given away the ornaments and all other property to poor men, has now gone out of the city with the desire of throwing himself into the fire. I too came to this old garden in order to hang myself up before I should hear of his sad end.

RA'K.—Friend, what is the cause of your friend's entering fire?

Is he attacked by serious diseases that baffle the power of medicine?

MAN—No, no.

RA'K.—Is he smitten with royal displeasure little short (in its dire effects) of fire or poison?

MAN—God forbid, sir, God forbid. No cruel deeds are committed (or, measures adopted), in the kingdom of Chandragupta.

RA'K.—Did he love some woman that was out of his reach?

MAN—(*Stopping his ears*) Heaven forbid! He is not the man to commit such an act of immodesty.

RA'K.—Did he suffer, like you, from the inevitable loss of a friend? (16)

पुरुष—वह मेरा भी एक इष्ट मित्र है।

राक्षस—(प्रसन्नता के साथ, अपने से ही) इष्ट मित्र? फिर तो, दोनों का एक ही रिश्ता निकल आया—फिर तो, चन्दनदास की भी इसे पूरी-पूरी खबर होनी चाहिए।

पुरुष—अभी-अभी की बात है, जैसे कल की ही हो कि दुःखी-गरीबों में अपने गहने-पैसे सब बांट-बूंटकर वह—चिता में जीवित जल जाने के लिए नगर छोड़ गया है। और इससे पहले कि उसकी मृत्यु का समाचार इन कानों में पड़े मैं भी खुद फाँसी पर लटककर मर जाना चाहता हूं।

राक्षस—किन्तु आग में जलकर मर जाने का यह निश्चय तेरे मित्र ने क्यों कर डाला? क्या उसे कोई ऐसी बुरी बीमारी चिपट गई थी जिसका कुछ इलाज नहीं रह गया था?

पुरुष—नहीं, नहीं।

राक्षस—क्या, फिर—किसी सरकारी कोप का वह शिकार हो गया था जो उसके लिए हृदय की ज्वालाएं बन गया?

पुरुष—(कानों पर हाथ रखते हुए) भगवान् क्षमा करे। चन्द्रगुप्त के राज्य में यह क्रूरता असम्भव है।

राक्षस—तो फिर क्या किसी परायी औरत से उसे इश्क हो गया था, और वह उसे पा नहीं सका?

पुरुष—ऐसा चरित्र-पतन उसमें असम्भव है।

पुरु०—आर्य, अथ किम् ? (अज्ज अह इं ?)

राक्ष०—(सावेगमात्मगतम्) चन्दनदासस्य[1] प्रियसुहृदिति तद्विनाशो[2] हुतभुक्प्रवेशहेतुरिति यत्सत्यं चलितमेवास्ते युक्तस्नेहपक्षपाताद्धृदयम् (प्रकाशम्) तद्विनाशं[3] च प्रियसुहृद्वत्सलतया मर्तव्येऽव्यवसितस्य सुचरितं च विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि।

पुरु०—आर्य, अतोऽपरं न शक्नोमि मन्दभाग्यो मरणस्य विघ्नमुत्पादयितुम्। (अज्ज अदो अवरं ण सक्णोमि मन्दभाग्गो मरणस्स विघ्नमुत्पादेदुं।)

राक्ष०—भद्र[4], श्रवणीयां कथां कथय।

पुरु०—का गतिः ? किं कर्तव्यम् ? एष खलु निवेदयामि। शृणोत्वार्यः। (का गई। किं कादव्वम्। एसो क्खु णिवेदेमि। सुणोदु अज्जो।)

राक्ष०—भद्र, अवहितोऽस्मि[5]।

पुरु०—अस्ति इह नगरे मणिकारश्रेष्ठी चन्दनदासो नाम। (अत्थि एत्थ[6] णअरे मणिआरसेट्ठी चन्दणदासो णाम।)

तद्विनाशमिति। मृत्युं च सुचरितं च विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि। शोकदीक्षाद्वारमिति शोकानुभवनियमस्तद्द्वारमागमनमार्गः।

---

1. दासोस्य; दास्योस्य सुहृदः प्रियसुहृत्तमस्तस्य प्रियसुहृद्विनाश एवाग्निप्रवेशहेतुरिति यत्सत्यमाकुलिन्नु एवास्मि सुहृत्स्नेहपक्षपातिना हृदयेन; चन्दनदासोऽस्य प्रियसुहृत्तद्विनाश एवास्य हुतवहप्रवेशहेतुरिति यत्सत्यं समाकुलित एवास्मि सुहृत्प० हृदयेन, 2. तस्य प्रियसुहृद्वि० 3. भद्र तस्यापि तव प्रियसुहृदः सहृद्वत्सलतया श्रोतव्यचरितस्य सुच० वि०; तव सुहृदः सुहृ० श्रोतव्यं सुच०, 4. एतन्नास्ति क्वचित्; कथयतु भद्रमुखः। इ. पा, 5. दत्तावधानास्मि, 6. जाणाति अज्जो अत्थि; एत्थ जाणादि ज्जेव अज्जो।

MAN—So, it is, sir.

RA`K.—(*With anguish, to himself*) On hearing that he is the friend of Chandanadāsa, and that the ruin of a beloved friend is the cause of his entering fire, my heart really stands trembling within me through the just feeling of affection. (*Aloud*) I long to hear in detail the account of his friend's destruction and also the noble life of one who is prepared to die out of his affection for his friend.

MAN—Unlucky that I am, I can cause no further obstacle to my death.

RA'K.—Friend, tell me a tale that is so worth hearing.

MAN—What course? What can I do? I will tell you; listen.

RA`K.—Friend, I am all attention.

MAN—There is a jewel-merchant in this town, by name Chandanadāsa.

राक्षस—फिर क्या—तेरी ही तरह उसके किसी मित्र पर विपत्ति आई और वह कुछ कर नहीं सका ? (१६)

पुरुष—बस-बस यही बात है, बाबूजी ।

राक्षस—(दुःख के आवेग में, अपने ही से) चन्दनदास का मित्र था वह, अभी यह कह रहा था; और कि मित्र की मुसीवत ही उसके इस अग्निप्रवेश का कारण थी; मेरा तो–सच यही है कि–दिल ही अब काँपने लगा है । स्नेह में पक्षपात कहाँ तक जा पहुंचता है । (व्यक्त) हाँ, तो मित्र—उस दोस्त की मुसीवत के बारे में, और तुम्हारे दोस्त के (मुहब्बत में) इस तरह आग में कूद पड़ने के बारे में, सब-कुछ सुनना चाहूंगा ज़रा ।

पुरुष—बाबूजी, मेरे पास इससे अधिक समय ही कहाँ है–मौत की इन्तज़ार के लिए? कितना किस्मत का मारा हूं ।

राक्षस—भाई, सुनकर मैं भी कुछ हलका हो लूंगा । कह दो, ना !

पुरुष—और चारा ही क्या है ? करूं क्या ? मैं कह रहा था; हां—तो सुनिये ।

राक्षस—सुन रहा हूं, भैया !

पुरुष—यहाँ हमारी राजधानी में एक सुनार और भी है–सेठ चन्दनदास ।

राक्ष०—(सविषादमात्मगतम्) एतत्तदपावृतमस्मच्छोक[1]दीक्षाद्वारं दैवेन । हृदय स्थिरीभव किमपि ते कष्टतरमाकर्णनीयमस्ति । (प्रकाशम्) भद्र, श्रूयते मित्रवत्सलः साधुः[2] । किं तस्य ?

पुरु०—स एतस्य विष्णुदासस्य प्रियवयस्यो भवति । (सो एदस्य विह्णुदासस्स पिअवअस्सो होदि ।)

राक्ष०—(स्वगतम्) सोयमभ्यर्णः[3] शोकवज्रपाथो हृदयस्य ।

पुरु०—ततो विष्णुदासेन वयस्यस्नेहसदृशमद्य विज्ञप्तश्चन्द्रगुप्तः । (तदो विह्णुदासेण वअस्ससिणेहसरिसं अज्ज विण्णविदो चन्दउत्तो ।)

राक्ष०—कथय किमिति ?

पुरु०—देव अस्ति मम गेहे कुटुम्बभरणपर्याप्तोर्थः तस्य विनिमयेन मुच्यतां प्रियवयस्यश्चन्दनदास इति । (देव अत्थि मम गेहे कुटुम्बभरणपज्जत्तो[4] अत्थो । तस्स विणिमएण मुञ्चिज्जदु पिअवअस्सो चन्दणदासो त्ति ।)

राक्ष०—(स्वगतम्) साधु भो विष्णदास साधु । अहो दर्शितो मित्रस्नेहः । कुतः ?—

(७)

3 2 6 4 5
पितॄन्पुत्राः[5] पुत्रान्परवदभिहिंसन्ति[6] पितरो
1 8 8 10 7
यदर्थं सौहार्दं सुहृदि च विमुञ्चन्ति[7] सुहृदः । sin
प्रियं[8] मोक्तुं तद्यो [तं यो] व्यसनमिव सद्यो व्यवसितः
कृतार्थोयं सोर्थस्तव सति वणिक्त्वेपि वणिजः ॥ १७ ॥

पितॄनिति । तदिति सामान्ये नपुंसकं तद्यो सद्यो इति अनुप्रासलोभेन प्रयुक्तमग्र सोऽर्थ इति पुल्लिङ्गेन निर्देशात् । तमर्थं व्यसनमिव स्त्रीद्यूतपानादिव्यसनमिव । तद्धि व्यसनिभिरतिप्रियतया दुस्त्यजमिति भावः । वणिक्त्वेऽपि वणिजामर्थलोभः सहजो दोष इति भावः ॥ १७ ॥

---

[1] शोकद्वा०; दीक्षाप्रवेश०, विनाशदीक्षाप्रकाश०, [2] स साधुः, [3] सोयमत्यन्तः; हृदयस्य । (प्रकाशम्) ततस्ततः, [4] पज्जत्ता अत्थवत्ता ता एदिणा (अर्थवत्ता तदेतेन), [5] भ्रातॄन्···मनुजाः, [6] अभिसन्धाय, [7] समुज्झन्ति, [8] प्रियं सद्यस्त्यक्तुं [तं संत्य०] व्यसनिनि वयस्ये व्यवसितः, प्रियस्यार्थे योसौ व्यसनरहितस्य व्यवसितः ।

Ra`k.—(*In alarm, to himself*) Here Fate has opened the door for initiating me into the study of grief. Be firm, my heart, thou hast to hear something very painful. (*Aloud*) Yes, friend, the good man is known to be loving to his friends. What of him ?

Man—He is the beloved friend of that Vishṇudāsa.

Ra`k.—(*Aside*) Here is the thunderbolt of grief about to fall on my heart.

Man—Then, Vishṇudāsa to-day made a request to Chandragupta, in a manner befitting his affection for his friend.

Ra`k.—What request, pray ?

Man—This. He said—"My lord, there is in my house wealth sufficient for the maintenance of the royal household. Your Majesty should take that in exchange and set my friend, Chandanadāsa, at liberty."

Ra'k.—(*To himself*) Bravo, Vishṛudāsa, bravo! You have proved your love for a friend. For,

You are at once resolved to cast off as an evil, in spite of your being a merchant, that wealth for which sons try to kill their parents and parents their sons as if they were enemies, and for which friends relinquish their affection for friends. That wealth, therefore, of you, a merchant, has accomplished its end. (17)

राक्षस – (बड़ी ही खिन्नता के साथ, अपने से) भाग्य ने भी मुझे शोक में दीक्षित करने के लिए इस तरह आमन्त्रित करना था ? हृदय, अपने को मजबूत कर लो भैया—अभी तो और-भी दुखःद कुछ सुनना तेरे लिए बाकी है ।

पुरुष—यही वह चन्दनदास है जो, मैं कह रहा था, विष्णुदास का परम-मित्र था ।

राक्षस—(अपने से) दुःख का यह वज्र अब गिरा कि गिरा ?

पुरुष—आज ही की बात है—विष्णुदास ने अपनी दोस्ती निभाई और चन्द्रगुप्त से एक प्रार्थना की ।

राक्षस—वह क्या ? कहते क्यों नहीं ?

पुरुष—यही कि—महाराज, मेरे घर में पर्याप्त धन-सम्पद् है जिससे एक परिवार का निर्वाह बखूबी चल सकता है । वह आप जब चाहें उठा लें और मेरे मित्र को (वह लेकर) कैद से छुटकारा दे दें—चन्दनदास को छोड़ दें ।

राक्षस—शाबाश, विष्णुदास, शावाश—मित्रता की परीक्षा में तू पूरा उतरा—

जिसके लिये—बेटे बाप की, और बाप बेटों की, जान ले लेते हैं (जैसे दोनों जानी दुश्मन हों) और जिसकी खातिर—दोस्त अपनी दोस्ती तक का तलाक कर देते हैं—उसी पैसे को तूने आज अपने एक दोस्त को बचाने के लिए, एक लानत की तरह, परे फेंक दिया ! वही—अनर्थ, सचमुच, आज तेरी वैश्यवृत्ति का भी उद्धार कर गया और स्वयं को भी सार्थक कर गया ! (१७)

(प्रकाशम्) भद्र, ततस्तथाभिहितेन किं प्रतिपन्नं मौर्येण ?

पुरु०—आर्य, तत एवं भाणतेन चन्द्रगुप्तेन प्रतिभणितः श्रेष्ठी विष्णुदासः न मयार्थस्य कारणेन चन्दनदासः संयमिः किंतु प्रच्छादितोनेनामात्यराक्षसस्य गृहजनो बहुशो याचितेनापि न समर्पितः। तद्यदि तं समर्पयति तदस्त्यस्य मोक्षः अन्यथा प्राणहरोस्य दण्ड इति भणित्वा वध्यस्थानमानायितश्चन्दनदासः। ततो यावद्वयस्यचन्दनदासस्याश्रोतव्यं न शृणोमि तावज्ज्वलनं प्रविशामीति श्रेष्ठी विष्णुदासो नगरान्निष्क्रान्तः। अहमपि विष्णुदासस्याश्रोतव्यं यावन्न शृणोमि तावदुद्बध्यात्मानं व्यापादयामीतीदं जीर्णोद्यानमागतः। (अज्ज तदो एवं भणिदेण चन्दउत्तेण पडिभणिदो सेट्ठी विह्णुदासो ण मए अत्थस्स कालणेण चन्दणदासो संजमितो किंदु पच्छादिदो अणेण अमच्चरक्खसस्स घरअणो[1] बहुसो जाचिदेण वि ण समप्पिदो। ता जदि[2] तं समप्पेदि तदो अत्थि से मोक्खो। अण्णहा पाणहरो से दण्डो[3] त्ति[4] भणिअ वज्झट्ठाणं आणविदो[5] चन्दणदासो। तदो जाव[6] वअस्सचन्दणदासस्स असुणिदव्वं ण सुणोमि ताव[7] जलणं पविसामित्ति सेट्ठी विह्णुदासो णअरादो णिक्कन्दो। अहं वि[8] विह्णुदासस्स असुणिदव्वं जाव ण सुणोमि ताव उब्बन्धिअ अत्ताणं वावादेमि त्ति इदं जिण्णुज्जाणं आअदो।)

राक्ष०—भद्र, न खलु व्यापादितश्चन्दनदासः।

पुरु०—अद्य तावद्व्यापाद्यते। स खलु सांप्रतं पुनः पुनरमात्यराक्षसस्य गृहजनं याच्यते। न खलु स मित्रवत्सलतया समर्पयति। तदेतेन कारणेन न करोमि मरणस्य कालहरणम्। (अज्ज दाव वावादीअदि। सो खु संपदं पुणो पुणो अमच्चरक्खसस्स घरअणं जाचीअदि। ण खु सो मित्तवत्सलदाए समप्पेदी ता एदिणा[9]कालणेण ण करेमि मरणस्स कालहरणम्।)

---

1. णो त्ति बहुसो जाणिदं [ज्ञातं]। तेण वि, 2. अमच्चरक्खसस्स घरअणं, 3. दण्डो अह्मकोपं पडिमाणेदुत्ति (अस्मत्कोपं प्रतिमानयत्विति) अण्णो वि जनो एवं ण करइस्सदित्ति इत्यधिकम्, 4. त्ति एवं, 5. आणत्तो (आज्ञप्तः), 6. जाव पिअवअस्सस्स, 7. ताव ज्जेव अत्ताणअं वावादेमित्ति जलणे पविसिदुकामो, 8. ०वि पिअवअस्सस्स, 9. ०णेण होदि से (अस्य) मर।

(*Aloud*) Friend, what did Maurya say in reply when thus addressed?

Man—Sir, thus addressed, Chandragupta replied to the merchant Vishṇudāsa—"I have imprisoned Chandanadāsa not for the sake of money; but because he had concealed the wife of minister Rākshasa, and he did not deliver her up although repeatedly asked to do so. If, therefore, he delivers her up, he will obtain his release, otherwise a sentence that will take away life will be passed on him." Having said so, he orderd Chandanadāsa to be taken to the place of execution. Thereupon the merchant Vishṇudāsa left the town intending to enter fire before he heard of the sad end of his friend, Chandanadāsa. I too, came to this old garden in order to hang myself up to death before the melancholy news about Vishṇudāsa reaches my ears.

Rāk.—Friend, I hope Chandanadāsa is not yet put to death.

Man—He will be executed to-day. He is now repeatedly requested to give up minister Rākshasa's wife; he does not deliver her up out of his affection for his friend. For this reason I will no longer delay my death.

(व्यक्त) हाँ तो—विष्णुदास की उस प्रार्थना पर, भैया, चन्द्रगुप्त ने क्या कदम उठाया ?

पुरुष—चन्द्रगुप्त ने 'प्रार्थना-पत्र' के उत्तर में कहा; सेठजी, सरकार ने पैसे की खातिर चन्दनदास को कैद में नहीं डाला, अपितु उसने अमात्य राक्षस के कुनबे को (गृहिणी को) अपने यहाँ आश्रय दिया हुआ है—इसलिए। हम तो कितनी ही वार उससे कह चुके हैं, लेकिन वह हमारी एक नहीं सुनता। जिस क्षण भी वह राक्षस के परिवार को हमारे हवाले कर देता है, उसकी विपत्ति समाप्त; वरना—अन्तिम दण्ड उसके लिए मौत निश्चित की जा चुकी है। इधर चन्द्रगुप्त ने यह कहा और उधर चन्दनदास को पकड़कर वध्यस्थल पहुंचवा दिया। पूर्व इसके कि चन्दनदास की मौत को वह सुने, विष्णुदास ने यही बेहतर समझा कि शहर छोड़ दूं और ज्वालाओं में भस्म हो जाऊं। और यही हाल मेरा है—विष्णुदास की बुरी खबर सुनने से पहले मुझे खुद लटक जाना चाहिए। इसीलिए मैं यहाँ इस उजड़े बगीचे में आया था।

राक्षस—भैया, अभी लटका तो नहीं चन्दनदास ?

पुरुष—आज लटक जायगा। अब भी उसे फुसलाने की कोशिशें जारी हैं कि राक्षस के परिवार को हवाले कर दो और वह भी, दोस्ती में पूरा है, कोई सुराग नहीं दे रहा; और यही कारण है कि मैं भी मरने को उतावला तो हूं, लेकिन मर नहीं गया अब तक !

राक्ष०—(सहर्षमात्मगतम्) साधु वयस्य चन्दनदास, साधु ।

शिवेरिव समुद्भूतं शरणागतरक्षया[1] ।
निचीयते[2] त्वया साधो यशोऽपि सुहृदा विना ॥ १८ ॥

(प्रकाशम्) भद्र[3] गच्छेदानीं शीघ्रं विष्णुदासं ज्वलनप्रवेशान्निवारय । अहमपि चन्दनदासं मरणान्मोचयामि ।

पुरु०—अथ पुनः केनोपायेनार्यश्चन्दनदासं मरणान्मोचयति । (अह उण केण उवाएण अज्जो[4] चन्दणदासं मरणादो मोचेदि ।)

राक्ष०—(खड्गमाकृष्य) नन्वनेन व्यवसायसुहृदा[5] निस्त्रिंशेन । पश्य—

निस्त्रिंशोऽयं सजलजलद[6]व्योमसङ्काशमूर्तिर्
युद्धश्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण ।
सत्वोत्कर्षात्समरनिकषे दृष्टसारः परैर्मे
मित्रस्नेहा[7]द्विवशमधुना साहसे मां नियुङ्क्ते ॥ १९ ॥

शिवेरिवेति । शिवेरिवेतीवशब्दो भिन्नक्रमः यशसा संवध्यते । शरणागतरक्षया हेतुना समुद्भूतं समुत्पन्नं शिवेर्यश इव त्वया यशो निचीयते संपाद्यते । शिविनेवेति तृतीयान्तपाठः सुगमः । तेन हि शरणागतस्य सन्निधावेव स्वविनाशोऽभ्युपगतः । त्वया तु सुहृदा विनापि । अपिशब्दो भिन्नक्रमः । ममासन्निधान इदं यशो निचीयत इत्यहो शिवेरपि त्वमधिकगुणः श्लाघ्योसीति भावः ॥ १८ ॥

निस्त्रिंशोयमिति । व्यवसायः उत्साहः पौरुषमिति यावत् । तदेकसहायेन खड्गेन तत्सर्वं मौर्यवलमुत्साद्य सुहृदं मोचयामीत्यर्थः । सजलः जलधारासहितश्चासौ जलदव्योमसङ्काशमूर्तिश्चेति विशेषणकर्मधारयः । नैल्यनैर्मल्यगुणाभ्यां जलदव्योमदृष्टान्तः । धाराजलसहितत्वादेव युद्धश्रद्धापुलकित इवेत्युत्प्रेक्षा धाराजलकणिकानां पुलकसादृश्यसंभवात् । सत्वोत्कर्षान्मम कर इवायमपि सत्त्वोत्कर्षशालीत्यर्थः । परैः समरनिकषे दृष्टसारः बहुशोकुण्ठितशक्तित्वेनानुभूत इत्यर्थः । मित्रस्नेहाद्विवशं मित्रस्नेहाधीनतया कार्याकार्यविचारविमुखं मां साहसे नियुङ्क्ते । हिताहितानपेक्षं यत्कर्म तत्साहसं विदुः ॥ १९ ॥

---

1. रक्षणात्, 2. विची, 3. भद्र भद्र, भद्र गच्छ गच्छे०, शीघ्रमिदानीम्, 4. तुमं···मोचेसि, 5. महासु०; व्यसनसु० खड्गेन, व्यसनसहायेन, 6. विगत०; जलदाकाश०, 7. स्नेहो वि,–हाविरसम० ।

RA`K.—(*Joyfully, to himself*) Bravo, Chandanadāsa, bravo! Noble man, you are acquiring a fame like that of Śibi arising from the protection of one come for protection, even in the absence of your friend. (18)

(*Aloud*) Friend, go, go quickly to Vishṇudāsa and prevent him from entering fire. I, on my part, will rescue Chandanadāsa from death.

MAN—By what means will Your Honour release Chandanadāsa from death?

RA`K.—(*Drawing his sword*) By means of this sword, my companion in any undertaking. Lo,

This my sword, which, dark-blue in appearance like a water-charged-cloud and the sky, appears to be thrilling with eagerness for fight, being grasped in the hand, and the strength of which, in consequence of its high temper has been seen by my enemies tested on the touch-stone of battle, now prompts me, who am overpowered by (have lost control over myself on account of) my affection for my friend, to an act of daring. (19)

राक्षस—(अद्‌भुत प्रसन्नता में, आप ही से) धन्य है तू, चन्दनदास ! तू धन्य है—

तू सचमुच शिवि है—शरण में आये की रक्षा करते हुए जो यश तू संचित कर रहा है, और वह भी कब ?—जबकि तुझे अपने मित्र के सम्बन्ध में कोई भी सूचना पहुंच नहीं रही ! (१८)

(व्यक्त) सुनो और ऐसा करो, अविलम्ब दौड़कर जाओ और विष्णुदास को अग्नि-प्रवेश से बचा लाओ और इधर मैं जाकर चन्दनदास को मौत के मुंह से निकाल लाता हूं ।

पुरुष—लेकिन मौत के मुंह से, बाबूजी, चन्दनदास को किस तरह बचा लायेंगे आप ?

राक्षस—(तलवार निकालकर) इसकी सहयता से, यही मेरी विपत्ति की सखी है—यह तलवार—

भरे बादल की तरह तरंगों-सी चमचमाती यह मेरी तलवार—मेरे हाथ में आज भी जैसे एकदम युद्ध के लिए उत्सुकता के साथ रोमांचित हो जाती है ! और मेरे शत्रु ही जानते हैं इसमें क्या शक्ति है—कितनी ही बार युद्ध की कसौटी पर यह खरी उतर चुकी है । आज पहली बार मुझे यह विवश कर रही है कि एक मित्र की रक्षा में मैं वह कर दूं जो इसने आज तक नहीं किया ! (१९)

पुरु०—आर्य, एवं श्रेष्ठिचन्दनदासजीवितप्रदानपिशुनितं विषमदशाविपाकनिपतितं साधु न शक्नोमि त्वां निर्णीय प्रतिपत्तुं किं सुगृहीतनामधेया अमात्यराक्षसपादा यूयं दिष्ट्या दृष्टा इति। तत्कुरु मे प्रसादं सन्देहनिर्णयेन। (इति पादयोः पतति) (अज्ज एवं सेट्ठिचन्दणदासजीविदप्पदाणपिसुणिदं विसमदसाविपाकणिपडिदं साधु ण सक्णोमि तुमं[1] णिण्णीअ पडिवत्तुं किं सुगिहीदणामहेआ अमच्चरक्खसपादा तुह्मे दिट्ठिआदिट्ठात्ति। ता करेहि मे पसादं सन्देहणिण्णएण।)

राक्ष०—सोऽहमनुभूतभर्तृवंशविनाशः सुहृद्विपत्तिहेतुरनार्यो दुर्गृहीतनाम-[2]धेयो यथार्थो राक्षसः।

पुरु०—(सहर्षं पुनः पादयो पतित्वा) आश्चर्यं दिष्ट्या दृष्टोऽसि। (ही हीमाणहे दिट्ठिआ दिट्ठोसि[3]।)

राक्ष०—भद्र, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ अलमिदानीं[4] कालहरणेन। निवेद्यतां विष्णुदासाय एष[5] राक्षसश्चन्दनदासं मरणान्मोचयतीति। (इति निस्त्रिंशोयमिति पठन्नाकृष्ट[6]खड्गः परिक्रामति)

पुरु०—(पादयोर्निपत्य) प्रसीदन्त्वमात्यपादाः। अस्ति तावदत्र प्रथमं चन्द्रगुप्तहतकेनार्यशकटदासो वध्यस्थानमाज्ञप्तः। स च वध्यस्थानात्केनाप्यपहृत्य देशान्तरं नीतः। ततश्चन्द्रगुप्तहतकेन कस्मादेष प्रमादः कृत इति आर्यशकटदासे समुज्ज्वलितः कोपवह्निर्घातकजननिधनेन निर्वापितः। ततः प्रभृति घातका यं कमपि गृहीतशस्त्रमपूर्वं पुरुषं पृष्ठतो वाऽग्रतो वा प्रेक्षन्ते तदात्मनो जीवितं परिरक्षन्तोऽप्रमत्ता वध्यस्थाने वध्यं व्यापादयन्ति। तस्मादेवं गृहीतशस्त्रैरमात्यपादैर्गच्छद्भिः श्रेष्ठिचन्दनदासस्य वधस्त्वरायितो भवति।

---

1. निच्चिदपदं भणितुम्। (विलोक्य पादयोर्निपत्य) अध किं सुगिहीं० तुह्मेत्ति, 2. नामा, 3. किदत्थोह्मि (कृतार्थोस्मि), 4. कृतम्, 5. यथैष—मोचयति, 6. आकृष्य खड्गं।

Man—Sir, when you thus betray yourself by offering your life for the merchant Chandanadāsa, but are fallen into an adverse condition of life, I am not able to know you definitely and to recognize in you Minister Rākshasa of blessed name, whose feet I have thus the good luck to see to-day. (*He falls at his feet*) Do you favour me then by clearing my doubt.

Ra`k.—I am that man who witnessed the destruction of the race of his masters, who is the cause of his friends' misery, a villain, of accursed name, and a Rākshasa in the real sense of the term.

Man—(*Again joyfully falling at his feet*) Oh wonder! I am glad I have seen you.

Ra`k.—Arise, arise good friend; no further delay now. Tell Vishṇudāsa that Rākshasa is just going to deliver Chandanadāsa from death. (*He repeats* 'This my sword,' &c., *and walks about with the drawn sword in his hand*)

Man—(*Falling at his feet*) Be pleased, revered Minister. It so happened that noble Śakaṭadāsa was first ordered by the cursed Chandra to be taken to the place of execution. From

पुरुष—वाबूजी, क्षमा कीजियेगा—सेठ चन्दनदास की ख़ातिर इस तरह जान की बाज़ी लगाने का उतावलापन, और साथ ही अपने बारे में विवशता और बुरे दिनों की दुहाई--मैं कुछ फैसला नहीं कर पा रहा कि जिस महान् शख्सियत के मैं दर्शन कर रहा हूं--हमारे महामन्त्री अमात्य राक्षस ही तो नहों आप? वाबूजी, मेरे शक की कुछ सफाई करने का कष्ट न करेंगे? (चरणों में गिर पड़ता है)

राक्षस--भैया, सचमुच, मैं वही अभागा राक्षस हूँ—सच्चे अर्थों में राक्षस—राक्षस, जिसने अपने स्वामी के वंश को नष्ट होते अपनी आँखों से देखा; अपने मित्र को विपत्ति में डालकर आप जान बचाता फिरा; सज्जनता को–मनुष्यता को—तलाक दे वैठा, और अपने नाम को आप बट्टा लगाकर अब भी जीवित है!

पुरुष—(अद्भुत उल्लास के साथ, एक बार फिर चरणों में पड़ते हुए) मेरा सौभाग्य, मुझे तो अब भी विश्वास नहीं आ रहा--आपके दर्शन इस तरह होने थे!

राक्षस---उठो भैया, उठो—समय निकलता जा रहा है। जाओ, विष्णुदास को ख़बर कर दो कि राक्षस चन्दनदास को छुड़ाकर ला रहा है। (वही 'अरे बादल की तरह तरंगों-सी चमकती मेरी तलवार' गुनगुनाता, तलवार खींचे विकलता में, इधर-से-उधर उधर-से-इधर, फिरता रहता है)

(निष्क्रान्तः) (पसीदन्दु अमच्चपादा: । अत्थि दाव एत्थ पढमं चन्दउत्तहदएण अज्जसअडदासो वज्झट्ठाणं आणत्तो। सो अ वज्झट्ठाणादो केणवि अवहरिअ देसन्तरं णीदो[1] । तदो चन्दउत्तहदएण कीस एसो प्पमादो किदोत्ति अज्जसअडदासे[2] समुज्जलिदो कोववह्नी[3] घादअजणणिहणेण[4] निव्वाविदो । तदो पहुदि घादआ जं कंवि गिहिदसत्थं अपुव्वं पिठ्ठदो वा अग्गदो वा पेक्खन्ति तदो अत्तणो[5] जीविदं परिरक्खन्तो अप्पमत्ता वज्झट्ठाणे वज्झं वावादेन्ति । ता एवं गिहिदसत्थेहिं अमच्चपाहेहिं गच्छन्तेहिं सेठ्ठिचन्दणदासस्स वहो तवराइदो होदि ।)

राक्ष॰––(स्वगतम्) अहो दुर्बोधश्चाणक्यबटोर्नीतिमार्गः । कुतः ? —

यदि च[6] शकटो नीतः शत्रोर्मतेन ममान्तिकं
किमिति निहतस्तेन[7] क्रोधावधाधिकृतो जनः ।
अथ न[8] कृतकं तादृक्कष्टं[9] कथं नु विभावयेद्
इति मम मतिस्तर्कारूढा[10] न पश्यति निश्चयम् ॥ २० ॥

चन्द्रगुप्तेति । चन्द्रगुप्तहतकेनेति आदेशकटेति च वचनं स्वस्य नन्दकुलपक्षपातित्वद्योतनार्थम् ।

यदि चेति । शत्रोर्मतेन मौर्यानुमत्या छद्मना यदि शकटदासो ममान्तिकं प्रापितस्तर्हि घातकवधपर्यवसायी क्रोधावेशो न घटेत । अथ घातकवधान्यथानुपपत्त्या कृतकं नेति तदीयं पलाय्यागमनं कृतकं छद्मरूपं न भवति । परमार्थत एव शकटदासः सिद्धार्थकस्य तात्त्विकसाहसोपकारेण पलाय्य गतः स्यात्तदा तादृक्कष्टं कुत्सितं स्वहस्तलेखमुद्राङ्कनादिरूपं स्वामिद्रोहं शकटदासः कथं नु विभावयेत्कर्तव्यत्वेन कथं चिन्तयेत् । आचरेदित्यर्थः । चिन्तनमपि तस्यानुचितं किमुताचरणमिति भावः । इत्यादि तर्कारूढो न कमपि निश्चयं प्राप्नोमीत्यहो दुर्बोधश्चाणक्यनीतिमार्ग इत्यर्थः । स्वहस्तलेखात्स्वामिद्रोहरूपं कर्मातिकुत्सितं वाचा वक्तुमयोग्यमिति तादृक्कष्टमित्युक्तम् तादृग्लेखमिति क्वचित्पाठः ॥ २० ॥

---

1. ममवाहिदो, 2. ॰दासवधवञ्चणाए, 3. रोसग्गी (रोषाग्निः), 4. वधजलेण, 5. तदो अद्धपधे ज्जेव···अप्पमत्ता एदे अ (ण) वाप्तवज्झठ्ठाणं, 6. स, 7. ताः क्रोधावेशात्...ता जनाः; तेनैवायं, क्रोधावेशात्, 8. सकृत॰, स न कृतं, 9. लेखं, 10. चकारूढा ।

that place he was borne away by some one and taken to some other country. Then the cursed Chandragupta, angry that such a piece of carelessness should have been committed, quenched the blazing fire of his anger against noble Śakaṭadāsa with the blood of the executioners. Since that time, whenever the executioners see a stranger armed with a weapon either behind them or in the front, they are on their guard, and wishing to save their own lives, kill the victim on the spot of execution. If Your Honour, therefore, goes there thus armed, the death of Chandanadāsa will only be expedited. [*Exit*

RA'K.—Oh, how inscrutable is the course of the cursed Chāṇakya's policy ! For,

If Śakaṭadāsa was brought to me with the consent of the enemy then why were the executioners (lit. persons appointed to kill criminals) put to death by him in anger ? If he was not, then how could he even think of such a sinful fabrication ? Thus my mind being mounted on conjectures arrives at no definite conclusion. (20)

पुरुष—(चरणों में गिरते हुए) महामन्त्री, क्षमा कीजियेगा—पहली बात तो यह है कि चन्द्रगुप्त ने जब पहले शकटदास को वध्यभूमि पहुँचाने का आदेश दिया था, और एक अजनवी आकर जब उसे वहाँ से उड़ाकर कहीं दूर ले गया—तभी से बात कुछ बदल चुकी है। दुष्ट चन्द्रगुप्त ने—यह असावधानी किसने की ?—जो गुस्सा शकटदास पर उतरना था, खुद कातिलों को मौत देकर ठण्डा किया। तब से ऐसा चला आ रहा है कि ये बूचड़ लोग अगर कहीं भी, आस-पास, किसी सशस्त्र परदेशी को आगे-पीछे देख लेते हैं, अपनी जान पर न वन आये—ज़रा देर नहीं लगाते (सोचते तक नहीं) :—वध्यपुरुष का काम एकदम तमाम कर देते हैं। इसलिए—कहीं ऐसा न हो कि हुजूर के हाथ में यह खुली तलवार, उलटे, सेठ चन्दनदास की मौत को कुछ जल्दी ही बुला लाये ?

राक्षस—(मन-ही-मन) इस चाणक्य की निगौड़ी अक्ल का भी कुछ पता नहीं चलता :—

जब शकटदास को उसकी अपनी सलाह से ही मेरे पास पहुँचा दिया गया तो, गुस्से में आकर, कातिलों को क्यों खत्म कर दिया गया ? और (हो सकता है यह खबर झूठ-मूठ ही उड़ा दी गयी हो, तब भी)—ऐसा विचार ही पहले किसी के मन में कैसे आ सकता है ? मेरी बुद्धि तो दंग है—कुछ सोच नहीं पा रही। (२०)

(विचिन्त्य[1])

नायं निस्त्रिंशकालः प्रथममिह कृते घातकानां विघाते
नीतिः कालान्तरेण प्रकटयति फलं किं तया कार्यमत्र ।
औदासीन्यं न युक्तं प्रियसुहृदि गते मत्कृते[2] चातिघोरां
व्यापत्तिं ज्ञातमस्य[3] स्वतनुमहमिमां निष्क्रयं कल्पयामि ॥ २१ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति षष्ठोऽङ्कः ।

नायमिति । प्रथमं पूर्वं छलतः परमार्थतो वा घातकानां विघाते कृते त्वरिततरं चन्दनदासघातनप्रसक्तिभयान्निस्त्रिंशधारणमनुचितम् । [यद्वा प्रथमं ममोद्यमात्प्राग् घातकानां । कर्तरि षष्ठी । घातकैः कृते । चन्दनदासस्येतिशेषः । विघाते इति योज्यम् ।] नीत्याचरणं तु शिरसि भयं दूरे तत्प्रतीकार इति न्यायेनानुपपन्नम् । सुहृद्विनाशोपक्षेणं तु कृतघ्नतादिमहादोषमापादयेत् । अतश्चन्द्रगुप्ताय दासीभावेनात्मानं निष्क्रीयैव सुहृद्विमोचनं न्याय्यत्वेन गले पतितमिति ज्ञातं निश्चितमिति भावः ॥ २१ ॥

इति श्रीत्र्यम्बकयज्वप्रभुवर्याश्रितढुण्ढिराजव्यासयज्वविरचिते
मुद्राराक्षसनाटकव्याख्याने षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ॥

---

1. अस्मात्परं–तस्मात्, 2. मत्कृतामेव घोराम्, 3 ०स्मिन् ।

(Reflecting)

This is not the time for the sword, since the hangmen would put (my friend) to death before (I could rescue) him. Policy bears fruit after an interval of time; what is the use of it in this case ? Indifference is not proper, when my dear friend has met with an extremely dreadful calamity on my account. I know now how to act—I will offer this my body as a ransom for him. (21)

END OF ACT VI.

(कुछ देर सोच-विचार करने के पश्चात्)

ठीक है—समय तलवार का नहीं है, क्योंकि बधिक अपना कर्त्तव्य (तब) समय से पहले ही पूरा कर देंगे। और नीति का अवकाश भी यहाँ नहीं है—उसकी सफलता के लिए समय चाहिए। उदासीनता अब और अधिक सह्य हो नहीं सकती—दोस्त पर यह सब-कुछ मेरी खातिर ही हो रहा है। अरे, दीख गई—मुझे राह दीख गई खुद को खुद जाकर सौंप दूँ और दोस्ती की कीमत, इस तरह गिरवी से (ज़िन्दगी से) अदा कर दूँ। (२१)

(रंगमंच पर कोई नहीं रह जाता)

अंक ६ : समाप्त

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चण्डालः[1])

चण्डा०—अपसरत आर्या अपसरत । अपेत मनुषा अपेत । (ओसलेह[2] अज्जा ओसलेह । अवेह माणहे अवेह ।)

यदि इच्छत रक्षितुं स्वान् प्राणान् विभवान्कुलं कलत्रं च ।
तत्परिहरत विषमं राजापथ्यं सुदूरेण ॥ १ ॥

जइ[3] महह लक्खिदुं शे प्पाणे विहवे कुलं कलत्तं अ ।
ता पलिहलेह विसमं लाआपत्थं सुदूलेण ॥ १ ॥

अपि च (अवि अ)—

भवति पुरुषस्य व्याधिर्मरणं वा सेविते अपथ्ये ॥
राजापथ्ये पुनः सेविते सकलमपि कुलं म्रियते ॥ २ ॥

होदि पुलिसस्स वाही मलणं वा सेविदे अपत्थम्मि ।
लाआपत्थे उण सेविदे सअलं वि कुलं मलदि ॥ २ ॥

तद्यदि न प्रतीथ तदत्र प्रेक्षध्वमेनं राजापथ्यकारिणं श्रेष्ठिचन्दनदासं सपुत्रकलत्रं वध्यस्थानं नीयमानम् । (आकाशे श्रुत्वा) आर्याः, किं भणथ । अस्त्यस्य कोऽपि मोक्षोपाय इति । आर्या अस्त्यमात्यराक्षसस्य गृहजनं यदि

इत्थं षष्ठेनाङ्केन राक्षसवशीकरणरूपं प्रधानकार्यं बीजवद्भिर्यथायथं विप्रकीर्णैरत्रैकार्थीभावमुपनीतैर्मुखसन्ध्याद्यर्थैर्निर्व्यूढम् । अथ राक्षसेन चन्द्रगुप्तसाचिव्यग्रहणद्वारा तल्लक्ष्मीस्थिरीकरणरूपस्य नाटकस्य प्रधानतमं फलमुपगमयितुं सप्तमोऽङ्क आरभ्यते । पूर्वाङ्के रज्जुहस्तेन पुरुषेण निवेदितं चन्दनदासस्य वध्यस्थाननयनं श्रुत्वा राक्षसः ससंभ्रमं शस्त्रमुत्सृज्य वध्यस्थानं प्रति निष्क्रान्त इत्युक्तम् । संप्रति स एव चन्दनदासवृत्तान्तोऽस्मिन्नङ्के प्रपञ्च्यत इतीदमङ्कावतरणं 'यत्र स्यादुत्तराङ्कार्थः पूर्वाङ्कार्थानुसंगतः, इति तल्लक्षणात् ।

---

1. च० वज्रलोमा, 2. ओसलध, माणहे (मान्या), अवेध; ओस० ओस० । अवेह अवेह । अस्मात्परं—वज्जेह लाइदव्वं (लाअवश्छं) विसं व पलिहलध—ह सव्ववसणाइं । एदेशु वद्माणे होदि जणे शुलहविणिवादे ॥ इ. क्वचित्, 3. जइ मणह; महह-ध लक्खिदुं निअप्पाणे विहवे कुले कलत्ते च । पलिहलध से (ता पलि०) विसमिव लाआपत्थं पअत्तेण । (यदि मन्यध्वं रक्षितुं निजप्राणान्कुलानि कलत्राणि च । परिहरत तस्माद्विषमिव राजापथ्यं प्रयत्नेन ॥) ।

ACT VII.

(*Enter a* CHA'NDA'LA)

CHA'NDA'LA—Move away, respectable sirs, move away; be off, ye men, be off.

If you wish to save your life, property, family and wife, then keep very far off from what is injurious (treason) to the king which is so dreadful. (1)

Moreover,

If a man takes (eats) something unwholesome, he alone suffers from disease or dies; whereas if he takes to felony against a king, the whole family perishes. (2)

If you don't believe me then see here the merchant Chandanadāsa who is being led to the place of execution with wife and son for acting treacherously towards the king. (*Looking*

अंक—७

(चाण्डाल)

चाण्डाल—हटके, भैया, हटके। वचके, वचके—

अपनी खैर चाहते हो—अपने परिवार बाल-बच्चों को—पैसे की खैर चाहते हो तो—राजद्रोह से बचकर रहो। (१)

बात यह है कि—

शरीर के प्रति द्रोह करके ज़्यादा-से-ज्यादा कुछ बीमारी आ जायगी, मौत आ जायगी, शासन से द्रोह करके, तुम्हीं नहीं, (तुम्हारे बाद) सारा-का-सारा वंश ही नष्ट हो जायगा। (२)

विश्वास न आता हो, तो—देख लो—राजद्रोही सेठ चन्दनदास को यह हम शूली पर ले जा रहे हैं। (शून्य में जैसे कुछ सुन लिया हो) क्या, भैया; क्या कह रहे थे तुम—'क्या सेठजी के लिए अब इस सज़ा से बचने की कोई सूरत

समर्पयति। (पुनराकाशे) किं भणथ। एष शरणागतवत्सल आत्मनो जीवितमात्रस्य कारणेनेदृशमकार्यं न करिष्यतीति। आर्याः तेन हि अवधारयतास्य सुखां गतिम्। किमिदानीं युष्माकमत्र प्रतीकारविचारेण। (ता जणि ण पदिज्जह[1] ता एह पेक्खह एअं लाआपत्थकालिणं[2] सेष्ठिचन्दणदासं सउत्तकलत्तं वज्झट्ठाणं णीजमाणं। अज्जा किं भणह। अत्थि[3] से कोवि मोक्खोवाओ त्ति। अज्जा[4] अत्थि अमच्चरक्खसस्स घरअणं चइ समप्पेदि। किं भणह। एसे सलणागदवच्छले अत्तणो जीविदमेतस्स कालणे ईदिसं अकज्जं ण कलिस्सदि त्ति। अज्जा[5] तेण हि अवधालेह से सुहां[6] गदिं। किदाणिंतुह्माणं एत्थ पडिआरविआरेण।)

(ततः प्रविशति द्वितीयचण्डालानुगतो[7] वध्यवेशधारी शूलं स्कन्धेनादाय कुटुम्बिन्या पुत्रेण चानुगम्यमानश्चन्दनदासः।)

चन्द०[8]—(सबाष्पम्) हा धिक् हा धिक्! अस्मादृशानामपि नित्यं चारित्रभङ्गभीरूणां चोरजनोचितं मरणं भवतीति नमः कृतान्ताय। अथवा न नृशंसानामुदासीनेष्वितरेषु वा विशेषोऽस्ति। तथाहि—हद्धी हद्धी अह्मारिसाणं वि णिच्चं चारित्तभङ्गभीरूणं चोरजणोचिदं मरणं होदि त्ति णमो किदन्तस्स। अह वा ण णिसंसाणं उदासीणेसु इदरेसु वा विसेसोत्थि। तह हि।)—

मुक्त्वा आमिषाणि मरणभयेन तृणैर्जीवन्तम्।
व्याधानां मुग्धहारिणं हन्तुं को नाम निर्बन्धः॥ ३॥
मोत्तूण[9] आमिसाइं मरणभरण तिणेहिं जीवन्तम्[10]।
वाहाणं मुद्धहरिणं हन्तु को प्राण णिब्बन्धो॥ ३॥

शरणागतवत्सलेति। इत्यादिपौरवचनेनास्य शरणागतरक्षणविरुदं लिखितपठितत्वेन सकललोकप्रसिद्धमित्युक्तं भवति। सुखां गतिं शरणागतरक्षणपुण्येनोत्तमलोकप्राप्तिमिति बहिरर्थः। राक्षसप्राप्त्या बन्धमोचनात्सुखप्राप्तिमिति गूढम्।

---

1. पत्तिआअध तदपेक्खध एदं लाआप०, 2. आणीअयाणं, 3. अत्थि किं चन्दणदासस्स, 4. कुतो से अधण्णस्स मोक्खोवावो। एदं उण अत्थि—से जइ अमच्च०, 5. अज्जा जइ एवं अवधाणेध से असुभगतिं। एत्तिके दाणीं तुह्माण पडीआले, 6. अशुहं (अशुभां), 7. चण्डालेन बिल्वकेनानु०···स्कन्धेन वहन्, 8. कुटु०— 9. चोरजणाणं विअ मरणं पत्तं ति णमो णमो किदन्तस्स। एतत्पद्यरूपेण दृश्यते क्वचित्—अम्हारिसाण वि कुले (जदा) णिच्चं चारित्तभङ्गभीरूणां। चोरजणोइदमरणं होदि (पत्तं) त्ति नमो किदन्तस्स॥ 10. जीवन्ति।

towards the sky) What do you say, ye respectable citizens? Do you ask me whether there is any means of setting him free? There is, noble sirs, if he delivers up the family of the minister Rākshasa. (*Again looking into the sky*) What do you say? That he, who is kind to those who seek his protection, will never do such an ignoble deed for the sake of mere life. Then wish him, ye respectable men, a blissful passage; but no more think of a means of rescue in this case.

(*Then enter* CHANDANADA`SA *in a criminal's dress, followed by a second* CHA`NDA`LA, *with a pale on his shoulder and accompanied by his* WIFE *and* SON)

CHAND.—(*With tears*) Alas! alas! Bow to the god of Death, that people like us who are afraid of deviation from the path of duty should die the death of a bandit! Or why? Cruel men make no distinction between those who are indifferent and those who are otherwise. For,

What obstinate desire is it of hunters to kill an innocent deer that leaves flesh and lives on grass through the fear of death? (3)

नहीं रह गई ? क्यों नहीं रह गई—बस, एक ही, और वह यह कि अमात्य-शिरोमणि, (राक्षस) के घर को सरकार के हवाले कर दे—तब !…(उसी ओर, शून्य में, फिर) क्या कहा तुमने ?—कि 'शरण में आये की खातिर अपनी कुरबानी भले ही करनी पड़ जाय, चन्दनदास ऐसी कमीनी हरकत मरकर भी नहीं कर सकता । तो भैया, बस 'सेठजी की आत्मा को शान्ति मिले' यह प्रार्थना ही हम कर सकते हैं, उन्हें कारा से मुक्त कराने का विचार ही मन से अब निकाल देना चाहिए ।

(मृत्यु-दण्डित के वेश में, शूली को कन्धे पर उठाये, पत्नी और पुत्र के साथ, चन्दनदास । पीछे-पीछे एक और चाण्डाल चला आ रहा है)

चन्दनदास—(आँसूओं में) दुःख है तो केवल इस बात का कि हमारे जैसे आदमियों की किस्मत में भी—जो हर क्षण डरते हैं कि कहीं कोई अधर्म न हो जाय, चोरों की मौत लिखी है । यमराज के आगे सब बेबस हैं । सच शायद यह है कि मनुष्य जब नृशंस बन जाता है, वह एक अपराधी में और एक निरपराधी में भेद करने योग्य रह ही नहीं जाता । देखो, ना—

भोले-भाले हरिण—माँस को नहीं खाते, घास पर ही ज़िन्दगी गुजार देते हैं कि कहीं कोई पाप न हो जाय । शिकारी किस वासना के बस में—दिन-रात उन्हीं की ताक में रहते हैं ? (३)

(समन्तादवलोक्य) भो प्रियवयस्य विष्णुदास, कथं प्रतिवचनमपि न मे प्रतिपद्यसे। अथवा दुर्लभास्ते खलु मनुषा य एतस्मिन्काले दृष्टिपथेऽपि तिष्ठन्ति। (सबाष्पम्[1]) एतेऽस्माकं प्रियवयस्या अश्रुपातमात्रेण कृतप्रतीकाराः स्वशरीरैः कथमपि निवर्तमानाः परिवर्धमानशोकदीनवदना वाष्पगुरुकथां दृष्टया मामनुगच्छन्ति। (भो पिअवअस्स विह्णुदास कहं पडिवअणं वि ण मे पडिवज्जसि। अह वा दुल्लहा ते क्खु माणुसा जे एदस्सिं[2] काले दिठ्ठिपथे वि चिठ्ठन्ति। एदे अह्मपिअवअस्सा अंसुपादमेत्तकेण किदप[3]दीआरा स्वसरीरेहिं कहंवि णिवत्तमाणा परिवढ्ढमाणसोअदीणवअणा वाहगुरुआए दिट्टीए मं अणुगच्छन्दि।) (इति परिक्रामति)

चण्डा०[4]—आर्य चन्दनदास, आगतोसि वध्यस्थानं तद्विसर्जय गृहजनम्। (अज्ज चन्दणदास आअदोसि वज्झट्ठाणं ता विसज्जेहि घरजणम्[5]।)

चन्द०—कुटुम्बिनि, निवर्तस्व सांप्रतं सपुत्रा। न युक्तं खल्वतःपरमनुगन्तुम्। (कुटुम्बिणि[6] णिवत्तेहि संपदं सपुत्ता। ण जुत्तं क्खु अदोवरं अणुगच्छिदुम्।)

कुटु०—(सबाष्पम्) परलोकं प्रस्थित आर्यो न देशान्तरम्। (परलोअं पत्थिदो अज्जो ण देसन्तरं।)

चन्द०—आर्ये, अयं मित्रकार्येण मे विनाशो न पुनः पुरुषदोषेण तदलं विषादेन। (अज्जे अअं मित्तकज्जेण मे विणासो ण उण पुरिसदोसेण ता[7] अलं विसादेण।)

कुटु०—आर्य, यद्येवं तदिदानीमकालः कुलजनस्य निवर्तितुम्। (अज्ज जइ एवं ता दाणि अकालो कुलजणस्स णिवट्टिदुम्।)

परलोकं इति। देशान्तरं प्रस्थितं वन्धुं नानुगच्छेदिति शास्त्रम्। परलोकं प्रस्थितस्य त्वनुगमनमुचितमेवेति भावः।

---

1. चन्द०–(स०), 2. इमस्सिं, 3. किदणिवापसलिला विअ कहं वि पडिणि० सोअदणि०; वाह-वाप्फ, 4. ०लौ–परिक्रम्यावलोक्य च, 5. परि०, 6. अज्जे कु०···सपुत्ता। वज्झठ्ठणं क्खु एदं अदो अवरं अभूमि क्खु अणुग०, 7. ता अलं आनन्दठ्ठाणे विसादेन; ता किं हरिसठ्ठाणे वि रोदिसि।

(*Looking about*) Oh dear friend Vishṇudāsa, how is it that you do not even give me any response. Or rather, rare, indeed, are those men who will even (care to) stand within the range of sight at such an hour. (*Tearfully*) These dear friends who are returning with their bodies with great difficulty, having resorted to shedding tears only as the means of averting (my misfortune), are with their face sad with grief, following me with eyes heavy through rising grief.

CHA'NDA'.—Revered Chandanadāsa, you bave arrived at the place of execution. Dismiss, therefore, your people.

CHAND.—Dear wife, return now with your son. It is not proper to follow me further.

WIFE—(*Weeping*) You leave, my dear, for the next world, and not for a distant country.

CHAND.—Dear wife, I die for a friend's sake, and not for a personal crime. Grieve not, therefore.

WIFE—My dear, if that be the case then it is not proper for persons of a respectable family to return.

(इधर-उधर नज़र दौड़ाते हुए) विष्णुदास, मित्र विष्णुदास, कहाँ चला गया—मुझे जवाब भी नहीं देगा ? ज़माना ही बदल गया है।—वे लोग ही कहाँ रहे अब जो मुसीबत की घड़ी में सामने भी निकल आयें ? (रोते हुए) ये रहे हमारे जिगर के दोस्त—जिनके पास इस मुसीबत के इलाज के लिए सिर्फ़ आँसू ही रह गये हैं—गिरते-पड़ते वापिस जा रहे हैं—शोक बढ़ रहा है और चेहरे उतरते ही जा रहे हैं, बस भरी-भरी आँखों से ही मेरे अनुयायी रह गये है। (फिर चल पड़ता है)

चाण्डाल—चन्दनदासजी, मृत्यु-गृह पहुँच गये, विदा कर दो अब अपने घर वालों को।

चन्दनदास—देवी, लौट जाओ अब अपने पुत्र के साथ, और आगे तक साथ अब नहीं रह सकेगा।

पत्नी—परलोक चले हैं, स्वामी, परदेश नहीं।

चन्दनदास—प्रिये, मित्र के निमित्त यह मेरी मौत आई है किसी चरित्र-दोष के कारण नहीं; रोती क्यों है ?

पत्नी—स्वामी, यदि सच यही है, तो फिर हम घर के बाकी लोग भी लौटकर क्या करेंगे ?

चन्द०—अथ किं व्यवसितं कुटुम्बिन्या (अह किं ववसिदं कुडुम्बिणीए ।)

कुटु०—भर्तुश्चरणावनुगच्छन्त्या आत्मानुग्रहो भवत्विति । (भत्तुणो[1] चलणे अणुगच्छन्तीए अप्पाणुग्गहो होदुत्ति ।)

चन्द०—आर्ये, दुर्व्यवसितमिदम् । त्वयायं पुत्रकोऽश्रुतलोकसंव्यवहारो बालोऽनुगृहीतव्यः । (अज्जे दुव्ववसिदं एदं[2] । तुए अअं पुत्तओ असुणिदलोअसंववहारो बालो अणुगेह्णिदव्वो ।)

कुटु०—अनुगृह्णन्त्वेनं प्रसन्ना देवताः । जात पुत्रक, पत पश्चिमयोः पितुः पादयोः । (अणुगिह्णन्दु णं पसण्णाआ देवदाओ । जाद पुअत्त पत[3] पच्छिमेसु पिदुणो पादेसु ।)

पुत्र—(पादयोर्निपत्य) तात, किमिदानीं मया तातविरहितेनानुष्ठातव्यम् । (ताद किं दाणिं मए तादविरहिदेण अणुचिट्ठिदव्वम् ।)

चन्द०—पुत्र, चाणक्यविरहिते देशे वस्तव्यम् । (पुत्त चाणक्कविरहिदे देसे वसिदव्वम् ।)

चण्डा०—आर्य, चन्दनदास निखातः शूलस्तत्सज्जो भव । (अज्ज चन्दणदास णिखादे शूले ता सज्जो होहि ।)

कुटु०—आर्याः, परित्रायध्वं परित्रायध्वम् ! (अज्जा परित्ताअध परित्ताअध ।)

चन्द०—आर्ये, अथ किमत्राक्रन्दसि । स्वर्गगतानां तावद्देवा दुःखितं परिजनमनुकम्पन्ते । अन्यच्च मित्रकार्येण मे विनाशो नायुक्तकार्येण । तत्किं हर्षस्थानेऽपि रुद्यते । (अज्जे[4] अह किं एत्थ आक्कन्दसि । सग्गं गदाणं[5] दाव देवा दुक्खिअं परिअणं अणुकम्पन्दि । अण्णं अ मित्तकज्जेण मे विणासो ण अजुत्तकज्जेण । ता किं हरिसट्ठाणे वि रोदीअदि ।)

पश्चिमेष्विति । अतः परं द्रष्टुमशक्येष्वित्यर्थः । चाणक्य इति । अनेन चाणक्यस्यात्यन्तं क्रौर्यमुक्तम् । आक्रन्दसीति । शोकावेशेन नीचान्प्रति

---

1. (सबाष्पम्) भ०, 2. एदं ते, ना दाणीं—इदाणीं—अज्जाए अअं असुणि० कुमारो–पुत्तओ, 3. भअवदीओ कुलदे०, 4. पणम अपच्छिमस्स पिदुणो, 5. भद्दमुह मुहुत्तअं चिट्ठ । अइ जीविदवच्छले किं एत्थ०, गदा क्खु ते देवा णन्दा जे दुक्खिदं जणं अणुकम्पन्ति ।

Chand.—What has my lady now resolved to do?

Wife—To bless myself by following my lord's feet (in death).

Chand.—That is an ill-conceived idea, dear. You should take care of this our son who is young and who has got no experience of wordly affairs.

Wife—May the deities, taking pity, bless him. Child, my boy, fall at the feet of your father which you see for the last time.

Son—(*Falling at his father's feet*) Papa, what shall I do, bereaved of you?

Chand.—Child, live in a country where Chāṇakya will not be found.

Cha'nda'.—Revered Chandanadāsa, the pale has been implanted; be you, therefore, ready.

Wife—Help, Oh, sirs, help.

Chand.—Wife, why do you cry now. The gods take compassion on the afflicted families of those who go to heaven. Besides I suffer death for a friend and not for doing anything wrong. Why do you weep then when you ought to rejoice?

चन्दनदास—तो फिर क्या धुन समाई है तुझमें (आज)?

पत्नी—यही कि पति के चरणों का अनुगमन करती हुई धन्य हो जाऊँ।

चन्दनदास—यह ज़िद तेरी ग़लत है, देवी! तेरे पर तो अभी इस दुधमुंहे का दायित्व है—बेचारे को दुनियादारी का कुछ भी ज्ञान नहीं है।

पत्नी—इसका मंगल तो अब देवता ही करें तो करें। आ बेटा, आ पिता के चरणों का अन्तिम स्पर्श कर ले।

पुत्र—(चरणों में गिरकर) पिताजी, आपके पीछे मुझे क्या-क्या करना होगा?

चन्दनदास—कुछ नहीं, बेटा: बस, कहीं ऐसी जगह जा बसना, जहाँ चाणक्य न पहुँच सके।

चाण्डाल—सेठजी, शूली पड़ गई, तैयारी कर लीजिये।

पत्नी—भाइयो मैं मर गई! मैं कहीं की नहीं रह गई।

चन्दनदास—देवी, रो क्यों रही हैं? अनाथ-दुःखिया जनों की सदा से देवता सुध लेते आये हैं। और फिर—मेरी तो मौत भी एक मित्र के कारण हो रही है किसी गुनाह की वजह से नहीं। खुशी के मौके पर भी रो रही है?

प्रथमश्चण्डालः—अरे बिल्वपत्र, गृहाण चन्दनदासम् । स्वयमेव गृहजनो गमिष्यति । (अले बिल्लपत्त[1] गेह्ण चन्दणदासं । सअं एव्व घलजणो गमिस्सदि ।)

द्वितीयश्चण्डालः—अरे वज्रलोमन्, एष गृह्णामि । (अले वज्जलोमा एसे गेह्णामि ।)

चन्द०—भद्र, मुहूर्तं तिष्ठ यावत्पुत्रकं सान्त्वयामि । (पुत्रं परिष्वज्य मूर्ध्याघ्राय) जात अवश्यं भवितव्ये विनाशे मित्रकार्यं समुद्वहमानो विनाशमनुभवामि । (भद्द मुहुत्तं चिट्ठ जाव पुत्तअं सन्तआमि[2] । जाद अवस्सं भविदव्वे विणासे मित्तकज्जं समुव्वहमाणो विणासमणुभवामि[3] ।)

पुत्र०—तात, किमिदमपि भणितव्यम् । कुलधर्मः खल्वेषोस्माकम् । (इति पादयोः पतति) (ताद किं एदं वि भणिदव्वं । कुलधम्मो क्खु एसो अह्माणं ।)

चण्डा०—अरे गृहाणैनम् । (अले गेह्ण एणं ।) (चण्डालौ गृहीतश्चन्दनदासम्[4] ।)

कुटु०—(सोरस्ताडम्) आर्याः, परित्रायध्वं परित्रायध्वम् ! (अज्जा परित्ताअध परित्ताअध ।)

(प्रविश्य पटाक्षेपेण[5] राक्षसः) भवति, न भेतव्यम् । भो भोः शूलायतनाः न खलु व्यापादयितव्यश्चन्दनदासः ।

येन स्वामिकुलं रिपोरिव कुलं दृष्टं विनश्यत्पुरा
मित्राणां व्यसने महोत्सव इव स्वस्थेन येन स्थितम् ।

किमाक्रन्दसि सुचरितानुकम्पिनो देवा एव शरणीकरणीया इत्यर्थः । **मित्रकार्येणेति** । मित्रकार्येण मरणात्स्वस्य स्वर्गो निश्चित इति भावः ।

अनुभवामीति । अतस्त्वया न शोचितव्यमिति भावः । अत्र करुणः स्थायी शोकदीनवचनादिभिर्विभावैरनुभावैश्च पुष्कलः ।

प्रविश्य पाटाक्षेपेणेति । असूचितस्य सहसा संभ्रमेण प्रवेशः पटाक्षेपः । **शूलायतना इति** । शूलमायतनं [आयत्यते अत्रेति] जीवनाश्रयो येषां ते तथोक्ताः ।

---

1. वत्ता (वक्र), वेणुवत्तका (वेणु-वेत्रक), 2. परिस्सआमि (परिष्वजामि), 3. अणुभवेहि, 4. मारोपयितुं शूले । इत्यधिकम्, 5. अपटाक्षेपेण ।

FIRST CHA'NDA'.—O Bilavpatra, seize Chandandāsa; his people then will go of themselves.

SEC. CHA'NDA'.—O Vajraloman, here I seize him.

CHAND.—Friend, wait for a while, so that I will console my son. (*Having embraced and smelt his* SON *on the head*) Child, when death is sure to befall a man, die in doing a service to a friend.

BOY—Need this be said, father ? This is our family-rule. (*Falls at his feet*)

CHA'NDA'.—O, seize him. (The CHA'NDA'LAS *seize* CHANDANADA'SA)

WIFE—(*Beating her breast*) Save him, O sirs, save him.

(*Enter* RAKSHASA *with a hurried toss of the curtain*)

RA'K.—Fear not, lady, fear not. Ye hangmen, kill not Chandanadāsa,

Let this execution-garland, the road leading to the world of death, be hung upon me, who formerly witnessed the family of my master suffering destruction before me (*i. e.* in my

चाण्डाल (पहला)—विल्वपत्र, ले आओ अपराधी को ।

चाण्डाल (दूसरा)—यह लाया, वज्रलोम !

चन्दनदास—एक क्षण रुक जाओ, भैया, जरा बेटे को छाती से लगा लूँ । (छाती से लगाकर और मस्तक सूँघकर) बेटा, जब मौत आये और टल न सके, तब किसी की मित्रता निमित्त मरते घबराना नहीं ।

पुत्र—पिताजी, यह भी समझाने की बात थी ? यह तो हमारे घर की रीति बन चुकी है । (चरणों पर गिर पड़ता है)

पत्नी—(छाती पीटती हुई) मैं कहीं की नहीं रही, भाइयो, मैं मर गई !

(परदे में खलबली, राक्षस)

राक्षस—घबराओ नहीं, घबराओ नहीं । बधिको, छोड़ दो चन्दनदास को—

तुम्हारे वध-दण्ड का अधिकारी मैं हूँ (यह नहीं), मैं : जो अपने स्वामी के सारे वंश को डूबते हुए खड़ा-खड़ा देखता ही रहा—जैसे किसी शत्रु का

आत्मा यस्य वधाय[1] वः परिभवक्षेत्रीकृतोपि प्रियस्
तस्येयं मम मृत्युलोकपदवी वध्यस्रगाबध्यताम् ॥ ४ ॥

चन्द०—(सत्राण्पं विलोक्य) अमात्य, किमिदम् । (अमच्च किं एदं ।)

राक्ष०—त्वदीय[2]सुचरितैकदेशस्यानुकरणं किलैतत् ।

चन्द०—अमात्य, सर्वमपीमं प्रयासं निष्फलं कुर्वता त्वया किमनुष्ठितम् । (अमच्च सव्वं वि इमं पआसं णिप्फलं करन्तेण तुए[3] किं अणुचिट्ठिदं ।)

राक्ष०—सखे[4], स्वार्थ एवानुष्ठितः । कृतमुपालम्भेन । भद्रमुख[5], निवेद्यतां दुरात्मने चाणक्याय ।

वज्र०—किमिति । (किं त्ति ।)

राक्ष०—

दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरुचौ प्राणैः परं रक्षतां
नीतं येन यशस्विनातिलघुतामौशीनरीयं यशः ।
बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना[6]
पूजार्होऽपि स यत्कृते तव गतो वध्यत्वमेषोऽस्मि[7] सः ॥ ५ ॥

येनेति । महोत्सव इवेति सप्तम्यन्तम् । यस्य मम परिभवक्षेत्रीकृतोऽपि । एतादृशं परिभवमनुभवन्नपि आत्मा शरीरं वपुः युष्मादृशां वधाय वधार्थं प्रियो जातः यदर्थं किल चाणक्येन कौलूतादयः युष्मादृशा घातकाश्च छलेन वृथा व्यापादिताः । एतादृशपातकनिमित्तभूतोऽप्यात्मा येन मया न परित्यक्त इत्यात्मोपालम्भः ॥ ४ ॥ सखे स्वार्थ एवेति । इदं त्वत्संरक्षणं ममात्मरक्षणादप्यभ्यर्हितं श्रेयस्कर इति भावः । दुष्कालेऽपीति । शिविना पुण्ये कृतयुगे तत्कृतमिति नात्र चित्रम् । पापे कलियुग ईदृशं कर्म कुर्वाणस्ततोष्यतिशयितो यश्चन्दनदासः स त्वयात्यर्थमर्चनीयोऽपि । यस्य मम कृत ईदृशीं विपत्तिमुपनीतः सोऽयं तव विधेयोऽस्मीत्यर्थः ।

---

1. व वञ्चनाप०, 2. त्वदीयस्य, 3. ण मे पिअं अणु० अमच्चेण, 4. सखे चन्दनदास कृतमुपालम्भेन । स्वार्थप्रधानो हि जीवलोकः, 5. ०मुख अयमर्थो निवेद्यतां तावत्, 6. च शु०, 7. शत्रुत्वं ।

very presence) as if it were an enemy's family, who remained at ease when my friends were smitten with calamity as at a great festivity, and to whom his soul (life), though made the object of ignominy, is dear for the destruction of people like you (as on a former occasion). (4)

CHAND.—(*Looking at him with tearful eyes*) Minister, what is this?

RA'K.—Merely an imitation of a portion of your noble conduct.

CHAND.—Minister, what is this that you have done by rendering vain all this my effort?

RA'K.—Friend, I have only attended to my own interest. Do not blame me. (*To one of the* CHA'NDA'LAS) Friend, tell the wicked Chāṇakya—

VAJRA.—What is it?

RA'K.—Here am I, the man for whose sake this person, though worthy of veneration, has incurred the penalty of death at your hands; he who, the glorious one, saving another at the cost of his own life in these evil times of the Kali Age in which the tastes of the people are wicked, has rendered insignificant even the glory of Śivi, and who, being pure in soul, has by his virtuous conduct eclipsed the course of conduct of the Buddhas. (5)

वंश था,…जो मित्रों पर आई विपत्ति में भी भला-चंगा ही जिन्दा रहा—जैसे कोई चारा और न रह गया था। अपमान पर अपमान होते हुए भी किसे जान प्यारी थी, स्वार्थ प्यारा था। लाओ, यह मौत का परवाना—यह फूलों की माला—मेरे सिर पर बाँध दो (इसका पात्र मैं हूँ, चन्दनदास नहीं)। (४)

चन्दनदास—(वाष्पाकुल नयनों से, अपनी आँखों पर विश्वास न करते हुए) यह क्या देख रहा हूँ मैं?—महामन्त्री!

राक्षस—नहीं, तुम्हारे ही पुण्यों का एक अंश—और वह भी कृत्रिम!

चन्दनदास—महामन्त्री, मेरे सब किये-कराये पर इस तरह पानी फेरते हुए, इसमें, तुम्हारा इष्ट क्या है?

राक्षस—स्वार्थ; और क्या, मित्र! अब और उपालम्भ न दो।

(चाण्डाल से) भैया, तुम तो कोई भले आदमी दीखते हो, जाओ दुरात्मा से (चाणक्य से) जाकर कह दो—

वज्रकाश—क्या कह दूं?

राक्षस—यही कि—

जिसके निमित्त तूने एक महात्मा के वध का आदेश दिया था, वह लौट आया है—राक्षस लौट आया है। कहाँ मिलेगा ऐसा एक और महात्मा, और वह भी इस कलियुग में—जबकि सब ओर पतन-ही-पतन, क्षुद्रता-ही-क्षुद्रता नजर आती है, कहाँ मिलेगा ऐसा दूसरा महात्मा जो अपनी जान देकर दूसरे की जान बचा ले। जिसके सत्कृत्यों के सम्मुख स्वयं शिवि की वह कीर्ति भी आज

प्रथमः—अरे बिल्वपत्रक, त्वं तावच्चन्दनदासं गृहीत्वेहैतस्य श्मशानपादपस्य छायायां मुहूर्तं तिष्ठ यावदहमार्यचाणक्याय निवेदयामि गृहीतोऽमात्यराक्षस इति । (अले विल्लपत्तअ तुमं दाव चन्दणदासं[1] गेह्णिअ इह एदस्स मसाणपादपस्स छाआए मुहुत्तं चिठ्ठ जाव अहं अज्जचाणक्कस्स णिवेदेमि गिहीदो अमच्चरक्खसो त्ति ।)

द्वितीयः—अरे, वज्रलोमन् एवं भवतु (अले वज्जलोमा एवं[2] होदु ।)

(इति सपुत्रदारेण चन्दनदासेन सह निष्क्रान्तः)

प्रथमः—एत्वमात्यः । (राक्षसेन सह परिक्रम्य) अस्त्यत्र कोपि निवेदयत तावन्नन्दकुलनगकुलिशस्य मौर्यकुलप्रतिष्ठापकस्यार्यचाणक्यस्य । (एदु अमच्चो । अत्थि[3] एत्थ कोवि णिवेदेह दाव णन्दकुहणग[4]कुलिसस्स मौलिअकुलपडिठ्ठावक[5]स्स अज्जचाणक्कस्स ।)—

राक्ष०—(स्वगतम्) एतदपि नाम श्रोतव्यम् ।

चण्डा०—एष आर्यनीतिसंयमितबुद्धिपुरुषकारो गृहीतोऽमात्यराक्षस इति । (एसो अज्ज[6]णीदिसंजमिदबुद्धिपुलिस[7] आले गिहीदे अमच्चरक्खसेत्ति ।)

(ततः प्रविशति जवनिकावृतशरीरो मुखमात्रदृश्यश्चाणक्यः[8])

चाणक्यः—भद्र, कथय कथय ।

केनोत्तुङ्गशिखाकलापकपिलो बद्धः पटान्ते शिखी
पाशैः केन सदागतेरगतिता सद्यः समासादिता[9] ।
केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरे
भीमः केन च[10] नैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोऽर्णवः ।। ६ ।।

बुद्धा अत्यन्तदयालव इति प्रसिद्धं तेषामपि चेष्टितं दयालुत्वं क्लिष्टं कृशीकृतमित्यर्थः ।। ५ ।।

एष आर्यनीतीति । आर्यचाणक्यस्य नीत्या संयमितः कुण्ठीकृतः बुद्धिपरिसरः [संयमितौ बुद्धिश्च पुरुषकारश्च बुद्धिपुरुषकारौ] यस्य सः ।

केनेति । सदागतेर्वायोरगतिता गतिनिरोधः पाशैः सूक्ष्मरशनाभिः केन समासादितः कृत इत्यर्थः । सोऽपि झटिति कृत इत्याश्चर्यम् । भित्तितिरस्करिणीबन्धनादिना क्रमेण चिरात्कथंचित्कर्तुं शक्य इत्यर्थः । एवं दुष्करो राक्षसवशीकारः

---

1. सेठ्ठिच०, 2. गच्छ, 3. के के एत्थ दुआलिआणं, 4. ०कुलसेण्ण सञ्चअचुण्णगकुलिसस्स, 5. ०डिठ्ठाविदधम्मसञ्चअस्स, 6. ०णीदिनिअम, 7. पलिसले (परिसरः), 8. दृश्यः सहर्षः, 9. पादि, 10. चलैक० ।

FIR. CHA'NDA'.—O Bilvapatra, you take Chandanadāsa in your charge and wait for a while in the shade of the cemetery-tree, while I report to His Honour Chāṇakya that Minister Rākshasa is caught.

SEC. CHA'NDA'.—O Vajraloman, let it be so. [*Exit* F. C. *with* CHANDANADA'SA *followed by his* WIFE *and* SON]

FIR. CHA'NDA'.—Come Minister. (*They walk on*) Holla, is there any one here ? Inform His Honour Chāṇakya, the thunderbolt to the mountain of the race of Nanda and the founder of the house of Maurya—

RA'K.—(*To himself*) Oh pity ! Even this I must hear !

CHA'NDA'.—That Minister Rākshasa whose intellect and prowess have been thwarted by His Honour's state-craft is in our hands.

(*Enter* CHA'NAKYA, *his face only visible, the rest of his body covered with a veil*)

CHA'N.—Say, friend, say,

Who bound with the skirt of his garment the fire red with the mass of its mighty flames ? Who reduced the ever-moving (wind) to a state of stillness with his snares ? Who crossed by means of his arms the dreadful ocean, abounding in crocodiles and alligators ? (6)

कितनी फीकी लगती है !···ऐसा पवित्र हृदय कि सैकड़ों बुद्धों की लम्बी जीवनियाँ भी उसके पुण्यकर्मों के सम्मुख कुछ-न-कुछ लगें ! (५)

वज्रलोम—विल्वपत्र, तू यहीं रह—चन्दनदास को श्मशान के इस वृक्ष की छाया में ले जाकर, कहीं आराम कर ले; और मैं जाकर चाणक्य को सूचना दे आऊँ कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया है ।

विल्वपत्र—ठीक है, वज्रलोम, यही ठीक है ।

(चन्दनदास को, उसके पुत्र-पत्नी के समेत लेकर चला जाता है)

वज्रलोम—आइये, महामन्त्रीजी, आइये । (राक्षस के साथ कुछ क़दम चलते हुए) अरे, कोई नहीं यहाँ जो जाकर प्रधानमन्त्री चाणक्य को सुना आये—नन्द के कुल-पर्वत को बिजली की मार मारने वाले और मौर्यों को एक नये कुल की भाँति प्रतिष्ठित करने वाले चाणक्य को सुना आये ।

राक्षस—(मन-ही-मन) क्या यह भी सुनना अभी बाकी था ?

वज्रलोम—कि प्रधानमन्त्री की नीति द्वारा विवश-बुद्धि और विवश-पौरुष अमात्य राक्षस पकड़ा गया ।

(चाणक्य—सिर से पैरों तक परदे में, केवल मुंह ही कुछ-कुछ दीखता है)

चाणक्य—सुनाओ, भैया, सुनाओ—

कौन है वह ? जिसने ऊँची उठती लपटों में जटिल और कपिल, वह्नी को अपने अंचल में बाँधकर दिखा दिया था—स्वच्छन्द बहती हवा को मुट्ठी में बांधकर निश्चल कर दिया था !—सैकड़ों हाथियों की मस्ती में चिपचिपाती जटाओं वाले केसरी को पिंजरे में बन्द कर दिया था !—नाकों—मगरमच्छों से

चण्डा०—ननु नीतिनिपुणबुद्धिनार्येण। (णं णीदिणिउणबुद्धिणा अज्जेण[1]।)

चाण०—मा मैवम्। नन्दकुलविद्वेषिणा दैवेनेति ब्रूहि।

राक्ष०—(स्वगतम्) अयं दुरात्मा अथवा महात्मा कौटिल्यः।

आकरः सर्वशास्त्राणां[2] रत्नानामिव सागरः।
गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सरिणो वयम्॥ ७॥

चाण०—(विलोक्य सहर्षं स्वगतम्) अये अयमसावमात्यराक्षसः। येन महात्मना—

गुरुभिः कल्पनाक्लेशैर्दीर्घजागरहेतुभिः।
चिरमायासिता सेना वृषलस्य मतिश्च मे॥ ८॥

(जवनिका[3]मपनीयोपसृत्य च) भो अमात्यराक्षस, विष्णुगुप्तोऽह[4]मभिवादये।

राक्ष०—(स्वगतम्) अमात्य, इति लज्जाकरमिदानीं विशेषणम्। (प्रकाशम्) विष्णुगुप्त, न मां चाण्डाल[5]स्पर्शदूषितं स्प्रष्टुमर्हसि।

चाण०—अमात्यराक्षस, नेमौ चाण्डालौ[6]। अयं खलु दृष्टिपूर्व एव भवता सिद्धार्थको नाम राजपुरुषः। योऽप्यसौ द्वितीयः सोऽपि समिद्धार्थको नाम राजपुरुषः एव। शकट[7]दासोऽपि तपस्वी तं तादृशं कपटलेखमजानन्नेव मया लेखितः।

राक्ष०—(स्वगतम्[8]) दिष्टया शकटदासं प्रत्यपनीतो विकल्पः।

केन कृत इति रूपकातिशयोक्त्या स्वात्मगुणश्लाघा। इयमद्भुतार्थप्राप्तिरुपगूहनं नामाङ्गम्॥ ६॥ नन्दकुलेति। नन्दकुलं सर्वं दैवेन निपातितमिति निरवलम्बतया निर्व्यवसायोऽयमेव वशीभूत इत्यर्थः।

गुरुभिरिति। सेनायां कल्पनाक्लेशाः सदासन्नहनादयः। मतौ कल्पना क्लेशा ऊहापोहादयः। यन्मतिपौरुषभयान्मौर्यसैन्येन मया चाहर्निशं जाग्रता महानायासोऽनुभूत इति भावः। इदं दुःखप्रशमनं समयः॥ ८॥

---

1. ०ण ज्जेव, 2. विद्यानां, 3. कां करेण; ०कान्तरेण, 4. ०प्तोभिवादयते, 5. श्वपाक, 6. श्वपाकौ, 7. ताभ्यामेव सह सौहार्दमुत्पाद्य शक०, 8. सहर्षमात्मगतम्।

CHAˋNDAˋ.—Surely by Your Honour whose intellect is adept in state-craft.

CHAˋN.—No, no, say not so. Say—by Fate, the inveterate foe of the house of Nanda.

RAˋK.—(*Aside*) This is the mean-minded—or rather noble-minded—Kauṭilya.

The mine of all *Śāstras*, as the ocean is of jewels, with whose merits we are not sufficiently pleased, although jealous. (7)

CHAˋN.—(*Looking at* RAˋK., *joyfully to himself*) Ah, here is the minister Rākshasa, by whom, the magnanimous one, the army of Vṛshala and my own intellect were seriously taxed for a long time with the heavy troubles of preparations, and of the devising of plans, which were the cause of protracted wakefulness. (8)

(*Removing the veil and approaching*)

Ho minister Rākshasa, I, Vishṇugupta, salute you.

RA'K.—(*Aside*) 'Minister' is a humiliating epithet now. (*Aloud*) Vishṇugupta, please do not touch me, polluted by the touch of a Chāṇḍāla.

CHAˋN.—O minister Rākshasa, these are not Chāṇḍālas. This one is a royal official named Siddhārthaka whom you have already seen. This other here too is a servant of the king, Samiddhārthaka by name. Poor Śakaṭadāsa, also, was made to write that forged letter by me, he knowing nothing (about its nature)

RAˋK.—(*Aside*) I am glad my suspicion about Śakaṭadāsa is removed.

भी दुनिया को अपनी भयंकरता में आश्रय देने वाले समुद्र को, मनुष्य की, इन्हीं दो भुजाओं से तर गया था । (६)

वज्रलोम—नीतिज्ञ-शिरोमणि प्रधानमन्त्री, और कौन ?

चाणक्य—नहीं, प्रधानमन्त्री नहीं; नन्दवंश का वैरी—भाग्य

राक्षस—(मन-ही-मन) अब, यह चाणक्य—इसे दुरात्मा कहें या महात्मा ?

चाणक्य—

नीति-शास्त्रों का रत्नाकर चाणक्य—जिसके गुणों की प्रशंसा करते हमारे जैसे, ईर्ष्यालु भी नहीं अघाते । (७)

चाणक्य—(आश्चर्य और प्रसन्नता की मुद्रा में, मन-ही-मन)

यही है वह महान् आत्मा—अमात्य शिरोमणि राक्षस—जिसकी महान् योजनाएं, और जिसकी महान् कष्ट-सहन की शक्ति चन्द्रगुप्त की सेना को और मेरी बुद्धि को, एक ही साथ चकराती रही—अपनी नींद भी हराम करते हुए, और हमारी भी। (८)

(परदे को परे फेंकते हुए, और नज़दीक पहुँचते हुए)

अमात्य-शिरोमणि, विष्णुगुप्त का प्रणाम स्वीकार हो !

चाण०—किं बहुना। एष संक्षेपतः कथयामि—

भृत्या[1] भद्रभटादयः स च तथा लेखः स सिद्धार्थकस्
तच्चालङ्करणत्रयं स भवतो मित्रं भदन्तः किल।
जीर्णोद्यानगतः स चापि[2]पुरुषः क्लेशः स च श्रेष्ठिनः
सर्वं[3] मे (इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयन्)
वृषलस्य वीर भवता संयोगमिच्छोर्नयः ॥ ९ ॥

तदयं वृषलस्त्वां द्रष्टुमिच्छति[4]। पश्यैनम्।

राक्ष०—(स्वगतम्) का गतिः। एष[5] पश्यामि।

(ततः प्रविशति राजा[6] विभवतश्च परिवारः)

राजा०—(स्वगतम्) विनैव युद्धादार्येण जितं[7] दुर्जयं परबलमिति लज्जित[8] एवास्मि। मम हि—

फलयोगमवाप्य सायकानामनि[9]योगेन विलक्षतां[10] गतानाम्।
स्वशुचेव[11] भवत्यधोमुखानां निजतूणीशयन[12]व्रतप्रतिष्ठा ॥ १० ॥

भृत्या इति। भवतो मित्रं किल अलीकमित्यर्थः। **सर्वमिति।** नपुंसकमनपुंसकेनेत्येकशेषः। जातावेकवचनं च। ते भद्रभटादयो भृत्याः स लेख इत्याद्येवंजातीयं सर्वमुपायजातं वृषलस्य भवत्साचिव्यमिच्छोर्मम नयो नीतिप्रकार इति संक्षेपः। त्वत्संग्रहार्थमेतावान्मया नयः कृत इत्यर्थः। अतिशूरः साहसी भवान्विक्रमादिना मलयकेतुवन्निग्रहीतुं न शक्य इति ध्वनयितुं वीरेति संबोधनम्। इदं बीजवतां मुखाद्यर्थानां विप्रकीर्णानामैक्यार्थोपनयनं कार्यार्थोपसंहृतिः संहारो नामाङ्गं नवमम् ॥ ९ ॥

फलयोगमिति। विधियोगेन सुदैवप्रसादेन फलयोगं कार्यसिद्धिप्राप्तिमन्यत्र शल्ययोगं प्राप्यापि विपक्षतां विरोधितां गतानामिति विरोधाभासः। वीनां कङ्कानां पक्षा येषामिति बहुव्रीहिः। तेषां भावस्तत्तां गतानां विशिष्टकङ्कपत्रवतामिति वा। इति विरोधपरिहारः। शुचेव बिपक्षताप्राप्तिजातया शुचेवेति

---

1. ये ते, 2. चार्त, 3. सर्वोऽसौ, 4. ०मागच्छति, 5. (प्रकाशस्) एष, 6. सेवकैरनुगम्यमानो राजा, 7. पराजितं; रिपुबलं, 8. यत्सत्यं ल०, 9. नां विधियोगेन, 10. विपक्षतां, 11. न शु०, 12. व्रतं प्रतुष्टचै।

CHA'N.—Why waste more words ? I tell you briefly—

Those (your) servants, Bhadrabhaṭa and others, the letter written in that way, that Siddhārthaka, those three sets of decoration, that your friend Bhadanta, the man too that was found in the old garden, and the trouble of the merchant, all this—(*Breaking off through modesty*)—Oh valiant one, was due to the strategy of me wishing for Vṛshala's union with you. (9)

Here is Vṛshala, therefore, wishing to see you. Please see him.

RA'K.—(*Aside*) What help ? I will see him.

(*Enter the* KING *followed by his* SUITE *according to rank*)

KING—(*Aside*) I am, indeed, ashamed that His Honour has conquered, without a fight, the unconquerable army of the enemy. For,

My arrows have perpetually to observe the vow of lying down in their own quiver, with their heads hung down, as if through grief (for their condition) and put to shame (as it were) by their not being used although furnished with sharp-edged points.)* (10)

राक्षस—(मन-ही-मन) 'अमात्य' ? यह तो सुनते ही मुझे अब लज्जा आती है। (व्यक्त) चाण्डालों के स्पर्श से मैं दूषित हूं, मुझे छूना मत।

चाणक्य—ये दोनों ही चाण्डाल नहीं हैं : यह है सिद्धार्थक, एक राज-कर्मचारी; और यह दूसरा भी एक राज-कर्मचारी ही है—समिद्धार्थक। यह लेख शकटदास से मैंने लिखवाया था, वह होश में नहीं था—उसे समझ ही नहीं थी कि वह क्या लिखता जा रहा है।

राक्षस—(मन-ही-मन) परमेश्वर का धन्यवाद—शकटदास के प्रति जो मेरे मन में मैल आ गया था, साफ़ हो गया।

चाणक्य—अब कहानी को लम्बा करने से भी फ़ायदा ?

भद्रभट आदि वे अनुचर, वह लेख, सिद्धार्थक, तीन गहने, अमात्य का दोस्त वह जैन भदन्त, उपवन के खंडहर में अकस्मात् पहुँच वह दुःखी व्यक्ति, सेठजी की वह व्यथा—यह सब···चन्द्रगुप्त और आपको एकत्र देखने के लिए मेरी (जैसे लज्जित हो), नहीं—भाग्य की—उत्सुकता थी, नीति की एक चाल थी। (९)

चन्द्रगुप्त भी आपको देखने के लिए लालायित हैं। लीजिये, वह आ भी गये।

राक्षस—(मन-ही-मन) अब, और चारा ही क्या है ? अब तो नाटक खेलना ही पड़ेगा।

---

*With the reading —विधियोगेन विपक्षतां &c. (see com.)—My arrows which are reduced to a featherless state (though furnished with feathers), which are reduced to a hostile condition as it were, not being used in fighting) by the decree of fate (which averted the fight—or, by the proper employment of expedients by Chāṇakya).

अथवा —

विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव ।
स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः ।। ११ ।।

(चाणक्यमुपसृत्य) आर्य, चन्द्रगुप्तः प्रणमति[1] ।

चाण०—वृषल, संपन्नास्ते सर्वाशिषः । अयममात्य[2]राक्षसः प्राप्तः तदभिवादयस्वात्र[3]भवन्तममात्य[4]मुख्यम् ।

राक्ष०—(स्वगतम्) योजितोऽनेन संबन्धः[5] ।

राजा०—(राक्षसमुपसृत्य) आर्य, चन्द्रगुप्तोऽभिवादयते[6] ।

राक्ष०—(विलोक्य स्वगतम्) अये चन्द्रगुप्तः । य एषः—

बाल एव हि लोके[7]स्मिन्संभावितमहोदयः ।
क्रमेणारूढवान् राज्यं यूथैश्वर्य[8]मिव द्विपः ।। १२ ।।

हेतूत्प्रेक्षा । अधोमुखानां सायकानां निजतूणीशयनमेव व्रतं सर्वदा तत्रैवावस्थाननियमरूपं प्रतुष्ट्यै सन्तोषाय न भवति । अनियोगेन विलक्षतां गतानामिति पाठे नियोगो युद्धादौ विनियोगस्तदभावेन लज्जितानामित्यर्थो वर्णनीयः ।। १० ।। इत्येवं प्रकारेण लज्जित्वा पुनरपि समाधत्ते **विगुणीकृतेति** । विगुणीकृतं ज्यारहितं प्रयोजनाभाववच्च कृतं कार्मुकं यस्य । इयं वाञ्छितार्थप्राप्तिरानन्दः ।। ११ ।। **बाल एवेति** । बाल्यमारभ्यैव राजलक्षणलक्षिततया महोन्नतो भविष्यतीति संभावित इत्यर्थः ।। १२ ।।

---

1. अभिवादयते, 2. अयम० प्राप्तः इत्येतन्नास्तिपुस्त०, 3. तत्र०, 4. ०त्यराक्षसं । पैतृकस्तवायममात्यमुख्यः इ. पा., 5. अस्मात्परं—**चाण०**—(राजानमुपसृत्य) अयममात्यराक्षसः प्राप्तः प्रणमैनम् इत्यधि०, 6. प्रणमति, ०प्तोहम-दये, 7. लोकेन, 8. ०र्यं इव ।

Or rather,

Even with his bow unstrung, he is quite able to conquer, whatever is fit to be conquered, on earth, in whose interest, as in mine though asleep, his preceptors are awake and vigilantly attend to all the affairs of his kingdom. (11)

(*Approaching* CHA'ṆAKYA) Venerable sir, Chandragupta bows to you.

CHA'N.—Vṛshala, all your desires have been accomplished. Here we have the minister Rākshasa. Salute, therefore, His Honour, your prime-minister.

RA'K.—(*Aside*) He has established the relationship.

KING—(*Approaching* RA'KSHASA) Noble one, Chandragupta bows to you.

RA'K.—(*Looking at him, to himself*) Ah, Chandragupta!

He—who having his great exaltation in this world foreknown even when a boy has gradually obtained sovereignty like an elephant obtaining mastery over a herd of elephants. (12)

(राजा और विभव के अनुकूल राज-परिजन)

राजा—(मन-ही-मन) बिना एक तीर चलाये गुरुजी ने दुर्जय शत्रु पर चुटकी में ही विजय पा ली, मैं तो लज्जित हूँ; मेरे तो—

तीरों को दीक्षा ही यही मिली है कि तू तीर के बाहर न आना, सोते रहना (यद्यपि उनमें सिरे पर विषाक्त फलक भी लगाया जा चुका है) किन्तु प्रयोग का अवसर अब तक नहीं आया, वे भी लज्जित हैं—मानो, आत्मग्लानि से अधोमुख हैं। (१०)

और सच भी है कि—

प्रत्यंचा को खींचे बगैर वही राजा अपने लक्ष्य को, शत्रु को, जीत सकता है जो स्वयं तो सुख की नींद सोता रहे, किन्तु जिसके गुरुजन =मन्त्री—शासन-तन्त्र के प्रति रात-दिन जागरूक रहें। (११)

(चाणक्य के निकट आकर) गुरुजी, चन्द्रगुप्त का प्रणाम स्वीकार हो!

चाणक्य—बेटा, अब तो तेरी इच्छाएं पूर्ण हो गईं। अमात्य शिरोमणि राक्षस भी आ गये। अपने नये प्रधानमन्त्री को नमस्कार करो।

राक्षस—(मन-ही-मन) और लो यह नया सम्बन्ध भी निश्चित हो गया!

चन्द्रगुप्त—(राक्षस के निकट जाकर) गुरुवर, चन्द्रगुप्त का नमस्कार स्वीकार हो।

राक्षस—(एक नज़र देखकर, मन-ही-मन) यही है वह चन्द्रगुप्त जो—

बचपन से अपने होनहार होने के आसार दिखाता-दिखाता आखिर, एक यूथ के अधिपति हाथी की तरह, एक राज्य का स्वामी अन्ततः बन ही बैठा! (१२)

(प्रकाशम्) राजन्विजयस्व !

राजा०—आर्य,

जगतः[1] किं न विजितं मयेति प्रविचिन्त्यताम् ।
गुरौ षाड्गुण्यचिन्तायामार्ये चार्ये[2] च जाग्रति ॥ १३ ॥

राक्ष०—(स्वगतम्) स्पृशति मां भृत्यभावेन कौटिल्यशिष्यः । अथवा विनय एवैष चन्द्रगुप्तस्य मत्सरस्तु मे विपरीतं कल्पयति[3] । सर्वथा स्थाने यशस्वी चाणक्यः । कुतः ?—

द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियता[4] प्रतिष्ठा ।
अद्रव्यमेत्य तु[5] विशुद्धनयोऽपि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलजवृक्षवृत्त्या ॥ १४ ॥

चाण०—अमात्य राक्षस, अपीष्यते चन्दनदासस्य जीवितम् ?

राक्ष०—भो विष्णुगुप्त, कः[6] सन्देहः ?

चाण०—अमात्य राक्षस, अगृहीतशस्त्रेण भवता[7]नुगृह्यते वृषल इत्यतः सन्देहः । तद्यदि सत्यमेव चन्दनदासस्य जीवितमिष्यते ततो गृह्यतामिदं शस्त्रम्[8] ।

राक्ष०—भो विष्णुगुप्त, मा मैवम् । अयोग्य वयमस्य विशेषतस्त्वया गृहीतस्य ग्रहणे ।

जगत इति । जगत इति शेषे षष्ठी । जगति किं न विजितमित्यर्थः ॥ १३ ॥

कौटिल्य इति । स्वाभाविक एवैष विनय इत्यर्थः ।

द्रव्यमिति । द्रयं च भव्य इति निपात्यते । द्रव्यं श्रेयःप्राप्तियोग्यं जिगीषुं जयोद्योगिनमधिगम्यं जडात्मनो मन्दबुद्धेरपि नेतुरमात्यस्य यशस्विपदे स्थाने प्रतिष्ठा नियमतवश्य भवति किमुतोदारबुद्धेरमात्यस्य । अयोग्यप्रभोराश्रयेण विशुद्धनयोऽपि मन्त्री अहमिव शीर्णाश्रयः सन्पतति नदीकूलगतवृक्ष इवेत्यर्थः ॥१४॥

एवं मनसि विचारयन्तं राक्षसं चन्द्रगुप्तसाचिव्याभ्युपगमाय प्रवणयति । **अमात्येत्यादिना** । साचिव्यमनभ्युपगम्य ताटस्थ्येन वृषलानुग्रहः अप्रयोजक इति भावः ।

---

1. जितं किं न मया लोक ऐहिकामुष्मिकद्वयम्, 2. त्वयि,—कार्ये प्रजाग्रति, 3. कलयति, 4. नियतम्, 5. भुवि, 6. कुतः, 7. नानु०, 8. अस्मात्परं—(राक्षसश्चिन्तयति) **चाण०**—तपोवनं यामि विहाय मौर्यं त्वां चाधिकारे ह्यधिकृत्य मुख्यम् । त्वयि स्थिते वाक्यनिबद्धबुद्धौ भुनक्तु गामिन्द्र इवैष चन्द्रः ॥ इत्यधिकम् ।

(*Aloud*) Prosperity to you, king !

KING—Noble one,

Just think—What have I not conquered of this world, when His Honour and Your Honour as my *gurus*, are wide-awake in the management of the six expedients (state affairs) ? (13)

RA'K.—(*Aside*) Ah, the disciple of Kauṭilya treats me as a servant ! Or rather, this is, indeed, but the humility of Chandragupta, and it is only jealousy that makes me think otherwise. All things considered, it is but proper that Chāṇakya has become victorious. For,

A minister, dull-minded though he be, is sure to be firmly placed in a position attended with renown, when he finds a proper person (*i. e.* king) who is ambitious; a minister though of unerring policy, falls to the ground in the manner of a tree grown on the bank of a river, coming across an unworthy master, his resort being destroyed. (14)

CHA'N.—Minister Rākshasa, do you wish that Chandanadāsa should live ?

RA'K.—Vishṇugupta, what doubt can there be (about it) ?

CHA'N.—Minister Rākshasa, I have some doubt because you are favouring Chandragupta without accepting the sword (the badge of ministerial office). If then you really wish to save Chandanadāsa's life, accept this weapon.

RA'K.—No, Vishṇugupta; not so. I am unworthy to receive the weapon, especially when it was wielded by you.

(व्यक्त) सदा विजयी रहो, राजन् !

राजा—गुरुवर—

दुनिया में दुर्गम मेरे लिए अब रह ही क्या गया है जबकि आप दोनों गुरुओं का चिन्तन-परामर्श नीति के छहों अंगों में, जागरूकता के साथ, मुझे प्रतिक्षण प्राप्त है। (१३)

राक्षस—(मन-ही-मन) इंगित से मुझे भी अपना गुलाम कह ही गया यह चाणक्य का चेला ! यह भी हो सकता है कि यह उसकी स्वाभाविक नम्रता हो, जिसे मेरी ईर्ष्यावृत्ति ठीक-ठीक देख नहीं सकती। कुछ हो, चाणक्य सचमुच इस आदर-यश का अधिकारी है :—

नेता कितना भी हतबुद्धि क्यों न हो किन्तु पुतले में भी यदि महत्त्वाकांक्षा है, विजयेष्णा है, तो उसकी पद-प्रतिष्ठा बनी रहेगी। किन्तु यदि शिष्य में अपनी योग्यता न हो, अभिरुचि न हो, मन्त्री कितना ही सच्चरित्र क्यों न हो— नदी के किनारे खड़े वृक्षों की तरह वह आज उखड़ा कि आज उखड़ा। (१४)

चाणक्य—अमात्यवर, चन्दनदास की जान प्यारी है ?

राक्षस—इसमें भी कोई सन्देह हो सकता है ?

चाण०—अमात्य राक्षस, योग्योहम[1]योग्यो भवानिति कथमेतत्। पश्य—

अश्वैः सार्द्धमजस्रदत्तक[2]विकैः क्षामैरशून्यासनैः
स्नाना[3]हारविहारपानशयनस्वेच्छासुखैर्वर्जितान्।
माहात्म्यात्तव[4] पौरुषस्य मतिमन्दृप्तारिदर्पच्छिदः
पश्यैतान्परिकल्पनाव्यतिकरप्रोच्छूनवंशान्गजान् ॥ १५ ॥

अथवा किं बहुना[5]। न खलु भवतः शस्त्रग्रहणमन्तरेण चन्दनदासस्य जीवितमस्ति।

राक्ष०—(स्वगतम्)

नन्दस्नेहगुणाः स्पृशन्ति हृदयं भृत्योऽस्मि तद्विद्विषां
ये सिक्ताः स्वयमेव वृद्धि[6]मगमंश्छिन्नास्त एव द्रुमाः।
शस्त्रं मित्रशरीररक्षणकृते व्यापारणीयं मया
कार्याणां गतयो विधेरपि न यन्त्याज्ञा[7]करत्वं चिरात् ॥ १६ ॥

अश्वैरिति। स्नानाहारादिवर्जनादेव क्षामैः कृशैरजस्रसक्तकविकैरशून्यासनैरनपनीतखलीनपल्याणैः। सदा सन्नद्धैरित्यर्थः। परिकल्पनाव्यतिकरेण सदा सन्नाहप्रसङ्गेन पल्याणापनयाभावात्प्रोच्छूनाः शोफरुजा व्याप्ता वंशाः पृष्ठास्थिभागा येषां तान्पश्येति। आदरेण पुनः पश्येति प्रयोगः। मतिमतः दृप्तारिदर्पच्छिदः पौरुषशालिनश्च तव माहात्म्यादिति साचिव्याय त्वमेव योग्य इति प्रवणीकर्तुं प्रशंसा ॥ १५ ॥

किं बहुनेति। अस्मत्परिक्लेशकथनेन किं प्रयोजनम्। साचिव्यपदं भवतावश्यमङ्गीकर्तव्यमित्याह। न खल्विति।

नन्देति। ये नन्दाः स्वयमेव मया सिक्ताः गर्भपतनात्प्रभृति तैलद्रोणीनिधानादिना महता परिक्लेशेन परिपालिताः सन्तः वृद्धिमगमंस्ते संप्रति नष्टाः। तद्गुणाकृष्टहृदयस्यापि मम तेषां विद्विषो मौर्यस्य भृत्यत्वं मित्रशरीररक्षणार्थमवश्यमभ्युपेयत्वेन प्रसक्तमित्यहो कार्याणां गतिवशाद्विधिविलसितमप्यन्यथा भवतीति खिद्यते। कार्याणां गतयः विधेरप्याज्ञाकरत्वं चिरान्न यन्ति। अतिप्रबलोऽपि विधिः कार्यगतिवैचित्र्यात्कार्यगतिकिंकर इव भवतीत्यर्थः ॥१६॥

---

1. योग्योऽहं न त्वं योग्य इति किमनेन, 2. कविकाक्षा०, 3. नानाहार, 4. दतिपौरुषस्य भवतो दृ०, 5. किमनेन, 6. पाणिपयसा छेद्याः 7. व्यन्त्यालोचनागोचरम्।

CHA`Ṇ.—Minister Rākshasa, how can it be that I am fit to wield it and you are not. Just see—

Those horses which being continually bridled and saddled have become emaciated, and also look at the elephants which have their spines swollen on account of being kept in continual readiness, and which have been deprived of the pleasures of bathing, feeding, sporting, drinking and sleeping at will. (And all this), O talented one, is owing to the greatness of your prowess which subdues the pride of conceited foes. (15)

Or, to be brief, Chandanadāsa cannot live unless you accept the weapon.

RA`K.—(*Aside*)

The qualities of the kindness of the Nandas touch my heart (and yet) I am now a servant of their bitter foes. Those trees which being watered by me had attained growth are cut off. The weapon has to be wielded by me for saving the person (life) of my friend. The courses of events ordained by fate do not come within the range of comprehension even after a long time.)* (16)

चाणक्य—मुझे सन्देह इसलिए हो गया कि आपने चन्द्रगुप्त पर यह कृपा तो कर दी किन्तु मन्त्रित्व का यह 'लांछन' (यह कृपाण) आपने अभी तक ग्रहण नहीं की। यदि सचमुच चन्दनदास को जीवित देखना चाहते हैं तो लीजिये—पहले इसे स्वीकार कीजिए।

राक्षस—यह बात नहीं है; बात वास्तव में यह है कि जिस शस्त्र को मुझसे पहले चाणक्य ग्रहण कर चुका हो, मुझमें उसे ग्रहण करने की योग्यता रह नहीं जाती।

चाणक्य—अमात्य प्रवर, मैं योग्य हूँ, और आप अयोग्य; यह कैसे ? इधर देखिये तो ज़रा—

इन घोड़ों को जिनकी लगाम कितने दिनों से, निरन्तर, कसी-ही-कसी चली आती है, हमारे योद्धा जिनकी पीठ से इतने दिन एक क्षण के लिए भी नहीं उतरे; और इन हाथियों को (देखिये)—जिनका स्नान, भोजन, विहार, पान, शयन और अन्य स्वेच्छा सुख सब अचिन्त्य हो चुका है। और यह सब किस कारण ?—आप ही के अद्भुत पराक्रम की वजह से, आपके बुद्धिबल के कारण, हठीले-से-हठीले शत्रु का हठ तोड़ने में सिद्धहस्त आपकी कुशलता के कारण। युद्ध के लिए प्रतिदिन इनकी जो रोज़ तैयारी—मालिश करनी पड़ती थी, उससे हमारे इन हाथियों की पीठें ही सूज चुकी हैं।—इनकी सुध कौन लेगा ? (१५)

खैर, आपको यह शस्त्र स्वीकार नहीं, तो इसका अभिप्राय होगा आपको चन्दनदास के प्राण इष्ट नहीं।

राक्षस—(मन-ही-मन)—

उधर नन्द के स्नेह तथा अनुग्रहों की याद आती है, और इधर—मैं उसीके 'परम शत्रु' की सेवा को ग्रहण कर रहा हूँ। वही वृक्ष जिन्हें स्वयं सींच-सींच-

---

*The reading नयन्त्यालोचनागोचरं is followed; see notes.

(प्रकाशम्) विष्णुगुप्त, नमः सर्वकार्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय। का गतिरेष प्रह्वोऽस्मि[1]।

चाण०—(सहर्षं शस्त्रमर्पयित्वा) वृषल वृषल, अमात्यराक्षसेनेदानीमनु[2]गृहितोऽसि। दिष्टया वर्द्धते भवान्।

राजा०—आर्यप्रसाद एष चन्द्रगुप्तेनानुभूयते।

(प्रविश्य)

पुरुषः—जयत्वार्यः। एष खलु भद्रभटभागुरायणप्रमुखैः संयमितकरचरणो मलयकेतुः प्रतिहारभूमिमुपस्थापितः। इदं श्रुत्वा आर्यः प्रमाणम्। (जेदु[3] अज्जो। एसो क्खु भद्दभटभाउराअणप्पमुहेहिं संजमिदक लचलणो मलअकेदू पडिहारभूमिं उवट्ठा[4]विदो। एदं सुणिअ अज्जो प्पमाणम्)

चाण०—भद्र, निवेद्यताममात्यराक्षसाय। सोयमिदानीं जानीते[5]।

राक्ष०—(स्वगतम्) कथं दासीकृत्य मामिदानीं विज्ञापनायां मुखरीकरोति कौटिल्यः। का गतिः। (प्रकाशम्) राजन् चन्द्रगुप्त, विदितमेव ते यथा वयं मलयकेतौ कंचित्काल[6]मुषितास्तत्परिक्ष्यन्तामस्य प्राणाः।

राजा०—(चाणक्यमुखमवलोकयति)

एष प्रह्वोऽस्मीति। इदं प्राप्तकार्यानुमोदनमाभाषणमङ्गम्। **आर्यप्रसाद एष इति**। इदं लब्धस्थिरीकरणं कृतर्नामाङ्गम्॥ **भद्र निवेद्यतामिति**। इदमिष्टकार्यदर्शनं पूर्वभावो नामाङ्गम्॥ **प्रतिमानयितव्य इति**। यद्यपि शत्रुशेषं न शेषयेदिति शास्त्रान्मलयकेतुर्नं मोक्षणीय इति तथापि राक्षसस्य साचिव्यग्रहण-

---

1. सज्जः, 2. गृहीतशस्त्रेणा०, 3. जेदु, जेदु, 4. उवठ्ठिदो, 5. राजकार्यं करिष्यति, 6. किंचित्कालान्तरम्।

(*Aloud*) Vishṇugupta, I bow to the affection for a friend which makes one undertake anything whatsoever. What course in there ? I am willing.

CHA'N.—(*Joyfully giving him the sword*) Vṛshala, Vṛshala, you are now favoured by the minister Rākshasa. I congratulate you on your good fortune.

KING—It is Your Honour's favour that Chandragupta is thus enjoying.

(*Enter a* MAN)

MAN—Victory to Your Honour ! Here Malayaketu has been placed at the door, with his hands and feet chained, by Bhadrabhaṭa, Bhāgurāyaṇa and others. On hearing this Your Honour will decide (what to do next).

CHA'N.—Good man, let it be told to Minister Rākshasa. He knows (what orders to pass) now.

RA'K.—(*Aside*) How now, having made me a slave Kauṭilya now makes me give the order ! What help ? (*Aloud*) King Chandragupta, you know that I was living with (*i. e.* in dependence upon) Malayaketu for some time. Let therefore his life be spared.

KING —(*Looks at* CHA'NAKYA's *face*)

कर बढ़ाया, आज (रहे नहीं) कट चुके हैं; और एक मित्र की जान जाती है यदि मैं यह मन्त्रिपद का उपलक्ष शस्त्र स्वीकार नहीं करता। इतने अरसे के बाद भी, कभी-कभी लगने लगता है, घटना-चक्र भाग्य-चक्र की प्रधानता स्वीकार नहीं करेगा। (१६)

(व्यक्त) अमात्य चाणक्य, मेरे तो सब कर्त्तव्य कार्य की कसौटी 'मित्र का स्नेह है,' वही मेरा देवता है। मेरे लिए कोई दूसरा मार्ग ही नहीं : मैं हारा।

चाणक्य—(फूला न समाता हुआ, तलवार भेंट करते हूए) अमात्य राक्षस ने मुझे कृतार्थ भी कर दिया। बधाई हो—

चन्द्रगुप्त—और मुझे भी—आपकी कृपा से !

(पुरुष)

पुरुष—प्रधानमन्त्री की जय हो ! भद्रभट, भागुरायण और कितने हो प्रधान पुरुष और हैं जो द्वार पर मलयकेतु को पकड़े खड़े हैं। वह हथकड़ियाँ पहने है। आज्ञा दीजिये।

चाणक्य—बेटा, यह आज्ञा अब अमात्य राक्षस से माँगो। आज से वही तुम्हारे स्वामी हैं।

राक्षस—(मन-ही-मन) अभी-अभी मुझे अपना दास कर लिया, और इतनी जल्दी अपना 'स्वामी' भी—आज्ञा के लिए मुंह भी मेरा ही खुलवाना था ! क्या करूँ ? (व्यक्त) महाराज चन्द्रगुप्त—आप तो जानते ही हैं कि कुछ समय मैं भी मलयकेतु का आश्रित रहा हूँ, जाने दीजिए—इस पर अनुग्रह कीजिए।

चाण०—वृषल, प्रतिमानयितव्योऽमात्यराक्षसस्य प्रथमः प्रणयः। (पुरुषं प्रति[1]) भद्र, अस्मद्वचनादुच्यन्तां भद्रभटप्रमुखा[2] अमात्यराक्षसेन विज्ञापितो देवश्चन्द्रगुप्तः प्रयच्छति मलयकेतवे पित्र्यमेव विषयम्। ततो गच्छन्तु भवन्तः सहानेन। प्रतिष्ठिते चास्मिन्पुनरागन्तव्यमिति।

पुरु०—यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेदि।) (इति परिक्रामति)

चाण०—भद्र, तिष्ठ[3] तिष्ठ। अपरं च वक्तव्यो दुर्गपालो विजयपालः। अमात्य[4]राक्षसलाभेन सुप्रीतश्चन्द्रगुप्तः समाज्ञापयति य एष श्रेष्ठी चन्दनदासः स पृथिव्या सर्व[5]नगरश्रेष्ठिपदमारोप्यतामिति। अपि च विना हस्त्यश्वं[6] क्रियतां सर्वमोक्ष इति। अथवामात्यराक्षसे नेतरि किमस्माकं[7] प्रयोजनमिदानीम्।

विना वाहहस्तिभ्यो मुच्यतां सर्वबन्धनम्।
पूर्ण[8]प्रतिज्ञेन मया केवलं बध्यते शिखा[9] ॥ १७ ॥

पुरु०—यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेदि।) (इति निष्क्रान्तः)

चाण०—भो राजन् चन्द्रगुप्त, भो अमात्य राक्षस, उच्यतां किं वा भूयः प्रिय[10]मुपकरोमि ?

प्रथमप्रार्थनावश्यं मानयितव्येत्यर्थः। **भद्रभटप्रमुखा इति।** भद्रभटादयः राक्षसस्य साचिव्यनिर्वाहाध्यवसाये सन्दिहानास्तद्वचनं चन्द्रगुप्तवचनं च न प्रमाणीकरिष्यन्तीत्यस्मद्वचनादित्युक्तम्। किं च अमात्यराक्षसेन विज्ञापित इति वचनं स्वयं तथापकृतेनापि राक्षसेन स्वस्मिन्नेवमुपकृतमिति राक्षससौजन्यं मलयकेतुना ज्ञातव्यमिति। **विना वाहनहस्तिभ्य इति।** ततः प्रविशति मुक्तां शिखां परामृशन्निति मुखसन्धावुपक्षिप्तस्य बीजस्यैवं मया निर्वहणं कृतमित्याह। तीर्णप्रतिज्ञेन मया केवलं बध्यते शिखेति।

---

1. अवलोक्य, 2. प्रभूतयः, 3. तिष्ठ तावत्। एवमपरमुच्यतां विज० दुर्गपालश्च, 4. ०सस्य गृहीतशस्त्रस्या प्रीत्या देवश्च०, 5. सर्वेषु नगरेषु, 6. वाहनहस्तिभ्यः, 7. हस्त्यश्वेन, सहवाहन०; नम्। तदिदानीम्, 8. तीर्ण, 9. अस्मात्परं—इति शिखा बध्नाति, 10. उपहरामि।

Cha'n.—Vṛshala, the first request of Minister Rākshasa must be granted. (*To the* Man) Tell Bhadrabhaṭa and the others, in my name, that king Chandragupta, at the request of Minister Rākshasa, grants Malayaketu his paternal kingdom. They should, therefore, accompany him and come back after he is established on his throne.

Man—As Your Honour commands. (*Sets to go*)

Cha'n.—Stay, friend, stay. I have something more to say. Tell Vijayapāla, the superintendent of the fort, that Chandragupta, highly pleased at the reconciliation of Rākshasa, orders that the merchant Chandanadāsa should be appointed to the post of the principal merchant in all cities of the world; and further, that all except the war horses and elephants should be set free. Or rather, with minister Rākshasa as the adviser (of the king) where is the need for horses and elephants even? So now

Let every tie be unloosed except that of (riding) horses and elephants ; by me having my vow fulfilled will (now) be tied up my tuft of hair only.

Man—As Your Honour commands [*Exit*

Cha'n.—O king Chandragupta, O Minister Rākshasa, tell me what further favour I should confer upon you.

राजा—(चाणक्य का मुंह ताकता है)

चाणक्य—चन्द्रगुप्त, अमात्य राक्षस का यह पहला आदेश है—हमें मानना ही पड़ेगा। (पुरुष से) भैया, भद्रभट और उनके सहकारियों को हमारी ओर से कहो कि "अमात्य राक्षस के अनुरोध पर महाराज चन्द्रगुप्त ने मलयकेतु को उसका पैतृक राज्य पुनः दे दिया। तुम सब भी मलयकेतु के साथ ही जाओ। जब राज्य में जहाँ कुछ स्थिरता आ जाये, तभी लौटना, पहले नहीं।"

पुरुष—जो आज्ञा, स्वामी।

चाणक्य—भैया, ज़रा ठहरना ? हाँ, और दुर्गपाल विक्रमपाल से जाकर कहना कि अमात्य राक्षस को अपना बनाकर महाराज बहुत ही प्रसन्न हैं, और आदेश देते हैं कि सेठ चन्दनदास को आज से राज्य का सबसे बड़ा सेठ माना जाय। और कि—हाथी-घोड़ों के अतिरिक्त सबकी रिहाई कर दी जाय (मैं तो कहता हूँ अमात्य राक्षस के नेतृत्व में हाथी-घोड़ों की आवश्यकता ही अब क्या पड़ सकती है ?)

"हाथी और घोड़े छोड़कर सबकी रिहाई कर दी जाय !"—आज मेरी प्रतिज्ञा सचमुच पूर्ण हुई और शिखा को बांधने का वास्तविक अधिकार भी मुझे आज ही मिल रहा है। (१७)

पुरुष—जो आज्ञा स्वामी ! (चला जाता है)

चाणक्य—महाराज चन्द्रगुप्त, अमात्य राक्षस—आज्ञा कीजिये, दास और किसी काम के योग्य है ?

राजा०[1]—किमतः परमपि प्रियमस्ति ?—

राक्षसेन समं मैत्री राज्ये चारोपिता वयम् ।
नन्दाश्चोन्मूलिताः सर्वे किं कर्तव्यमतः प्रियम् ॥ १८ ॥

राक्ष०—तथापीदमस्तु (भरतवाक्यम्)—

वाराहीमात्मयोनेस्तनु[2]मवनविधावास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्त[3]कोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री ।
म्लेच्छैरुद्विज्य[4]माना भुजयुगमधुना संश्रिता[5] राजमूर्तेः
स श्रीमद्[6]बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिव[7]श्चन्द्रगुप्तः ॥ १९ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति सप्त[8]मोऽङ्कः समाप्तः ।

इति विशाखदत्तविरचितं मुद्राराक्षसं नाटकं समाप्तम् ।

भो राजन्निति । इदानीं चन्द्रगुप्तस्य राज्यलक्ष्मीस्थिरीकरणाध्यवसायाद्वृषलशब्दमपहाय राजन्निति संबोधनम् । किं च मलयकेतुनिग्रहराक्षससंग्रहरूपं चन्द्रगुप्तस्य प्रियं कृतं मलयकेतुजीवनदानस्वराज्यप्रतिष्ठापनरूपं चन्दनदासबन्धमोचनसकलनगरश्रेष्ठपदलाभरूपं च राक्षसस्य महत्प्रियमनुष्ठितम् । अतोऽप्यधिकं युवयोः प्रियं किं करोमीत्याह । किं वा भूय इति । **राक्षसेनेति** । इदं शुभशंसनं प्रशस्तिर्नाम निर्वहणसन्धेरुत्तममङ्गम् ॥ १८ ॥

वाराहीमिति । भूतधात्री पृथ्वी प्रलयपरिगता प्रलयेनोपप्लुता सती प्राक्कल्पादौ अवनविधौ जगद्रक्षणविधाने अनुरूपां समर्थां वाराहीं तनुमाश्रितस्यात्मयोनेः स्वयंभुवः आदिवराहमूर्तेर्भगवतः श्रीविष्णोदन्तकोटिं दंष्टाग्रं शिश्रिये आश्रिताभूत् । तस्यैवं संप्रति राजमूर्तेः राजा चन्द्रगुप्त एव मूर्तिः शरीरं यस्य । ना विष्णुः पृथिवीपतिरिति स्मरणात् । तथाभूतस्य भगवतो भुजयुगमधुना म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भूतधात्री संश्रितास्ते । श्रीमद्बन्धुभृत्यः श्रीमन्तः बन्धवो भृत्याश्च यस्य स तथाभूतः । अनेन बन्धुभृत्येभ्यः संपत्प्रदत्वमस्योक्तम् । पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः पार्थिवचन्द्रगुप्तरूपः स श्रीमाननादिविष्णुर्महीमवतु रक्षत्वित्यर्थः । अत्र श्रीविष्णोश्चन्द्र-

---

1. राजा०—राक्षसश्च—किम०—स्ति । यदि न परितोषः, तथापि यद्यपरितोषस्तदिदमस्तु । भरत० । वाराही०, 2. मतनुबलामा०, 3. प्रोथ, पोत्र, 4. उद्वेज्यमाना, 5. पीवरम्, 6. श्रीमान्, 7. ०वोऽव (वोर) न्तिवर्मा, 8. इति श्रीमन्महाराजपदभाजः पृथोः सूनुना श्रीविशाखदत्तेन विरचिते मुद्राराक्षसनाम्नि नाटके निर्वहणं नाम सप्तमोऽङ्कः ।

King—Is there anything dearer than this ?

Răkshasa is won over; I have been placed on the throne, and all the Nandas are annihilated; what thing, more to be coveted than this, remains to be accomplished ? (18)

Rāk.—Still let there be this word of Bharata—

May King Chandragupta with his prosperous connections and servants long protect the earth—he who is a kingly manifestation of that self-existent God, to whose tusk, when He had assumed the form of the Boar fitted to grant protection, the earth, of yore, clung, amidst universal destruction, and on whose arms she now leans, being frightened by the Mlechchhas. (19) [*Exeunt Omnes*]

END OF ACT VII.

END OF THE DRAMA MUDRĀRĀKHASA COMPOSED BY VIŚAKHADATTA.

राजा—क्या इससे भी अधिक प्रिय है ?

राक्षस के साथ मित्रता हो गई और मुझे राज्य पर प्रतिष्ठत कर दिया गया तथा सभी नन्दों को समूल नष्ट कर दिया गया, इससे अधिक अभीप्सित और क्या साध्य हो सकता है। (१८)

राक्षस—तथापि यह भरतवाक्य हो।

संपन्न बंधुओं और भृत्यों से युक्त महाराज चन्द्रगुप्त चिरकाल तक पृथवी का शासन करे। यह (चन्द्रगुप्त) उस स्वयंभू भगवान् का राजा—रूप में अवतार है। रक्षा करने में समर्थ वाराह शरीर धारण करने के समय, प्रलय काल में पहले जिसके दांत का पृथवी ने सहारा लिया था उसी (चन्द्रगुप्त) की भुजाओं का आज भी म्लेच्छों से भयभीत पृथवी आश्रय ले रही है। (१९)

(इस प्रकार सभी निकल जाते हैं।)

॥ संग्रहण नामक—सप्तम—अङ्क—समाप्त ॥

श्री विशाखदत्तविरचित मुद्राराक्षस नाटक समाप्त।

गुप्तस्य चाभेदकथनादनुभयाभेदरूपकमलङ्कारः। अयं हि धूर्जटिः साक्षाद्येन दग्धाः पुर क्षणादितिवत् ॥१९॥

मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि भवन्ति आयुष्मत्पुरुषकाणि चेत्यादि श्रीमहाभाष्यकारपतञ्जलि भगवत्पादानुशासनात्कविरत्र नाटक आदौ धन्या केयं स्थिता ते शिरसीत्यादिनान्दीपद्यद्वयेन भगवतः सदाशिवस्य गुणसङ्कीर्तनरूपं मङ्गलं कृतवान्। मध्ये च शरद्वर्णनप्रस्ताव आकाशं काशपुष्पच्छवीति पद्येन भगवतः शिवस्य प्रत्यग्रोन्मषजिह्मेति पद्येन भगवतो नारायणस्य च गुणसङ्कीर्तनरूपं मङ्गलं विहितवान्।

नाटकसमाप्तौ च वाराहीमात्मयोनेरिति पद्येनादिवराहरूपधारिणो भगवतो महापुरुषस्य जगदुद्धरणगुणसङ्कीर्तनरूपं मङ्गलं विरचितवान् । अनेन मङ्गलाचरणेनोपास्योपासकभेदावस्थायामप्युपास्ययोर्हरिहरयोरभेदेनवोपासनमखिलश्रेयःप्राप्तिसाधनत्वेन श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणप्रसिद्धमित्युक्तं भवति । तथा च श्रीमदाचार्यभगवत्पादैः श्रीविष्णुसहस्रनामभाष्ये हरिहरयोरभेदोपासनपराणि महाभारतादिवचनान्युदाहृतानि । नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च । तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥ १ ॥ त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्तु मम गोपते । आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते ॥ २ ॥ यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु । इत्यादीनि वचनानि द्रष्टव्यानि । गङ्गास्तुतौ च भगवत्पादैरनयोरभेदभक्तिप्रार्थना कृता ॥ भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शाश्वतीति ॥

इति श्रीत्र्यम्बकयज्वप्रभुवर्याश्रितढुण्ढिराजव्यासयज्वविरचिते
मुद्राराक्षसनाटकव्याख्याने सप्तमोऽङ्कः समाप्तिमगमत् ॥

बुधो ढुण्ढिर्नाम्ना जगति विदितो लक्ष्मणसुधी-
मणेः श्रीमद्व्यासान्वयजलधिचन्द्रस्य तनयः ।
स्फुटं साङ्गं व्याख्यन्नयगुणविदस्त्र्यम्बकविभो-
र्नियोगात्प्रौढार्थं बुधगणमुदे नाटकमिदम् ॥ १ ॥

अत्र नाटके चतुर्थेऽङ्के कविरद्भुततरचाणक्यनीतिविषयकस्वसंविधानक्लेशमनुभाव्य प्रमोदभरमनुभवन्तः सरसाः सहृदया जगति दुर्लभा इति मन्वानः स्वयमेव स्वस्य नाटकीयसंविधानक्लेशं राक्षसवचनव्याजेन प्रस्तौति स्म । कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्नित्यादिना । एवं नाटकीयं चतुःषष्ट्यङ्गलक्षणानुसरणकविहृदयाभिमतार्थाविष्करणप्रयासोपि व्याख्यातुरनुमोदयितव्यः सहृदयैरिति प्रार्थयामः ।

कर्तेदन्नाटकस्याद्भुतरसविलसत्संविधानप्रवीणः
क्लेशं चाणक्यनीतौ बहुविधमतनोल्लक्षणाढ्यैर्वचोभिः ।
तत्तल्लक्ष्ये तदङ्गानुसरणविषयावासमस्मद्विधानां
राजश्रीत्र्यम्बककार्यानुमतिसुविहितं वीक्ष्य तुष्यन्तु सन्तः ॥१॥
श्रीमद्विशाखकविवर्यकृतिर्मयैषा श्रीत्र्यम्बकानुमतितो विवृता यथावत् ।
श्रीस्वामिशैलवसतिर्भगवान्विशाखो देवोनया मुदमुपैतु सनत्कुमारः ॥२॥
बाणाग्न्यृतुमहीसंख्यामितेब्दे जयनामके ।
ढुण्ढिना व्याकृतं जीयान्मुद्राराक्षसनाटकम् ॥३॥

(१६३५ शालिवाहनशाकेब्दे जयसंवत्सरफाल्गुनमासि विरचितमिदं मुद्राराक्षसनाटकव्याख्यानं जीयादित्यर्थः ॥)

श्रीकृष्णाद्रिसुतेशपादजलजे सन्धाय चित्ताम्बुजं
वाणीसौरभशालि भेदतमसः सन्धूननैकाग्रधीः ।
मुद्राराक्षसनाटकं लिखितवान्कौटिल्यनीतेः कलां
गन्तुं यत्र विहारिणः प्लवततो नीत्यम्बुधौ सज्जनाः ॥१॥

NOTES

ACT I

P.1. **मुद्राराक्षसम्**––मुद्रया जित: वशीकृतो वा राक्षस: मुद्राराक्षस: स एव अभेंदोपचारात् (by transference of an epithet) तदाख्यं नाटकम्; here neither छ (ईय) nor अण् can be affixed; nor can we explain the comp. as a Bah. comp. (मुद्रया जितो राक्षसः यस्मिन्); for in that case we shall have to take recourse to *Lakshaṇā*, as it is not राक्षस that the work contains but an account of the way in which Rākshasa was won over to his side by Chāṇakya; see Bhaṭṭoji on शारीरकं भाष्यं, Sid. Kau. on Pāṇ. IV. 3. 87.

धन्या––Pārvatī, who had believed herself to be the most fortunate lady having obtained a place in half the part of Śiva's body, now finds that there is another actually worshipped by her husband being allowed a seat on his head, and therefore, calls her 'blessed'. The question may also imply taunt as suggested in the com. Pārvatī is often represented as jealous of (गङ्गा; *cf.* सेर्ष्या पादनखेन्दुदर्पणगते गङ्गां दधाने हरे। Priay. I. 1.) **शशिकला**—Śiva pretends to misunderstand the point of Pārvatī's question, and answers 'It is Śaśikalā' (also situated on his head). Pārvatī in her simplicity of mind asks किं नु &c. The equivoques and puns are fully explained in the com. **नाम**–in the second line of the stanza does not mean 'a proper name', but a term that signifies a particular thing (अभिधेयवाचकशब्द). **कस्य हेतोः**––The gen. here may be explained by Pāṇ. II. 3. 26, 27 ; but as these Sūtras are superseded by the Vārtikka निमित्तकारणम् etc., it is better to explain it by referring to this Vārt., as done by the Com., according to which any case of हेतु may be used; केन हेतुना, कस्माद्धेतोः, कस्मिन्हेतौ & c. **नारीं पृच्छामि**–त्वां is understood in the first case, प्रश्नं in the other. **विजया**—one of the two female friends of Pārvatī. In the Pārvatīpariṇaya Nāṭaka (*cf.* also Kum. VIII. 49) she and जया are represented as P.'s attendant companions in her father's house before marriage. **शाठ्य**—Does not mean 'fraud' but 'equivocation, skill in *Vakrokti*', being an abstract noun from शठ which has the same meaning as in शठनायक.

The fig. in the stanza according to the Com. is *Vakrokti* (equivoque), which consists in giving quite a different sense to the words of another by means of a pun or an affected change of tone. See K. P. IX. 1 (78). As pointed out by the Com., the equivocations of the stanza are intended to indicate the crooked policy which underlies the plot of the play. Gaṅgā is the sovereignty of Chandragupta, Pārvatī of Nanda. *Indu* suggests Chandragupta.

P. 4. **आविर्भवन्ती**—Which would else have manifested itself. Present for immediate future; see com. **रक्षत:**—avoiding. **स्वैरपातै:**—if allowed to fall at random, *i.e.* heedlessly; see com.; had he treaded at will, the earth would have sunk down. We may, however, take स्वैरपातै: with रक्षत:; स्वैर meaning 'gentle or slow', as better corresponding with the construction in the 2nd and 3rd lines. मन्द:स्वच्छन्दयो: स्वैर: Amara. **लक्ष्यं**—लक्ष्यत इति an object. **त्रिपुर**—त्रयाणां धातूनां पुराणि तानि; यद्वा त्र्यवयं पुरं त्रिपुरं (and not त्रयाणां पुराणां समाहार: as some explain it; for that will give त्रिपुरी) तद्विजयतीति. The reference is to the three cities of gold, silver and iron built in the sky, air and on earth by Maya, the architect of the demons, which were destroyed by Śiva at the request of the gods. त्रिपुर also came to signify the demon who ruled over these three cities. **दु:खनृत्तं**—दु:खेन कृतं नृत्तं a Madh. comp. नृत्त is defined as 'नृत्तं ताललयाश्रयं' *i.e.* a dance which consists of the mere movements of the body without gesticulation and which is regulated by the marking of the musical intervals or stops. The dance here alluded to is the Tāṇḍava dance of which Śiva is represented to be very fond. The word अभिनयत: occurring in the śl. merely *refers* to Śivaś bodily movements, and not to the gesticulation of feelings, as Śiva' was not doing that; hence नृत्तं is retained in the śl.; see Mal. Mad. V.

This stanza, too, has a bearing on the plot of the play. It foreshadows the difficulties to be experienced by Chāṇakya on account of his desire to spare the life and secure the services of Rākshasa, though able to kill him and Malayaketu; see com. There is in the first three lines the fig. *Atiśayokti* or exaggeration, and *Parikara* or the fig. of the significant epithet in the fourth line.

P. 8. **नान्दी**—The benedictory stanzas, so called because the deities are supposed to be delighted by it. (नन्दन्ति देवता अत्र). Jagaddhara derives the word as आशीर्योगादिना नन्दयतीति नन्दः। पचाद्यच्। नन्द एव नान्दः। प्रज्ञादित्वादण् । and by adding ङीप् (ई) नान्दी. For the origin *cf.* नन्दी वृषः कोपि महेश्वरस्य रङ्गत्वमादौ किल खे जगाम। तद्रङ्गमुद्दिश्य कृतां तु पूजां नान्दीति तां नाट्यविदो वदन्ति। The Nāndī is of four kinds :—नमस्कृतिर्माङ्गलिकी आशीः पत्रावली तथा। नान्दी चतुर्धा निर्दिष्टा नाटकादिषु धीमता॥ The नान्दी here consists of 8 *padas*, if *pada* be understood to mean 'a quarter of a stanza' and is of the पत्रावलि type, since the plot is slightly hinted in it; see com. and Rāghavabhaṭṭa on Nāndī in Śāk. These two ślokas also form the *Mangala* of Sanskrit writers, held necessary for the removal of obstacles and the safe completion of a work. For the efficacy of *Mangala* Comp. the words of Patañjali quoted by our Com. on P. 153.

नान्द्यन्ते सूत्रधारः—At the close of the Nāndī, the Sūtradhāra. This seems somewhat puzzling. What is the predicate to be supplied? If we supply पठति then two questions would naturally present themselves—who repeats the Nāndī? and when does the Sūtradhāra enter? The only possible answer to these is that Sûtradhāra enters the stage and himself recites the *Nāndī*. But as the Nāndī contains a blessing or a salutation to some deity it is auspicious and as such must form the first words according to the general usage of Sanskṛit writers. *Cf.* Jagaddhara on Māl. Mād. नान्द्यन्ते सूत्रधारस्यैव श्रुतत्वेनेयमपि तेनैव पठनीया। प्रथमं सूत्रधारः प्रविशतीति नोक्तम्। मङ्गलार्थं देवतानमस्कारादेरेव विधानात् । (*Cf.* in this respect Pāṇini who begins his work with वृद्धिरादैच्, (though it should have properly been आदैज्वृद्धिः like the following Sūtra अदेङ्गुणः), by putting in वृद्धि first, as it is indicative of prosperity. Hence it is that the stage direction प्रविश्य सूत्रधारः never introduces a Saṇskṛit play, but is usually written after the Nāndī, as नान्द्यन्ते सूत्रधारः· For other particulars see our note on these words at Śāk. p. 4 or Vik. p. 5. Bharata's rules also provide that the Sūtradhāra may retire after having repeated the Nāndī and then another actor possessing qualities answering to those of the Sūtradhāra and called 'Sthāpaka' should enter and commence the play, But the best writers do not seem to have taken advantage of this option.

सूत्रधारः—The manager or chief actor. It is probable, the exhibitions of puppets and paper figures preceded the drama and that *Sūtradhāra* meant originally the holder of threads or strings by which he moved the figures as he spoke. When the drama was developed Sūtra came to mean the thread of connection running through and holding together the various incidents &c. to be represented in a piece.

सामन्त--सम्यगन्त: समन्त: adjoining region. frontier; तत्र भव: a frontier king paying tribute to an emperor (see Malli. on Ragh. IX. 15); hence a tributary prince in general. For वटेश्वर and other names, see introduction. **महाराजभा०**--Though Vatesvaradatta was only a Sāmanta, Bhask. was raised to the dignity of a Mahārāja by the imperial sovereign then ruling in Northen India. **कृति**--like **क्रिया** (Vik. 1. 2) is used for a literary action or composition. **यत्सत्यं** --to tell the truth, forsooth, indeed. This comp. *indec.* is of constant occurrence. *Cf.* यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयं Ven. Act. I, Mṛch I. p. 23; p. 99, &c. Kād. p. 131. **प्रयुञ्जान:**--the present participle is used intransitively to show a हेतु or cause =यतोऽहं प्रयुञ्जे.

बालिश--बलिशस्य मत्स्यवेधनस्यायं मूर्खत्वादपूज्यत्वात् । Bhānuji Dikshita on Amara. **कृषि**--act of ploughing, cultivation; here used in its *Lākshaṇika* or secondary sense of 'seeds sown.' **स्तम्बकरिता**--the capacity to produce sheaves; fr. स्तम्ब (a stalk or a sheaf of corn) + कृ + इन् which is added to कृ, by Pān. III. 2. 24 and the Vārt. on it (see com.), after स्तम्ब and शकृत् in the sense of 'corn' and 'a calf' respectively; (स्तम्बकार: शकृत्कार: otherwise).

गृह गत्वा--In some editions the words **गृहिणीमाहूय** occur after this, but they are not necessary, as गृहिणी is included in the गृहजन; again further on the Sūtradhara says कुटुम्बिनीं तावदाहूय, which will be a repetition after these.

सङ्गीतं--गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते; a concert of vocal and instrumental music accompanied by dancing.

गृहा:--*Mas.* and pl. (when it means the house with its environments). The word is by no means of rare occurrence; *cf.* तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं Meg. II. 15. ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहा: Śāk. VI. p. 171.

P. 10. **अभियुक्त:**--Deeply engaged in **गन्धान्**--When गन्ध refers to aromatic substances it is mas. and pl.; स (गन्ध:) एव द्रव्यवचनो बहुत्वे पुंसि च स्मृत: । Viśva Kosha. **उद्ग्रथते**--The Atm. is rather unusual. **हुङ्कृत**--is a sort of sound resembling हुं which accompanies every effort in such mechanical works as that spoken of here.

कुटुम्बिनी--कुटुम्बमस्यास्तीति कुटुम्बी तस्य भार्या.

गुणवति &*c.*—An instance of भारती वृत्ति a style of composition which is characterised by simple compounds and words of easy import. The *adjectives* qualify both भार्या (which follows from the context) and नीतिविद्या (the science of policy personified—whose help is invoked as being indispensably necessary for success in the object sought to be accomplished in the piece). The six *guṇas* in the case of नीति are (1) सन्धि: (forming an alliance), (2) विग्रह: (war), (3) यानम् (an expedition or marching against) (4) आसनं (waiting for a suitable opportunity to attack or to improve one's weakened resources) (5) द्वैधं (duplicity), and (6) आश्रय: (applying to a powerful king for help, &c.). **उपाय**--(1) expedients, to be used in household management; (2) the four *upàyas* are भेदो दण्ड: साम दानम् । Amara. **स्थिति**-- (1) a householder's position, (2) stability of a kingdom; स्थिते: हेतु: तस्य. The variant स्थितिहेतो is Voc. sing. and means 'You who are the cause of the well regulated domestic life'. **त्रिवर्ग**:—in the case of *Niti* means—the three states of loss, stability and increase (of the collection of the eight things *viz*—कृषिर्वणिक्पथो दुर्ग: सेतु: कुञ्जरबन्धनं । खन्याकरबलादीनां शून्यायां च निवेशनम् ।।). **कार्य**--(1) household duties; (2) political ends. *Cf.* Sis II. 26. **मद्भव०**, **०चार्ये**–*cf.* the Subhāshita कार्येषु मंत्री वचनेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा । धर्मानुकूला क्षमया धरित्री भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा ।। The Com. points out also an implied reference to Autumn described in the third act and explains the equivoques in support of his statement. See com. He thus shows the stanza to be an instance of what is technically called '*Trigata*' a minor *aṅga* of Āmukha or Prelude.

कार्यचार्ये--कार्यदार्ये *v.l.* is better; for the Sūtra. calls his wife not for some but a special business now, as is apparent from his words गृहिणीमाहूय पृच्छामि. Although he had started with the intention of having a musical concert with the people of his house, he had given it up now after seeing the preparations at his house and is anxious to know their reason now. It also explains why he calls her (द्रुतं) quickly.

P. 12. **आर्य**--The reading आर्यपुत्र is bad as the Sūtra. is to be addressed as आर्य **ब्राह्मणानामुपनिमन्त्रणेन**—Feeding the

Brāhmaṇas is a part of the *Puraścharaṇa* enjoined at an eclipse. See Dharmasindhu p. 27, also Yáj. Smṛti I. 217, 218 (अमावस्याष्टकावृद्धि ······ग्रहणं चन्द्रसूर्ययो: । &c.) Although a *Śrāddha* is usually prohibited at night it is specially enjoined at the time of an eclipse and so may be performed at night on the occasion of a lunar eclipse. It may be confined to the presentation of uncooked food, sweets &c. Mr. Dhruva quotes the following from V.P. राहोश्च दर्शने दत्तं श्राद्धमाचन्द्रतारकम् । गुणवत्सर्वकामीयं पितृणामुपतिष्ठति ।। **अतिथि**—अतति गच्छति तिष्ठति इति; fr. अत्+इथि; or न विद्यते द्वितीया तिथिर्यस्य *Cf.* Manu एकरात्रं तु निविसन्नतिथिर्ब्राह्मण: स्मृत: । अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादति-थिरुच्यते ।। **चतुष्षष्टयङ्ग**—According to Garga there are 24 *Aṅgas* and 40 *Upāṅgas* of the mixed science of astrology and astronomy, all of which are here spoken of without distinction as *Aṅgas*. 64 seems to be a favourite number with the ancient writers. Thus the science Art (Náṭyaśāstra) is divided into 64 *Aṅgas*. There are also 64 *Kalās*.

P. 14. **क्रूरग्रह:** &c.—The *double entendres* on this stanza is well explained in the com. ०ग्रह:—(1) गृह्णाति रवितेजांसि इति ग्रह: a planet; (2) of determined purpose or firm resolve (Rákshasa). **केतु:**—(1) for Rāhu, to suit the double meaning; (2) it stands for Malayaketu by a sort of convention often resorted to by poets, as भामा does for सत्यभामा; राम for परशुराम &c. In the 2nd case स केतु: must be read as a Bah. comp. (सकेतु:). In the first case also the two words may be read as one सकेतु: (क्रूरग्रह:) the cruel planet, in combination with the Ketu. We need not then take केतु in the sense of Rāhu. Similarly चन्द्र stands for चन्द्रगुप्त as भीम does for भीमसेन. The Com. reads चन्द्रमसंपूर्ण० (which is also the reading of the majority of Mss.) and separates the words in the second case as चन्द्रम् असंपूर्ण०. But this goes against Chāṇakya's statement further on—कृता मौर्ये लक्ष्मी:··· स्थिरपदा, (See śl. 13) and the words of the spy, सम्पूर्णमण्डलेपि चन्द्रे in śl. 19, which require the reading adopted in the text, *viz.* चन्द्रं सम्पूर्ण०. Again, a man of Cháṇakya's stamp and high mettle would not himself speak of the Maṇḍala being असंपूर्ण. This is also the reading of S. D. which quotes this śl.; see further on, notes, p. 10. Maṇḍala in this case comprehends the seven constituent parts of a kingdom, as given by Kámandaka in his Nītisāra, *viz.* स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गं कोशो बलं सुहृत् । परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राष्ट्रमुच्यते ॥ IV. I. *Cf.* also Amara—स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च । सप्ताङ्गानि प्रकृतयः । When all the seven members of a kingdom work in perfect harmony it is called सम्पूर्णमण्डल. As for Maṇḍala and the comparison to the moon, comp. also K. n. VIII 3. Chāṇ.'s fears, however, were roused because Chandragupta's royalty had not taken a firm root yet. *Cf.* अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात् । नवसंरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ॥ Māl. 1. 8. Astronomically राहु and केतु are the ascending and the descending node of the moon's orbit, and an eclipse can take place when the moon is near one of these.

चन्द्रमभि०—Some Mss. omit these words but they are necessary for the following speech of the Naṭī to be intelligible. Some read चन्द्रगुप्त but this is wrong, as the full name will leave no scope for the Naṭī's question. In his first impulse of anger Chāṇakya catches up the word चन्द्र from the Sūtradhāra's speech and so repeats it.

बुधयोगः—बुध (1) the planet Mercury; (2) the wise Chāṇakya. **योग** :—(1) conjunction; (2) connection with; policy, strategy. In Bālabhārata tbe planet Mercury is similarly spoken of as preventing a lunar eclipse. *Cf.* तन्नन्दनस्तन्मिथुनानुरूपो रूपोऽस्ति चिद्रूपतया बुधाख्यः । यद्योगभाजं न विधुंतुदोपि विधुं तुदत्युग्रविरोधबोधः ॥ Bāl. Bhār. I. 8. (D.). The Com. quotes Bṛ. Garga S. in support of this view. The five Grahas meant are—The Sun, the Moon, Mercury (बुध), Jupiter (गुरु) and Venus (शुक्र). Varāhamihira, in his Bṛ. Saṁ., rejects this theory, saying :—पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य संभवो भवति । (तैलं च जलेऽष्टम्यां) विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः ॥ V. 17. **रक्षति** &c.—is a continuation of the Süt.'s speech and completes the Āryā क्रूर & c. The fig. is *Ślesha*. Prof. Ray's explanation of बुधयोग as the moon's being close to the sun also, as the planet Mercury, is always close to the sun, and therefore असम्पूर्णमण्डल is fanciful. Even women know that a lunar eclipse can take place only on the full moon-day.

धरणीगोचरो भूत्वा—Being a denizen of this world—for whom the task would be impossible. Or this may be equivalent to धरण्यामात्मानं दर्शयित्वा showing himself on the earth.

अभियुक्तः—Devoted to; hence attentive; mark this sense here and the various other senses in which the root अभियुज् is used in this work; *cf.* p. 10. l. 1, p. 16. l. 11, p. 26. l. 8, p. 32. l. 10, p. 172. l. 11, &c. **चंद्रगुप्तं**—Chāṇakya fancying that he was not properly understood utters the full name of Chandragupta.

कौटिल्यः—So called from कुटिल an ancestor of Cháṇakya; also called Vishṇugupta. **कुटिलमतिः**—see *infra* IV. 2 **प्रसभं**—प्रगता सभा विचारो यस्मिन्कर्मणि; Com. on Amara. It is more probably derived fr. सह् to bear or endure, ह् being changed to भ्. **श्रुतेः**—usually means श्रुतिवाक्यात् but here—श्रुत्वा. **नन्दवंशः**—For Nanda and his eight sons according to the Purāṇas, see *infra* III. 27. **मौर्येन्दोः**—मुराया अपत्यं पुमान् मौर्यः; (fr. मुरा+ण्यः *i. e.* य); मौर्य इन्दुरिव तस्य. Murā, a Sūdra woman, was according to the Parāṇas a wife of Nanda; see, however, Intro. **सनाम्नः**—समानं नाम यस्य स सनामा तस्य his namesake ; स is substituted for समान by a rule obtained by detaching the syll. समानस्य from the Sūtra समानस्य छन्दसि &c., Pāṇ VI. 3. 84. **द्विषदभियोगः**–*cf*. pp. 100, 101.

P. 18. **प्रस्तावना**—see com. p. 10. **ततः प्रतिशति** &c.—The mode in which the principal character is introduced here is technically called *Udghātyaka*. It consists in giving to the words of one quite a different sense and thus introducing a character on the stage. *Cf.* Sāh. Dar. VI. 34 where the stanza क्रूरग्रह &c. is quoted as an instance of this mode.

मुक्तां शिखां & c.—Chāṇakya had vowed that he would not tie up his tuft of hair until he had completed the task of effecting the total destruction of the Nanda dynasty. See *infra* III. 27. That task was not complete as long as Chandragupta's rule was not thoroughly established. Chāṇakya, therefore, ties up his hair at the end of the play. The student will remember the similar loosening and tying up of Draupadī's braid in the Veṇīsamhāra.

आस्वादित &c.—Construe कः नरः । द्वौ रदौ यस्य स द्विरदः । आस्वादितं यद् द्विरदशोणितं तेन शोणा रक्ता शोभा यस्याः तादृशीम् । सन्ध्यारुणां शशलाञ्छनस्य कलामिव जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्तीं हरेः दंष्ट्रां तं परिभूय हर्तुमिच्छति ।

परिभय--'Having defeated, (him)' has here the force of an *adv.* 'in spite of, with force'. Chāṅa is the lion, while Chandragupta who is entirely guided by him is the jaw. For the implications of the various expressions, see com. Chāṇ. will further have an occasion to repeat this śl; see p. 66. The figures in the śl. are अप्रस्तुतप्रशंसा, उपमा and तद्गुणालंकार, as the jaw is described as turned red, having given up its white sheen.

P. 20. **कालभुजगीं**--Which is well known for the spirit of vengeance. **नील**—indicates that the fire is yet smouldering and may burst into a flame again at any time. **धूमलता**--धूमो लता इव. **अद्यापि**—Even now, by acting thus adversely towards us, though I have fulfilled my vow. *Cf.* कौरव्यवंशदावेऽस्मिन्क एप शलभायते । मुक्तवेर्णीं स्पृशन्नेनां कृष्णां धूमशिखामिव ॥ Veṇ. I. 19. Śl. cited in Al. Kau. as an instance of *Mālārūpaka.*

°काननधूमकेतु--occurs in Uttar. and Chandakauśika. **शालभः**--शलभस्यायं. **लभतां**--*i. e.* whose doom is sealed; the Imper. indicates the certainty of the destruction. *Cf.* अविदित्वात्मनः शक्ति परस्य च समुत्सुकः । गच्छन्नभिमुखे वह्नौ नाशं याति पतङ्गवत् ॥ Also Bhar.'s Vai. Śat. śl. 21. For a similar idea *cf.* तव दुरासदवीर्यविभावसौ शलभतां लभतामसुहृद्गणः । Sis. II. 117.

उपाध्यायः--उपेत्याधीयतेऽस्मात्। a pupil is to so address his Guru. *Cf.* आर्येति ब्राह्मणं ब्रूयान्महाराजेति पार्थिवम् उपाध्यायेति चाचार्यम् । B. Nāt **उपवेष्टुमिच्छामि**—I wish to sit (Don't you know it), implies a gentle rebuke administered to the pupil for not having prepared a seat. **ननु**—is here आक्षेपे (why, don't you see); or better it may be अनुनये.. Please note. This softens the displeasure of Chān. and he says—वत्स &c. **कार्याभियोगः**—indicates the casting of the *Bīja*; see com. **व्याकुलयति**--and hence I did not notice the seat; see com. **दुःशीलता**--roughness of conduct, petulance.

P. 22. **सकल०**—The whole, because there was no heir left to the Nandas after the death of Sarvárthasiddhi, and so Mala. would easily believe the story. **तदुपगृहीतेन**—taken under his command along with his army **म्लेच्छराज०**--some read म्लेच्छबलेन ; but this will not do, as we are further told that there were five chief kings under Malayaketu ; see below, śl. 20. म्लेच्छन्ति इति म्लेच्छाः ; those who speak an unintelligible or unaryan language; the term afterwards came to be applied to those who did not conform to the Aryan institutions or followed different customs. The Mlechchhas spoken of here appear to observe Aryan rites and ceremonies; see Act IV. p. 208, where Mala. speaks of performing the Śraddha ceremony of his father. So it seems the term is here applied to the kings who came from the Mlechchha country, which is defined as चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते । तं म्लेच्छविषयं प्राहुरार्यावर्तमतः परम ॥ **वृषलं**—Chandra. being of mixed origin (as his mother was of the Sūdra class) was a Vṛshala. **परिपणन**—an offer (in consideration of service done). **सर्वलोकप्रकाश**—सर्वेषां लोकानां प्रकाशो यथा स्यात्तथा । *Cf.* तीर्त्वा जवेनेव नितान्तदुस्तरां नदीं प्रतिज्ञामिव तां गरीयसीम् । Sis. XIV. 74 निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः । Veṇ V. 37. **प्रकाशीभवन्तम्**—Chāna. uses the Pres. p. thinking that it might go on spreading yet more and more among the people. **न, (अ) समर्थः** *v. l.*—Mr. Telang finds fault with this reading and with reason; for it cuts off the sentence यस्य मम from its correlative. **कुतः**—from what cause. If you ask how, here is the reason.

श्यामीकृत्य &c.—Notice the vigorous style of and bold metaphors in this Śloka. **अरियुवतिदिशां**—It is generally a *dik* that is personified as lady, the moon being regarded as her face. *Cf.* Vik. III. 6; दिग्वधूरथपुरन्दरसेव्या Vik. ch. XI. 26. But here the order is reversed. The wives of the enemies are compared to quarters and their faces are represented as moons. **मन्त्रिद्रुमेभ्यः** &c. **सम्भ्रान्त** &c.—these two statements show that Chāṇakya was not a reckless murderer of men, but duly respected the rights of the citizens. The ministers of Nanda had given him no offence and so he spared them, outwitting them in their plans by his superior policy which is the breeze that scattered on them the ashes of bewilderment. **नन्दवंश०**—Prof. Ray needlessly takes this as a Dwandwa remarking that नन्दवंशस्य प्ररोहान् would leave out नन्द. But that is what Chān. means, as he has to make a special mention of Nanda's destruction in the next śl. The figs. are *Rúpaka* (समस्तवस्तु and परंपरित) and *Upamā* (ज्वलन इव) which, however, detracts from the force of the *Rūpaka*. रिपुवने without ज्वलन इव would have been better.

P. 24. **नराधिप०**—Although they disapproved of the act they dared not declare their opinion as they feared Nanda who was a haughty despot. **अग्रासन**—अग्रे स्थितमासनं. The syntactical construction of these two ślokas, though somewhat irregular, is not very difficult to understand. **अवकृष्टं** &c.—see Intro. **सान्वयं**—along with his progeny. **पातितं**—*i. e.* deprived of the throne.

वृषलापेक्षया—Out of regard for; because I take interest in the well-being of Vṛshala. **शस्त्र**—the sword; the symbol of ministerial office. The chief minister of those days, it seems, had, in addition to his other duties, to act as commander of the forces in times of war. Thus we find both Rākshasa and Chāṇakya as principal in command of the troops of Malayaketu (see p. 286) and of Chandragupta (p. 168) respectively. **शल्याः**—रोगाः *V. l.*; the former better expresses the idea of the insult rankling in Chāṇ.'s mind and also better agrees with समुत्खात. The reading रागाः is evidently a corruption of रोगाः, **द्वयोः सारं** &c.—see *infra* III. 17. **द्वितयं**—द्वौ अवयवौ यस्य. The fig. is a fusion of *Upama* and यथासंख्य *Cf.* शत्रुं मित्रं विपत्तिं च जय रंजय भंजय ।

P. 26. **तदभियोगं**—अभियोग zealous or devoted work for the Nandas. If अभि° be taken to mean 'an attack, an expedition' then तद् must refer to Vṛshala. **शक्योऽवस्थापयितुं**—It is possible to manage him; lit. to place in a favourable or subservient position. **बुद्धि**—belief, intention; or object in view. **तपस्वी**—poor, helpless; it is generally used as a term of pity; but always in a good sense, while वराक is used in a good or bad sense. It never means miserable or wretched as some dictionaries give it. See our note on तपस्विनी Śāk p. 99. **विपुल**—वि+पुल great, fr. पुल to be great.

आकाशे लक्ष्यं &c.—This is what is technically called आकाशभाषितं. This must, however, be distinguished from the stage direction आकाशे, for which, see Act. II. p. 80. In the case of the former the character addressed is absent and beyond hearing but mentally pictured as standing before the addresser's eyes, while in the latter case the person spoken to is within hearing and although not present on the stage is supposed to give replies (uttered by the speaker himself with a clever ventriloquism). This is done to make up for the deficiency of actors. **अमात्य**–अमा सह वसतीति; fr. अमा+त्य by Vārt. on Pāṇ. IV. 2. 104. **श्रोत्रिय**—a Brāhmaṇa well versed in the Vedas.

छन्दोधीत इति श्रोत्रियः ; irregularly derived by Pāṇ. V. 2. 84. *Cf.* जन्मना, ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते । विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥

अर्थतः—तस् shows हेतु; for the sake of. **अनु**—is a कर्मप्रवचनीय (prep. which can be used by itself in government with a noun or pronoun in the Acc.) in the sense of direction towards (लक्षण) or statement of a particular relation or state (इत्थंभूताख्यान). See Sid. Kau. on लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः। Pāṇ. I. 4. 90. **भर्तुर्ये** &c.—*cf.* एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः &c. Bhar. Nīt. Śat. 74. and भृत्या अपि त एव ये संपत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते &c. Kād. p. 470. **निसङ्गया**—निर्गतः सङ्गः यस्याः सा तया; here the स of सञ्ज is not changed to ष by the rule उपसर्गात्सुनोसुव०—Pāṇ. VIII. 3. 65, as the pre. निस् goes with गम् and not सञ्ज् **कृतिनः**—कृतमेषामस्तीति those who have done their duty successfully, hence blessed. **बहवः** *v.l.* is not a good reading as it lessens the importance of Rākshasa, as it would mean 'there may be a a few, if not many. *Cf. infra.* II. 22.

कथमसौ &c.—Explains the यत्न.

P. 28. **अप्राज्ञेन** &c—*Cf.* किं भक्तेनासमर्थेन किं शक्तेनापकारिणा। भक्तं शक्तं च मां विद्धि नावज्ञातुं त्वमर्हसि ॥ Pt. I. 136. **ते भृत्याः** &c.—Mark the derivation—भृत्याः, fr. भृ to support, are those who deserve to be maintained (from their intrinsic merit) hence, excellent, true, servants. कलत्र is derived fr. कड् (ल्) to eat or to protect (कड्यन्ते) who must be fed or protected under any circumstances. In interpreting the last two lines we have followed the Commentator and translated accordingly. But that lowers the dignity of women. In this śl. three kinds of servants are mentioned; the first two forming one class (to be avoided); the last a different type of servants. The last two lines should therefore be construed as येषां गुणा नृपतेः भूतये समुदिताः ते इतरे भृत्याः सम्पत्सु आपत्सु च कलत्रमिव those other servants &c stick to their lord like a wife in prosperity as well as in adversity. For such a high ideal of servant and wife, *cf.* यस्मिन्कृत्यं समावेश्य निर्विशङ्केन चेतसा । आस्यते सेवकः स स्यात्कलत्रमिव चापरम्॥ Pt. I. 85.

P. 30. **नशयान**—A comp. सुप्सुपा; see Malli on नातिशीतोष्णः Ragh. IV. 8. **तद्ग्रहणं प्रति यत्नः**—Chāṇakya had a double object to accomplish—to secure the whole kingdom of the Nandas for Chandragupta and to win over Rākshasa to his side. For this purpose he formed the following plan. He procured the death of Parvateśvara, but could not have killed Malayaketu also without risking his popularity. He, therefore, secretly frightened Malayaketu by the suggestion that the murder of his father proceeded from him; but at the same time he spread a report that Rākshasa had killed Parvateśvara. He strengthened the report by suffering Malayaketu quietly to escape from the camp of Chandragupta. He knew that Malayaketu would join Rākshasa and thus place himself in an adverse position to him and that then it would be easy to get rid of him. The rumour circulated was intended to be afterwards the means of destroying the alliance between Malayaketu and Rākshasa and thus to throw each of them into a desperate condition. See the Com's remarks. **विषकन्या**––विषरूपा or विषमयी कन्या a Comp. of the शाकपार्थवादि class. a beautiful maid with a body gradually poisoned to such a degree that intercourse with her would prove to be instantaneously fatal. This artifice of employing the poisoned maid to get an adversary quietly out of the way seems to have been sometimes resorted to in ancient times, as writers on medicine make a reference to it. *Cf.* Suśrūta––विषकन्योपयोगाद्वा क्षणाज्जह्यादसून्नरः । तस्माद्वैद्येन सततं विषाद्रक्ष्यो नराधिपः । Kalpasthāna I. 5. and Vāgbhaṭṭa—आजन्मविष संयोगात्कन्या विषमयीकृता । स्पर्शोच्छ्वासादिभिर्हन्ति तस्यास्त्वेतत्परीक्षणम् तन्मस्तकस्य संस्पर्शान्म्लायेते पुष्पपल्लवौ । शय्यायां मत्कुणैर्वस्त्रे यूकाभिः स्नानवारिणा । जन्तुभिर्म्रियते ज्ञात्वा तामेवं दूरतस्त्यजेत् ॥

भागुरायणेन––see *infra.* III. p. 176 **मति**––advice, counsel. **परिगृहीत** entirely assisted or guided by. **व्युत्तिष्ठमानः**––उदोऽनूर्ध्वकर्मणि Pān. 1.3. 24. The root स्था preceded by उद् is Ātm. when it does not mean 'getting up,' *i. e.* is used in a figurative sense such as (striving for, making a great effort, &c.). *Cf.* Kir. XI. 13, Śis. II. 101. XIV. 17, Bhaṭṭi VIII 13. **निग्रहीतुं**––to hold in check, to subdue, to secure. **निग्रहात्**––goes with प्रमार्ष्टुम्. Why Chán. did not want to do this will be apparent from the events of Act V.

P. 30. **अनुरक्तापरक्त**—a conjunctive Dvandva. **बहुविध** &c.—Dissolve बहुविधा देशाश्च वेषाश्च &c. **सञ्चार**––'Modes of proceeding, dealing' as Mr. Telang takes it; or modes of moving in; or वेष, आचार &c. obtaining in various countries. **व्यञ्जन**––external form or appearance, disguise; *cf.* अमात्यव्यञ्जना राज्ञां दूष्यास्ते शत्रुसंज्ञिताः । Śis. II. 56. तपस्वीव्यञ्जनोपेतः Hit. **निपुणं**—may better be taken as an adv.

प्रचारगतं—actual doing, movements. **तत्तत्कारणं**—See com. and Act. III. p. 178. **उत्पाद्य**—shows that the causes were not real but feigned ones. **कृतकृत्यतामापा०**—have been made happy (kept satisfied) by creating various opportunities for that purpose; it may also mean—made to promote our interest or to subserve our object, *vis.* to effect a split in the enemy's camp and to alienate Mal. from Rākshasa; see com. also. Mr. Dhruva takes कृत्यतां in the sense of 'Malcontents' (who were made to desert our ranks and to join the enemy under the feigned character of malcontents) and quotes Somadevasūri—स्वामिदोषस्वदोषाभ्यामुपहतवृत्तयः क्रुद्धलुब्धभीतावमानिताः कृत्याः। In this case *cf* K. n. XII. 22. (कृत्यपक्षोपसंग्रहः). The reading कृतककृत्यतां. also seems to be probable. It makes a positive step in Chāṇakya's plan to circumvent Rākshasa. It means 'They have been advised to show themselves, as outwardly discontented and therefore hostile. On p. 164 Chān. refers to भद्रभट and others as विरक्त ; this shows that there was कृतककृत्यता. The reading तत्तत्कृत्यतामा० 'made to execute business of various sorts' is simpler. **सहोत्थायिनः** —adherents; lit. rising against the Nandas along with. *Cf.* सहाध्यायी further on. **तीक्ष्णरस**—poison. Kings were required to be protected also from persons employed by their enemies to administer poison to them secretly; see K. n. VI. 9. On रस meaning poison of *cf* D. K. VIII. शस्त्राग्निरसप्रणिधयः &c.; अश्मकेन्द्रप्रयुक्तास्तीक्ष्णरसदादयः *idem*, further on. **परीक्षितभक्तयः**—परीक्षितं भक्तिः येषां, परीक्षितं being सामान्ये नपुंसकं ; see Mall. on दृढ़भक्ति, Ragh. XII. 19. **औशनसी**—Composed by Uśanas or Śukrāchārya, son of Bhṛgu preceptor of the *Asuras*. **दण्डनीति**—दण्डो नीयते बोध्यते अनया, दण्डं नयतीति वा ; science of government or politics. **क्षपणक**—a Jaina mendicant. **लिङ्ग**—an external mark; *cf* यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ Rag. VIII. 16. वर्णिलिङ्गी Kir. I. 1.—**धारी**—Chāṇa. had him first put on the disguise of a Kashapa., and then asked him to go to Kusumapura, **तेनेदानीं महत्कार्यं**—This will be seen from the 5th Act. Here Chāṇ. pursues the policy of *Dvaidhībhāva*.

प्रधानप्रकृति—The chief of or the central figure in the Prakṛtis, the king; for the Prakṛtis, see *supra*, note on मण्डलम्. Mr. Telang reads प्रधानप्रकृतिषु अस्मासु. But evidently it is not a good reading. In the first place Chāṇakya would not call himself प्रधान; secondly our reading agrees well with the context further on. See p. 236; *cf.* प्रधानप्रकृति in प्र० कोपः ;

Māl. Mād. X p. 217, where it may be taken to mean 'King.' **तन्त्र**—administration, governing. *Cf.* लोकतन्त्राधिकारः, and प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा Śāk V. 5. **उदास्ते**—remains indifferent or apathetic; takes no interest in state matters or politics.

P. 32. **अभियोग**—close application or attention to; see p. 14. Sl. 16.—Fig.—a mixture of अप्रस्तुतप्रशंसा and तुल्ययोगिता.

यमपट—A roll of cloth (*cf.* प्रसार्य p. 36.) containing a series of pictures illustrative of the exploits of Yama or connected with his court. The Instr. is उपलक्षणार्था. The exhibition of Yamapaṭa was one of the sources of making money; see Harshacharita p. 170 where a Yamapatika, exhibiting the scenes in Yamapurī painted on a piece of cloth is described (परलोकव्यतिकरं कथयन्तं यमपटिकं ददर्श ।).

Sl.s. 17. 18. **विषम**—Fearful, unrelenting. The two sl.s have a hidden meaning (वस्तुध्वनि). The first warns the people to pay their homage, and to be loyal to, Chāṇakya; lest it would be a dangerous game to offend him (by professing loyalty to the Nanda family). The second means that the followers of Chāṇakya alone will be safe. The fig. in sl. 17 is *Kāvyalinga* (according to some अप्रस्तुतप्र०) in the 1st half and *Vyāghāta* in the 2nd.

P. 36. **सुगृहीतनामन्**—सुष्ठु *i.e.* सुखाय शुभाय वा गृहीतं नाम अस्य; lit. one whose name it is auspicious to invoke or utter. It is an epithet to be used when speaking about persons entitled to respect or veneration; see Daś. R. II. 68. **धर्मभ्राता**—धर्मेण जातो भ्राता one who is in a similar relation to that of a brother, as by learning under the same *Guru*, or by professing the same religious creed, &c. **चोरयितुं**—to steal away, hence here, to assume it on one's part, or to deny. This passage (from **चरः**—हं हो वह्मण........to **चाणक्यः**—चन्द्रगुप्तादपरक्तान्पुरुषाञ्जानामि &c.) is quoted in the Das R. pp. 85-6 with different readings as an instance of Nālikā, a sub-divison of Vīthi, which is defined as सोपहासा निगूढार्था नालिकैव प्रहेलिका । **कस्स चन्दो** &c.—The spy insinuates that he knows the people who are not attached to Chandragupta and that Chāṇ would want to know them. The pupil, ignorant of politics, had not the good sense to perceive this hidden meaning and calls the spy 'a fool.'

P. 38. **कमलानां** &c.—**कमल** is a lotus blooming at sunrise; *cf.* कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव । Śāk. V. 28. **उपक्षिप्त**—thrown out, hinted, insinuated. **प्रकृति**—subjects. **कथमयं**

&c.—Some read here—**कथं प्रभूतत्वात्** &c. (see readings); but this is rejected, as it goes against Chan.'s. character as a man of keen perception and strong memory.

वृषलमनुरक्ताः—Notice the Acc.; in such cases अनु should be taken separately and treated as a **कर्मप्रवचनीय**. See *supra*, note on अनु p. 14. and A. G. § 94. **विरागः**—Discontent, disaffection. **अस्ति**—*indec.* used as an introductory particle. 'अस्ति सत्वे' Amara.

P. 40. **नामधेयत :**—*Cf* मातरं नामतः पृच्छेयं S'ak. p. 199. **चाणक्यः**—सहर्षं see the reason of this explained in the com.

P. 42. **कायस्थः**—A man of mixed class (proceeding from a Kshatriya father and Śudra woman). *Cf.* Yāj I. 336. Mṛch IX. The Kāyasthas, who formed the writer-caste, seem to have been much looked down upon in old days. The name Śakaṭadāsa is to be noted. It seems to belong to Eastern India where the Káyasthas are still a large and an important class of the population, and Dāsa is still a prevailing surname."—Telang.

मात्रा—*Lit.* measure, hence consideration, significance. **प्राकृतमपि रिपुं**—*cf.* अल्पीयसोऽप्यरेर्वृद्धिर्महानर्थाय रोगवत्। Malli. on Śis, II. 10.

श्रेष्ठी—श्रेष्ठं धनादिकमस्त्यस्य। **चन्दनदास**—may be a Bengalee or a Gujarāthi name, but more probably the former here. **न्यासीकृत्य**—Leaving as a trust or deposit, न्यस्यते इति न्यासः ; fr. अस् with नि and (घञ् added कर्मणि); न न्यासः अन्यासः ; अन्यासं न्यासं कृत्वा.

P. 44 **अङ्गुलीप्रणयी**–अङ्गुलौ प्रणयोऽस्यास्तीति; will be the seeker of my finger, *i. e.* will come into my power, fall into my clutches. For a similar, though not identical use, *cf.* कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः। Kum V. 11. **विस्तरतः**—mark the difference between विस्तर a detailed account and विस्तार expanse. विस्तार is derived from स्तॄ with affix घञ् (अ) by प्रथने वावशब्दे Pān. III. 3. 33 (प्रथने किं तृणविस्तारः, अवशब्दे किं ग्रन्थविस्तरः। Sid. K.); विस्तर is derived with अप् (अ) by ॠदोरप् Pān. III. 3. 57 (roots ending in ॠ and उ take अ); *cf.* विस्तारो विग्रहो व्यासः स च शब्दस्य विस्तरः Amara; while there is a third word derived from the same root with वि, *viz.* विष्टर in the sense of 'a seat' Pān. VIII, 3. 93. **अस्ति**—An Avyaya; you know, as you remember; see *supra* p. 19. **अपवरक**—*Lit.* what is covered; an apartment, a room; from अपवृ+अक; also **अववारकः**; it cannot mean 'a window' here, as the woman is mentioned as having seized the boy at the entrance (द्वारदेश). **देशीय:**—the affixes देश्य, देशीय and कल्प are added in the sense of 'bordering on, little less than;' ईषदसमाप्तः न्यूनो वा पञ्चवर्षं; पञ्चवर्षदेशीयः. देशीय is originally derived from देश (पञ्च वर्षाणि देशस्तत्र भवः); *cf.* अष्टादशवर्षदेशीयां कन्यां Kàd. p. 212.

दापित—Cau. used in the primitive sense (दत्त); or it may have the cau. sense also; who was made (by the event or circumstances) to show her face, &c. **पुरुषाङ्गुलि** &c.—This gives the reason why the ring slipped down so easily. **देहली**—देहं गोमयाद्युपलेपं लातीति । **निभृता**—breathless, motionless; *cf.* निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफं; Kum, III, 42. Mr. Apte takes निभृत in the sense of modest, humble, (Dic.); *cf.* in this respect अनिभृतकरेषु प्रियेषु Meg. II. 7. **मुद्रायाः आगमः**—here begins the प्रतिमुखसन्धि. See com. The acquisition of the ring is the incident which gives rise to the Bindu. (See Introduction). For the passage cited in the com., see D. R. pp. 13, 14.

P. 48. **जयशब्दः**—The announcement of victory, *scil*, that in जेदु &c. coming immediately after जेतव्यः. Such an accidental utterance is supposed to indicate future success or otherwise and forms a common device in Sanskṛit dramas. It is technically called गण्ड and is classed as a subvariety of *Patākāsthāna*. It is defined as—गण्डः प्रस्तुतसम्वन्धि भिन्नार्थं सहसोदितम्; *i. e.* an unexpected utterance of words having a distinct bearing, but so put together as to be syntactically connected with the matter in hand. Daś. Rūp. III. 18. *Cf.* किमस्या न प्रयो यदि पुनरसह्यो न विरहः । दौ०—देव उपस्थितः । Uttar. I. &c.; also अज्ज गहीदो । &c. p. 37 *infra.**

o Wilson remarks—

The Greek plays are full of similar instances, and they are sufficiently abundant in every other department of classical literature. Cicero cites various curious examples in his book "De Divinatione." That related of Lucius Paulus is very analogous to the instance in the text. 'Lucius Paulus, the consul, had been appointed to conduct the war against Perseus. On returning to his house in the evening he found his little daughter Tertia full of grief, and on asking her what was the matter, replied '*Persa*(*a puppy so named*) is no more.' Taking her up in his arms, and kissing her, the consul exclaimed.—"I accept the omen,' and the event corresponded with the expression." The effect of the omen seems also with the Hindus, as well as the Greeks and Romans, to have depended in a great measure upon a person's applying it, and signifying his acceptance of it...*Oionon* dekesthai. Omen arripere, and Sabdam Grihitum, are terms of similar import in there languages.

P. 48. **पारलौकिकं**—परलोक: प्रयोजनमस्य; परलोक+इक (ठञ्); *lit.* what is intended for, beneficial to, one (*i. e.* secures a good position for one,) in the next world; hence, the religious rites to be performed on one's demise. **धारितपूर्वाणि**—पूर्वं धारितानि धारित:०; a comp. सुप्सुपा; पूर्वं may optionally come first in such comp.s. the authority being Pān's, similar use of it in the sūtra भूतपूर्वे चरट्. **ब्राह्मणानां**—The Prākṛta Gen. for the Dative. Parvateśvara being a Mlechchha the question arises—how Chandragupta could perform his obsequies. The probable answer is that these foreigners on coming to India tried to mix with the people by adopting not only their dress and manners but even their religious ceremonies.

अस्मद्वचनात्—is an expression of frequent occurrence. It means—in my name, at my command or direction. **उत्तरोलेखार्थः**—अर्थं subject matter. The latter part refers to the ornaments which the three brothers are directed to receive from Chandragupta and to bring them to him (Chāṇakya). See the letter at p. 112, *infra.*

P. 50. **कौलूतः**—कुलूतानां राजा; कुलूत+अण् king of the Kulūta country. Kulūta is the name of a district (the modern Kulu, according to Mr. A. Borooah) lying to the south-east of Káśmira and to the north east of the Jālandar Doab on the right bank of the Śatadru (Sutlej). It appears to have been a flourishing kingdom in the 6th and the 7th centuries as it is mentioned by Bāṇa, Varāhamihira and also by the Chinese pilgrim Hiouen Tsang apparently as lying on the way from Jālandar to Mathurā and Thaneśvar, Telang's Intro. p. 32.)

मलयनरपतिः—King of Malaya. Malaya does not seem here to refer to the southern portion of Ghats running from the south of Mysore and forming the eastern boundary of Travancore. Although it is not clear from the play that all the kings were Mlechchhas, as they are spoken of as only म्लेच्छराजलोकस्य मध्यात्प्रधानतमा: yet it is probable, since all these names refer to the Northern and North-western part of India, that they were so and belonged all to Northern India. According to Prof. Dhruva—On its (Malayaketu's kingdom) eastern border should be placed the kingdom of Malayadeśa. Its site is roughly indicated by modern Malebhoom (Malayabhumi.) It lay probably between the Rapti and the Gaṇdakī in Nepāl. The hill state of

Malayaketu was bounded on the east by Malayadeśa, in the south by Kulūta and on the west by Kāśmīra.

काश्मीर—This province is still known by the same name. **सैन्धव:**—King of Sindhu, the country around the Indus. **पारसीकाधिराज:**—King of the Pārasīkas. These are supposed to be the ancient Persians, or inhabitants of that part of Persia which borders on the Indo-Afgan frontier. **पृथुतुरगबल:**—The ancient Persians were known for their cavalry; *cf.* Ragh. IV. 62.

ध्रुवम्—Indelibly ; not to be effaced. **चित्रगुप्त:**—One of Yama's servants, who registers men's virtues and vices. See Muir's Sans. Texts, Vol. V. p. 302. One of the duties attaching to Chitragupta's office is to inform Yama as soon as a person's period of life expires. **प्रमाष्टुं**—Chāṇ, is so sure of the success of his plan that he asks Chi. to take off the names of these kings from his register as he would send them in time to the abode of Yama, without his being least anxious about it. Mr. Telang compares Milton's phrase—blotted out from the book of life. See his notes.

अथवा न लिखामि—Chāṇ., on a second thought, changes his mind and does not write the names of the princes he wishes to destroy in the letter for the obvious reason that Śakaṭa in that case would not only not copy it but give warning to Rākshasa. It was, however, of prime importance to him to have the letter copied just by Śakaṭa, who enjoyed Rāk.'s confidence and who became (as Chāṇ. with unmistakable foresight expected him to be) his secretary afterwards. The success of Chāṇakya's plan depended on that. The defect in the letter was made up by the oral message.

पूर्वं —We should have adopted the reading **सर्वम्**. By saying **उत्तरोऽयं लेखार्थ:** Cháṇ. does not state what it is; and then he wishes to keep the first part also vague, by saying **अथवा** &c.; and we see from the letter (see pp. 264-266) that is was not the first part only that was vague but the whole writing. So the reading **सर्वं** is better.

बाह्यनाम—The name of the addressee. **उपतिष्ठस्व**—**स्था** with **उप** is Atm. in the senses of '**उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यं** Vārti. on Pān. I. 3. 25; here it means—**संगतिकरण, जयतु आर्य:**—Another case of **गण्ड** (see above, p. 48 as the words taken in conformity with Chāṇ's previous speech जितो मलयकेतुः means आर्यः मलयकेतुं जयतु. अनुवाच्य—अनुवाच् to read silently or to oneself as distinguished from 'to read aloud' *i. e.* in the hearing of others.

P. 52. आप्त—Very friendly, trustworthy. *Cf.* Rag. V. 89. परेषु—The enemies; see p. 256. भयापदेशात् *i. e.* outwardly showing that they were frightened; otherwise it would appear like a thing planned beforehand. प्रयोजनं—see p. 254. *et seq.* कर्णे एव०—The further part of the communication was more important and therefore Chāṇakya, to secure great secrecy whispers it into his ear. The poet also wants to keep up the interest of his audience in the subsequent development of the plot.

यदार्य आज्ञापयति—We should expect the stage, direction इति निष्क्रान्तिः after this; but that would not serve the poet's purpose. He wanted him there to say आर्य गृहीतः (see next page) which forms the पताकास्थानं. So he represents Chāṇ as hastily calling out to his pupil without handing over the writing to him.

कालपा०—कालपाशः प्रहरणमस्य Pān IV. 4.57; similarly दण्डपाशौ प्रहरणमस्य (दाण्डपाशिक usually), the अ not taking Vṛddhi by the exemption given by the maxim संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः। Two police officers executing commands. Or कालपाशिक may mean (कालस्य इवः पाशः यस्य) the officer who gave the command and दण्ड० the officer who executed it. All Mss. (even the one followed by Wilson—see H. T. Vol. II. p. 167) give these as two different names. Mr. Dhruva, however, reads काल० दण्डपाशिकः treating the first as the name of the executing officer on the analogy of दुर्गपालो विजयपालः further on (see p. 70); and this seems to be a better view. वृषलः समा०—The command is really given by Chāṇakya in the names of Vṛshala as the former really wielded all power.

P. 54. निकारः—disgrace, ignominy ; *cf.* Kir I, 43. अपि नाम—indicates a wish and introduces a question with respect to that wish being realised. It may also mean here 'Is it likely that?' अज्ज गहीदो—Sid., who was waiting for the letter Chāṇ. had to give him, finds him absorbed in thought and thus exclaims to call his attention to him. Of course the words prove auspicious to Chāṇakya. This is another instance of a *Patākasthāna*; see *supra*, note on जयशब्दः p. 48.

P. 58. चाणक्कम्मि—The loc. serves the purpose of the

Inst. by the rule द्वितीयातृतीययोः सप्तमी. If treated as loc., the meaning will be 'Chān. being ruthless, when one called &c.; but the first way is preferable. **शब्दायितस्य**—P. p.p. of शब्दायते to denote fr. शब्द+क्यङ् (शब्दं करोतीत्यर्थे) Pān. III. I. 17. **चाणक्यहतकः**—हतः condemned by fate &c.; हत एव हतकः; चाणक्यश्चासौ हतकश्च; हतक is a depreciatory term mostly used at the end of compounds and means 'cursed, miserable, vile, &c. See रामहतक Uttar. I. Sometimes it precedes the word with which it is used; हतविधिः; हतकहिमांशुः Vid. **विचाययति**—stands for विचाययिष्यति; the pres. may optionally be used by the rule विभाषा कदाकर्ह्योः Pān. III. 3. 5. **उपचारः**—Attention to, honour or respect shown, उपचर्यते अनेन by adding अ (घञ्) करणे ।

P. 60. **संभावितं**—is here equivalent to संभावना, an act of due civility. The other reading is simpler. **उपक्षिप्तं** &c.—Chand. sees a sly hint in Chāṇakya's words that he would take the matter in that light having a guilty conscienc. **किमपि**—the loss of the ring leads Chand. to suppose that Chāṇ. might have known about Rāk.'s wife and son being in his house.

संव्यवहार—Honest, fair transactions. Chāṇakya perhaps pays here a compliment to the merchant. The pl. shows that Chand.'s business was not confined to jewelry only. **वृद्धिलाभाः**—the earning of interest and trade profits, emoluments. **वाणिज्या** वणिजः कर्म (भावो वा); fr. वणिज्+य by the rule 'दूतवणिग्भ्यां च (Bha. Dik. and Kaś,); but the Sid. Kau. remarks वणिज्यमिति काशिका। माधवस्तु वणिज्याशब्दः स्वभावात् स्त्रीलिंगः। भाव एव चायं न तु कर्मणीत्याह। भाष्ये तु दूतवणिग्भ्यामिति नास्त्येव। More correctly, therefore, explain वणिजि साधुः; यत् being affixed by Pān. IV. 4. 38, The form वाणिज्या is incorrect unless we read वाणिज्या लाभाः in which case it will be an *adj*. derived from वणिज्या; or read वाणिज्यं (ब्राह्मणादित्वाद्वाणिज्यमपि Sid. Kau.) by adding ष्यञ् ।

अपि चन्द्रगुप्तदोषाः—mark how cunningly the question is asked; either way it would assume faults on the part of Chandragupta. **स्मरयन्ति**—स्मृ cau. to cause to remember with regret or longing for the past. (स्मृ आध्याने। आध्यानमुत्कण्ठापूर्वकं स्मरणं। Sid. Kau.). *Cf.* Śis VI. 56. **स्मारयन्ति** will simply mean 'to put in mind of, to cause to remember' which does not seem to be intended here.

शान्तं पापं—The clever merchant understands what Chāṇ means and outwits him, by exclaiming thus. This is an expression constantly occurring in plays and expressing one's disapproval of or abhorrence at blasphemous or malevolent words; or indicating a wish that some evil should be averted. **पूर्णिमा**—पूर्णं चन्द्रस्य पूरणं तेन निर्वृत्ता (aff. इमम्). **प्रतिप्रियं**—प्रतिकृतं प्रियं, प्रतिप्रीणातीति वा. See Rag. V. 56.

P. 62. **किं कित्तिअं** &c.—Chandanadāsa thought that Chāṇ. wanted a money payment from him. **नन्दस्यैवार्थरुचेः**—Brāhmāṇic and Buddhistic accounts tally in depicting Nanda as very avaricious. The Nandas were said to possess the fabulous amount of 99 crores of gold coins. As to the cupidity of the Nandas, Mr. Telang refers to Max Muller's History of A. S. Literature pp. 289-296, and adds 'cupidity seems to be attributed to the Mauryas also.'

अपरिक्लेशः—*Lit.* non-punishment or not torturing (*i. e.* not having to punish people like you but to keep them satisfied). The adoption of stringent measures or परिक्लेश is a kind of दण्ड or punishment; *cf.* वधोऽर्थग्रहणं चैव परिक्लेशस्तथैव च । इति दण्डविधानज्ञैर्दण्डोऽपि त्रिविधः स्मृतः K. n. XVII. 9. Chāṇ. means to suggest that Chandragupta would be happy not to have recourse to harsh measures against his subjects (such as imprisonment, torturing them, &c.). **ननु प्रष्टव्याः**—न प्र० *v. l.* should be taken as a question; "should we not be asked ?"

राज्ञा विरुद्धः—is ungrammatical; and has to be explained as राज्ञा सह कृतविरोधः; it should rather be राज्ञः or राजनि वि०; or read राज्ञो &c.

स्वगृहे & c.—The reading स्वगृहमभिनीय is rejected as it goes against the context. For in the next speech Chāṇ. accuses Chand. not of taking the wife and son of Rāk. to his house but of giving asylum to them when left there by Rāk. himself, which appears to have been the case even from the words of Rāk. at p. 88.

P. 64. **अलीकं**—False; he means—नाधुना रक्षामि, leaving room to say—पुरा आसीत् **अनभि०**—That is—by one who does not know that Raks.'s household is not with me now.

वाक्छलं—Dishonesty (here unintetional blundering) in words and not in reality. Chandandāsa lays strees on Chāṇ.'s अद्यापि and wishes to convey to him the idea that he denied the presence of Rāk's family in his house atthe time he was speaking but does not wish to hide the fact that it was with him before that time. But he, admits that he might be charged with seeming dishonesty in words only, inasmuch as he did not state it in plain terms before. **चन्द्रगुप्ते राजनि**—King Chan. is no acceptor of frauds, *i. e.* would not tolerate &c. Notice the Loc.; or it may be Loc. Abs.; when Chan. is the king. *i.e.* 'in the reign of Chandragupta.'

(ज्ञायते) **नाम**—may be here **संभाव्ये** (in the sense of possibility) or **कुत्सायां** (you are foolish enough to deny knowledge &c.). **शिरसि भयं** &c. The danger is immediate, the remedy far off. (1) the apparent meaning—dangers easily befall man; remedy for them is not within easy reach. Therefore, one, must not tempt them. (2) Hidden sense—you will be immediately punished; you cannot expect Rākshasa to save you, being far away.

उपरि घनं &c.—In the case of men who are away from home, it is a hard calamity to have the rains set in before they return home. For the idea *cf.* Meg. I. 3 and Rag. XIII. 28. **घणाघण** *V. l.* means a cloud ready to burst. '**वषुकाब्दो घणाघणः** Amara. **हिमवति** &c.—The mountain Himālaya is famous for herbs of great potency and virtue. *Cf.* Kum. I. 10. This stanza (with a variety of readings) is quoted anonymously in the Sar. Kan. as an instance of **उत्तरवक्रनिदर्शन**.

We have removed this sl. from the text as it is not in accord with the merchant's attitude in this case. He had come from home prepared to meet any fate and to make any sacrifice in the cause of his friend. To attribute fear to him goes against the self-possession and firmness of purpose which he displays throughout this scene. Wilson, too, does not seem to have had the sl. in the Mss. consulted by him; *cf.* his trans.—Beware, The hooded snake hangs over you, and far Your hope of safety lies. As Vishṇugupta &c. Will Nanda—

P. 66. **नयशा०**—**नीयते अनेन इति नयः** (fr. **नी+अच्** *i. e.* **अ**); polity; statecraft, **तेन शालन्ते इति शालिनस्तैः सुसचिवैः**—Chāṇ. means—Rāk. cannot be expected to do, single handed, what he failed to do when assisted by his brother ministers and those too, able statesmen. **वक्रणास**—The **न** of **नासा** is changed to **ण** as the whole is a **संज्ञा** or name; see Pān. VIII. 4. 3. **चन्द्रादिव**

—comparison to the moon suggests that Śrī must be regarded now as inseparably united with Chandragupta.

आस्वादित &c. **इच्छति** must be taken in this case in the sense of the poten. (इच्छेत् *i. e.* in the sense of impossibility or अनवक्लप्ति)—who will wish to attempt the impossible task &c. ?; no one. **संवादितं** made to agree with, justified; one Ms. reads विसंवदिस्सदि (will be proved false) in which case फल would refer to the result of the battle contemplated by Rākshasa. **कलकलः**—उत्सारणा *V. l.*—driving away of the people by the policemen. But this will leave less room for Chāṇ.'s next speech than the word कलकल does. **अहह**—is used here खेदे.

P. 74. **सुलभेष्व०**—संवेदन in the sense of समर्पण is unusual ; निवेदन is the word used in that sense; Rag. XIV. 70. Or, this may mean 'by putting another into distress, by betraying another **शिबिना**—As to Śibi, see notes on VI. 18.

P. 70. **दुर्गपालः**—The keeper of the fort or superintendent of the prison. Some read च after विज०, making दुर्ग० a proper name. But the sing. रक्ष further on shows that one person is meant. See p. 366 also. **०सार**—valuables, property. **पुरुषदोष**—Faults common to humanity, *i.e.* a fault on my part.

P. 74. **साधु**—may also go with **कृतः** &c.; you have made an excellent beginning. Chāṇakya says this स्वगतं. The shrewd politician does not want his pupil even to know what his plans are. **संभावय** catch or overtake. Mark this sense of the root. *Cf.* अपि नाम जीवन्तीमेनां संभावयेयं Māl. V. **तन्त्र**—Arrangement. **शिवाः पन्थानः सन्तु**—I wish them godspeed. It will be seen afterwards that this was meant as a ruse to get Rāk. into scrape.

प्रधार्य हृदये—*Cf.* Śāk. किमपि हृदये कृत्वा Act. I. **कामं प्रकाम०**—One of these is superfluous both being synonymous. (See Amara. II. 9. 57). कामं, however, may be taken to mean. 'If they desire although they do not' (अकामानुमतौ कामं Amar. III. 4. 13.); or the reading सकामोद्यमाः should be preferred 'whose effort (to go) is successful.'—**महिमा** mark the comp, ending; we have either महिमा (with the form आ), or महिम्नी ; and also ०महिमन् ; see H. G. § 327. **बुद्धिस्तु मा गान्मम**—Chāṇakya speaks like one quite conscious of the success his plot is to attain. He knows how excellently it was begun.

P. 76. **स्वच्छन्दं**—Some take it adverbially with विगाहमानं;

but it is not good as it breaks symmetry and is exposed to the fault of दूरान्वय. **एकचरं—एकश्चरतीति तं;** (1) moving about (*i.e.* acting) alone, away from the relatives and friends of Nanda; (2) straying from the herd. *Cf.* Kir. XIII. 3. **उत्सेकिन्—** from उत्सिच् to overflow or to spout up ; excessive. **विगाहमान—** (2) forming schemes; (2) roaming about. As this is a trans. verb. the object **नय** in the first case and **वन** in the second must be supplied; *cf.* in the first case **विषमोऽपि विगाह्यते नयः ।** Kir. II. 3. **मदबलेन विगाह्यमानं** *V. l.* meaning 'affected with the pride of valour or strength' will be better from a grammatical point of view, though less forcible. **आरण्यकं—अरण्ये भवः** आरण्यकः fr. अरण्य+अक (वुञ्) by **पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिषु** इति वाच्यम् । Vart. on Pān. IV. 2. 129 **प्रगुणीकरोमि** (1) make you eminently fitted for, prepare you for; (2) break in for use. The comparison with he elephant implies power but without a proportionate degree of mental vigour or acuteness of intellect. The fig. is repeated at p. 81.

ACT II

P. 80. With this Act begins the *Garbhasandhi* (see com.) which is a combination of **प्राप्त्याशा** (a certain in hope about the attainment of the final object) and **पताका** or an episodical dramatical incident. For further particulars see com. p. 11. For the passage **अभूताहरणं** &c. quoted in the com. see D. R. p. 19.

Having depicted in the 1st Act the character of Chāṇakya as a sound politician, seeing bforehand with the clear foresight of a statesman the doings and policies of his adversary and promptly taking measures to counteract them with perfect confidence in his own powers and diplomatic skill, the poet proceeds to give in this Act that of his political rival, Rākshasa. He is described as a man unsuccessful in all his undertakings, as one wanting in that keen political insight which enables a statesman to see through incidents the machinations of his enemies that lie behind them. He is thus the reverse prototype of Chāṇakya.

आहितुण्डिकः—A juggler, a serpent-charmer अहितुण्डेन दीव्यतीति; fr तुण्ड+इक (ठक्), Pān. IV. 4. 2. Also अहितुण्डिक Vṛddhi being optional; see note on दण्डपाशिक p. 54. तुण्ड being the principal part of a serpent's body which attracts aṭtention is used here for the body by लक्षणा.

तन्त्र—There is a श्लेष or pun upon the several words of this sl.; the double meanings are explained in the com. **तन्त्रयुक्ति**—(1) The proper selection and application of drugs that serve as antidotes; (2) the judicious management of state affairs; administration of one's own state (and not of foreign matters). See com.; Malli. quoting Vaij. in his com. on Sis. II. 88 says तन्त्रः स्वराष्ट्रचिन्तायाम्; so the 2nd तन्त्र may be *mas.* in this sense. **मण्डल**—in the case of the snake means the enchanted circle which a serpent-charmer draws round a snake to keep it within its limits. In the case of the king this may mean the circle of the constituent parts of a kingdom, as the Com. takes it; or the band of twelve kings, viz. the frontier friendly, hostile and neutral kings, &c.; see Malli. on Sis. II. 81. For various kinds of Maṇḍalas see K. n VIII. **मन्त्र**—(1) charms and (2) state secrets. **सप्पणराहिवे**—may be translated by सर्पनराधिपान् kings and serpents. **उपचरन्ति**—(1) prescribe remedies, (2) deal with, serve.

God save me

आकाशे—This is what is technically called आकाशभाषितं For its definition see com., where the quotation is from D R. p. 51. It is a speech addressed to some one not present on the stage but supposed to be behind the curtains and within earshot. See *supra.* note on प्रत्यक्षवदाकाशे. p. 26. In reply to his question the actor pretends to hear something said by the person or persons addressed and repeats it for the audience by asking the question 'what do you say, &c.'

खेलत्येवार्योऽहिना—He means—To serve a king is playing as dangerous a game as playing with serpents. **अहि**—is a word of Vedic origin and originally meant the malignant influence personified as a demon (also called Vṛtra) that kept confined the celestical cows (the waters) which Indra liberated by killing the demon. Then it came to signify the malignant snake.

P. 80. **व्यालग्राही**—see com.; व्यालं गृह्णातीति will give व्यालग्राहः. **मत्तमतंगजारोही**—*V. l.*—मत्त is emphatic; a rider who is foolish enough to ride a mad elephant. The reading adopted in the text is better as it keeps up symmetry. **जितकाशी**—जित is used in the sense of the abstract noun जय (भावे क्तः) तेन काशते उद्धतो भवतीत्यर्थः; lit. appearing or behaving like a conqueror, assuming the airs of a conqueror; hence haughty, overbearing. Here the juggler evidently refers to Chāṇakya as likely to be ruined on account of his haughtiness. This he does to show to the audience that he is a partisan of Rākshasa. **पुनराकाशे**—The juggler meets with two men, the one a royal servant, the other an ordinary passer by. This second man is brought in, in order to introduce the juggler to the minister's house. **समुद्गक**—समुद्गच्छति that which rises well (assumes a beautiful form): इति a casket; समुद्रम् + ड (अ) + कन् स्वार्थे. See com.

संस्कृतमाश्रित्य—As Virādhagupta is not speaking in his assumed character he uses the language proper for him; as for the change of language, see D. R. II. 66. **०मतिपरिगृहीत**—aided, entirely guided, by the counsels of.

P. 84. **धीरज्जु**—The metaphor is repeated in VI. 4. **निबद्ध**—firmly bound (as लक्ष्मी is very fickle) **उपाय**—see I. 5.; the fig. is *Rūpaka*, **निकृष्य०**—forcibly (नि) pulled away.

संशयिता—संशयमापन्ना; p.s. of intran. roots are used actively. *Cf.* संशप्य कर्णादिषु तिष्ठते यः Kir. III. 4. Or we may add इत (च्) in the sense of तदस्य संजातं by Pān. V. 2. 36, as the तारकादि is an आकृतिगण.

वशा—A female elephant, a female (here) **गतागतैः**—The goddess of wealth is supposed to move to one side or to the other as the one or the other of the ministers proves to be superior for the moment, and hence she gets wearied by such repeated movements. *Cf.* Rag. VII. 93.

स्वभवनगतः:—(Add. reading) Sitting in the interior of his house.

वृष्णीनां—the Yādavas, so named after Vṛshṇi, an ancestor of Kṛshṇa. When Kṛshna, his earthly mission over, returned to heaven, the Yādavas perished by intestine divisions and quarrels among themselves, (as the result of a curse denounced upon them by अष्टावक्र) only a few surving. See M. Bh. XVI. **शान्त**—may also be taken in the sense of the causal, as in the com.

P. 86. **रात्रिदिवं**—रात्रौ च दिवा च; an irregular Dwa.

comp. **चित्रकर्म**—(1) painting; (2) diverse efforts, **भित्ति**—The background. Divested of the fig. it means support. Rākshasa means that since the Nandas are dead, all his activity is without the main thing-which should support it. Fig. fusion of *Upamā*, *Viśesha* and *Vibhāvanā*.

अथवा &c.—Herein he justifies his activity by saying that though he could not carry out his main object, *viz*, the rainstatement of the Nandas, yet he would be doing them a service by being active in that way.

०व्यासङ्गरूढ—*V. l.* Deeply set on the desire for, *i. e.* intensely fond of. **शात्रव**—शत्रुरेव शात्रवः by adding अण् (अ) स्वार्थे which is affixed to the words of the प्रज्ञादि group. See Pān. V. 4. 38.

गन्धगज—An elephant of a superior kind so called from the very strong smell its rut gives out. The possession of such an elephant is supposed to ensure victory to a king गन्धप्रधानो गजः Madhya. comp; *cf.* यस्य गन्धं समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्वीपाः। स वै गन्धगजो नाम नृपतेर्विजयावहः॥ See Ragh VI. 7. The comparison of Nanda to a Gandhagaja is intended to show Nanda's superior excellence as compared to Chandragupta's inferiority of birth **चपला**—Unsteadiness is usually ascribed to Lakshmi. *Cf.* Ragh VI. 41.

कुलहीन—कुलेन हीनः (having no family stock). Because he was a वृषल (a man of mixed caste being the son of a Kshatriya by a Śudra wife). **पुरन्ध्री**—A woman having her sons and husband living here used for a woman in general. पुरं कुटुम्बं धारयंतीति ; fr. पुर+धृ+खच् संज्ञायां. and ई fem. **विमुखी**—also विमुखा; not disposed to, will not notice or mind. The figs. in the last line are *Upamā* and *Arthāntarnyāsa*.

अकामां—अनवाप्तः कामो यया तां One who has not gained her object *i. e.* defeated in your wish to live with a low-born husband.

P. 88. **अनुदासीनः**—उदासीनः *V. l.* means—thinking that Rāk. is indifferent to *i.e.* does not take interest in, the cause **देवपादोप०**—पूज्यः देवः देवपादाः a *Nitya Samāsa*; पाद like मतल्लिका, प्रकाण्डा &c. indicates प्रशंसा; देवपादानुपजीवन्तीति देवपादोपजीविनः **उपजाप**-fr. उपजप् to whisper; secret communication. *Cf.* this with the kindred but slightly different sense it has at p. 134. This is in accordance with the dicta of politics. *Cf.* Kāmandaka on the work to be done through the agency of the spies:—रागापरागौ

जानीयात्प्रकृतीनां च भर्तरि ॥ कृत्यपक्षस्य चोपायं कुर्यादनभिलक्षितः । रिपोः शत्रुपरिच्छेदः सुहृद्बन्धुविभेदनम् (which corresponds to तत्संहतिभेदेन of the text) दुर्गकोषबलज्ञानं कृत्यपक्षोपसंग्रहः ॥ K. n XII. 8, 9, 22 **सुहृदो जीवसिद्धिप्रभृतयः**—This was the fatal mistake committed by Rākshasa. He had not the sagacity to look men through, but rashly admitted even strangers to his intimacy. **पोत**—fr. पू to purify; *cf.* the kindred Latin words *pulus*, *palaus*.

कञ्चुकी—The Kanch. is described as अन्तःपुरचरो राज्ञां वृद्धो विप्रो गुणान्वितः। सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥ तदुक्तं मातृगुप्ताचार्यैः—ये नित्यं सत्त्वसंपन्नाः कामदोषविवर्जिताः । ज्ञानविज्ञानकुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥ See also p. 140. **प्रतिष्ठा**—The state of being firmly established; stability; *cf. supra*, I. 14. and Rag. VIII. 10. **प्रसह्य**—*V. l.* for क्रमेण would mean 'by rigorous or repressive measures, in Chāṇakya's case. But Chāṇ. appears to have been anxious to win the affection of the citizens gradually and by gentle means. **अनु**—is a कर्मप्रवचनीय here; see p. 38 **लब्धान्तरः**—*Cf. infra.* sl 22. अन्तरान्वेषी भवामि Śāk. VII. p. 193. **च**—but (पक्षान्तरे) ; A. G. § 272.

P. 92. **विस्मर्तुं** an instance of Pass. *inf.* **पक्षपात**—A strong liking, affection *cf.* भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः । Kir III. 12; and अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया Uttar. V. 17 and *supra* p. 20. It, however, often means partiality, as in Māl. p. 22.

क्षपित—P. p. p. of the cau. of क्षि or क्षप् 10 conj. **सुगाङ्गः** :—Name of the palace of the Nandas at Pāṭaliputra, so called probably because it commanded a good view of the Ganges. **सिंहासनमिदम्**—of course Rāk. is speaking as if the throne of Malayaketu is before his eyes. *Simhāsana* does not mean here a throne of gold as it usually does (*cf.* सिंहासनं तु तद् हैमं Amara) but simply an excellent *i. e.* costly throne.

P. 94. **प्रतिमान्यताम्**—*i. e.* honour it by accepting the ornaments. **कुमार इव** &c.—The Canch. not only by his age but by the place he held in the palace and his scholarship and other good qualities was always entitled to respect. **सर्पदर्शन**—The sight of such cruel animals as snakes &c. is held to be inauspicious. *Cf.* Mṛch. IX. 12.

P. 96. **दर्शनकार्य**—What would have accrued from his having seen the show, *viz.* some present, remuneration. **प्राकृत-**

कवि—may mean 'a poet composing songs in the Prākṛta languages (प्राकृतेषु कविः; a comp. सुप्सुपा) or a petty poet.'

इति गाथार्थः—The hidden meaning is suggested by कुसमरस which means the talk of the people (रस from रस् which also means to sound) and भ्रमर also meaning a spy (fr. भ्रम् to wander). **अण्णाणं**—may also stand for अज्ञानां (as suggested by Mr. Dhruva) and mean 'those who are in need of such information.'

P. 98. **विराध**—Rākshasa unmindfully half utters the same of Virādhagupta, but suddenly checking himself tries to give the term a different meaning (of fantastic dress or appearance) by adding प्ररूढश्मश्रु :. See com. This he does to conceal from his servants the real character and name of the snake-charmer; *cf.* for a similar device Bhāsa's Pancharātra III भीमसेनः-अर्जुन (which might have disclosed the identity of the Pāṇḍavas). वृहन्नला-अथ किमथ किम् ।अर्जुनपुत्रेण (you mean to say अर्जुनपुत्रेण) which gives a different significance to the term. **भुजङ्गैरिदानीं** &c.—This is contrary to the purpose for which the apparent juggler was called in Rākshasa does not purposely allude to his *Subhāshitas* lest the servants might desire to wait there; at least he could not have unceremoniously asked them to withdraw and thus deprived them of the pleasure of listening to the songs. The sight of serpents was not such an unusual thing.

स्वं नियोगं &c.—This is the usual form used when a servant is to be asked to withdraw. *Cf.* Śāk. p. 51, &c.

P. 100. **आदितः**—Virād. understands this to mean—from the beginning of the whole affair, *i. e.* the attack on Kus. by the enemy.

शकयवन &c.—The terms here refer to the tribes and not their Kings. The Śakas appear to be a tribe inhabiting central India, who came in the first century preceding the Christian era and settled on the North-western frontier of India between the Indus and the sea—the Sacœ of the classical writers and generally identified with the Scythians. The Marāthi word शक is derived from this name. The Yavanas referred to here were probably the frontier tribes, inhabitants of Afghanistan and the neighbouring districts. They could not have been Greeks as Prof. Wilson supposes. *Kirātas*—a savage tribe which, according to Mr. A. Barooah, inhabited the hilly tracts just below the Himalayas, near Kumaon and Nepal. The Kambojas were a people that inhabited the Hindukush mountain which separates the Giljit valley from Balkh and probably extended upto little Thibet and Ladak. Their country was famous for handsome horses and shawls, and abounded in walnut trees. See Rag. IV. 69 and our note thereon. The Pārasīkas were doubtless the people who inhabited Persia and the adjoining regions. Their country was also famous for the best breed of horses. See Rag. IV. 60, where the horses are mentioned as coming from the Vanāyu country. Bālhīka is the name of the tribes that inhabited the north Punjab. In the Mah. Bhār. they are said to have inhabited the country watered by the Indus and the five rivers of the Punjab outside holy India'. Their country was noted for its breed of horses and asafoetida.

प्रवीरक—seems to be personal attendant of Rak. whose duty was to convey his master's orders to the generals and other officers. **क्षिप्रं**—One **क्षिप्रं** would seem to be redundant. To avoid tautology take the first **क्षिप्रं** as referring to the execution of the order and the other as modifying the **परिक्रमणक्रिया**, and the others. **प्रहर्तुमनसः**-**हृ** with **प्र** is generally construed with the Loc.; *cf.* न प्रहर्तुमनगसि Śāk. 1. 1I; ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं &c. Rag. II. 62; also II. 54. &c. **ज्ञातं** Believed, thought.

P. 104. '**वैशस**—Hardships, troubles; fr. **शस्** with **वि** to kill &c. *cf.* Mal. Mad. II, 14. **अन्तर्नगरवासिषु**—These were the adherents of the Nandas.

कर्णेनेव &c.—Karṇa obtained from Indra, who was pleased at his having given him his divine armour and ear rings, the *Śakti* here mentioned, which was destined to kill *one* warrior, whoever he may be. See Mah. Bhār. Droṇap. Ads. 179-180. **विष्णोः**—*i. e.* of Kṛishṇa and Chāṇ. **आत्यन्तिक०**—अतिक्रांतोऽन्तमत्यन्तः तत्र भवः (ठञ्)—**श्रेयसे**—because the *Śakti* and the maid not only did not kill the *protegees* of Kṛishṇa and Chāṇakya but killed the very persons whom they wished to get rid of **हैडिम्बेय**—is Ghaṭotkacha, the son of Bhīma by Hiḍimbā (the daughter of the demon Hiḍimbā). The possession of the *Śakti* by *Karṇa* was a source of great anxiety to Kṛishṇa who did not allow his *protegee* Arjuna to fight with Karṇa until the dangerous missile had passed out of the latter's hands. Sl. quoted in Al. Kau. as an instance of समस्तवस्तुविषया सावयवा उपमा.

P. 106. **प्रकाशित**—Publicly announced. **सांवत्सरिक**—संवत्सरं कथयति वेत्तीति ; इक aff. (ठक्), an astrologer. The usual word is संवत्सर: got by adding अण्.

परितुष्टेनेव—The इव is out of place here and ought to be omitted. For Chāṇakya was too shrewd to show that his satisfaction was feigned or was not real. Again the presence of इव would leave no room for Rāk.'s remark कुतश्चाणक्यवटो: परितोष: **फलं**—(1) the reward; (2) the hidden meaning—you will reap the consequences of). **चाणक्यवटु**-बटु (*cf.* brat) at the end of a comp. is used as a depreciatory term. **विकल्प**—optionality of thought, hence suspicion.

P. 108. **राज्यार्धविभाग:**–अर्थश्चासौ विभागश्च अर्ध०, राज्यस्य अर्ध०. **उपांशु**—in secret. In many cases an *adv*, stands as the first member of a Karm. comp. उपनिवृत्ता अंशवो यस्मात् that from which the rays have departed; hence, hidden, secret. This speech shows that Rākshasa was ignorant of the rumour circulated by Chāṇakya whom he believed to be the author of Parvateś-vara's murder. **उपचिता**—has been strengthened (after circulation); see com. उपचरिता *V. l.*—has been outwardly circulated.

किल is used here अलीके 'only a semblance of coronation; or वार्तायां 'as was reported'. **चित्रपट**—not a variegated cloth, but a texture formed of pearls and diamonds woven together.

वैकक्ष्य—wearing in the manner of the sacred thread; see com. **चन्द्रगुप्तोपवाह्या**—the riding she-elephant of Chandragupta. **प्रविशति वैरोचके** &c.—Notice the vigilance and shrewdness of Chāṇakya apparent from this arrangement **यन्त्रतोरण**—a gateway that moved by some mechanical contrivance.

P. 110. **कनकदण्डिका**—A hollow gold stick, or rod that served as a sheath and hung from his belt. **असिपुत्रिका**—असे: पुत्रिका इव; पुत्रिका is here treated as a diminutive.

प्रभ्रष्टलक्ष्यं—In which the mark was missed, wide of the mark. **यन्त्रघट्टनबीज**—the means (a bolt or axle) by which the mechanism was worked. **लोष्ठघातं**—see com., 'करणे हन: Pāṇ. III, 4. 31. The Namul of हन् is used with a noun signifying the instrument of the action and compounded with it as its first member, provided some form of the root हन् is used as the principal predicate.

वत्सलं—वत्से अभिलाषोऽस्यास्तीति from वत्स+ल (a possessive affix added to वत्स and अंस in the sense of 'affection' and 'strength' respectively, by Pāṇ. V. 2. 98.)

P. 114. **योगचूर्ण**—A powder having a specific virtue here) of causing a man's death). **औषध**—ओषधेरिदम् fr. ओषधि+अण् which is added in any other sense than *jāti* or species (Pāṇ. V. 4. 37). According to the Buddhistic accounts Chandragupta was fed on poison and thus made proof against it by Chāṇakya. See Max Muller's Ancient Sanskrit Literature pp. 294.95.' Telang. **कनकभाजने वर्णान्तरं** &c.—*Cf.* लोहानां (सुवर्णादीनां) च मणीनां च मलपङ्कोपदिग्धता । प्रभावस्नेहगुरुता वर्णस्पर्शवधस्तथा ।। औषधानि च सर्वाणि पानं पानीयमेव च । तत्कल्पकैः समास्वाद्य प्राश्नीयाद्भोजनानि च ।। K. n. VII. 24.27.

वाक्यभेदान्—Divergent accounts or explanations; contradictory statements. **विचित्रवध**—means death in an unusual way, *e. g.*—by being tied to or crushed by the foot of an elephant, or being hurled down from a precipice, or cut peacemeal;—and by various other tortures; occurs in Dk. U11. I. (चित्रवधवार्ताप्रेषणे र) ; also चित्रमेनं हनिष्यसि U11. 2; *cf.* also Māl. Mād. p. 168. लवशो लवश एनां निकृत्य &c. **कथमत्रापि दैवेनोपहता वयम्** —Rāk. attributes the failure of his plans to Fate; but it was due to Chāṇakya's foresight and to the folly or want of judgment of his own accomplices.

P. 118. **निपुणमवलोकयता** &c.—*Cf.* कारयेन्भवनशोधनमादौ &c. K. n. VII. 37. **विहित**—made *i. e.* fixed upon. Another reading is अभिहित spoken to, *i. e.* agreed upon. The reading अपिहित or पिहित means 'closed up.' **मन्नीतयः** schemes or plots, devices of policy. Sl. quoted in Al. Kau, as an instance of *Vishama*.

प्रारभ्यते &c.—This stanza is quoted in the com. on the D. R. (p. 44.) as from Bhar. with the reading in the fourth line—जनास्त्वमिवोद्वहन्ति—a reading which is more appropriate, if so at all, in the Mud. It is probable, therefore, thinks Mr. Telang, that the author of the Daşarūpakāvaloka, quoting from memory, quoted the text of his copy of the Mud, wrongly attributing it to Bhar.'s Śat. The following stanza too occurs in some Mss. of Bhar.'s Śatakas. The probable explanation of such occurrences is to be sought in what may be called the *Subhāshita* theory—that the stanzas already existed as Subhāshitas and were borrowed by the authors of both the works as suited their purpose. The reading त्वमिवो &c., however, is not appropriate to the context, which requires the stanza to be a general statement. With our reading only Virādhagupta's introductory speech and the following words of Rāk. सखे प्रारब्धमपरित्याज्यं &c. are intelligible. *Cf.* Kathās. XVIII. 188.

P. 120. **कृपणवत्**—Like a mean-hearted person, a coward (who has no sense of personal honour); opp. to श्लाघ्य *Cf.* कार्पण्य III. 16.; कृपणं V. 15. **निर्व्यूढं**—A *p.p.* noun, means the same as निर्वाहः *V. l.* (which is, however, better), carrying to their completion or end. **गोत्रव्रतं**—*cf.* कुलधर्मं p. 145. Sl. quoted in the Al. Kau. as an instance of *Mālārūpaka*.

Wilson remarks on the above two Sl. s. -It may be doubted if perseverance is any where recommended in a more manly and spirited tone.

एतदीदृशं—Such attempts, *viz.* to poison Chandragupta &c. **निष्परिग्रह**—one without earthly belongings or ties.

परिहृत &c.—This Āryā is variously read as 'स्वस्मिन् परि॰-मय॰' omitting च; नूनं परि &c.; परिहृतमयशः स्वीयं; &c. But in all these cases the metre is violated. Mr. Telang who reads स्वस्मिन् परिहृत॰ remarks–It is possible that the stanza was intended to be of the Āryāgīti sort;...but the stanza differs from that in having 20 instead of 19 *mātrās*. in the 2nd line while the 3rd and 4th are here as in an ordinary Āryā...But see Māgha IV. 48.

अर्धराज्य—is generally considered to be a grammatical anomaly; it should be राज्यार्धः, as it was exactly half of the revenue of the kingdom and not of the land. The comp. is correct if exactly half of the land be meant. Sl. quoted in Al. Kau. as an instance of the fig. *Viṣama*; the fig. may be Kāvyalinga also, as the 1st half states the reason of the 2nd.

P. 122. **अयुक्तरूपः**—Exceedingly undeserved or unworthy; see com.; the aff. रूप is added in the sense of प्रशंसा which here lies in the excess of युक्तता, by प्रशंसायां रूपप् । Pān. V. 5. 66. युक्तरूपो न भवतीति अयुक्तरूपः। *Cf.* Śāk. युक्तरूपमिदं तव p. 14. युक्तरूपं सन्देष्टव्यं p. 110.

कृतघ्नैः—Although he had a laudable object in view, Rāk., overpowered by emotion, calls himself ungrateful inasmuch as he did not immediately follow his master in death. If the additional reading given in the foot-note be original, आलम्ब्य in the first sl. will have to be translated by 'taking my stand upon, putting forth this, as an excuse, (and not जिजीविषा) and Rāk. taken to mean—I am really ungrateful and wish to live but under the pretext of doing a service to my master, &c. This would necessitate the following speech of Virādhagupta who could not be expected to allow this unmerited self-censure on the part of his master. In some Mss. we have स्वार्थमवलम्ब्य जि०; if then अर्थं be taken in apposition with जिजीविषां the meaning will be 'I am not following my master on account of this very thing, *viz*. the desire to live long.' This reading, followed by Virādhagupta's अमात्य नैतदेवं &c. will also do very well.

ननु वक्तव्यं &c.—Rākshasa knew quite well what the result of Chandanadāsa's imprisonment would be. He felt that his future was bound up with the lot of his friend.

P. 126. **भव्यं**—Fortunate, not condemned by fate, destined to live; *cf.* अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम् Pt. I. 20. **भवितव्यता**—The state of what is destined to happen, personified into Destiny. *Cf.* Kir. XI. 47, Māl. Mād. I. 23.

प्रतिष्ठितपदं—(1) firmly planted, fixed; (2) established on the throne. पद in this case means position, authority or rule.

चेतनाप्रमथिनी—(1) destroying consciousness; (2) violently irritating the mind. **मूर्द्धव०**—a strange comp. This must be taken as an object to दृष्ट्वा. The reading मूर्ध्नविबध्य स्रजम् appears better as it well harmonises with दृष्ट्वा and श्रुत्वा; but then अवबध्य does not apply to लक्ष्मीं. The reading of the German Ed. तल्लक्ष्मीमिव चेतसः प्रमथिनीमूढ्वा च वध्यस्रजम् । would solve all difficulties as it has a verb to correspond to दृष्ट्वा &c. which can also be taken with लक्ष्मीं As to the स्रज् *cf.* वध्यस्रज् VII. 4; Mṛch. X. 21. and p. 478, where Chārudatta wears a similar garland. **रौद्रविषमान्**—रौद्र refers to the feeling of terror roused; विषम harsh or fearful to the ear. **आघात०**—आघातार्थं तू० trumpets sounded at the time of his execution. Mr. Telang takes आघा० in 'he sense of 'musical instruments to be beaten like drums, &c.' **प्रथमाभिघात**—previous strokes of misfortune. Śakaṭadāsa means that he could bear the sight of the pale, listen to the dismal music &c. simply because his heart had grown callous by previous calamities. Fig. A mixture of *Upamā*, Utprekshā (indicated by मन्ये) and Kāryalinga. There is also Ślesha (०पदै.)

मन्ये—यत्तद् *V. l.*; see com. With the reading मन्ये there is no difficulty of construction. But with the reading यत्तद् we have a clumsy construction ; see com.; better construe यन्मदीयं मनः ध्वस्तं 'since' it was not spattered तत् तस्मात्.

अक्षीणभक्तिः &c.—Here the poet gives his own estimate of of Rākshasa's character. **स्वाम्यर्थमुद्वहन्**—Upholding the cause of his master. **०गोचरगतः**—Fallen into his clutches, gone into his power. Mark the meaning of गो in such instances where it means an इन्द्रिय though it generally refers to the eye.

P. 130. **किं—काममपर्याप्तं** *v. l.* I admit that this is inadequate to the favour done by you—is also a good reading.

सखे विराधगुप्त—Transported with joy Rāk. forgets the precaution he had taken to keep off his spy's name from his servants and addresses him here by his name. Chāṇ. could not have been guilty of such a blunder. **इदं**—*scil.* his gift of the ornaments. **अस्य प्रियस्य**—this favour, this agreeable service rendered by you, *viz.* the rescue of Śakatadāsa. **अयं**—instruction *scil.* that he should receive the ornaments, keep them with Rākshasa, &c.; see com.; it was given in a whisper; see p. 52.

P. 130. **ब्राह्मण्या**—His wife. **उत्कण्ठाविनोदार्थं**—to drive away her longing, as a means of alleviating the pain of separation. This appears to be a common thing with ladies; *cf.* the similar use of the ring in the Śāk.

गेह—is derived by Bhānuji Dikshita as गेन गणेशेन ईह्यते काम्यते, गो गणेशो गन्धर्वो वा ईहा ईप्सिता यस्मिन् वा. But these explanations seem farfetched. गेह is probably the Prākṛta form of गृह afterwards resanskritised. **अमात्य अत्र किं युज्यते**—Siddhārthaka of course intends by this question to elicit, if he can, from Rak.'s lips some information about Rākshasa's family and friends. He is, however, disappointed in this. **यन्महाधनानां** &c.—Rak. thus replies believing that Sid. did not know that the ring bore his name.

तद्दीयतामेषा—Chāṇakya had the ring restored to Rākshasa, it seems, for the following reasons. First, that Siddhārthaka, by promptly delivering the ring, would make a favourable impression upon Rākshasa, as a man that could intend no evil, and thereby secure his confidence the more easily. Secondly, it would be impossible for Rākshasa to allege against the letter being imputed to him that the ring was no longer in his possession and had probably fallen into the hands of his enemy. Thirdly

Malayaketu would not believe any statement of Rākshasa to the contrary when he saw the ring actually in his possession.

P. 132. **स्वाधिकार**—What this अधिकार was, is not clearly stated. It appears, however, that Śakaṭadāsa had the management of Rākshasa's private affairs. See p. 134. 22 15, 16 and *cf.* p. 127. *infra.* **विप्रेयं कृत्वा**—supply स्थितस्य कस्यापि. **पाटलिपुत्र**—The capital of Magadha (or South Behar) situated near the confluence of the Ganges and the Śoṇa (referred to as Palibothra, in the classical accounts of India). It was also called Kusumapura. It is said to have been destroyed by a river inundation about the middle of the 8th century A. D. The legend accounting for the origin of the name given in the Kathās. is briefly this—Putraka, an exiled king secretly married Pāṭali the princess of Ākarshikā, and to avoid the dreadful consequences of her father's anger, fled with her to the banks of the Ganges. At the request of his wife he founded there, by his magical power, a city which was called Pāṭaliputra:—अथ गङ्गातटनिकटे गङ्गामवतीर्य स प्रियाँ श्रान्ताम् । पात्र (a magical utensil in his possession)—प्रभावजातैराहारैर्नन्दयामास ॥ आलोकितप्रभावः पाटल्या सोर्थितश्च ततः। यष्ट्या (a stick with magical virtue) लिलेख तत्र स नगरं चतुरङ्गबलायुक्तम् । तदिदं दिव्यं मायारचितं सपौरमत एव । नामा पाटलिपुत्रं क्षेत्रं लक्ष्मीसरस्वत्योः । See Kathās. I. 3.

अनुनयः—Request. **विश्रामय**—make arrangements about his taking rest: see that he is refreshed being well lodged and fed. The proper form is विश्रामय; but विश्रमय also is allowed; see Malli or धुर्यान् विश्रामय Ragh. I. 54. **क्षमन्ते**—Lit. bear, receive favourably.

उपजाप—Overtures, secret negotiations; instigation to rebellion; *cf.* उपजापः कृतस्तेन Śis. II. 99; उपजापसहान् विलङ्घयन् &c. Kir. II. 47; also XVI. 42. तेषु तेषु च कृत्येषु प्रासरन्परोपजापाः D. K. p. 199.

यथाप्रकाशं—They are emboldened to act according to our secret instructions as things are disclosing themselves. This is explained in the context.

P. 134. **जितकाशितया**—See p. 49. *supra.* **उपचिनोति**—Adds to his vexation, constantly pains his mind *Cf.* the use of the word at p. 108. (उपचिता). **उपश्लोकयितव्यः**—उपश्लोकय् a Denom. meaning to praise in stanzas or songs. **व हस्तेन**—हस्त

simply means here ‘instrumentality or means of communication and so stands for ०मुखेन.

अलङ्कारसंयोगाः—Ornaments forming a set; articles of decoration to be worn on the person together (संयुज्य धार्यन्ते इति) **अहो महार्हाणि**—It is strange that Rāk should not have recognized the ornaments as they were worn by Parvateśwara.

P. 138. **तेजसि**—*i.e.* क्षात्रतेजसि वर्तते reigns in full majesty, hence is arrogant **स्मयः**—pride, self-sufficiency *Cf.* तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय Rag. V. 19; प्रभवः स्मयदूपता Bhar. Vai. 2. **कृतकृत्यता** &c.—Because they are no longer in need of each other's help. **लब्धान्तरा** For the meaning of अन्तर see II. 9. **भेत्स्यति**—will make then break away from each other. The Fig. is—Yathāsamkhya and *Anumāna*. Here end the *Patākā* and the *Garbhasandhi*.

Act III

P. 140. The Third Act embodies the *Avamarshasandhi.* See com. **कञ्चुकी-सनिर्वेदम्**—Kanchukin (so called from his long thin robe) is a respectable attendant of the harem. He is generally represented as an old man, and a Brāhmaṇa, endowed with many good qualities, such as truthfulness, &c. The Sanskṛit plays represent him as always full of despondency. In fact the Kanchukin's character is surrounded by a dignity and air which make the impression about the effects of old age he makes on the minds of the audience more vivid and telling.

करण—An instrument of knowledge; an organ of perception. **आत्मलाभ**—its own being, birth; *cf.* kād. II. sl. 3. or the gaining of one's object. **स्वार्थ**—their proper object. **अङ्गानि**—अङ्ग is used here in the sense of ‘an organ of action (कर्मेन्द्रिय). **मुधा ताम्यसि**—Because the powers of action and perception being enfeebled by age, your cravings cannot be satisfied; they will only cause pain. Some read माद्यसि (dost thou increase, gain strength) Fig. *Kāvyaliṅga.*

कौमुदीमहोत्सव—This, as generally understood, falls on the full-moon day of *Āśvina.* Jagadhara, commenting on the word at Māl. Mād. Act VII. p. 141, however says—कौमुद्याश्विनपूर्णिमाव्रतं यद्वा कार्तिक्यां चन्द्रमाण्डलपूजा कौमुदीव्रतम् । It is this latter festival, *viz.* that on the full-moon day of Kārtika that seems to be meant here as is clear from the 21st Śloka which makes a reference to Vishnu's awakening from his long sleep of four months, which takes place on the 11th day of Kārtika. **कौमुद** also is the name of the month Kārtika. **कौमुदः** स्यात्कार्तिके ।

P. 140. **भूमयः**—Floors. **दैवोपहत**—doomed by fate, ill-fated. **कथोपोद्घातः**—mentioning or alluding to a topic or subject.

पिनद्ध०—The अ of अपि is optionally dropped. **सिंहाङ्कासन** the throne of Chandragupta, distinguished by a lion's picture. **सिंहाङ्का**—Here अङ्क is unnecessary, as सिंहासन (a throne made of gold, सिंहासनं तु तद्धैमम् । Amara.) expresses the same idea. Dissolve सिंहाङ्कमासनं a throne marked with the picture of a lion. **संजातमूर्छा**—The earth is supposed to be languishing under the load of the throne. Fig:— *Samāsokti* and *Utpreksha*. There will be श्लेषालंकार also if we interpret सिंहा० as सिंहेन अङ्कासने धारणात् and गां as पृथ्वीं धेनुं च.

सुविश्रब्ध—Well-confident, showing no nervous tottering, firm; (2) trusty. **अङ्गैः**—(1) limbs; (2) the members of the political body. See *ante* notes p. 6. **पथिषु**—(1) paths; (2) political situations. **धुर्य**—धुरं वहतीति (1) able to bear the responsibility or accustomed to bear the yoke; opposed to दम्य (दमनार्हः to be trained to bear the yoke). The comparison is common enough; *cf* Ragh. V. 66, &c. The bull was considered a noble animal in ancient times, and the word वृषभ expressed 'excellence' when at the end of a compound, like सिंह, शार्दूल &c. Mark the antithesis between गुरु and नववयस्, धुर्य and दम्य and अचलता and स्खलति **मनस्वी**—प्रशस्तं मनोऽस्यास्तीति । wise, resolute- **दुःखं**—may be also a noun.

P. 144. **रहयति**—जड़यति *V. l.* seems to be a better reading. In this case the second line becomes a different alternative. **परवान्**—Because he is not at liberty to attend to personal comforts, since he must devote his attention first to the interests of others. *Cf.* Ragh. XVIII. 18. **आत्मवत्**—self-restrained: *cf.* आत्मवत्तया *V. l.* Ragh. VIII. 10; commenting on which Malli says—निर्विकारमनस्कतयेत्यर्थः । उदयादिष्वविक्रतिर्मनसः सत्त्वमुच्यते । आत्म-

simply means here 'instrumentality or means of communication and so stands for ०मुखेन.

अलङ्कारसंयोगाः—Ornaments forming a set; articles of decoration to be worn on the person together (संयुज्य धार्यन्ते इति) **अहो महार्हाणि**—It is strange that Rāk should not have recognized the ornaments as they were worn by Parvateśwara.

P. 138. **तेजसि**—*i.e.* क्षात्रतेजसि वर्तते reigns in full majesty, hence is arrogant **स्मयः**—pride, self-sufficiency *Cf.* तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय Rag. V. 19; प्रभवः स्मयदूषता Bhar. Vai. 2. **कृतकृत्यता** &c.—Because they are no longer in need of each other's help. लब्धान्तरा For the meaning of अन्तर see II. 9. **भेत्स्यति**—will make then break away from each other. The Fig. is—Yathāsamkhya and *Anumāna*. Here end the *Patākā* and the *Garbhasandhi*.

Act III

P. 140. The Third Act embodies the *Avamarshasandhi*. See com. **कञ्चुकी-सनिर्वेदम्**—Kanchukin (so called from his long thin robe) is a respectable attendant of the harem. He is generally represented as an old man, and a Brāhmaṇa, endowed with many good qualities, such as truthfulness, &c. The Sanskṛit plays represent him as always full of despondency. In fact the Kanchukin's character is surrounded by a dignity and air which make the impression about the effects of old age he makes on the minds of the audience more vivid and telling.

करण—An instrument of knowledge; an organ of perception. **आत्मलाभ**—its own being, birth; *cf.* kād. II. sl. 3. or the gaining of one's object. **स्वार्थ**—their proper object. **अङ्गानि**—अङ्ग is used here in the sense of 'an organ of action (कर्मेन्द्रिय). **मुधा ताम्यसि**—Because the powers of action and perception being enfeebled by age, your cravings cannot be satisfied; they will only cause pain. Some read माद्यसि (dost thou increase, gain strength) Fig. *Kāvyaliṅga*.

कौमुदीमहोत्सव—This, as generally understood, falls on the full-moon day of *Āśvina*. Jagadhara, commenting on the word at Māl. Mād. Act VII. p. 141, however says—कौमुद्याश्विनपूर्णिमाव्रतं यद्वा कार्तिक्यां चन्द्रमाण्डलपूजा कौमुदीव्रतम् । It is this latter festival, *viz*. that on the full-moon day of Kārtika that seems to be meant here as is clear from the 21st Śloka which makes a reference to Vishnu's awakening from his long sleep of four months, which takes place on the 11th day of Kārtika. कौमुद also is the name of the month Kārtika. कौमुदः स्यात्कार्तिके ।

P. 140. **भूमयः**—Floors. **दैवोपहत**—doomed by fate, ill-fated. **कथोपोद्घातः**—mentioning or alluding to a topic or subject.

पिनद्ध०—The अ of अपि is optionally dropped. **सिंहाङ्कासन** the throne of Chandragupta, distinguished by a lion's picture. **सिंहाङ्का**—Here अङ्क is unnecessary, as सिंहासन (a throne made of gold, सिंहासनं तु तद्धैमम् । Amara.) expresses the same idea. Dissolve सिंहाङ्कमासनं a throne marked with the picture of a lion. **संजातमूर्छा**—The earth is supposed to be languishing under the load of the throne. Fig:— *Samāsokti* and *Utpreksha*. There will be श्लेषालंकार also if we interpret सिंहा० as सिंहेन अङ्कासने धारणात् and गां as पृथ्वीं धेनुं च.

सुविश्रब्ध—Well-confident, showing no nervous tottering, firm; (2) trusty. **अङ्गैः**—(1) limbs; (2) the members of the political body. See *ante* notes p. 6. **पथिषु**—(1) paths; (2) political situations. **धुर्य**—धुरं वहतीति (1) able to bear the responsibility or accustomed to bear the yoke; opposed to दम्य (दमनार्हः to be trained to bear the yoke). The comparison is common enough; *cf* Ragh. V. 66, &c. The bull was considered a noble animal in ancient times, and the word वृषभ expressed 'excellence' when at the end of a compound, like सिंह, शार्दूल &c. Mark the antithesis between गुरु and नववयस्, धुर्य and दम्य and अचलता and स्खलति **मनस्वी**—प्रशस्तं मनोऽस्यास्तीति । wise, resolute- **दुःखं**—may be also a noun.

P. 144. **रहयति**—जड़यति *V. l.* seems to be a better reading. In this case the second line becomes a different alternative. **परवान्**—Because he is not at liberty to attend to personal comforts, since he must devote his attention first to the interests of others. *Cf.* Ragh. XVIII. 18. **आत्मवत्**—self-restrained: *cf.* आत्मवत्तया *V. l.* Ragh. VIII. 10; commenting on which Malli says—निर्विकारमनस्कतयेत्यर्थः । उदयादिष्वविकृतिर्मनसः सत्त्वमुच्यते । आत्म-

वान्सत्त्ववानुक्तः । इत्युत्पलमालायाम् । Or आत्मवत् may mean आत्मसम्पन्न endowed with आत्मसम्मत् or the characteristic qualities of a king. These Kāmandaka describes as:—वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमानुदग्रो बलवान्वशी । नेता दण्डस्य निपुणः कृतशिल्पः सुविग्रहः ॥ पराभियोगप्रसहो दृष्टसर्वप्रतिक्रियः । परच्छिद्रानुपेक्षी च सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ॥ गूढमन्त्रप्रचारश्च देशकालविभागवित् । आदाता सम्यगर्थानां विनियोक्ता च पात्रवित् ॥ क्रोधलोभभयद्रोहस्तम्भचापलवर्जितः । परोपतापपैशून्यमात्सर्येर्ष्यानृतातिगः ॥ वृद्धोपदेशसम्पन्नः शक्तो मधुरदर्शनः । गुणानुरागी स्मितवागात्मसंपत्प्रकीर्तिता । Nit. IV. 14-18. **सन्तिष्ठते**—स्था with सम्, अव, प्र and sometimes वि is Ātm. (Pān. I. 3. 32.) **एकान्तभीरु**—Exceedingly timid, or always timid, as Mr. Telang takes it. **लब्धप्रसरा**—(1) who has got a considerable scope for occupation; (2) who has got considerable ascendancy. *Cf.* Malli. on Śis. III. 35. **वेशवनिता**—वेशे वेश्याजनसमाश्रये वर्तमाना वनिता or वेशेन (by hire D. R. 90) लभ्या वनिता. **दुःखोपचर्या**—दुःखा दुःखेन वा उपचर्या यस्याः if derived from चर् with उप the form will be उपचर्या. **कृतक**—Artificial; hence pretended or sham. **कालान्तरं** —not a Nityasamāsa but a Gen. Tat.

P. 146. **संस्क्रियमाणमतयः**:—*Cf.* for a similar thought चंद्रापीडस्ताभिरमलाभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इवोन्मीलित इव निर्मृष्ट इवाभिषिक्त इवाभिलिप्त इवालंकृत इव पवित्तीकृत इवोद्भासित इव प्रीतहृदयः &c. Kād.

परतरमतः &c.—Independence beyond this, *i.e.* independence guided by विनय as mentioned in the third line. The commentator's explanation does not seem to be accurate. By making the observation अथवा &c. which is explained in the present stanza, Chandragupta is trying to satisfy his mind as to the *Pātaka* he thought he was guilty of by supposing that he is always independent in a way and that his present conduct is in conformity with that स्वातंत्र्य. **वैहीनरे**—वहीनरस्य गोत्रापत्यं पुमान् वैहीनरः, व being changed to वि before the aff. इ (इञ्). According to पतञ्जलि the word should be taken as विहीनरः विहीनो नरः विहीनरः, पृषोदरादि, ('न' irregularly dropped—Kaiyata).

श्यानीभूताः—The epithets refer to both दिशः and सरितः. **श्यान** (1) dry, (2) narrowed; p. p. p of श्यै when the sense is solidified and cool, the forms are शीन and शीत respectively. **सितजलधर**—सितजलधरच्छेदा एव पुलिनानि यासां; पक्षे ०च्छेदा इव पुलिनानि यासां **सारसकुलैः**—Swans are described as returning in autumn from the Mānasa lake, moving gaily through the atmosphere and uttering sweet notes. सरित इव—like, *i. e.* as well as (as the speaker here describes both, the rivers and the directions).

P. 148. विकच०—विकचानि नक्षत्राणीव कुमुदानि नक्षत्रकुमुदानि पक्षे नक्षत्राण्येव कुमुदानि तैः । The double meanings are explained in the com. नभस्तः—(1) From the sky; (2) From the time of the rainy season (नभस् *cf.* Latin *nebula*). The description of Autumn here is very beautiful and can compare well with similar descriptions by Kālidāsa and other great poets. As to the commentator's remark अनेन शरद्गुणकथनेन' &c. cf. Ragh. IV. 24.

उद्वृत्तानां—The epithets are used in a literal and a figurative sense; (1) overflowing their boundaries,; in flood; (2) उत्क्रान्ता वृत्तं, going astray. *Cf.* उद्वृत्तः क इव सुखावहः परेषाम् । Śis. VII. 18 Ṛs. III. 3. स्थितिपदं—(1) the proper bed for their flow; (2) the right path of conduct. अवनति—(1) bending posture; (2) humility. उदारे—&c. a rich crop; (2) abundance of wealth—*Cf.* भवन्ति नम्रास्तरवः &c. Śāk. V. 12. मयूराणां &c.—*Cf.* मयूरमदमुषि शरत्समयारम्भे Har. ch. शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयू रमणीयताम् । Śis. VI. 44; also 45. पश्यन्ति नोन्नतमुखा गगनं मयूराः । Ṛs. III. 12; also 13. विनय—training, regulation; for it teaches propriety of conduct to those who go astray, modesty to the rich and humility to the arrogant. *Cf.* Ragh. II. 8; and *infra* III. 25. The figs. in the śl. are *Ślesha*. *Upamā* and *Utprekshā*.

कलुषितां—(1) rendered turbid during the rains; (2) offended, jealous. *Cf.* Ragh. V. 64 (where some take कलुषा in this sense). बहुवल्लभ—The sea is often poetically spoken of as the husband of rivers; *cf.* Ragh. IV. 45. XIII. 9. तनूभवन्तीं—*Cf.* Ragh. IV. 24. सर्वात्मना—Doing her best; goes with नयति or it may better be taken with प्रसन्ना completely pleased.' गङ्गां—Here Gaṅgā is represented as a *Khaṇḍitā* Nāyikā. See D. R. II. 25. सिन्धुपति—The sea (the lord of rivers); also the husband of that name (Sindhu). प्रसन्नां—Waters resume their lucidity in the winter. *Cf.* Ragh. IV. 21; XIII. 46. This simple idea is clothed here in rich poetic imagery. As remarked by the Com. the बीजावमर्श is visible in these three ślokas.

P. 150. गृहीतं—Obeyed, acted on. स्खलिष्यति—will be disobeyed *Cf.* Lat. *Sceuls*.

धूर्त—Gay, licentious people; beaux. It generally means gamblers, gamesters &c.; a deceitful lover &c.; see D. R. p. 92 com. पृथुजघन०—For the comp. यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं

बिलासादिव Śāk. II 2. **स्वामिनः**—स्वं धनमेषामस्तीति स्वामिनः (fr. स्व+आमिन् showing possession); householders; this may also be taken as abl. sing.—having no fear from the king (as they (had from Nanda formerly). But this does not seem to be intended. **मुक्तशङ्कः**—Because of the permission granted by the king. This may be taken with वेशनार्यः also. **अभिलषितं**—The festival seems to have been time-honoured and held in great esteem by the citizens. See p. 218. **पार्वणं**—falling on the Parvaṇ or full-moon-day (of Kārtika as remarked by the Com.). See note on कौमुदीमहोत्सव p. 140. *Cf.* the description of the spring festival as Rat. I. 11. 12.

P. 154. **अनुविद्धा**—Mixed with, full of. *Cf.* Śāk. I. 18 and com. thereon. **दुरात्मा**—perverse-minded, of wicked resolve. **कृतागाः**—here means 'one against whom an offence was committed,' injured or insulted (कृतमागो यस्य)

P. 154. **मौर्येन्दोः**—Mark the propriety of इन्दु in connection with श्री. **दुर्व्यसन**—persistence in an evil pursuit.

उत्सिक्तः—Vain, conceited; from उत्सिच् to spout out; hence to be swelled or puffed up with pride; *cf.* Śāk IV. 17; Ragh IV. 70; स्तूयमाना नोत्सिच्यन्ते Kād. p. 470. **कुसचिव**—*Cf* दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति Bhart. Nit 42; and the Subh. दुर्मन्त्री राज्यनाशाय. **मदनुकृतेः**—Better read मदनुकृते or ०कृतौ (Loc. sing.). **प्रधानवैरं**—प्रधानेन वैरं enmity to the principal person (the king). See l. 11. Or it may mean वैरप्रकर्षः (प्रधानं च तद् वैरं च). **किल**—Assuredly, verily.

प्रविष्टान्तरैः—Who have entered into the hearts; *i. e.* dived into the secrets of the enemy. **स्वमतेन**—The Com. reads भेदकुशलोस्त्वेषः let him be according to his own estimation, a master of &c. **प्रतीपं**—The commentator takes this in the sense of (1) 'acting adversely towards us;' and (2) 'I shall so alienate him as to act adversely towards our enemy (Malayaketu). The second sense is not justified by the context for Rākshasa does not leave Malayaketu or act adversely towards him; it is Malaya, who casts away Rākshasa. The first sense is not also good. So it seems better to take प्रतीप to mean 'on the contrary, contrary to his expectation (*i. e.* instead of his separating me from Chandragupta, I shall separate him from Malayaketu). **प्रतीप** fr. प्रति+अप्; प्रतिगता आपो अत्र, the अ of अप् being changed to ई and अ (अच्) added.

P. 156. **विटा:**—Pimps, voluptuous companions, whose duty it is to please their master by flattery. **अपलपन**—see com.; it rather means 'concealment of one's real feelings and thoughts,' lest the declaration of truth might give offence; hence flattery. *Cf.* ये च विद्यमानेऽपि स्वात्मनि अस्वाधीनसकलेन्द्रियवृत्तयः पश्यन्तोऽप्यन्धा इव शृण्वन्तोऽपि बधिरा इव वाग्मिनोऽपि मूका इव स्वामिचित्तादर्शे प्रतिबिम्बवद्वर्तन्ते। Kād. p. 471; Bhar. Vai. Śat. 6; Nit. Śat. 31.

कृतधियः—Those of refined or cultivated intellect (शिक्षितबुद्धयः Malli. on Śis II. 79). It may also mean those who have fixed notions about a subject. **श्ववृत्तिः**—(1) शुन इव वृत्तिः (or शुनः वृत्तिरिव;) (2) शुनः वृत्तिः a canine mode of living; *cf.* सेवा श्ववृत्ति-राख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत्। Manu. IV. 6. Fig. Kāvyalinga.

राजाधिराजः—अधिको राजा अधिराजः। **विभूति**—Grandeur, pomp. The sentence is of course ironical as remarked by Mr. Telang. **गोमय**—means here dry cow-dung cakes or balls. This shows that Chāṇakya was an Agnihotrin. **स्तूप**—a heap; from स्तूप् 10 cl. to raise; here treated as a neu. noun. 'This is the word used for the Buddhist 'Tope', but is not confined to that sense.'—Telang. **पटल**—roof. This stanza clearly shows how simple was the private life of Chāṇakya and greatly redeems his character as an ambitious statesman. See Introduction. Fig. *Svabhāvokti*.

P. 158. **वृषलः**—The reading **वृषलोद्य** does not so forcibly express the contrast intended. It is also difficult to explain it grammatically. For by the rule 'वदः सुपि क्यप् च' Pān. III. 1. 106. क्यप् or यत् (य) may be added to the root वद् so ब्रह्मोद्यं or ब्रह्मवद्यं 'recital of Veda.' वृषलोद्य (according to Bhaṭṭoji who would have the aff. भावे) means वृषलशब्दस्य वदनं the act of uttering the word वृषल; and then by affixing अच् including the word in the अर्श आदि group, we get वृषलशब्दस्य वदनमस्यास्तीति वृषलोद्यः *cf.* सत्यवद्यः Bhatti. V. 60. But then it must go with चाणक्यः and not चन्द्रगुप्तः So this must be explained some how by taking the aff. कर्मणि (as some grammarians would have it—See Kau. on the above Sūtra). This, therefore, is grammatically inaccurate.[1] **अस्य**—For the Gen. Mr. Telang compares वीरो न यस्य भगवान्भृगुनन्दनोपि Uttar. V. 34.

---

[1] Why not take it as वृषलः+अद्य S. B. Yogi

अश्रान्तास्याः—*V. l.* with 'mouths never tired' seems to be better. **अभूतैः**—not really existing, imaginary. भूत means what exists, what is really present; *cf.* भूतार्थ Śāk. p. 6; and भूतार्थ-व्याहृति Ragh. x. 33. **प्रवाचः कार्पण्यात्**—may also mean on account of the absence of plain speaking (प्रकृष्टा वाक् तस्याः), since they cannot speak out plainly. **वितथ**—विगतं तथा सत्यं यस्याः । **निरीहाणां**—*Cf.* तृणमिव लघु-लक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि । Bhar. Nīt. 17; and the Subhāshita निस्पृहस्य तृणं जगत् ।

परिभूय—Mark the meaning of this:—having overpowered *i. e.* pervaded or filled up; stands in contrast with असर्वगामि. **पर्याय**—in succession or turns. **असर्वगामि**—Because sunlight is not all reaching; *e. g.* it does not dispel गुहागतं तमः &c.; again it covers only half the globe at a time; but the influence of Chāṇakya was universally felt **अतिशाययति**—Here the Caus. aff. (णिच्) is added स्वार्थे. To take it in the sense of the Caus. as धाम्ना अतिशाययति makes his lustre (might) surpass that of the sun, (see com.) is to make the construction clumsy. Notice the व्यतिरेकालं. in this which consists in representing the *upameya* as superior to the *Upamāna* in some particular respect. There is also अतिशयोक्ति mixed with *Yathāsaṃkhya*.

P. 160. **प्रणति०**—Mr. Telang has adopted the reading—**प्रणतससंभ्रम०**, though he pronounces in favour of the reading adopted by us. In this case प्रणत must be taken as a separate *adj.* qualifying भूमिपालऽs or as equivalent to प्रणमन. **अन्तरा**—Secretly. **प्रद्वेषपक्षपातः**—Feeling of hatred; (lit.) a strong (leaning towards,) liking for hatred.

P. 164. **०राजराज**—is Kubera. For the enormous riches of the Nandas see *infra.* śl. 23. राजराज may preferably be taken to mean, as suggested by Mr. Telang, principal kings under the Nandas;—'who did not care for (despised) the principal kings under them.; *Cf.* in this respect उपजापसहान् विलङ्घयन् स विधाता नृपतीन् मदोद्धतः । सहते न जनोप्यधःक्रियां किमु लोकाधिकधाम राजकम् ॥ Kir. II. 47. The reading in the foot-note (राजवृत्तैः), however, is preferable, as राजराजैः in the first sense conveys no censure to the Nandas; ०वृत्तैः does. **परां**—We should have noticed the reading त्रयः which is also good. **गुणाः**...excellences; good results. मम shuld be construed with प्रीति Fig—a mixture of समुच्चय and सम.

मणिरुचः—Tho southern ocean is known for its pearls;

see Ragh. IV. 50; *cf* however Bilhaṇa, रत्नोत्करग्राहिषु यद्भटेषु तटत्रुटन्मौक्तकशुक्तिभङ्ग्या । Vikramā. I. 108. आगत्यागत्य coming every day. The repetition shows नित्यत्व.

न निष्प्रयोजनं &c.—The student will see here the first glimpse of the sham quarrel between Chāṇ. and the king.

P. 166. **विज्ञापयितु**—To make a respectful representation. Mark the contrast between विज्ञापय् and आज्ञापय् Both mean 'to represent, to inform' &c.; but the first carries with it the additional sense of respect or humility, the second that of authority or command, and hence these are used with respect to inferior and superior persons when making a representation to each other. See our note on आज्ञापय् Vik. p. 30. **विज्ञापनीयानां**—The pl. may also be out of the respect due to the preceptor. **स्वैररुचय:**—Independent tendencies or tastes. **न**—The omission of न with the reading अनुरो॰ would improve the sense. **गृहीतवान्**—*cf*. गृहीत:, *supra* p. 27.

शुश्रूषा &c.—Notice the respectful tone of Chandra in his earlier speeches. His unwillingness to disrespect his *Guru* (even at his suggestion) is distinctly seen in this. Chāṇakya, however, assumes an apparent tone of arrogance which seemingly fills his pupil[1] with disgust and gradually rousing his anger finally leads to the intended rupture between the two.

अर्थशास्त्र—अर्यंते गम्यते इत्यर्थ: (fr. ऋ+थ by Uṇādi. II. 3.) भूम्यादिस्तस्य शास्त्रं means here 'the science of polity, politics.' It also means the science of practical life and is often contrasted with धर्मशास्त्र. **सिद्धि**—Lit. the accomplishment of an object; hence, the execution of state business administration. "The distinction is," remarks Mr. Telang, "in essence the same as that between a despotic monarch, a constitutional monarch, and a monarch who reigns but does not govern." **वत्स्यामि:**—The reading वेत्स्याम: better suits the context, but it is grammatically wrong; it should be वेदिष्याम: since the *Anit.* विद् obtainable in the 4th and 7th conjugations does not mean 'to know.' To take वेत्स्याम: (7 cl.) in the sense of 'we shall weigh or consider (the matter) is to go against the context.

वैतालिकौ—विविधेन तालेन चरति इति वैतालिक: one who sings in different *tālas*. A kind of poetical warder or bard whose duty it was to announce fixed periods of time, to awaken kings from their sleep, &c. The bards are generally introduced in pairs in Sanskṛit plays. The bards herein mentioned do not seem to have been in the king's employ as they are asked to be remunerated further on[1].

---

[1] Was it disgust ?

P. 168. **काशपुष्प**—The *Kāśa* flower is represented by Sanskrit poets as one of the types of whiteness. *Cf.* ०काशनीकाशमूर्त्या D. K. also Ṛt III. 1, 2, Ragh. IV. 17. **अभिभवता**—*i. e.* which closely resembles it. **भस्मना**—It is difficult to see what this means in the case of शरत् Mr. Telang understands by it the white clouds of autumn and compares Ṛt. III. 4.[2] **ऐभी कृत्तिः**—(1) seems to refer to the impression of the elephant-hide-like space (the clear dark-blue autumnal sky); (2) Śiva is represented as wearing the skin of Gajāsura (the Elephant demon) killed by him. See Sis. I. 4; Meg. I 39, **क्लिश्नती**—oppressing; hence 'overpowering or counteracting the impression of, as Mr. Telang takes it **कापालीं**—*Cf.* Kum. V. 78, Vai. Śat. 24. **इति**—Thus, in this way. Mr. Telang remarks—'According to usual course with such stanzas the double meanings in the previous lines should be expressed as they are in the third line. But, as above stated, the construction of those previous lines does not apparently suit this, though the commentator's explanation is based on that view''. **हास्यश्री०**—(1) *cf.* Rt.. III. 2. Ragh. IV. 19.

In this śl. Autumn is described as having attained the high attributes of Śiva's body and is, therefore, able to grant protection. But since in the next Vishṇu is praised, here too, prominence should have been given to ऐशीतनु and the line should have read हरतु शरदिव क्लेशमैशीतनुर्वः। Chāna. also further on says—विशिष्टदेवतास्तुतिरूपेण &c. The śl. therefore, should be translated as principally referring to Śiva's body, इव being taken with शरद्, as—May the body of Śiva remove your trouble—the body which, (in his Tāndava dance) whitening the sky with ashes &c....is wonderful like Autumn, &c.[3]

---

[1] Even employees might be given rewards. S. B. Yogi.

[2] You need not take अस्मन् with शरत्, अस्मन् with एशीतनु and काशपुष्प with शत् S. B. Yogi.

[3] Construction also supports it. Only difficulty is हंसराजः=राजहंसः S. B. Yogi

जिह्मा—Squint, half-closed it may also mean dull or slow- 'जिह्मस्तु कुटिले मन्दे,' Haima Kośa **रत्न॰**—The jewels may probably be those in the hoods of Śesha; *cf.* तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम् । Ragh. X. 17. **नागाङ्क**—*v. l.* is not good; अङ्क cannot be taken in the sense of lap, as it is not the lap that has the उरुफणा॰ for its pillow but the body; if taken to mean नागचिह्नं it will have to be taken as meaning—in the form of **आकेकरा**—'आकेकरलक्षणं तु नृत्यविलासे--दृष्टिराकेकरा किंचित्स्फुटापाङ्गे प्रसारिता । मीलितार्धपुटालोकेताराव्यावर्तनोत्तरा ॥ Malli. on Kir VIII. 53. This stanza is quoted in the Sar. K. with the remark अत्र दृष्टेः प्रत्यग्रोन्मेषजिह्मतादिभिः प्रबोधो नाद्यापि निष्पद्यते इति प्रतीयते । The poet, it will be seen, praises Śiva in the first stanza and Vishṇu in the second. Fig. *Svabhāvotki* mixed with Rūpaka.

P. 170. **सत्त्व**—Mental calibre, that peculiar power of the mind which never allows it to flag, sweeping all obstacles before it, and which leads to the completion of what is undertaken. **कस्यापि हेतोः**—For some special reason; Com. The suggested sense given by the Com. might have been intended. This may better be taken with आज्ञाभङ्ग. Kings should not allow their order to be disobeyed for any reason whatsoever. But this will lead to the fault दूरान्वय. **दंष्ट्राभङ्ग**—*Cf.* I. 8. **मानावलेप**—may also mean pride of one's dignity. Mr. Telang remarks 'it is difficult to distinguish between मान and अवलेप, if we take the comp., with the Commentator, as a द्वन्द्व. Perhaps it might be allowable to take it thus—whose pride about the respect due to them is well-known'. But we humbly differ from such a high authority. मान and अवलेप are generally used synonymously no doubt. But here they are used in different senses मान is derived from मन् to think and *has to do with the mind.* It means high opinion of oneself, self-respect. *Cf.* मानचित्तसमुन्नतिः Amara. अवलेप is derived from लिप् with अव—अबलिप्यते अनेन (करणे घञ्) and properly means a paint or a coating. It thus refers *more to the outward bearing* or *external features* than to the mind; it means a behaviour of pride, high-spiritedness. Here the two words mean self-respect and pride (that does not allow a king to bear an insult tamely) and must be supposed to be used in a good sense. It may be necessary for kings to resent an insult, for having their commands universally obeyed. **आज्ञाभङ्ग** &c.—

For आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणामशस्त्रो वध उच्यते । **सार्वभौमः**—सर्वभूमेः ईश्वरः, सर्वभूमौ विदितो वा । Pān. V. 1. 42,43.

उपभोगेन—उपचार *v. l.* external appendages; this fits in better with भूषणादि.. We have, however, preferred उपभोगेन to उपचारेण as it is likely to touch the heart more effectively than the latter. **अपरिभूताज्ञः**—*Cf.* Bhar. राज्यं किमाज्ञाफलं ; Nit. Misc. 2. The student will at once see the hard Stanakalaśa, Rākshasa's agent, speaking through these verses and trying to set the king against his minister.

विशिष्ट—Specific, specially worshipped. **अर्थोत्सर्ग**—expenditure of money. **दोषाः**—evils, misfortunes. **अनभियुक्त**—not applying themselves to work. **अभियुज्यस्व**—युज् generally preceded by a *prep* beginning or ending with a vowel is Atm. except when it does not refer to sacrificial utensils. प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु Pān. 1. 3. 64. स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यं Vārt.

P. 174. **आज्ञाव्याघातः**—The repetition of the same term in different senses lends a peculiar force to the speeches.

प्रभव—here the word प्रभव is unnecessary, as तमालकिस॰ means the same thing. So this constitutes the fault अधिकपदत्व **तमालश्याम॰**—*Cf.* तमालतालीवनराजिनीला Ragh. XIII. 15. **तिमि**—A fabulous fish of monstrous size, said to be a hundred *yojanas* in length; अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनमायतः । **मालेव** &c.—Which is respectfully obeyed. *Cf.* गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् । Kir. I. 21. तथेति शेषामिव भर्तु राज्ञां &c. Kum. III. 22. **उह्यते**—The Com. needlessly and without propriety takes this in the sense of the future. Mr. Tẹlang remarks—If the command was at that time already accepted by all kings, a breach of it by Chāṇakya would then properly be spoken of as it is here. Fig. *Vyāghāta* (according to Al. Kau.); also Upamā.

P. 176. **प्रमाणलेख्यपत्र**—A document showing the number (परिमाण *v. l.*); or a document to serve as evidence or proof. **कुमारसेवक**—may mean a servant of the king from his (or the king's) boyhood. **एते वयं** &c.—see foot-note. Almost all Mss. conclude the document with these words. But they are quite out of place here as their insertion will make the document an important state paper and it could not have been brought so openly by Vaihīnari. Again Chāṇakya would not allow a sentence to be added in the document which would make the real object of the deserters, which he was taking care to keep concealed, known. Some editions make the king read the letter (आत्मगतम्); see readings. In this case the words एते वयं &c. would show to the king that they were really serving him and would leave no room to the king to ask the question एतेषामपरागहेतून् &c. in the next speech.

स्त्रीमद्य०—Three of the four principal vices mentioned by Manu and alluded to by Kālidāsa in Ragh. IX. 7. स्वजीवनमात्रेण &c.—Not to give them due allowance for their maintenance would have been impolitic. K. n. V. 64.

P. 178. इन्युत्पाद्य—Having fabricated or got up the story. दायाद—*Lit* those who take a share of the paternal estate, those entitled to inherit; hence relatives (quarrelling with one another for inheritance).

अनुग्रह—Reward, showing favour. निग्रह—punishment, राजस्य मूलं—The basis, the main prop of the kingdom. *Cf.* गजेषु नीलाभ्रसमप्रभेषु राज्यं निबद्धं पृथिवीपतीनाम्। K. n. XVI. 10.; also XX. 61.

P. 182. पूर्वः पक्षः—The first alternative. उत्तरोऽपि खलु &c.—"The answer to the second alternative seems to be that the adherents and friends of the Nandas would become disaffected, and would have no confidence of fair treatment by Chandragupta, if Chandragupta's own adherents and friends were punished as suggested, and thus the gradual subsidence of old memories and quieting of the kingdom would be delayed." Telang. प्रवणः:—favourably inclined or disposed towards, ready to act on. व्यायाम—Action, active operations.

द्वयी गतिः—A two-fold course; द्वाववयवौ यस्याः द्वयी or द्वितयी स्वहस्तः—One's helping hand; hence a confirmation or corroboration of. Or स्वहस्त may mean one's own handwriting serving as evidence, hence unmistakable or incontrovertible proof.

P. 184. एकत्र—*i. e.* in one place (with the subjects of Nanda). पुरुषकारः:—पुरुषस्य कारः कर्म manlines, courage. सहाय०—rich in friends. *Cf.* सहायसाध्याः प्रदिशन्ति संपदः; Kir. XIV. 44. Here Rākshasa is represented as talented and resourceful—as possessed of the three powers necessary for an ambitious conqueror. Thus his सहायसं० and the possession of कोष constitute his प्रभशक्ति, while his political talent (प्रज्ञा) and पुरुषकार indicate his मन्त्रशक्ति and उत्साहशक्ति; *cf.* सः प्रभावः

प्रतापश्च यत्तेजः कोषदण्डजम् । Amara, and K.n. मन्त्रस्य शक्तिं सुनयप्रचारं सुकोषदण्डौ प्रभुशक्तिमाहुः । उत्साहशक्तिं बलवद्विचेष्टां त्रिशक्तियुक्तो भवतीह जेता ॥ XVI. 32. **अन्तःकोप**—internal disturbance or disaffection. For अन्तःकोप and बाह्यकोप see K. n. XVI. 19-21. For the disastrous consequences of Antaḥkopa, *cf.* अणुरप्युपहन्ति विग्रहः प्रभुमन्तः प्रकृतिप्रकोपजः Kir. II 51.

राक्षसः खलु असौ—He is Rākshasa, mind you. *Cf.* Marathi राक्षस तो.

अभियुक्तः—Forcibly assailed, hard-pressed (वियुक्तः) **असि**—stands for स्याः or भविष्यसि. **अथ**—is पक्षान्तरे **वनगज इव**—For the propriety of the simile comp. I. 26, *supra*. **प्रशस्यतर**—Mark how the king chooses his words; he does not say वाग्मितरः or मतिमत्तरः **वनगज इव** &c.—Here Chān. speaks seriously; *cf. supra*, I. 26. **उपायैर्विनेयः**—The remedies used are those of (1) उपेक्षा or conniving at Rākshasa's actions; (2) भेद or alienating Rāk. from Malaya. through the instrumentality of Siddhārthaka, Bhāg. and others; (3) दण्ड or punishment inflicted on his adherents, (4) माया or the fuss about the sentence passed on Chandanadāsa and (5) साम and दान. **वाचं वाचातिशाययितुं** *v. l.* &c—make our speech excel your speech ; *cf. supra* धाम्नातिशाययति &c. p. 160. **मति मतिशयितुं** *v. l.*—to surpass the talent of.

P. 188. **कृत्वा पदं नो गले**—is idiomatic for ıquite in defiance of us.' **अस्मद्बलानां**—goes with **जयघोष० स्वनीतिविभवैः**—विभव implies richness, his various prolific political schemes. **मतयः**—The mind in its different phases; or the plural may be for the metre. **स्वेषु वर्गेषु** —explains why Chāṇakya also be distrusted.

आरूढ—Rising within, or rather through the whole body. **अग्राङ्गुली**—This comp. is generally analysed as अग्रं चासौ अङ्गुली च (see Malli. on Kir. XVII. 38) समानाधिकरणसमासः In a विशेषणपूर्वपद-कर्म०such as नीलोत्पल, उत्पल and नीलत्व are identical; but in this case अग्रं and अङ्गुली are not identical. But they may be so regarded by *Lakshaṇā* through their relation as अवयव and अवयवी See Rāghavabhaṭṭa's remarks on अग्रहस्त, Śāk. p. 92 and Vāmana quoted by him there; also our note *ad. loc.* **०दीर्घा**—The Com. takes this to refer to the length of time taken to destroy the enemy. It rather refers, as Mr. Telang observes, to length of space, (scope—it was arduous) the figure in the mind of the poet being probably the same as at p. 22, where the प्रतिज्ञा is compared to a river, and the length of water to be crossed is great owing to the number of enemies sworn to be destroyed.

P. 190. **नवनवतिशत०**—The Nandas were the reputed lords of ninety-nine crores of gold coins; *cf.* एहि राज्ञः सखे नन्दाद्याचितुं गुरुदक्षिणम् । गच्छामो नान्यतोऽस्माभिरयत्काञ्चनमाप्यते । नवाधिकाया नवतेः कोटीनामाधिपो हि सः । Kathās. Lambak. I. Tar. IV. 24, 95. But the reading in the text makes them lords of 99 hundreds or crores of gold coins. So this must not be taken literally. **पर्यायभूताः**—standing in a successive line. **पश्यतो राक्षस्य**—When contempt or disregard is to be shown the Genitive Absolute is used; *cf.* Pāṇ. II. 3. 38 quoted in the commentary.

गृध्रै, धूमैः—The Com. explains this as a व्यस्तरूपक being equivalent to गृध्रधूमैः । **नन्दैः**—of course means the Nandas and their men that fell with them. **पितृवन**—The residence of the dead, a cemetery, also called 'पितृसद्म; Kum. V. 77. **०निलयान्प्राणिनः**—*cf.* Māl. Mād. V. 11-18. **एते**—Chāṇ. is speaking as if he and Chand. saw the whole scene visibly before them though past.

दैव &c.—*cf.* दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति । **शिखां मोक्तुं**—This was Chāṇ.'s habit. **बद्धामपि**—must be taken to mean 'almost tied (बद्धप्रायां).' Or Chāṇ. appears to forget in the fury of anger (of course pretended) that the knot had been already united.

P. 192. **आरोढुं**—To exercise power on, to get ascendancy over, (hence to treat with contempt or to take to task, as the Com. takes it). **प्रणाशात्** &c.—*Cf. supra* I. 11. **परीतः**—Lit. surrounded by; hence overpowered, doomed by.

संरम्भस्पन्दि०—स्मोत्स्यन्दि *v. l.* would make the eye-lids move upwards only. **क्षाम**—Properly, wasted, grown lean or emaciated (*P.p.p.* of क्षै); hence here grown turbid (enfeebled, so far as its function of seeing is concerned). **रुद्रस्य**—Verbs meaning to remember have their object in the Gen. case; अधीगर्थदयेशां कर्मणि (षष्ठी) Pān. II. 3. 52. **रौद्रं रसं**—the sentiment of fury of which Śiva is the presiding deity. स्याद्रौद्रो रुद्रदैवतः Bharata. **ताण्डव**—तण्डुना प्रोक्तं । तेन प्रोक्तं (Pān. IV. 3. 101.) इत्यण्; the violent or frantic dance of Śiva. **उग्रप्रकम्पं** (**उदग्रकंपम्**)—उदग्र (उद्गतमग्रमस्य) with point raised, *i. e.* prominent hence great, excessive; it has a variety of meanings based on its root-sense; *cf.* पश्योदग्रप्लुतत्वात् &c. Sak. I. 7. उदग्रः क्षत्रस्य शब्दः Ragh. II. 53. **उग्रप्रकम्पां** *V. l.*—here प्र has no force as उग्र

expresses the idea of excess. The figs. are उत्प्रेक्षा, रूपक and स्मरण. This is an instance of रौद्र रस.

उत्तरोत्तरं—उत्तरस्योत्तंर a rejoinder to a reply; hence 'Bandying or exchanging words, verbal altercation or discourse.' **शस्त्र**—see p, 24.

P. 194. **चलितभक्ति**—चलितं (सामान्ये नपुं॰) भक्तिर्यस्य; *cf. supra* परीक्षितभ० p. 32. **किल**—certainly; or it may be अरुचौ (in the sense of disapproval;—which you used but to your own disadvantage. **दूषण**—Disgrace, conviction. This expectation of Châṇakya is realized. See pp. 256-260. Fig. विषम. The sham quarrel which was so deliberately planned and successfully effected had the following effect. It served to throw Rakshasa off his guard by turning his attention to a wrong quarter by making him over-confident of the favourable issue of open warfare and by closing his eyes to the activity of Châṇakya's emissaries. Moreover, it led Malayaketu to believe that the deserters from Chandragupta, Bhāgurāyaṇa, and others, came over to him through real discontent. It corroborated the insinuations of the forged letter and of Bhāgurāyaṇa, that Rākshasa aimed at being the minister of Chandragupta. Lastly it helped to produce in Malaya, the fatal belief that the affairs of Chandragupta were really in a state of disorder and that that was the favourable time for striking the blow.

उपपद—An epithet or title of respect. **हन्त**—expresses pity. **असत् कुरुते**—अविद्यमानं सदस्मिन्निति असत् dishonour, disrespect, or wrong—may be taken separately; but the Com. is better. **व्याल**—a wicked elephant; व्यालो दुष्टगजे सर्पे इति हैमः । *cf.* Malli. on Kir. XVII. 25. Fig. दृष्टान्त. **एवं गृह्यमाणेषु**—Understood to be such; looked on in this light. This sense of ग्रह् is common enough; *cf.* एवं जनो गृह्णाति Māl. I. परमार्थेन न गृह्यतां वचः Śak II. 25; मयापि मृत्पिण्डबुद्धिना तथैव गृहीतं *Ibid* VI. p. 160

P. 196. **बुद्धिः प्रवेष्टुं** &c—Chandragupta means that his intelligence is just on the point of leaving him, so much overpowered by shame he is; *i. e.* he is quite beside himself with shame. **अतिपातयन्ति**—अतिपातय् seems to be used here synonymously with लंघ (trangress the bounds of respect due to); to insult or greatly disrespect. *Cf.* अतिपातितकालसाधना:

Kir II. 42. Figs—काव्यलिंगं and अर्थापत्ति (कथं न भिनत्ति भिनत्त्येव). The śloka clearly shows that Chandragupta duly appreciated the services of Chāṇakya and had proper respect for his *Guru.* Contrast this trait of his character with the fickleness of mind of Malayaketu and the readiness with which he insults Rākshasa, his real well-wisher and a man of tested loyalty. (Act V. pp. 256-260).

ACT IV.

अध्वग०—अध्वानं गच्छतीति a wayfarer, a traveller, तस्येव वेषो यस्य सः, हीमाणहे—expresses wonder; this occurs in Mṛch. pp. 9, 240 &c. It is made up of ही and माणहे (which stands for मानुषाः Voc. pl.)

राजनियोगो &c. *V. l.*—महीयान्—All-powerful. This reading is abandoned as the idea is repeated in the next half. अस्थानगमन०—seems to mean—great (powerful) enough to force one to go ceaselessly, or without taking rest (स्थानं स्थितिः stopping), or at once (अकाण्डे). It may also mean 'important because one has to visit places not easily approachable in order to gather information'.

दौवारिकः—द्वारे नियुक्तः । 'तत्र नियुक्तः' । Pān. IV. 4. 69. इति ठक् (इक) । 'द्वारादीनां च' VII. 3. 4. इति औ आगमः । पाटलिपुत्रात्—Pata., also called कुसुमपुर, पुष्पपुर &c., was the ancient capital of Magadha. It was situated at the confluence of the Ganges and the Śoṇa, and has been referred to by Greek writers under the name of Palibodhra. It is said to have been destroyed by a river-inundation in the 8th century A. D. The modern Patna is identified by some with it. It was founded by a certain prince named Putraka and named after his wife Pātali. See Kat. Sar. 1.3.77. मा उच्चैः—शनैः *v. l.* is not appropriate.

P. 202. भद्रमुख—Good sir. Generally used in addressing a person for whom the speaker feels regard, or a stranger courteously. *Cf.* Śāk. p. 197.

अविधेयता—Unmanageableness, uncontrollable nature. Fate was stubbornly adverse to him and would not crown his efforts with success. **अपि च**—and to add to that. **विहृते** *v.l.*—foiled, frustrated (अस्मापिः कृते तत्कृत्यानामुपाग्रहे विहृते). **निकामं**—exceedingly, entirely. **अनिशं** *i. e.* night is as it were no night to me.

कार्योपक्षेपं &c.—For the Sanskṛt definitions of the various dramatic terms occurring herein, see p. 22. **कार्यं**—The business or chief object. **उपक्षेप** (1) one of the twelve subsidiary parts of *Mukha* (बीजन्यास उपक्षेपः । D. R.); (2) setting on foot, commencing, taking the fisst step towards. **बीज**—(1) the germ or the so-called *seed* of the plot of the story ; (2) the primary incidents of an undertaking or political measure. **आदौ**—*scil*, in what is called मुखसन्धि (that in which the seed sprouts ud connected with the various *Rasas* and attended with आरम्भ) ; (2) at the out-set or start. Rak. does this at p. 88 अयि अविनीते &c. **विस्तारं**—*i. e.* in the प्रतिमुखसन्धि (wherein the seed that has already struck root has only slightly developed, being aided by the means to the end). **गर्भितानां** *i. e.* when the seeds are in what is called गर्भसन्धि (in which the seed or the first cause of the fruit attains a further development and is accompanied by obstructions and search after the end which on the whole help the *denoucment* of the plot). **बुद्धि**—dramatic genius ; (2) political insight, forethought. **विमर्श**—The *Sandhi* of that name (generally called अवमर्श wherein the seed attains a more luxuriant growth than in the *garbha* being accompanied by *niyatāpti* of the end, but whose final result is yet postponed by fresh impediments such as a curse, and the like). (2) deliberation as to the chances of success or otherwise. **संहरन्**—*i. e.* in the निर्वहणसन्धि (wherein the final catastrophe is reached, the various incidents, howsoever scattered, converging to one point *i. e.* the end). There is श्लेषालङ्कार in the first three lines.

कर्ता वा &c.—The poet's task is as arduous as that of a minister. The description here, it will be seen, applies to Chān. more fittingly than to Rākshasa, who fails repeatedly in his विमर्श and कार्य संरहण. For a similar fig. comp. Śis. XI. 6. (where a poet and a king who is a practical administrator are likened) ; Bhar. Nīt. Śat. Misc. śl, 16, and Vai. Śat. 51 (where a poet and a *mantrin*, and a man and an actor are respectively compared).

P. 204. **तदपि नाम** &c.—The whole sentence is बटुरतिसन्धातु

शक्यः स्यात्. The interruption gives another version to it which is explained in Rākshasa's next speech. Rāk. of course takes this as ill omen. See *ante* p. 50 and notes.

वागीश्वरी —Such accidental word are supposed to proceed from some superhuman agency and are considered as divine. Their import was here corroborated by the coincident twiching of the left eye. A throbbing sensation in the left part of the body of men is supposed to indicate some future evil. **प्रस्ताव**—The Com. needlessly takes this in the sense of संवाद 'agreement with' (which is however arbitrary). It is better to take the Inst. करणे 'Divine speech expressed or rather established her meaning by means of &c.

P. 206. **अज्जा**—Mr. Telang reads आअदो' but it is out of place. **कल्याण**—meaning 'gold' (as taken by the Com. in the 2nd case) is rather unusual, though the Koṣas give the sense 'कल्याणं हेम्नि मङ्गले'। Cal. Ed.s read कल्याणकुलघराणं (गृहाणां) the abodes of what is auspicious.

पुरुषाभिमान—may mean 'pride characterstic of man,' or 'pride about one's prowess (पौरुषं—पुरुषोऽहं पौरुषयुक्त इयि अ०).'

भूरेणु०—भुवः रेणुभिः रूक्षा अलका यस्मिन् । **मातृजन**—the whole body or multitude of mothers ; (पितृपत्न्यः सर्वा मातरः). **निवापाञ्जलिः**—निवापस्थ or निवापार्थः अञ्जलिः; न्युप्यते निवपनमिति वा निवापः । करणे भावे वा घञ् । An offering offerd to a deceased person after the *Sapīṇḍikaraṇa*. The mention of the *Nivāpa* shows that Malaya. was not a Yavana.

P. 208. **उद्यच्छता**—Bearing up ; यम् with उद् is Atm. when the object is not a literary work ; as भारमुद्यच्छने, and it should be so here. But as the fruit of the action goes to his enemy, *viz.* destruction or to his father (*viz.* his satisfaction) the poet uses the Par.; see also com. **धुरं**—the yoke of ; hence, doing the enormous duty of a hero. **अकापुरुषा०**—कुत्सितः पुरुषः कापुरुषः also कुपुरुपः); न कापु० अकापुरुषः ; not a timid or mean-hearted person ; *i. e.* a high-souled or brave man ; **तस्यानुरूपा** ; रूपमनुगता अनुरूपा. The whole means—Bearing the brunt of battle and doing deeds of great valour. **गन्तव्यमा०**—As Parvate. had not fallen on the battle-field but met with his death in his bed chamber while clasping the poisonmaid, this simply means—By dying in the battle I should follow my father to the next world.

प्रतिनिवृत्ताः—Turned back, *i. e.* desisted from proceeding further. **सौत्सेधैः**—raised high up ; उपलक्षणे तृ०. *Cf.* पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहतिः । Kum. V. 8. **स्कन्धदेशैः**—the region from the neck to the hand. **खमिव खण्डयन्तः**—"Alluding apparently to the manner in which the horse raises his foot very high in moving when his speed is suddenly checked."—Telang. **मर्यादां**—*Cf.* वेलां समुद्रा इव न व्यतीयुः । Ragh. XIV. 2. **जलधय इव**—The comparison to the sea indicates the vastness of the troops.

P. 210. **भद्रभटप्रभृतिभिः**—These are the men who came over to Malaya. (as mentioned in Act I p. 74.) apparently through discontent, but who were really Chāṇakya's emissaries. See VII. 9. **शिखरसेनं**—Some read शिखरकं; but further on he is called शिखरसेन ; see p. 294. **परिगृहीताः**—*Cf.* चाणक्यमतिपरिगृहीतं, राखस० p. 82. **चन्द्रगुप्तात्**—अपरञ्च is used with the Abl ; *cf.* 'नयहीनादपरज्यते जनः Kir. II. 49. **आभिरामिक**—अभिरमयतीति अभिरामं शीलमस्य अभिरामः, अभिराम एवाभिरामिकः । स्वार्थे ठक् (इक).

आत्मगुण०—Possessed of qualities, tastes, feelings &c. as one's self. So Mr. Telang. It seems rather to mean endowed with the qualities of the soul (आत्मनो गुणाः) ; *cf.* तात सववात्मसंपदभिजनात्प्रभृत्यत्रभवत्यन्यूनैव लक्ष्यते । D. K. VIII. p. 188. **ननु**—certainly.

किंतु—Mark how skilfully Bhāg., as Chāṇakya's agent, insinuates that Rāk.'s devotion to Malaya. is not real and that he (Rāk.) may enter into an alliance with Chandragupta towards whom he is not actuated by any feeling of animosity. **सुहृज्जन**—*i. e.* Rākshasa's friends in the city. **पितृ०**—पर्यायेणागतः पर्यायागतः । पितृभ्यः पर्यायागतः पितृ० । **युज्यते**—shows that Bhāg.'s words have produced their effect on Malayaketu. The ground is thus prepared for the future structure of Bhāgurāyaṇa's policy of Bheda.

P. 214. **सत्त्वभङ्गः**—may mean मनोभङ्ग (giving offence), सत्त्व being used by *Lakshaṇā* for the seat of *Satva*, as the Com. takes it. Or it may better be taken with राज्ञां, सत्त्व meaning 'mental courage, or power.' Ministers give a false report to their masters that they may not lose their courage ; **अन्यथा** differently, in way different from truth ; or **अन्यथा अन्यथा**—may be taken in the sense of—in one way in another. **स्वैरालापेषु**—may also be taken as स्वैः स्वजनैः सह आला०.

गहनः—Not easily to be penetrated or comprehended, impenetrable-Bhāg. is here trying to thicken the suspicion about Rāk.'s sincerity which has already gained possession of Malaya's mind. **परिच्छिद्** To cut all round ; hence to know exactly or grasp fully and accurately. The root constantly occurs in this sense ; *cf.* Ragh. VI. 77, Māl. Mād. I. 33, 34, &c.

P. 216. **जनितपरिचयः**—जनितः (कालेन) परिचयः यस्य. **बहु मानितः**–hailed with respect.

कौमुदी &c.—There is a pun on the words **कौमुदी, कुमुदानन्द,** and **चन्द्र. कौमुदी**—(1) The festival; (2) moonlight. In **चन्द्रे** there is also a covert reference to Chandragupta. **कुमुदानन्द**—(2) the gladdener of night-lotuses; gladdener of a section of people, by *Lakshaṇā*; or कुत्सिता मुद् येषाँ तेषामानन्दः gratifier of people delighting in bad things, *i. e.* Chānakya and people of his type. **चंद्र**—(1) the moon. (2) Chandragupta. The contrast between **कुमुदानन्द** and **जगदानन्द, चन्द्र** and **नृपचन्द्र** is also intended to be significant. The one Chandra delights a *few people*: the other was the gratifier of *all*. Fig.—A fusion of **वनोक्ति** and **व्यतिरेक**; see com.; there are also *Kāryalinga* and *S'lesha*.

परिपाटी—A series or succession (*i. e.* ślokas in succession). This is said simply to please Rāk. as the bard had repeated two ślokas only.

सद्यः—समाने अहनि *indec.*; on the same day; hence, immediate, abrupt; goes with **च्छेद. सद्यःक्रीडा** may also be taken as one word. *Cf.* सहते न जनोऽप्यधः क्रियां किमु लोकाधिकधाम राजकम् । Kir. II. 47.

P. 218. **कलुषित**—Properly means-made turbid of foul; and as anger has a pereceptible effect on the mind and also the body of a person, it means angry; *cf.* III. 9. *supra*; also विमलं कलुषीभवच्च चेतः Kir. XIII. 6; anger is considered a *mala* which sullies the mind. **न तथा**—See Bhāg.'s meaning explained in the com. **प्रसंगसू०**—**प्रसंग** the drift of conversation (your name being turned up in the course of conversation); **कृतवेदी**—grateful; see Kir. XIII. 32. **आत्यन्तिक**—lasting; see II. 14; अतिगतमन्तमत्यन्तं; अत्यन्ते भवमात्यंतिकम् **हस्ततलगतः**—Because no longer aided by the wise counsels of Chāṇakya.

P. 220. **चाणक्यात्** &c.—Mark how Bhāg. gives a different version of Rāk's plain words. He invidiously suggests that Rākshasa's object must be to become minister in Chāṇkya's place. See com. **सावेगं**—Because Chān.'s conduct seemed to throw a doubt over the reality of the quarrel.

देवस्य—देवकृता (offence) given by the king. **स्वाग्रा०—स्वस्य अग्रासनापयनात्।** **स्वयंकृत०**—and hence easy to be removed (stands in contrast with पृथ्वीतल &c.). **मनस्वी**—a proud man (मानी). **इमां**—This, so grave (being offered by a low-born person).

अलमन्यथा &c.—Śakaṭa. means that Rāk. should not have unnecessary misgivings but may well believe the news.

P. 224. **मणीन्दु०**—Moon-like (*i. e.* large and bright) gems; see com. **कोपनः**—कुप्यति तच्छीलः; from कुप्+युच् (अन) added शीलार्थे, by 'क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च' Pāṇ. III. 2. 151. अन is added to the roots क्रुध् and मण्ड् and their synonyms in this sense; क्रोधन, मण्डन, भूषण, &c. **अभिचरण**—employment of spells and incantations and the performance of such rites as the Śyeneshṭi, with a view to obtain one's object. (वृष्टयायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्नपि Yāj. I. 295); but generally for malevolent purposes such as the destruction of one's enemies, &c. *cf.* बभार रम्योऽपि वपुः स भीषणं गतः क्रियां मन्त्र इवाभिचारिकीम्। Kir. III. 56. अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः Kād. p. 177. Such acts are considered *upapātakas*, as animals like a hawk (*cf.* श्येनेनाभिचरन्यजेत) I have to be killed and sacrificed. Chāṇakya, it is said, performed such destructive rites and encompassed the death of his enemies, the Nandas. Kāmandaka refers to this at the beginning of his Nītisára when paying his tribute of respect to Chāṇakya—यस्याभिचारवज्रेण &c. I. 4. See *supra.* p. 4. com. **ज्ञातदुःख**:—For it is not an easy task to perform the Abhichāra-kriyās as they entail unusual trouble on, and cause a great deal of worry to, the performer. So it is not often that one can do these things. **दैवात्**—Śakaṭa. suggests that in fulfilling his first vow Chāṇ. was indebted more to his good luck than to his diplomacy. This he does evidently to please Rākshasa. **पूर्ण**—तीण *v. l.* requires the idea of a river or so to be understood (as in निस्तीर्णा दुस्तरा प्रतिज्ञासरित् *supra* Act. I. p. I2.); again it implies an effort on the part of crosser, which does not fit in well with दैंवात्; so पूर्ण is perferable. **आयतिः**—'उत्तरः काल आयतिः' Amara; but it generally means 'a favourable future' *cf.* रह्यत्यापदुपेतमायतिः । Kir II. 14. केशनखानामायतिभंगः । Kād. p. 26. अनायतिक्षमं (वचः) । Pt. III. 109. **ग्लानि**—failure; discomfiture in the future; ज्यानि *v. l.* from ज्या+नि (भावे) also means failure or loss of (the same as ग्लानि).

विश्रामय—See p. 134 *supra.* **अतिरस्कृत**—not screend or thrown into shade, *i. e.* supplanted. He means—so long as I have not raised you to the rank of an emperor. **उरीकृतमेतदा॰**—*cf.* नैतत्संस्थास्यते कार्यं दक्षेणोरीकृतं त्वया । Bhaṭṭi. VIII. 11. **संभृत**—collected, or fully equipped; hence ready for action. **उदीक्षमाणैः**—uselessly or idly waiting for. This is not the same as अपेक्षमाणैः ।

P. 226. **सचिवव्यसनं** &c—*Cf.* स्वशक्त्युपचये केचित्परस्य व्यसने परे। यानमाहुस्तदासीनं त्वामुत्थापयति द्वयम् ॥ Śis. II. 57; and Manu—तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः । See śl. 15. further on. **व्यसन** is derived as यस्माद्धि व्यस्यति श्रेयस्तस्माद्व्यसनमुच्यते । K. n. XIV. 19. सचिवोत्थित व्यसनं सचिवव्यसनम्—Mad. comp.; a weak point or disaster arising from want of an able minister to guide the state affairs. **चन्द्रगुप्तप्रकृतीनां**—Malaya. of course is covertly referring to Rākshasa, his mind being previously poisoned by Bhāgurāyaṇa.

पितृभूतं—'Bearing to him the relation of his paternal family. Telang. It seems, however, undoubtedly better to take it in connection with the subjects (प्रकृतिऽ). The अपराग and अमर्ष referred to are explicable only if we suppose the Nandas to have taken fatherly care of their *subiects.* For, what could the sujects have cared for the Nandas, had they been oppressive, even though they bore paternal relation to *Chandragupta* ? With our meaning the comp., too, becomes appropriate; पिता इव भूतं (comp. सुप्सुपा); *cf.* प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि । स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ Ragh. I. 24. In the reading पितृकुलभूतं, कुल is repeated and has no special propriety. **विप्रकृताः**—Lit. driven from their nature; hence perturbed or distressed; hence also harassed or tormented, as in Kum. II. 1. **स्वाश्रय॰**—सु+आश्रय. **संभाव्य॰**—whose power may be believed as equal to. *Cf.* संभावनीयानुभावास्याकृतिः । Sāk. VII. p. 206; संभाव्यपराक्रमं Kir XIII. 1. **निदर्शन**—An instance (which proves what is stated previously); *cf.* Ragh. VIII. 45.

P. 228. **प्रतिविधातुं**—To resist (our attack). The reading 'स्वायत्तसिद्धिषूभयायत्त &c. has been adopted in preference to स्वात्तसिद्धिषु (भूमि०) as it is in better keeping with Mal.'s previous speech. **तत्**—*i. e.* स्वयं प्रतिविधानं. **सचिवायत्तसिद्धौ स्थितः**—see p. 168 *supra*. Rāk. is speaking here as Chandragupta's antagonist but he was inwardly conscious of Chandragupta's great worth and the promise of future greatness he gave early in life. *Cf.* VII. 12.

अत्युच्छ्रिते—Occupying very elevated place, grown almost as powerful as the king. The figure is taken from the games of dancers and tumblers as remarked by the Com. Lakshmī, unable to keep long in a state of equilibrium which is necessarily unstable, makes her choice soon and clings to one of them. **असहा भरस्य**—सहते इति सहा, सह् + अच् + आ. **भरस्य**—कृद्योगे कर्मणि षष्ठी । कर्तृकर्मणोः कृति Pan II. 3. 65. A. G. § 109. *Cf.* संप्राप्ते वपुषि सहत्वमातपस्य । Kir. VII. 7. ह्रीवंधूभिरसहा विरहस्य । Śis X 81 एकं भूमिपतिः करोति सचिवं राज्ये प्रमाणं यदा &c. Pt. I. 263. Hit. II. 126. Divested of the fig. the meaning is that the joint administration of a state—by the king and his minister—will not continue long, it will either take the autocratic or the ministerial form of government, one of the two losing his unrestrained power.

Sl. 13. &c. *Cf.* स्वायत्तासिद्धे राज्ञो हि प्रज्ञोपकरणं मता । सचिवायत्तासिद्धेस्तु तत्प्रज्ञैवार्थसाधनम् । त एव चेन्निरुत्साहाः श्रियै दत्तो जलाजंलिः ॥ Kathāsār. Tar. XV. 58. **तदर्पणः**—Who makes over or entrusts his affairs to his minister. **स्तनंधयः**—स्तनं धयतीति । नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः Pān. III. 2. 29. Also **स्तनंधयी.** The nasal comes in by pān. VI. 3. 67. See our note on परंतप Bhaṭṭi. I. 1. **उत्सहते**—has the energy to **वर्तितुं**—वृत् to act, to perform his royal duties. *Cf.* यः कुर्यात्सचिवायत्तां श्रियं तद्व्यसने सति । सोन्धवज्जगतीपालः सीदेत्संचारकैर्विना ॥ Hit. II. 128.

P. 230. **अभियुञ्जानस्य**—Applying himself to (taking advantage of). **ऐकान्तिकी**—एकान्ताय हिता प्रभवति वा; lit. leading to *one* end; hence certain. **०सिद्धिर्भवति**—सिद्धिमवगन्तुमर्हति *v. l.*; in this case the subject to अर्हति is अमात्यः the minister should please know that &c.

चलिता०—चलिताधिकारः च (not अतएव) विमुखः (not favourably inclined) च. **मौर्ये नवे राजनि**—*Cf.* Mal. I. 8. quoted before (see notes p. 6). **स्वाधीने**—स्वास्मिन् (त्वयि) अधि इति स्वाधीनः at your disposal. **मयि**—This would appear as self-praise; but the words naturally escape Rak's lips; Rak. perceives his mistake and feeling ashamed hastens to mend matters by adding **मार्गमात्र** &c. *i. e.* by suggesting that he would act like a humble guide. **योग**—means; see com.; or the application or use of. **नः**—Rak. identifies Malaya's. interest with his own. In this sl. Rak. sums up the circumstances favourable for an immediate march. In the first place his own party is strong enough to act on the offensive; secondly, the prime minister and the subjects of the enemy are disattached to him; thirdly Maurya is inexperienced and fourthly Malaya. has everything favourable to himself. *Cf.* Sis. II. 57. quoted above (p. 59) मित्रामात्यसुहृद्वर्गा यदा स्युर्दृढभक्तयः । शत्रूणां विपरीताश्च कर्तव्यो विग्रहस्तदा ॥ Hit. III. 65; also K. n. X. 27. Manu. VII. 183.

उत्तुङ्गाः &c.—The figures in this śl. are *Upamā*, *Ślesha*, *Yathāsamkhya* and *Anuprāsa*. There are two sets of adjectives indicating the common qualities on which the comparison is based, one set applying to the river Śoṇa, the other to Malaya.'s elephants. **मुखरः**—निन्दितं मुखमस्य । मुखशब्दो लक्षणयात्र वचनपरः । र shows possession and is affixed to words like ख, मुख &c. Pān V. 2. 107. **खात**—P. *b. p.* used abstractively. **शोण**—A river rising in Goṇḍavana and joining the Ganges; see Ragh. VI. 36. The river is Śona in name; the elephants really red with red-lead. **अपास्यन्तु**—*i. e.* on their way to Pāṭaliputra the elephants will enjoy a bath tossing the current in all directions. *Cf.* Ragh. IV. 45. It appears from Kṣapaṇaka's speech at p. 236, that Malayaketu's army had to pass from north to south crossing on its way the river Śoṇa. Pātliputra, therefore, appears to have been situated to the south of the Śoṇa.

विन्ध्यं &c.—The Vindhya being the central chain is naturally the resting place of the clouds in their passage from the south and is often referred to by poets ; *cf*, तस्यापतन्मूर्ध्नि जलानि जिष्णोर्विन्ध्यस्य मेघप्रभवा इवापः । Ragh. XIV. 8. Rt. II. 27. **इव मेघमालाः**—the comparison suggests the huge size of the elephants. Clouds and elephants are often compared ; *cf.* Mrch. V. 21; Meg. I. 2.

P. 234. **सांवत्सरिक**—संवत्सरं वेत्ति; fr. संवत्सर+ठक्; an astrologer. **कथं क्षपणक:**—The sight of a Kshapaṇaka (a Buddhist or Jaina mendicant) is considered ominous *Cf.* p. 234. The mention of Kshap. causes uneasiness to Rāk., but the subsequent mention of the name Jīva., which sounds auspicious, quiets his fears and he asks his servant to send him in ; see com.

अबीभत्स—बीभत्स disgusting, revolting to view. The appearance of *Kshapaṇakas* and other Buddhist mendieants is generally represented as loathsome. *Cf.* प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व य एव गलन्मलपङ्कपिच्छिलबीभत्सदु:प्रेक्ष्यदेहच्छवि: उल्लुञ्चितचिकुर: मुक्तवसनवेषदुर्दर्शन: शिखिशिखण्डकपिच्छिकाहस्त इति एवाभिवर्तते । Pra. ch.; also Das. ch. II. p. 75.

अर्हत्—A Buddha of the highest rank; also the supreme divinity of the Jainas ; सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजित: । यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हत्परमेश्वर: ॥ This as well as the words अर्हत: प्रणमामि &c. (V. 2.) show that Kṣap was more probably a Jaina ascetic. The first words of the specific prayer formula of the Jainas are नम आर्हतानां नम: सिद्धानां नम आचार्याणां &c. See Monier William's Buddhism, p. 536.

प्रतिपद्यध्वं—Accept, *i. e.* act according to it. This Gāthā has also a side meaning. अर्हत् refers to Chaṇkya. Those who will obey the commands of the worthy Chāṇkya, although at times characterised by severity, will profit in the end.

धर्मसिद्धि:—Success in their religious practices ; salvation or Nirvāṇa. *Cf.* Siddhi, *infra* V. 2. **श्रावकाणां**—शृणोतीति श्रावक: ; fr. श्रु and अक (ण्वुल्). Śrāvaka lit. a devout or reverent listener : a believer in Buddhism or Jainism ; a Buddhist votary in general ; used as a formal title of address even with reference to persons of different faiths. For a similar blessing *cf.* आर्या: कुरुत धर्मसंचयं Mṛch. p. 159.

भदन्त—A recluse; (भदन्त: प्रव्रजित: Sid, Kau. on Uṇādi III. 130). Used as a title of respect in addressing a Buddhist or Jaina mendicant. *Cf* Mar. भगत. The Com. thinks that it is the name of an astrologer (भानि नक्षत्राणि दन्ता इव यस्य).

P. 236. **निवृत्त०—आमध्या०**—from mid-day *i. e.* noon onward. **निवृत्त०**—in which blessings of all kinds may be secured (निवृत्तानि सर्वाणि कल्याणानि यस्यां). **पौर्णमासी**— पूर्णो मासो अस्यां; बहुव्रीहौ कृते स्वार्थे अण् । **दक्षिण**—southerly (and so favourable). Kshapaṇaka advises Rāk. to start the very day in the evening; see com. The full-moọn-day is one of the days called *Pūrṇā viz*. 5th, 10th and 15th, which are regarded as auspicious in the bright half of a month, *Cf*. नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभम ध्यशस्ता: । Muh. Chin. I. 4. It will be more auspicious towards the evening, just as the sun would be setting and the moon rising. For the lunar mansion पूर्वफाल्गुनी presiding over the 15th Muhūrta is one of the seven *nakshatras* beginning with *Maghā* and assigned to the south. And this will be favourable to those going towards the south. *Cf*. एवं दक्षिणस्यां मघादिसप्तमैः (यात्रा प्रशस्ततमा); com. on Muh. Chin. XI. 33. The Com. reads णिव्वुत्त० *i. e*. निवृत्त० and explains आम०···तिथि: as 'the day is not auspicious at all till noon (निवृत्तं सर्वं कल्याणं यस्या:). He also takes अदक्षिण to mean 'not favourable'. For his view see com. But this does not seem to be intended. Jīva. apparently gives a decisive answer considering the question from all points of view. He knows that an undecisive answer would not satisfy Rākshasa. **णिवुत्तसप्तमकलणा (करणा) सोहणा तिही** *v. l.* means—The day is auspicious after the 7th Karaṇa *i.e.* भद्रा (also called विष्टि) which is unpropitious. See. com. A करण is half of a *tithi* or lunar day. ०सप्तशकल । *V. l.* where सप्तशकल means the same thing (विष्टिभद्रात्मक: सप्तम: तिथ्यंश:).

अस्ताभिमुखे—The circumstances mentioned herein make the evening a very desirable time for the march. The sun, being a *Krūra* graha, is required to be set, while the rising moon would exert a favourable influence (what is generally known as चन्द्रबल) according to the maxịm 'चन्द्रो लक्षगुणाधिक:'. **बुधस्य लग्ने**—*Lagna* means the contact of a zodiacal sign and the horizon. Now it was the month of Mārgaśīrsha when Rāk. asked the question. And in this month the sun is in the zodiacal sign *Dhanus* (Sagitarius). This is the *Lagna* at sunrise. This gives *Mithuna* (Gemini) as the *Lagna* at the time of sunset. And as Budha is the presiding planet of Mithuna, it is called Budha's *Lagna*. The moon too would be in *Mithuna* at that time and is then westerly. So that to those journeying southwards it will be on the right-handside; and such a moon is favourable. **उदितास्त०**—Ketu is another malignant planet; and this too will set at the time of marching after having risen.*

Such is the apparent meaning of this passage. It has also a hidden meaning. Jīva. means—When you go to Pāṭliputra good fortune will smile upon you fully (निवृ॑त्त॰) as Chandra *i. e.* Chandragupta has his rule firmly established (संपू॰). But as you will march towards the south, the quarter of Yama, with Malayaketu and his army, the *Kshatriyas*, Bhadrabhaṭṭa and others, will not be favourable to you (अदक्षिणे) and destruction will await you, Again, oh brave Rākshas, (सूरे) you will be near gaining the high post of chief minister (अत्थाहिमुदे-अर्थाभिमुखे) as you will come in contact with the wise Chāṇakya (बुधस्य लग्ने). And the sovereignty of Chandragupta will be complete after Malayaketu is captured and his army overthrown. See com. where this is fully explained.

P. 238. **न शुद्ध्यति**—is not propitious or unobjectionable. Rāk. means—How can we go when the *day itself* is not favourable? The full-moon day is one of the day on which journey is forbidden. *Cf* न षष्ठी न च द्वादशी नाष्टमी नो सिताद्या तिथिः पूर्णिमामा न रिक्ता । Muh. Chin. XI. 9. प्रत्येकं तिथिफलान्याह वसिष्ठः × × × विनाशदाथपूर्णिमा यशःक्षयं करोत्यमा । Com. on the above.

एकगुणा &c.—Kshap. asserts that the evil influence exerted by the day is more than counterated by the good influence of the constellation and the zodiacal conjunction (लग्नं). Jiva. gently blames Rāk. for his indecision. He says—"Do not express unnecessary doubts. The *Lagna* is good; only avoid the planets Sun and Ketu &c." The hidden meaning is—The meeting (of Chāṇakya with you) will be blissful; give up the cruel thought of avenging the destruction of the Nandas. You will obtain lasting happiness by going in the company of Bhadrabhaṭṭa and others, the trusted men of Chandragupta. See com. For the meaning of the other reading see com. p. 236

संवाद्यतां—Let a consultation be made with; *i. e.* see that your decision agrees with that of other astrologers. For the meaning of संवद् *cf infra.* संवदन्त्यक्षराणि p. 285. **कृतान्तः**—(1)

---

* The information given here is extracted from the notes on this by Prof. Dhruva who has discussed the whole question ably and learnedly.

the god of death; (2) the decision or the conclusion, hence the science of astrology. The double meaning is well explained in the com.

P. 240. **अस्ताभिलाषी**—अस्तमभिलपतीति desiring to go to the setting mountain, *i. e.* about to set. **पर्णच्छायै:**—A Tat. ending in छाया *neu.* when the sense to be expressed is thickness of shade. The plural is used as the multiplicity of shades is intended; पर्णच्छायं च पर्णच्छायं च पर्णच्छायं च पर्णच्छायानि तै:. **आशु**—Because in the morning the shadows are the longest; thereafter they go on shortening. During the fore part of the day the shadows keep to the west in which direction also the sun is going. They are therefore compared to deveoted servants who go before their masters. In the latter part of the day the shadows recede and gradually lengthen out in the eastern *i. e.* the opposite direction; thus they leave the sun further and further as the latter loses his power (heat). Hence they are compared to servants who leave their masters in the decline of their fortune. **प्राय:** &c.—*cf.* सर्व: प्रायो भजति विक्रतिं भिद्यमाने प्रतापे। Mv. II. 4 Fi. of speech अर्थान्तरन्यास.

ACT V.

P. 244. Herewith begins, according to the Com., the *Nirvahaṇasandhi*, which takes up the last three Acts. It has fourteen *Aṅgas*; see com. **तत: प्रविशति** &c.—Siddhārthaka, as the reader will easily see, now starts on his mission in accordance with his master's instructions.—तत: प्रत्यासन्नेषु &c. (see p. 54.)

बुद्धिजल &c.—Mr. Telang remarks—"The figure in this stanza is criticised by Professor Wilson as not "natural to the style of the compositions of the period to which the drama belongs.' But नीतिपादप and its flowers are spoken of in Kālidāsa (Mālavikāgnimitra p. 20) and in Bhavabhūti (Vīra-Charita p 93). and the further elaboration of the figure here is scarcely open to the criticism bestowed upon it." *Cf.* also Māl. IV. 1 where 'Love' is compared to a tree. **दर्शयिष्यति** will show; he speaks with confidence; he knows that Chāna.'s plans will never miscarry. **देशकाल०**—A politician must make a proper choice of the time and place for carrying out his plans; *cf.* परार्थं देशकालज्ञो देशे काले च साधयेत् । स्वार्थं च स्वार्थकुशलः कुशलेनार्थकारिणा ॥ K. n. V. 30. The comps. may be dissolved as बुद्धयो जलानीव बुद्धय एव जलानि इति वा, देशकालौ कलशा इव देशकालावेव कलशाः, चाणक्यनीतिर्लतेव चा० तिरेव लता इति वा and so the fig. will be उपमासाङ्गरूपकयोः संदेहसंकरः.

आर्यचाणक्येन &c.—See pp. 54, 130. **किल**—is used here in the sense of 'a feigned action,' see com.; he did not really want to go to Pāṭaliputra. **यावदस्य** &c.—Because Siddh. wished that he should not succeed in going out of the camp, but that he should fall into the hands of Malayaketu's men and thus open the door to his future scheme. **ता जाव से आदित्तदंसणेण** &c. *v. l.*—Here Siddh. must be supposed to refer to the object of his journey which he apprehends might be frustrated by the Kshapaṇka's sight. But since he does not avoid the latter's sight this does not seem to be the original reading.

P. 246. **अलहन्ताणं**—अर्हतः or अर्हद्भ्यः (to be read as—त्ताण for the metre.). Buddhist or Jaina saints: lit. the followers of अर्हत्. The Gen. for the Dat. or Acc. In Prākṛta there is no Dative, and therefore when the idea of the Dative is to be expressed the Gen. is used for it. **गम्भीर**—profound, acute enough to fathom the truth.**लोकोत्तर**—uncommon, not followed by the common run of men. लोकेभ्यः लक्षणया लोकप्रतिपन्नमार्गेभ्यः उत्तराः । **मार्गैः**—This may refer to the eightfold path leading to the cessation of suffering first pointed out by Gautama to his five old disciples, *viz.* (1) Right Belief, (2) Right Aspiration; (3) Right Speech; (4) Right Conduct, (5) Right means of livelihood, (6) Right Exertion; (7) Right Mindfulness and (8) Right Meditation (Mahvagga I. 6). "A more perfect system of self-culture" remarks Mr. R. C. Dutt, "was never proclaimed by philosopher or saint". Or मार्ग may signify 'the fourfold roads to saintship'. These are the four means,—the will, the exertion, the preparation and the investigation, by which Iddhi is acquired. **सिद्धि**—called by the Buddhists Iddhi—salvation or a state of perfection. In later Buddhism Iddhi means supernatural powers. For other particulars, see Dutt's Civilisation in Anciant India, ch.

XIII. The Com. remarks that according to the A'rhats or Jainas salvation consists in the constant upward tendency of the human soul resembling the rising of a gourd when immersed in water.

समुद्वहन्—The carrying out or hence preparing for. Cal. Eds. read समुद्दसन्तलणकिद० (समुद्रसन्तरणकृत०) which means 'bent or intent on some arduous task.' शकुनः—It is difficult to see what this means. शकुन in the sense of an omen is *neu*; again no omen is mentioned here. So it probably means (the tone of) the song sung by you (see A.'s Dic.), a pun being intended on the word मार्ग.

मुण्डत०—You are locking the stable-door when the steed has been already stolen. Certain days of the month (*tithis*) and constellations (*nakshatras*) are regarded as unpropitious for shaving. Hence the appropriateness of the remark. Kshap. means that he is too late in consulting the constellations as he has already set out on his journey.

P. 248. अनिवारितः —Uncontrolled. free. निर्गम०—Better read ०प्रवेशौ आस्ताम्. The sing. stands for the dual by the maxim प्राकृते लिङ्गवचनमतन्त्रम् । अमुद्रालाञ्छितः—without having a pass-port (lit. a seal-impression). It is not easy to see whether a paper bearing an impression of the ring was given or the impression was made on the outer coat. The use of the word लाञ्छित shows, however, that the latter is more likely. मा प्रवेश्यसे—notice the use of मा with the indicative. It is not unusual to find this particle used for the sake of force with other tenses and moods than the Imperative, or the Aorist; *cf* मा कस्यापि तपस्विनो हस्ते पतिष्यति Śāk. Act II. मा कश्चिन्ममाप्यनर्थो भवेत् Pt. V. मा नाम देव्याः कादंबर्या एत्र किमप्यनिष्टमुत्पन्नं भवेत् Kād. p. 441- मेदानीमेषा परहस्तगता भविष्यति Māl. Mād. Act. VII. गुल्मा०—The officers of or in charge of the *Gulmas*. Gulma means a small company or band of soldiers posted at different stations or out-posts (called *chaukis* in Marā.) round the camp of an army for keeping guard or giving the signal of danger, &c. See Manus. VII. 190. गुल्मः......सैन्यरक्षणे इति विश्वः । गुल्मः also means a subdivision of Akshauhiṇi (see Amara II. 8. 81); but that is not meant here.

संन्निहितः—अहं is to be supplied from the context सावेगम्—With agitation or impatience. We have inserted this from the com; see the Com'.s explanation. Kshap. who was really Induśarman, Chān.'s trusted friend (see p. 38) must have known Sid, but the latter appears. from the contest-to have been ignorant of the former's real character. पिशाचस्य वा—Kshapaṇaka wants to show by this that he is somehow dissatisfied with Rākshasa; but Siddh. fails to notice this. Mark the pun on the word Rākshasa which also means a demon. मा कुप्य &c.—Siddh. fears lest the mendicant's anger might thwart his wishes.

P. 250. प्रवेशकः—See com. प्रवेशक or 'the Introducer' is an interlude acted by inferior characters and is meant to acquaint the audience with what has occurred in the interval of the Acts and what is going to happen thereafter. It thus serves as a connecting link between two Acts. It differs from a विष्कम्भक in that it can never occur at the beginning of the first Act. The प्रवे० here shows that Siddh., according to Chāṇakya's instructions tries to leave the camp of Malayaketu, that Malayaketu and his army are near the city and that Kshapaṇaka also wishes to leave the camp. This information is necessary to the audience to understand the subsequent events represented in the Act. वैचित्र्य—Manifold, or unique character. मुहुः &c.—In this sl. the policy of Chāṇakya is comared to the course of Fate. The commentator identifies policy with the plot of a drama basing the identification on the use of the terms लक्ष्य, बीज &c. which are commen to dramaturgy also. See com. for explanation. नश्यद्बीजा—The Bīja was नश्यत् (going to be destroyed) owing to Rākshasa's attempts to alienate Chánakya from Chandragupta, but was not नष्ट owing to the former's frustrating them सम्पूर्णाङ्गी—having its parts developed, *viz.* (1) The desertion of Bhāg. and others and their taking service under Mala. (2) Śaka.'s escape and his joining the company of Rákshass; (3) Siddhár.'s staying with Rák., at Chana.'s advice; (4) his acceptance of the presents from Rak., and his depositing them with the latter under his seal. उद्भेद—its shooting up, *i. e.* its workings. प्रापितफला—As when Bhāg. succeeded in creating distrust about Rākshasa in Malayaketu's mind while listening to the conversation of the former with his spy. अधिगमा०—०भावेन गहना. अधिगम

comprehension. **कार्यवशतः**—as the purpose to be accomplished at a particular time requires it to be. **चित्राकारा नियतिरिव**—*Cf.* हतविधिलसितानां हि विचित्रो विपाकः । Śis. XI. 64.

आस्थान०—आतिष्ठन्त्यस्मिन् । अधिकरणे ल्युट् (अन; मण्डप a pavilion of tent for holding a council meeting, &c. **एवमपि**—goes with स्नेहवान्; although kind to me to such an extent. Bhāg. feels remorse for his treacherous conduct; but he has sworn fidelity to his master, and the thought soon dispels his uneasiness.

P. 252. **विमुखः**—Mark the force of this word. He consciously does not take notice of the things. **क्षणिक०**—क्षणिकमपि *v. l.* here अपि is without any force. **धन०**—indicates 'want of proper consideration.' Bhāg. means—When a man has once sold his independence for pelf which is but momentary, he has passed the stage of reflection, and is thenceforth bound faithfully to carry out his master's bidding. The time for consideration was before he entered service. **कुर्वाणः**—Habitually carrying out or executing. The affix आन here shows habit; see Pān. III. 129; H. Sans. Gr. § 671. **विमृशति**—stands for विमृशेत् or-तु.

चाणक्यनिराकृतेन—निराकृतः चाणक्यः येन । The परनिपात of निराकृत must be explained by classing it under the आहिताग्नि group; *e. g.* अग्न्याहितः or आहिताग्निः । *Cf* शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा । Kum. V. 30. It would be easier to take the comp. as चाणक्येन-निराकृतः; but Malaya. was not likely to know the real facts. **कृतिना**—not for his having discarded Chāṇakya but for having obtained the *rājya.* Such is the com.; we may also take कृतिना with ०निराकृतेन—who is happy since he has done what he ought to have done; see the addition in the com; the comp. ०निराकृतेन also thus becomes simple. **स्थैर्यं भक्ति०**—for not only Malayaketu, but even his father, Parvataka, was deeply attached to Rākshasa. **अधिगणयन्**—counting foremost, setting a high value on or reckoning highly. *Cf.* तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात् । Ragh. V. 20. **इत्यारूढ** &c.—There are only two alternatives mentioned above, which are not sufficient to make the mind whirl like the potter's wheel.

विजये मुहूर्तं &c.—shows the childishness of Malaya. and the hold Bhāg. had on his guileless mind. See com.

P. 254. **अये राक्षसस्य**—From this it appears that Bhāg. did not know that Kshapaṇaka was one of Chāṇakya's spies and a conspirator with him. Chāṇakya, in order to secure greater secrecy, seems to have taken the precaution to keep his emissaries (with a few exceptions) ignorant of one another's mission or individuality. Such is also the injunction of the science of politics; *cf.* एते ज्ञेयास्तु सच्चाराः सर्वे नान्योन्यवेदिनः । K. n. XIII. 48. न खलु—has the force of 'you are going &c. are you not ? Or I believe you are going, &c.'

राक्षसस्य पिशाचस्य—Mark how Kṣap. uses the same expression again, to show to Bhāgurāyaṇa that he is not on good terms with Rākshasa now. When questioned as to the wrong done to him by Rākshasa he gives an evasive answer thereby adding to the curiosity of Bhāgurāyaṇa. **प्रणयकोप**—प्रणयेन प्रणयकृतो वा कोपः is anger which does not terminate in destroying friendship, but is evanescent and indicative of real affection **किमपराद्धं भदन्तस्य**—अपराध् generally governs the Loc. and sometimes the Gen. as here. *Cf.* किंपुनरसुरावलेपेन भवतीनामपराद्धं Vik. p. 10. and our note thereon. **हताशः** *V. l.*—lit. one who is defeated in his object (generally a wicked one); hence one whose life has been miserable or accursed. It is generally used as a term of abuse. **आत्मनः**—**कर्मसु**—*v. l.* will not do as it will be an admission of his own bad deeds by the speaker himself which the context does not support. **अश्रोतव्यं**—Something which is either so hard or so disastrous that the hearing of it will cause disgust or pain and which therefore must not be heard; hence sometimes a calamity. *Cf.* p. 318.

P. 256. **अर्थिने**—To one who solicits it. Kshapaṇaka means that Bāgurāyaṇa will implicitly beleive what he so earnestly wishes to hear, and is likely to turn it to the sort of use desired by him. See com. **मलय०–कथं** &c.—Mark the ingenuity of the poet in making Malaya. overhear the conversation between Bhāg. and Kshapaṇaka. It helps considerably to poison Malayaketu's mind against Rākshasa.

निष्कासिष्ये—Pass. Fut.; Kshap. means that Rāk., situated as he is, is not likely so succeed in his treacherous object and that his own ruin might be involved in the doom that would befall his master. **अकार्यं**—अ has the sense of अप्राशस्त्य; कुत्सितं कार्यम् । **चाणक्येन विषकन्यायाः.** &c.–This is at least a falsehood if not a deliberate lie. See p. 38 *supra*. The fact is that the poison-maid was employed by Rākshasa to bring about the destruction of Chandragupta, but was diverted to Parvateśvara by Jīvasiddhi himself.

P. 258. **सुहृत्**—Mr. Telang understands by this the friend of the रिपु, and we have followed him in translating the passage. **मुखात्**—and hence there is no reason to doubt his testimony. The Com. however, takes it has referring to Kshap. and we think this is preferable. Since Malayaketu now calls Rākshasa a *Ripu* it is but natural that he should call Kshapaṇaka from whom he obtains the information, a friend. Mark how rash and hasty in his judgement Malayaketu is. In an instant he calls the Kshap. a friend and Rākshasa an enemy (and in the next stanza, a true Rākshasa or demon).[1] **कृतार्थोऽस्मि**—Because his object, which was to communicate this account to Malaya, was fulfilled beyond his expectation. **मित्रं** &c.—From this it appears that Parvateśvara was a friend of Rāk. before he was won over to his side by Chāṇakya with the promise of the gift of half of Nanda's kingdom.

सह बन्धु०—*Sahokti*; *cf.* पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः । Rag III. 61. The figure consists in coupling two facts so as to strike poetically; *e.g.* छाया संश्रयते तलं विटपिनां श्रान्तैश्च पान्थैः सह । **अन्वर्थंतः**—अनुगतः अर्थः अन्वर्थः तस्मात् Prep. Tat.; *cf.* तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् । Ragh. IV. 12. **भवतु**—Mr. Telang quotes Rāghavabhaṭṭa भवतु इति निषेधे । अस्तु भवतु पूर्यंत इति निषेधे इत्युक्तेः । (see his com. at Śāk p. 129.) and says—it indicates something about to be done, contrary to that to which things were tending before.

Bhāg. being a faithful spy of Chāṇakya sees the necessity for appeasing the anger of Malayaketu, lest Rākshasa's life might be endangered and shapes his following speech accordingly. **अर्थशास्त्रव्य०**—Lit.—of those who act according to the principles of the political science, politicians. **अर्थवशात्**—अर्थ the object or political end to be gained; अर्थस्य वशं तस्मात्.

P. 260. **व्यवस्थ०**—Lit. the setting down of or looking on as, consideration. **लौकिक**—लोके विदितः प्रसिद्धः हितो वा (aff. (ठन्) people acting in private life. **अर्थपरिपन्थी**—अर्थस्य परिपन्थी; परि

---

[1] I think Mr. Telang is preferable. S. B. Yogi

दोषाख्यानं पन्थयितुं to spread or circulate शीलं यस्य । परिपन्थिन् lit. one who points out faults or speaks against and thus prevents another from gaining his object. Hence, coming in the way of; an obstacle. Some derive it as पन्थानं पर्यवष्टभ्नातीति.. In either way it is irregularly derived (निपातनात्). According to Pān. the form is admissible only in the Vedas. But it is sometimes used in *laukika* Sanskṛit also. *Cf.* नाभविष्यमहं तत्र यदि तत्परिपन्थिनी । Māl. Mād. IX. 52. तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ । Bg. III. 34. **नातिदोषमिव**—Bhāg. does not wish to free Rāk. entirely from the guilt of having murdered Parvataka but would rather have Malaya's suspicion about Rāk'.s fidelity grow stronger. Hence this reading is preferable to the reading in the foot-note.

मित्राणि &c.—This sl. gives expression to a great political truth. **अस्मृत०**—A politician led by his interest has to act in a hostile manner towards a friend or *vice versa*, totally forgetting (ignoring) all previous relations; he, in fact, passes from one kind of political existence to another; (in a new birth also one forgets one's deeds in a previous life). See K. n. VIII. 73.

उपग्राह्यश्च—Should be retained in service. **एवं सखे** &c.—This brings out the levity of Malayaketu's mind. With little consideration he believed in the words of Kshapaṇaka and alienated his heart from Rākshasa, his true friend and well-wisher. With as little consideration he now accepts, as proper, the defence of his father's murder made by Bhāgurāyaṇa **अमात्यवधे**—Rāk., as the well-known Minister of the Nandas is here called अमात्य. **प्रकृतिक्षोभः**—*i. e.* the subjects of Kusumapura as well as the followers of Rāk. in Malaya.'s camp.

दोषेषु—*i. e.* in one's behaviour or actions **प्रणमामः**—&c.—shows that that was the age when loyalty to one's master was valued above every other virtue.

P. 264. **परिग्रहः**—A servant. Bhāg. it seems, knew Siddhārthaka and the errand on which he was sent (see his speech at p. 280.) but purposely feigns ignorance here.

स्वस्ति—Invariably marks the beginning of letters in Sanskṛit. **यथास्थानं**—Here the names of the place, the writer of the letter and the addressee and the friends are not purposely written; for had they been written Śakaṭadāsa would not have written the letter. The letter is so worded that by **कोपि** Malayaketu should understand Rākshasa and by **कमपि पुरु०** Chandragutpa, while in **प्रतिपक्ष** he should find a reference to Chāṇakya. **अवगमयति**—informs, writes to say. This was the letter which Chāṇakya got written by Śakaṭadāsa through Siddhārthaka. **कापि**—indescribable, very great. **उपन्यस्त**—But forward for consideration, proposed. **परिपणन**—price for. **सत्यसन्ध:**—refers to Chandragupta and is calculated to excite Malayaketu's jealousy.

P. 266. **स्वाश्रय**—*i. e.* Malayaketu., **उपकारिणं**—*i. e.* Chandragupta. **सत्यव्रत:**—Gen. sing. The letter is couched in terms complimentary to Chandragupta, and is intended to show Rākshasa's high regard for him, **कोषहस्तिभ्याम्**—हस्तिन् is sing. for the pl. (जाताविकवचनम्). **अर्थिन्**—is used with the Instru.; को वत्रेन ममार्थी स्यात्। Mah. Bhār. तुषैरर्थिनः Dk. **०दण्डाभ्यां**—*v. l.* Here दण्ड (army) has no propriety; again further on we have अपरौ हस्तिबलं कोषं च p. 270, and इतरौ हस्तिबलकार्मुकौ p. 294. **अशून्यार्थं**—as an accompaniment; lit. that it should not be unaccompanied by the customary present **वाचिकं**—सन्दिष्टोऽर्थोनया वाच्यते सा वागेव वाचिकम्। स्वार्थे (ठक्) इक. 'वाचो व्याहृतार्थायां' Pān. V. 4. 35. It means 'an oral message or communication.' Important secrets were transmitted orally.

कीदृशः—&c.—What is the bearing of this letter, *i. e.* who may be the writer and who may be the addressee? **धूर्त** &c.—धुर्व् to kill; धूर्व्यते स्म or धूर्तमस्यास्तीति।

युष्माभिः—Siddh, wanted to say युष्माभिर्गृहीतो न जानामि &c. But as he pronounced the words very slowly like one frightened, Bhāg, fancies this to be a reply to his querry. Finding that Bhāg. was angry at this, Siddh. changes this for a more pleasing epithet and says मिश्रैः &c. **मिश्रैः**—मिश्र. is a term of honour generally used as the latter part of a comp. पूज्ये मिश्रपदं नित्यं बहुवचनान्तम्। 'मरीचिमिश्रैर्दक्षेण' इति विष्णुपुराणात्। Jagad. on Māl. Mād. **एष जानासि**—Here you will know it.—Bhāg. means that he will receive a sound drubbing and so will have to confess.

P. 268. **चन्द्रगुप्तस्या**—*i. e.* addressed to Chandragupta. **कुमारस्य**—Gen. for the Dat. **परवान्**—dependent; lit. on having a master. **मलयनगराधिपः**—Malaya is properly the name of a mountain. °नगर therefore means the capital of the territory around the mountain. The Cal. reading 'मलयजनपदाधिपति, therefore, seems preferable.

P. 272. **मामभिद्रुह्यन्ति**—The reading मह्यं &c. is wrong grammatically. The rule is क्रुधद्रुहोरुसृष्टयोः कर्म। **पूर्णमस्मद्बलं** &c.—From this it appears that certain facts were revealing themselves, calculated to create a suspicion, howsoever vague, even in the mind of the guileless Rākshasa, about the real motives of the deserters from Chandragupta's camp, though he soon tries to rid his mind of it. **परिशुद्धि**—Lit. a state of clearness (freedom from misgivings); hence 'ease.'

साध्य &c.—साध्य and the like words herein mentioned are technical terms of *Nyāya* or logic. As these are explained in the elementary treatises on Indian Logic which can be easily referred to, we do not discuss them fully here, but merely indicate their meaning. साध्य is the predicate of a logical proposition corresponding to the major term in the Western Logic ; *e. g.* fieriness in the usual syllogism—The mountain is fiery (has fire on it), because it has smoke on it; and all that smokes is fiery. (पर्वतो वह्निमान् धूमवत्वात्। यो यो धूगवान् स स वह्निमान्। यथा महानसम्। तथा चायं *i. e.* अयं पर्वतः धूमवान्। तस्मात्तथा-वह्निमान्।)

अन्वय—also called अन्वयव्याप्ति is the assertion of the invariable concomittance of the हेतु (the middle term) and the साध्य (हेतुसाध्ययोर्व्याप्तिः), as in the above instance—wherever there is smoke there is fire. **सपक्ष**—A corroborative instance on the same side (निश्चितसाध्यवान् सपक्षः), as a महानस or kitchen where the *Sādhya* (fieriness) is definitely known to be present. **विपक्ष**—an instance on the opposite side (*i. e.* contrary) which is characterised by the definite absence of the *Sādhya* (निश्चितसाध्याभाववान्); *e. g.* a tank (wherein fire cannot exist). **साधन**—generally called हेतु (sometimes लिंग)—the instrument of proof—is the middle term, as smokiness (the mountain has somke) in the above instance. Thus these two lines give the conditions which a good हेतु must satisfy that it should lead to a legitimate conclusion; *viz.* that (1) it (as धूम here) should be known to be present on the Sādhya (here used for पक्ष or the mountain) definitely (this includes the tests of

अबाधितविषयत्व and असत्प्रतिपक्षत्व); (a) it should have अन्वयव्याप्ति with the साध्य; (3) it should be present on सपक्ष (सपक्षवृत्तित्वं); and lastly it should never be found with विपक्ष (विपक्षाद्व्यावृत्तत्वम्.) **सिद्धि**--Arriving at the legitimate conclusion or *anumiti*.

यत्साधनं स्वयमेव साध्यं—Where the middle term is itself the major term (see com.) *i. e.* where, in the language of Western Logic the major premiss is an identical proposition, **तुल्यमुभयोः** (*i. e.* सपक्षविपक्षयोः) as द्रव्य in the case of पर्वतो धूमवान् द्रव्यत्वात्, which is one of the five हेत्वाभासs (and which inclades the two fallacies of European Logic, *viz. Illicit process of the major* and the *undistributed middle*). **विरुद्ध**--(the fallacy of contradiction) is that which proves the absence of the *Sādhya*. **निग्रहः**—discomfiture or defeat, as the Vádī will prove nothing, *Cf.* विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च (contradtction of what is to be proved and absence of proof) निग्रहस्थानम् । Gotama.

In the case of स्वामिन् or king, साध्य means the object aimed at, victory. **निश्चित**—assuredly known to gain victory of proved valour. **अन्वय**—allies, forces of friends. **स्थिति**--attachment to, firmly sticking to the same side. **विपक्ष**—the enemy's side. The Com. shows that Chandragupta has all these on his side. यत् साधनं स्वयमेव साध्यं may mean (1) which is identical with the ultimate object *i. e.* which is rebellious and desires to secure the power for itself; or (2) whose efficiency is yet to be proved. **उभयोस्तुल्यं**—*i. e.* indifferent. **विरुद्ध**—opposed, not, true to the cause of its master but ready to side with the enemy. For other particulars see com. and translation.

P. 274. **परिगृहीतं**—Fully accepted, received with favour **उपजापः**—overtures; see p. 134. **आपूर्ण**—almost or nearly full of. **परिकल्पित**—properly distributed or arranged; *cf.* परिकल्पितसान्निध्या Ragh. IV. 6, also XI. 23. Further on we have कल्पय् in the sense of 'to offer'; see p. 141. śl 21. **प्रयाणे**—At the time of every march or when marching.

पुरस्तात्—In the van. **खश**—The Khas'as appear to be identical with the tribes still dwelling in the Khasia and Garo Hills in the north-eastern part of Bengal. **मगध**—The country of the Magadhas, the modern Bihar. It was also called **कीकट.** **गणैः**—The discontented people of Magadha who had come over to Malaya. deserting chandragupta. "If our text on this point is correct, and all our MSS. read the name as Magadha, the reference is probably to the discontented inhabitants of Magadha, who still followed Rākshasa, repudiating all connection with Chandragupta as a usurper. I own, however, that I have a suspicion, though it is nothing more, that मगध is not the correct reading, but that it should be मगर. If our identification of the Khaśas is right, this rectification is strongly suggested by the fact that the Magara tribe inhabits the Himālayan tracts near Kumaon in the neighbourhood of the Khaśas. According to Mr. Carleylle, the Goorkhas of Nepāl originally belonged to the twin tribes, Magaras and Khaśas. It must be admitted, however, that the emendation here is a mere suggestion, which cannot be accepted at present in the face of the evidence of our MSS. of the Mudrárákshasa."—Telang's Introduction. **मामनु**—*i. e.* Rák. wanted to be at the head of the army, as a capable leader, so that he might keep an eye on all and not allow any one treacherously to leave the army. See K. n. XIX. 45 47. **गान्धारैः**—The people who had settled in the province to the west of the Indus about the modern Pesháwar, and Kandahār. **प्रयत्नः**—an exertion *i. e.* care should be taken about the march of the central division. *cf* महान् हि यत्नस्तव देवदारौ। Ragh. II. 56. प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः Śák. p. 5.

चीणहूणैः—"The Chīnas are the next people who claim attention. Mr. A. Barooah identifies the Chinas mentioned in the Mahābhārata with the Chinese, The Chīnas of our text are probably not to be ditinguished from the Chīnas mentioned in the great epic. But Professor Max Mūller doubts whether in the Mahābhārata the name Chīnas really does stand for the Chinese. However, whether they are to be identified with the Chinese or not, they would seem to belong to somewhere about the north-eastern quarter of India, whether on this side of the Himālaya mountain or the further side. The Hūnas come next, and these are probably to be identified with the White Huns, whose inroads into India are said to have occurred in the fifth and sixth centuries A. D." Telang's Introduction.

P. 276. **अधिकारपदं नाम** &c.—Here Rák. has a vague presentiment of what is coming. *Cf.* राज्यं हि नाम &c. p. 144. *supra.*

भयं तावत् &c.—For similar ideas, com. III. 14. **अभिनिविशते**—Forcibly enters, firmly takes possession of विश् with अभि and नि is Atm. **ततोऽध्यारूढानां**—*Cf.* अत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा। See Śāk. IV. Various Readings p. 8; comp. also,

'They that stand high have many blasts to shake them;
And if they fall, they dash themselves to pieces.'
Shakespeare, King Richard III. Act I. Sc. 3

मतिः—*v. l.* for गतिः means thought *i. e.* the mind. **अनुकूलं**—Used in its literal sense—near the bank, near at hand. **अनुरूपं**—*v. l.* corresponding with its height, commensurate. Fig Kávyalinga (वाक्यार्थहेतुकं).

निश्चलाङ्गीं—*V. l.* going with दृशं is rather peculiar; it means with all its parts steady or motionless. **निश्चलन्ती** is therefore preferred. Perhaps the poet wrote निश्चलांगः. **शून्य०**—*Cf.* गमनमलसं शून्या दृष्टिः &c. Māl. Mād. I. 20. The figures in the śl. are *Upamá* and *Utpreksha*.

P. 278. **प्रतिविधानं**—*Lit.* taking measures against (to counteract) mishaps; hence 'arrangement, dispoition of'. **विज्ञायते**—It is known, *i. e.* I very well understand what you really mean (how you want to betray me). **ताडयमानेन मया** &—Siddhārthaka's conduct in this scene is characterised by the grossest villany. But he cannot help it; he had first to be faithful to his real master; this thought emboldens him to tell to his late master's face such barefaced lies. See above note on दोषेषु p. 264.

P. 280. **आर्यस्य**—The Gen. with कथं is noticeable. **अनृत**—*Cf.* Lat. *ratus.* settled, ratified; *irritus.* **ईदृशस्य** &c.—Bhāg. is simply adding fuel to the fire. **०भूमि**—proper place *i. e.* a fit person or worthy recipient.

P 284 **अलं ताडयितुं**—*V. l.* The use of the *inf.* with अलं is ungrammatical. ताडयित्वा is preferable. It is, however, met with now and then. *Cf.* अलं प्रकृतिसुकुमारमात्मानं खेदयितुम् Ven. Act II.; **०द्रौणायने.** अलमत्यर्थमात्मानं शोकानले प्रक्षेप्तुम् *Ibid.* Act III.

न खलु &c.—This shows that Bhāg. knew that Siddh. was one of Chāṇakya's spies. **आगत्य** &c.—These words are omitted by Mr. Telang. We have inserted these as the context requires them. The words of the Com. also show that he too must have felt the necessity of supplying some such words for a clear understading of the passage.

प्रतिपत्स्यते–*Cf.* संप्रतिपत्ति sl. 18 *infra*; admission, acknowledgement. **अन्यलि०**—प्रतिलिखित *v. l.* does not seem to be the original reading. In the first place the shrewd Bhāg. cannot be expected to send for a copy of the letter as that would have created a suspicion in Śakatadāsa's mind and led him to suspect some foul play. He would have at once recognised it as the same written by him at the instance of Siddhārthaka. Secondly, the word अपर occurring in the next sl. shows that it was not a प्रतिलि० that was sent for. **विभावयिष्यति**—विभावय् to cause a thing to be seen; hence to make clear, to prove. *Cf.* विभावितैकदेशेन &c. Vik. IV. 17.

P. 286. **शकटदासस्तु०**—The meaning may simply be—When I compare the two handwritings the characters seem to agree; but when I call to my mind the fact that Śakaṭa. is my friend, I must say that they do not agree. The Com's view, however, seems to suit the context better. In this case translate—If so, the words Śakaṭa. and friend do not agree.

पुत्रदाराणां—We should rather expect दारपुत्राणां (as in सदारापत्य: Śak. VII); but if the son, as the extender of the family, be regarded as अभ्यर्हित the wife being only a means to the end, we many get पुत्रदारा:. **पुत्रदारस्य**—*V. l.* पुत्राश्च दाराश्च पुत्रदारं Sama. Dvan., by the rule सर्वो द्वंद्वो विभाषया एकवद्भवति । **चलेष्वर्थेषु**–The Loc. is वैशयिक: 'सप्तम्यधिकरणे च ।' Pān II. 3. 36 औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते, स्थाल्यां पचति, मोक्षे इच्छास्ति । Sid. Kau. **अनपायिषु**—not perishing, everlasting. *Cf.* प्रसादाभिमुखे तस्मिन्श्रीरासीदनपायिनी । Ragh. XVII. 46.

कराङ्गुलिप्रणायिनी—*i. e.* absolutely in his possession; *cf.* अङ्गुलिप्रणयी p 44. *supra*. **प्रयोगाश्रयं**—Which is the basis of the enemy's scheme. **शकट**—Stands for Śakaṭadāsa, used for the metre, like भीम for भीमसेन, &c. **कृपणं**—*Cf.* कृपणवत् II. 18.

भूषणवल्लभ—Notice the comp. which should rather be वल्लभभूषण:. The poet has, it seems, placed वल्लभ: latter, following the analogy of प्रिय which may optionally take परनिपात by the rule वा प्रियस्य; प्रियगुड: or गुडप्रिय:. **मुखचन्द्र०**—मुखचन्द्रेण कृतोऽवभासो यस्य । The ornaments are compared to the stars, Parvateśvara's face to the moon and Par. himself to the autumnal evening. In the case of प्रदोष dissolve मुखे चन्द्रेण कृतोऽवभासो यस्य. Fig.s Rùpaka and Upáma.

P. 288. **चाणक्यप्र०**–Some read before this—(प्रकाशम् ।) एतान्यपि; but this is unnecessary after Rāk's reply 'वणिग्भ्य: क्रयादधिगत:' above. **सुश्लिष्टः**—Well arranged, well planned; *cf.* सुश्लिष्टगुणतया and मालत्या अपि स्नेहदर्शनात्सुश्लिष्टमेतत् Māl. Mād. pp. 35, 36. **य आर्यः** &c.—Rāk, means that in consequence of the accusation brought against him, he no longer deserves to be addressed as Ārya. As to the qualities of an Ārya, *cf.* कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता । अद्रोह इति येष्वेतत्तानार्यान्संप्रचक्षते ॥ K. n. XVIII. 50.

न उत्तरं—Not a fit or reasonable reply. **ग्राम्यं**—ग्रामे भवं churlish: hence not weighty or reasonable. *Cf.* the similar admission of guilt by Chārudatta, Mṛch. p. 218.

मौर्योऽसौ &c.—Mark the contrast suggested by the sets of assertions. Malaya. means—there your relation is that of a servant to his master, here the reverse of that; &c. **अयुक्तव्याहारिणा**—*V. l.* speaking in a way to accuse (attack) me; charging me with being treacherous to you. If अभियुक्त (अयुक्त) be taken to mean 'nobly', the speech must be understood as ironical. **निर्णयो दत्तः**—*Viz.* that implied in त्वामनार्यं करोति.

व्यत्ययेन पठति—By repeating the sl. in the manner stated and making the lines questions of appeal, Rākshasa means to suggest that there was no earthly reason for him to act in a treacherous and dishonourable way, as ungenerously supposed by Malayaketu. **इदमिदानीं**—He means—If you accuse me of falsely charging you, how do you account for these?

P. 292. **परिभावधामनि**—The place of humiliation or insult. See III. 14. By परौ भुवोऽवज्ञाने Pān. III. 3. 55, we have both परिभाव and परिभव in the sense of 'contempt,' though the latter is more generally used. *Cf.* के वा न स्यु परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः । **कृतिधियां**—whose notions are definitely formed; of fixed opinions, as contrasted with Malayaketu of wavering mind.

प्रयोग—Use. **विषम**—Lit. what is unevenly or not well placed hence what exposes one to danger, is accompanied by fear; *cf.* Bhaṭṭi. VI. 8. and Bg. II. 2. where विषमे is rendered as सभये स्थाने in the Bhāshya of Śri, Śaṅkarāchārya. Also कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकरविषमे यौवने विप्रयोगः Bhar. Nit. 38.

Here it means dangerous to life, fatal. **विश्रम्भप्रवण:**—विश्रम्भेण प्रवण: well inclined towards, ready to set up to the advice of, through confidence. *Cf.* तपसा तत्प्रवणीकृतो हर:; Kum. IV. 42.

आहित०—should be properly compounded with मन्त्राधिकारे; so it is a comp. सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् (on account of the connection being indicated). Some take मन्त्राधिकारे as referring to Malaya.; but the Com. is right in saying मौर्यस्य; this explains लोभस्य in Malaya's speech above. **प्रलय**—utter destruction. This is the greatest height of villainy and ingratitude. *Cf.* Bhaṭṭi. XVI. 132. मांसविक्रयिण: कर्म व्याघ्रस्यापि विगर्हितम् ।

गण्डस्योपरि &c.—This is adding misery to misfortune. *Cf.* ततो गण्डस्योपरि पिटक: संवृत्त: । Śāk. p. 44. and Shakespeare 'When sorrows come, they come not single spies, but in battalions.' Hamlet Act IV. Sc, 5. Also 'One woe doth tread upon another's heel, so fast they follow,' *Ibid.* Act IV. Sc. 7.

P. 294. **श्वभ्र**—A spacious ditch or pit. **अभिनीय**—अभिनी generally means to gesticulate or act; but here it is used in its literal sense. *Cf.* गृहजनं स्वगृहमभिनीय (*v .l.*) p. 64. Here Malaya. is guilty of an error of policy, *viz*, दण्डपारुष्य; he was also guilty of वाक्पारुष्य. It is such errors which lead a man to ruin; *cf.* स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमं । भहच्च दण्डपारुष्यं......। अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यत: Mah. Bhār. Udyog.; K. n. XIII. 61. **विश्रम्भघाती**—विश्रम्भं घातयति इति one who destroys confidence; here used in the sense of विश्रम्भं दत्त्वा घातयति a destroyer of the confiding. **सर्वात्मना**—Wholly and unreservedly.

त्रिवर्ग—The collection of three, *viz.* धर्म, अर्थ and काम. **दुर्नय:**—bad conduct, injustic. See the Com'.s remark; mark how Malaya. inadvertently compares himself to दुर्नय; how also he is going to destory his Trivarga by his bad policy.

गौडीनां—Gauḍa or Puṇḍra is the ancient name of Northern Bengal. **लोध्रधूली०**—The dust of the *lodhra* flowers was applied by ladies to their cheeks to give them a lustrous appearance. **परिमल**—paint. **बहुल**—increased in size, by being covered or plastered with. **क्लिश्नन्त:**—lit. teasing or troubling, hence diminishing or tempering the deep darkness of. *Cf.* क्लिश्नती कृत्तिमैर्भी III. 20, where the meaning is slightly different.

आत्मलाभ—*cf.* 1. Kir. III. 32, XVII. 29, &c. **उत्तमाङ्ग**—The head. Ragh. VII. 51. Kum. VII. 41. **गजमद०**—The idea is common enough; *cf.* Ragh. VII. 43. This shows that there were many rut-shedding elephants in Malayaketu's army.

करवाणि—What should I do? (implying a little helplessness on the part of the speaker). This use of the Imperative should be noted. *Cf.* Uttar. किं स वत्सः करोतु ।

P. 298. **सवैर**—Because the feeling of animosity must needs lead to प्रवृत्ति and not to निवृत्ति. **नैतच्च** &c. Construe—एतद् न युक्तं भवेत् । यतः कृतघ्नं न चेत् मम चन्दन० चेतः रुन्ध्यात्; but this will not be a proper course for me to follow. For, my heart, if it be not ungrateful (which it is not), would prevent me, &c. The Com. takes कृतघ्नं न चेत् separately—न चेत् if it did not, कृतघ्नं भवेत्. Some construe चेतः कृतघ्नं मां न रुन्ध्यात्; but there is no reason why Rāk. should suddenly call himself कृतघ्न. The reading नैतन्न for नैतच्च is bad; for in that case the construction becomes clumsy; कृतघ्नं चन्दन० मम चेतः न रुन्ध्यात् चेत् एतन्न युक्तं न भवेत्; again if the चेतः is कृतघ्न it would not be चन्दन० रभसं. If we construe—न एतद् this will not do; यतः एतन्न युक्तम्; then the last line will hang loose. Rākshasa means that gratitude for the splendid service rendered by Chandanadāsa will not allow him to do any thing, will jeopardise his life. For रभस in the sense of a strong or ardent desire *cf.* Kir. V. 1. रभसया नु दिगन्तदिदृक्षया; also Ragh. IX. 61.

Act VI

जयति—&c.—Glory to (my veneration to—impliedly; जयतिशब्देन नमस्कृतिराक्षिप्यते). **जलदनीलः केशवः**—For the reverse comparision, *cf*, Mṛch. V. 3, the मेघ is described as केशवगात्रस्याम. **जयनकार्य**—What can be accomplished by means of the instruments of victory (such as an army. fighting &c.); see com. **यावत्**—यावत्तावच्च साकल्ये । Amara. The Cal. Ed.s read—जअति जअणसज्जं जा अकाऊण सेणं (जयति जयनसज्जं या अकृत्वा च सैन्यं) But this reading is not satisfactory, as it is not supported by the context; *cf.* pp. 306, 362. Sl. 15. Here Siddhārthaka realy means to pay his tribute of respect to and express his admiration of his master Chāṇakya, who by his sound statesmanship and wise statecraft accomplished his object without causing much bloodshed and with the least possible trouble to the citizens. It is not meant that he had not to offer battle at all.

P. 300. **तारेशानां०** *i. e.* who gladden by dispelling anxiety. **सुखायमाना०**—experience pleasure in; pres. p. of सुखायते (सुखं वेदयते feels, fr. सुख+क्यङ्). A sincere friend only can find pleasure in his friend's prospesity. **हृदय०**—*i. e.* who are bosom friends. From his complaint in the stanza it appears that Samid. was in prosperous circumstances, as his name also signifies (समिद्ध: *i. e.* well displayed अथ: यस्य); समृद्धा० *V. l.* also has the same significance.

P. 302. **एदस्स निवेद्य**—The Gen. for the Sanskṛt Dat. **प्रियोदन्त**—gladsome news (प्रियश्चासौ उदन्तश्च).

असमीक्ष्यकारी—असमीक्ष्य (without scrutinising or considering) कर्तुं शीलमस्य; acting rashly. **कुशलतायै**—for safety. **कुशलतया** v. l.—here the Instr. may be हेतौ; in order to ensure their safety; or it may mean 'cleverly,. **भयविलोलशेष०**—It is difficult to see the propriety of शेष here unless विलोल be taken to mean 'who fled in terror'. This appears probable from the reading भयविलोलसैन्यतनूकृतपरिवारेषु. Possibly the author wrote अशेष. **पार्थिव**—means here independent kings in alliance with Malaya; सामन्त his feudatories. **देवस्स चन्दउत्तस्य**—The Gen. is irregular; अपरक्त is construed with the Abl. or Loc.; and it must be so translated into Sanskṛt. It may however, be explained by the general rule शेषे षष्ठी. **मुख, निर्वहण**—We have already explained these terms. It is necessary for every good play that there should be perfect harmony between its opening and the end attained. Otherwise the play is defective. So also the beginning of a work and the result must harmonise. Here the poet suggests that this play at least is faultless in this respect.

P. 304. **वयस्य** &c.—Siddh. means—We can only watch the courses that events take, not seek to fathom Chāṇakya's policy; so mysterious are its workings. *Cf.* Bhāg.'s speech at p. 250. *supra.*

अश्रुत—Not properly studied i. e. comprehended or understood. **सारसाधन**—The flower of the army, chosen troops. **प्रतिपन्न**—Properly 'received, brought under his power; hence 'overcome, defeated'. Or it may mean 'attacked'; *cf.* प्रतिग्रह for a similar sense; Ragh. IV. 40. **अतिशय** &c.—This supposes that the fight was still going on. **०जलद्लीलां**—नीला उद्भ्रमन्तः *v. l.*, उद्धमन्त: moving about. The variant, ०नीलामुद्रन्त: is rather mysterious. In this case रुचं must be supposed to be understood. **जात०** —जातकम्पा अत एवोत्तरङ्गाः (looking like heaving waves). **जयन**—abstract noun (जयः).

P. 308. **अतिमुग्धः** &c.—Very green; *cf.* 'How green are you and fresh in this old world.' King John. **अवगाहित**—Lit. entered into, fathomed; hence fully comprehended or grasped. **विलोल**—विलोल is used here as a noun; tumult, agitation. **अनुसन्धीयमानः**—his course being tracked or closely followed. **चरेण**—*i. e.* a spy in Chāṇkya's service. **नाम**—प्राकाश्ये.

P. 310. **जीवितुकामः**—The nasal of the *inf.* is dropped before काम and मनस्. **तदेहि** &c.—Siddh's principle is आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया Ragh. XIV. 46.

षड्गुण &c.—Here by a very happily chosen metaphor, the man compares the policy of Chāṇakya to a rope with a noose at the end which so successfully catches Rāk. **गुण**—(1) a string; (2) for the six *guṇas* see p. 10 and notes. **उपाय**—(1) efforts; (2) means here stratagems or schemes; it does not seem to be used in its technical sense of सामन्, दान &c. *Cf.* II. 2. where Chāṇakya's intellect is compared to a rope. **उद्यता**—०ऋजुआ (ऋजुका) *v. l.* has the same meaning; a rope is kept coiled; when made straight it is ready for operation; hence ready to catch. This gives also a side meaning; Chāṇ.'s policy is at first crooked; full of coils *i. e.* wiles; but when the enemy is caught, it becomes straight, is characterised by generority, as in the case of Rāk.; so this reading is better.

P. 312. **०आश्रयकातरा**—Lakshmī is often described as entertaining such a fear; *cf.* III. 5; for आश्रय see p. 88. **कुलटा**—Mark the Sandhi (कुल+अटा). It is a word of the शकन्ध्वादि group wherein there is पररूपसन्धि.. *Cf.* पतिव्रता चैकपतौ द्वितीये कुलटा स्मृता । Devi Bhāg. IX. 35. **गतानुगतिकाः**—गतमनुगतिर्येषां blind followers, thoughtlessly doing what others do. **कुर्वन्तु**—see our note on करवाणि p. 298. **अथवा**—is पक्षान्तरे; they are not to blame it they have to sit idle. **उत्तमाङ्ग**—the best limb, *i. e.*

the head, being the seat of intelligence; hence the principal person (guiding all affairs). See additional notes. p. 93.

पतिं त्यक्त्वा &c.—Comp. II. 6. 7. **उच्चैः**—is here treated as an *adj.* and so used as the first member of a Bah. comp. **छिद्र**—a loop-hole, a weak point. The Com. explains it by कपटेन but that is not a good rendering. Lakshmī is spoken of as रन्ध्रचला; *cf.* 'श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचलां &c.' Ragh. IX. 15. **स्थिरमपि**—This is more fully explained in the following śloka. **अतद्विध॰**—*i. e.* brought about by magical charms, and not while fighting; better read with the Com. अतद्विधमृत्युयोगे. **शैलेश्वर**—*i. e.* Parvateśvara. **अधिकृत्य**—lit. having placed him in the front, *i. e.* accepeted him as a leader.

विवेकशून्यता—-This complaint of Rāk. is just. It is quite borne out by Malaya.'s unjust dismissal of Rākshasa without even hearing him, and his precipitate order to execute the five princes. See Introduction. **बीजनाशं**—-This reading gives a good sense, but it cannot be taken as Ṇamulanta, as done by the Com.; for, the form is not defensible by उपमाने कर्मणि च (Pān. III. 4. 45), चात्कर्तरि Sid. Kau.; as the intended sense is not बीजं इव नष्टान् but बीजं यावन्नष्टान् (to the very root). There is no propriety in saying who perished as a seed perishes (not to germinate again); anything can be substituted for बीज like that. It may at best be taken as Acc. (भावकर्मन्) governed by नष्टान्; or as बीजस्य नाशो यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा. as an adv. comp. *cf.* सोरस्ताडं *infra*. p. 348. The reading जीवनाशं is faultless, as such a ṇamul is allowed by Pán. IV. 4. 43,. But this is not so forcible as बीजनाशं.

P. 314. **दैवैनोपहतस्त** &c.—-*Cf.* विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः। Bhar. Nīt. 10; and the Latin adage—*Quos deus vult perdere prius dementat.* **सर्वा विपर्यंस्यति**—-is perverted wholesale. The root विपर्यंस् though transitive is used here intransitively; *cf.* विपर्यंस्तं सौधं—further on. The reading सर्वं विपर्यंस्यति (presents everything in a distorted form) presents no difficulty. Fig. अर्थान्तरन्यास.

अरातिहस्तगतः—Supply चेत्; if he falls into the hands of. **अथवा**—is used पक्षान्तरे; *cf.* Ragh. I. 4. **कामं**—has its proper sense here, *viz.* that of अकामानुमतिः *i. e.* adopting a course of action though somewhat against one's will अकामानुमतौ कामं। Amara. Or why should I blame Malayaketu for charging me with perfidy or being faithless to my promise; better to suffer that infamy than &c. **असन्यसन्ध:** &c.—The Com. takes this in connection with Rākshasa's entering into an alliance with Chandragupta (independently of Chāṇakya). But from Rak's tenor of speech this does not seem ṭo be proper. See com. **एतास्ता:**—This shows that Rāk. loved his masters with almost filial piety. **हह**—in this garden. इह, अत्र &c. in the l. refer to particular spots.

शार्ङ्गं—शृङ्गस्य विकार:; a horny bow. चित्रं and प्रजविततुरगं are adverbs. **चित्रं**—see com.; it may better be taken with बाणमोक्ष. **चलेषु**—Skill in shooting down moving game was considered a mark of high attainment in archery. *Cf.* उत्कर्ष: स च धन्विनां यदिषव: सिद्ध्यन्ति लक्ष्ये चले । Śak. II. 5. and our note thereon; Ragh. IX. 49. **भूयसा**—greatly. **दु:खयन्ति**—See com.; a Denom. from दु:खवत्, *matup* aff. being dropped. Fig.s—स्वभावोक्ति, दीपक and विनोक्ति.

कुतश्चित्—From some one. **दशापरिणतय:**—turns or the changes of conditions of life. **वन्ध्यश्रम:**— goes with तस्कर also. **नवेन्दुवत्**—The new moon was looked at, in ancient days, as it is now, with great curiosity by the people. *Cf.* नेत्रै: पपुस्तृप्तिमनावप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम् । Ragh. II. 73. निदर्शयामास विशेषदृश्यमिन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै । *Ibid.* VI. 31.

P. 316. **विपर्यस्तं**—Dilapidated; the literal sense is also prominent. **सौध**—सुधा लेपो अस्यास्तीति *m. n.* **महारम्भ**—(1) mighty effort or elaborate skill; (2) with कुल 'great acts or undertakings.' **रचना**—(1) structure; (2) doing. **शुष्क**—parched up. *Cf.* its opp. आर्द्र which is frequently used in connection with हृदय. Mr. Telang compares Wordsworth's—'the heart are dry as summer dust.' **कुनीतै:**—*P. p.* participles are often used abstractively; *cf.* कलमन्यभृतासु भाषितं (भाषणं) कलहंसीषु मदालसं गतं &c. Ragh. VII. 59. Fig. श्रौती पूर्णोपमा.

उदग्र—Lit. whose raised point can be well seen; hence prominent, large &c. **कूजन्तीनां** &c.—*Cf.* उपारुरोदेव नदत्पतङ्ग: कुमुद्वतीं तीरतरुर्दिनादौ । Bhaṭṭi. II. 4. The reading of the Com. is उदग्रक्लमभूतां which if adopted, must be taken as an epithet of शाखानां ; but then it has not much propriety. The reading क्षताङ्गानां also goes with शाखानां; it must not be taken as qualifying क्षितिरुहां as it will mean 'the branches of which were cutt off' which is absurd. **उपरुदित**—The plaintive cries.

उप has no force; it is used for the saka of metre. But for the metre the poet would have said रुजा रुदतानां...कूजितैः. Fig.s.... हेतूत्प्रेक्षा and उत्प्रेक्षा.

तपस्विनः—Poor, in a pitiable condition. See p. 104. **उदग्रयन्तः**–An unsual word; Denom, fr. उदग्र; उदग्रीकरोति उदग्रयति shows in a prominent way. **छायावियोग**—see the cause of this explained in the com. The trees were left uncared for and were in a decaying condition. They are, therefore, represented as mourning for the loss of the Nandas. परिशोष in the case of mourners means—the parching up of the body owing to grief. छाया means 'bright or lustrous complexion'. The fig. is *Utpreksha*.

विषम०—The Com.'s way of taking the comp. does not seem to be good; rather dissolve ०परिणामे सुलभं तस्मिन्. सुलभ may better (see trans.) be taken to mean—fit for, suited to; see Śāk. IV. 5. (चरणोपभोगसुलभः) and Rāghavabhatta on it. **नान्दी**—नन्दन्त्यस्यामिति a festive occasion, rejoicing. **पटु**—well sounding.

P. 320. **असारं**—weak, not strong (enough to bear the strain) अत एव प्रमृदग्न्. **गुरुता**—intensity. **बहुत्व**—Magnitude. दिशां द्रष्टुं—*cf*. Kād. p. 47. where the fig. is applied to the big branches of the *Śālmali* tree.

सासूयं—Mark the sense of असूया. He does not like to call मौर्यं a king yet. 'गुणेषु दोषाविष्करणमसूया' Sid. Kau. **पिशुनयति**—This is often used in the sense of सूचयति; *cf*. पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः Śāk. Act VII. **कष्टं कष्टं**—&c.—Here the poet very skilfully makes the sounds of rejoicing at the royal palace in the distance fall on the ears of Rāk. just at the time when he was touched by the melancholy scene presented by the ruined mansion and the neglected garden around it. The impression of loneliness and forlornness made on the mind of Rākshasa is thus deepened and he now feels his position more miserable and critical than ever.

अभिनीय—is once more used in is its literal sense. (being led up to it). **अनुभावयितुं**—To make me feel it.

व्यसनसब्रह्मचारिन्—व्यसनमेव समानं ब्रह्म चरतीति । समान is changed to स by 'चरणे ब्रह्मचारिणि' Pāṇ. VI. 3. 16. ब्रह्म वेदः । तदध्ययनार्थं व्रतमपि उपचाराद्ब्रह्म । तच्चरितुं शीलमस्येति ब्रह्मचारी; । a student of of the Vedas; सब्र० a fellow-student in the Vedic studies, and secondarily a fellow student, **व्यसन०** a fellow-student in the school of misfortune; hence a fellow sufferer; one in the same miserable condition as another. *Cf.* दुःखसब्रह्मचारिणी तरलिका क्व गता Kād. p. 279. **भारिक—भारो विद्यते अस्य** hanging over as a load; hence causing pain; or 'very great of weighty' as the Com. takes it.

P. 322. **परमुदासीनाः**—Exceedingly indifferent or apathetic. Mark the effect of the man's words on Rākshasa's mind. Chāṇakya's hand is clearly visible in all this. The puppets move as he pulls the strings. **प्रत्यादिश्**—To order back as worthless, to throw into the background, to eclipse; see com. **निर्बन्धः**—urgent request; importunity; *cf.* निर्बन्धपृष्टः स जगाद सर्वं । Ragh. XIV. 32. **हन्त**—is used here **हर्षे. स मम प्रियवयस्यः** is to be read along with **संप्रति** &c. as one sentence leaving out Rak's intervening speech, Some read after **वृत्तान्त** in Rak.'s speech (प्रकाशं) &c. In this case the man's speech **स मम प्रियवयस्यः** is to be taken as a complete sentence. **विभव**—property, one's belongings; see p. 340.

उद्बध्य—This **उद्बन्धन** is a common device in Sanskṛt plays. See Rat. Act. III. **व्यापादयितुं**—For a similar idea comp. D. K. p. 9. **औषध०**—Baffling or defying the power of medicine: *cf.* वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं । Rag. XIX. 340.

P. 324. **अग्नि०**—Anger is often compared to fire. **०कल्पया**—A little less than, almost equal to. **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ।** Pān. V. 5. 67. नरपतेः क्रुधा *i. e.* **नरपतिना क्रुद्धेन । शान्तं पापं** &c.—Mark how the man seeks to make a good impression about Chandragupta's rule on the mind of Rākshasa. **प्रतिपत्तिः**—the adoption of measures, deeds. **.चन्द्रगुप्तस्य** &c. may have a double meaning (1) **चन्द्रगुप्तस्य ...प्रतिपत्तिः न नृशंसा** Chandragupta's behaviour towards his country (the people) is not cruel; (2) People's actions are not cruel in Chand'.s kingdom. Or नृशंसाप्रतिपत्तिः may be read as one comp. word—नृणां शंसा (the act of killing) नृशंसा; hence cruelty तस्याः प्रतिपत्तिः the adoption of cruelty. **नारीजनं—अनुरञ्ज्** sometimes governs the Acc.; *cf.* वृषलमनुरक्ताः प्रकृतय. । *supra.* **अवशः**—lit. beyond man's control, *i. e.* power to prevent; to which there is no help.

०स्नेहपक्षपात—lit. leaning towards him through affection. *Cf.* चाणक्यस्योपरि प्रद्वेषपक्षपातः p. 162 *supra.* **युक्तं स्नेह०** *v. l.*—see com.; it is but right that my heart &c. **मर्तव्य**—*Pot. p. p.* here used as a noun. (मरण); *cf.* अश्रोतव्यं न शृणोमि. **वत्सल**—'वत्सांसाभ्यां कामबले' Pān. V. 2. 98. The *malup*, aff. ल is added to वत्स and अंस in the sense of 'affectionate towards' and 'strong' respectively.

P 328. **शोकदीक्षां**—दीक्षा properly means 'the initiatory ceremony at a sacrifice'; hence here 'introduction to.' The word is used metaphorically in several senses; *cf.* आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः । Śāk. II. 16. विवाहदीक्षा &c. The fig. here is somewhat analogous to that contained in व्यसनसब्रह्मचारिन्. **कष्टतर**—is equivalent to अतीव कष्टं, no comparison being meant. तर is added merely in the sense of excess.

अभ्यर्ण—Near. अर्दे: सन्निविभ्य: । अभेश्चाविदूर्ये । Pāṇ VIII. 2. 24. 25. इ is not added to the *p. p.* participle in the case of अर्द् after the prepositions सम्, नि, वि. and अभि when the sense is nearness of proximity; समर्ण, अभ्यर्ण, &c.; (otherwise अभ्यर्दित). **अर्थवत्ता**—*V. l.* possesion of wealth, property. The *malup* sense is not prominent here. It is equivalent to अर्थ: । Comp. धातुमत्ता Kum. 1. 4. See, however, Mallinātha's remarks there. **विनिमय**—properly exchange (from में I A.; *cf.* Ragh. I. 26.) hence here a ransom. **परवत्**—परेण तुल्यं like an enemy. **अभिहिंसन्ति**—अभि adds no force; it is used *metri causa.* **तद्यो**—should be properly तं यो. The reason of this violation of gender is given in the com. The reading in the foot-note is better (व्यसनिनि वयस्ये makes better sense). **सति वणिक्त्वेपि**—For merchants naturally love money more than others.

प्रतिपन्नं—'Replied'. Mr. Telang. प्रतिपद् properly means to do or say something in response to another; hence here, it rather means अङ्गीकृतं 'what did he agree or undertake to do? **प्राणहर: दण्ड:**—capital punishment.

P. 330. **आणविदो:**—Mr. Dhruva translates this by आज्ञप्त: which is certainly better. **स गृहजनं याच्यते**—गौणे कर्मणि दुह्यादे: प्रधाने नीहृकृष्वहां । ...लादयो मता: । Sid. Kau. *Cf.* याचित: Rag XI.I.

शिवेरिव—शिविनेव would be a better reading as far as symmetry is concerned. **शिवि**—name of a king renowend for his generosity. On one occasion Indra and Agni came to him in order to try him, assuming the forms of a hawk and a dove in hot pursuit, when he rescued the supposed dove from the clutches of the hawk by offering an equal quantity of his own flesh weighed in a balance. See Mah. Bhār. Van. P. Ad.

197. See p. 146. śl. 5. *infra* "Śivi's is a common story among Buddhists; see *inter alia* Cunningham's Geography p. 82 Fa. Hian, pp. 29, 206, Burgess and Bhagavānlāl's Cave Inscriptions of Western India, p. 87." Telang. सुहृदा विनापि—see the force of this explained in the com. Some take विना in the sense of 'a bird (कपोत in the case of Śivi),' by means of your friend as by the bird. But this is far fetched.

P. 332. निर्स्त्रिशः—निर्गतः (exceeding) त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यः । सजल०—Cal. Ed.s read विगत० resembling the sky free from clouds. The Com. takes सजल separately ; सजलः full of water, sharp-edged and bright. धाराजल, धाराम्भः &c. are very common expressions ; *cf.* निष्ठ्यूतधाराजलबिन्दुदन्तुरेण कृपाणेन' Kād. p. 12. धाराम्भसः फेनमिव व्यक्ति । Vik. Ch. I. 1. It is, however, better to take सजल with जलद to which a bright sword bears resemblance. The meaning of bright is expressed by the comparison. Mr. Dhruva takes करेण in the second line to mean 'a ray' ०श्रद्धा— means here an ardent desire (आदर); *cf.* श्रद्धां विधास्यन्ति सचेतसोऽत्र । Vik. Ch. I. 13. श्रद्धादरे च कांङ्क्षायाम् । इति मेदिनी । Here it is used nearly in the sense of hope (in the hope of being engaged in battle). Mr. Telang quotes–कलयसि कलहश्रद्धया किं त्रिशूलं from Bāṇa's Chaṇḍakauśika, and अपि नाम भवदुपाध्याययजमानस्य निवृत्ता हरचापारोपणश्रद्धा from Prasanna-Rāghava. सत्त्वोत्कर्ष—Its great virtue. The root-sense of सत्त्व is prominent here. It means that quality which enables a thing to keep its *existence* and does not allow it to give way. विवश—no longer my own master, but entirely in the power of मित्रस्नेह.

पिशुनितं—See note on पिशुनयति p. 320. प्रतिपत्तुं—to recognise, to know definitely. *Cf.* भेदप्रतिपत्ति Bhar. Vai Śat. 85. अमात्यपादाः—This is a respectful mode of speaking. *Cf.* आचार्यपादाः, तातपादाः, गुरुपादाः &c. तत्कुरु &c.—We have adopted the order of this and the next two speeches from the Cal Ed.s as that seems to be quite natural. For if Rak.'s speech उत्तिष्ठोत्तिष्ठ &c. be read immediately after अमात्यराक्षसपादा यूयं &c. then that leaves no scope for the man's speech तत्कुरु मे प्रसादं संदेहनिर्णयेन after Rak's clear declaration एष राक्षसश्चन्दनदासं &c.

दुर्गृहीत०—Said in reply to the man's सुगृहीतनामधेयाः। यथार्थो राक्षसः—*cf.* last line of V. 7. ही हीमाणहे–see p. 244. *supra.*

P. 334. चन्द्रगुप्तहतकेन—This he says to show that he is a partisan of the Nandas, and thereby to lull suspicion of being Chāṇakya's emissary, if any such could have been caused by his previous praise of Chandragupta's rule. **घातकजन०**—It does not clearly appear from the play whether the hangmen were really put to death by Chāṇakya's order. Chān. is not likely to do such a thing. Very probably this is a lie and an invention of the spy. Rāk., however does not seem to be inclined to disbelieve him. See śl. 21. **जीवितं परिरक्षन्तः**—Wishing to save their own lives; for the purpose of saving their own lives (lest they should themselves have to share the fate of Śakaṭadāsa's hangmen). The pre. par. term. has the sense of the object for which an action is done; **लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ।** Pān. III. 2. 126. **हेतुः फलं कारणं च ।** Sid. Kau. **त्वरायितः**—expedited, accelerated, *cf.* p. 264 where it means 'made to make haste.'

शत्रोः—*i. e.* of Chāṇakya. **मतेन**—This he guesses from Śakaṭadāsa's supposed treachery and Siddhārthaka's share in the plot as revealed in the fifth Act. **वधाधिकृतः जनः**—persons in charge of the execution of criminals; hangmen, executioners. **क्रोधावेशात्**—Rāk thinks the **आवेश** to be quite unaccountable in that case. **अथ न** &c.—The line as it stands is somewhat obscure. The Com. takes **अथ पक्षान्तरे** and **कृतक** to qualify **तदागम** which follows from the context. Mr. Telang calls this explanation a little forced and takes a **न** with **अथ** meaning 'But if not—that is to say if he was not brought to me with the assent of the enemy.' He then takes **तादृक् कष्टं कृतकम्** in the sense of 'a sinful fabrication' In either explanation we have to take **कृतक** as a noun (which it is not) and understand it in an obscure (**अप्रसिद्ध**) sense. The Cal. reading—**अथ स कृतकं तादृग्लेखं** &c. presents no difficulty of meaning. But it is not supported by the context. For Rāk. believed the letter reffered to as genuine and not as a forged one. On the whole the Com.'s interpretation is the only way out of the difficulty.

तर्कारूढा—Mounted on the wheel of thought, embarking on guesses. **निश्चयं**—**निर्णयम्.**

P. 338. **प्रथमं** &c.—Since on the former occasion when Śakaka was rescued, the executioners were put to death and so now they kill &c. **घातकानां**—The Gen. should better be taken **कर्तरि**; see com; since hangmen put a person to death before the rescuer rescues the victim. The Com. arrives at the same sense in a round about way **कालान्तरेण**—after an interval of time—while Chandanadāsa's critical condition need immediate consideration. **औदासीन्यं**—ऊर्ध्वमासीनः उदासीनः तस्य भाव औदासीन्यं, **व्यापत्तिः**—calamity, ruin. *Cf.* Mṛch. VI. 1. (where the com. renders व्यापत्ति by विशिष्टापत्ति). व्यापत्तिः स्खलितान्तरेषु नियता सिद्धिर्भवेद्वा न वा। Pt I. 307. It may also mean danger to or loss of life; *cf.* Meg. अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः.' **ज्ञातं**—I have it, I know how to act. **निष्क्रयः**—purchase value, ranson; *cf*· Ragh. II. 55. XV. 55

ACT VII.

P. 340. **इच्छत**—The Imper. is meaningless; so read **इच्छथ**.[1] **विषम**—Dreadful or fatal in its consequences. See p. 292 **राजापथ्य**—Lit. what is not wholesome or beneficial to a king; hence felony or treason; *cf.* p. 68 *supra* and the similar scene in Mṛch. Act. X. where Chārudatta is led to the stake. **अकार्यं**—a bad or foul deed (कुत्सितं कार्यं). **सुखां गति**—*i. e.* wish that he should go to heavan (there being no means of saving him).

वध्यवेश—Such as wearing red garments, red garlands, red marks on the body. &c.; *cf.* सर्वगात्रेषु विन्यस्तै रक्तचन्दनहस्तकैः। पिटचूर्णविकीर्णश्च पुरुषोऽहं पशूकृतः ॥ रक्तं तदेव वरवस्त्रिमयं च माला। &c. Mṛch, X. 5. 44; also 3; **शूलं स्कन्धेनादाय**—The condemned criminal, it seems, was made to carry the stake on which he was to be impaled. *Cf.* अंसेन बिभ्रत्करवीरमालां स्कन्धेन शूलं हृदयेन शोकम्। Mṛch. X. 21. **कुटुम्बिनी**—The wife.

P. 342. **चन्द०**—In some Ed.s this speech (upto निर्बन्धः) is put in the mouth of Chandanadāsa's wife, which is decidedly better. For a resolute man like Chandanadāsa cannot be expected to utter such a speech of helplessness. **चारित्रभङ्ग०**—चारित्रं good character, a right course of conduct चरित्रमेव चारित्रं, स्वार्थे अण्। The word is of no rare occurrence; *cf.* अनृतं

---

[1] Imper. (लोट्) does not seem meaningless. Many meanings from विध्यादि will be fit in.
S. B. Yogi

नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणं । Mṛch. III. 27; also 26; I. 43. Ragh. XV. 73. किं चारु चारित्रविलासशून्या: &c. Vik. ch. I. 25. **उदासीन**—*i. e.* those who never meddle with their affairs. **कृतान्तः**—कृतमन्तयतीति । **मुक्त्वा आमिषाणि** *i. e.* for fear of offending the hunters who eat meat. **निर्बन्ध**—An obstinate resolve or course of conduct. The meaning is that wicked people make no scruple to oppress the innocent; *cf.* व्योमैकान्तविहारिणोऽपि विहगा: &c. Pt. II. 23. **दुर्लभास्ते** &c.—*cf.* मित्रं न कश्चिद्विषमस्थितस्य । Mṛch. X. 16. **सबाष्पं-एतेऽस्माकं** &c.—This speech is properly assigned to Chandanadāsa. **कृतनिवापसलिला**—*v. l.* is not so good. For निवापस० is water offered after death, which implies certain death, while the uppermost thought in every one's mind then must have been that Chand. should escape the intended doom; so it will be improper to impute such an idea to them. Some take एते to refer to Vishnudāsa, returning after hearing of Rak.'s attempt to save Chanda;but in that case he could not have been विवर्णदीनवदन. **परिजन**—*v. l.* those that surrounded him (his wife and son). **परलोक**—see com.

P. 346. **व्यवसितं**—Determined or firmly resolved upon. **आत्मानुग्रह**—personal benefit. **संव्यवहार**—honest transactions, fair dealings: *cf.* IV. 14. **प्रसन्ना देवता:**—*Cf.* Chandanadāsa's speech further on **पश्चिमौ**—पश्चाद्भवौ to be seen for the last time **अपश्चिमस्य** or-**योः**—*v. l.* अपश्चिम as a Bah, (नास्ति पश्चिमो यस्मात्) has the same sense as पश्चिम. *Cf.*—अयमत्र ते जन्मन्यपश्चिम:....मकरन्दवाहुपरिष्वङ्ग: Māl. Mād. IX; see Apte's Dic. **चाणक्यवि०**—For Chāṇakya might recklessly do any thing, fears the merchant, ignorant of his real character.

P. 346. **हर्षस्थाने** &c.—For the sentiment comp. I. p. 80. **अवश्यं भवितव्ये विनाशे** &c.—*cf.* धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् । सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति ।। Hit. I. 44. **समुद्वहमानः**—taking upon yourself or carrying out courageously (सम्). **कुलधर्मः**—&c.—This shows that the noble father had a nobler son **सोरस्ताडं**—ताडनं ताड: (fr. तड़ and aff. घञ् *i. e.* अ) उरस: ताडेन सहितं यथा तथा. **पटाक्षेपेण**—This stage direction is used when a character enters the stage hurriedly and without previous intimation. **शूलायतना:**—The executioners; see com.

P. 350. **वधाय**—This is rather ambiguous; the translation follows the com; व: may also be taken as कर्तरि षष्ठी; death at your hands; the reading च वञ्चनापरि० (The infamy of deception, *i. e.* being duped by Chān.) is preferable. **परिभवक्षेत्रीकृतः**—Made the object of ignominy or contempt. *Cf.* for a similar use न हि अल्पीयसा शोककारणेन क्षेत्रीक्रियन्ते एवंविधा मूर्तयः। Kād. p. 217. **वः**—*i. e.* of people of your profession; see com. This is the greatest degradation. **मृत्युलोकपदवी**—for the fastening of the garland prepares the way to the realm of Death.

अमात्य सर्वमपि—&c.—A parallel of this will be found in the story of the two Syracusan youths, Damon aud Pythias. **स्वार्थ एव**—care-worn and utterly thwarted in his object by the diplomacy of Chāṇakya, Rāk. felt life to be quite a burden. Chandanadāsa's death would have been the crowning piece of misfortune. So putting an end to his existence was to his gain as giving him relief. Or **स्वार्थ** may mean 'The object aimed at by me, viz. the saving of your life' which is achieved by giving up my own.

असज्जनरुचौ—असत्यो जनरुचयो यस्मिन्। in which the tastes of the people are quite depraved. Mr. Telang takes this differently—'which does not satisfy good persons. The Kali age is not an age with which good people can be satisfied.'[1] **औशीनरीय**—उशीनरस्यापत्यं पुमान् औशीनरः तस्येदम् of the son of Uśīnara, *i. e.* Śivi. Śivi, son of Uśīnara, king of Kāśi, is mentioned as the author of the first Ṛk.' of Ṛg. X. 12. 179. See Sāyanāchārya's Introduction to the Ṛk. **बुद्धानामपि** &c.—Mark this praise of the Buddhist saints. It is due to their life of self-denial and practice of kindness towards all living creatures. See Com.'s remark. This shows that the Buddhists were yet held in high esteem even by the followers of Brāhmāṇism and bears testimony to the antiquity of the play. For a similar thought comp. वन्द्या त्वमेव जगतः स्पृहणीयसिद्धिरेवंविधैर्विलसितैरतिबोधिसत्त्वैः॥ Māl. Mād. X. 21. See also Śis. XI. 58. **क्लिष्टं**—We have already twice met with this root in this sense. See pp. 168. 296. Fig—Dīpaka and Vyatireka.

P. 352. **बुद्धिपुरुष०—परिसरः**—*v. l.* (used in its literal sense of extent) is not a happy word; it should be प्रसरः.

उत्तुङ्गशिखा०—refers to a fire furiously breaking up. **सदागतेरगतिता** &c.—For the fig. *cf.* स्थविरे केन देवो मातरिश्वा बद्धपूर्वः।

---

[1] or असज्जनेषु रुचिर्यस्य

D. K. p. 100. अनेकपः—(द्विप) used for poetic charm. नैक नक—Two instances where न is not changed to अ or अन्: *cf.* नशयानेन *supra.* अर्णवः—अर्णांसि अत्र सन्ति; irregular. Mark the *anuprāsa* in the śloka. Chāṇakya herein gives expression to the high estimation in which he held Rākshasa's ability. To secure Rāk. was a task as difficult to achieve as any of the four mentioned here. So there is मालानिदर्शना, also अतिशयोक्ति.

नन्दकुलविद्वेषिणा &c.—Chàṇakya was no believer in the power of fate. See the contrary stated at p. 192. He says this here merely to show his modesty and also to magnify the greatness of Rākshasa and thereby to make a favourable impression about him on the minds of his servants.

P. 354. आकरः &c.—Himself trained in the same school of politicians, it is no wonder that Ràk. should not find fault with the foul means used by Chāṇakya to accomplish his end, but on the contrary should express his admiration of him. मत्सरिणः &c.—The prejudices against Chāṇakya being deep-rooted in the heart of Rāk., he is not expected to manifest the ecstatic joy at the sight of Chāṇ. which the latter does at the sight of his political adversary.

कल्पनाः—(1) devising remedies, forming plans; (2) arrangement; or equipment for military purposes; see परिकल्पना p. 362. and śl. 15. *infra.* आयासिता—For it had always to be kept ready for action. मतिश्व मे—Here Chán. indirectly praises himself by saying that his superior intellect only could entrap Rāk.; with him it was only a question of time. Fig. तुल्ययोगिता.

अमात्य इति लज्जाकरं &c.—Rāk. says this for two reasons. Firstly he was no longer an *amātya*; secondly, he could not do justice to that title as all the plans devised by him had met with ill success. कपटलेखम्—Mr. Telang who reads तादृशं लेखमजानन्नेत्र कपटलेखं मया thinks this may be a *ṇamulanta.* But then the *ṇamul* is without propriety. The first 'लेखं' therefore has been dropped (as in the Cal. Ed.s).

आर्तपुरुषः *V. l.*—This is given up in preference to स चापि पु०, as the other things are enumerated without any epithet to qualify them. इत्यर्धोक्ते &c.—This modesty does great credit to Chāṇakya. वीर—Chāṇ. here pays a compliment to Rākshasa, as a brave warrior. नयः—devices of policy.

P. 356. **लज्जित एव** &c.—Chandragupta is somewhat ashamed to find that he had no opportunity given him to display his valour or to know how far he could rely on his own strength.

फलयोगं &c.—Construe—फलेन शल्येन योगमवाप्यापि अनियोगेन उपयोगाभावात् विलक्षतां गतानां लज्जितानामत एवाघोमुखानां मम सायकानां स्वशुचेंव निजतूणीशयनमेव व्रतं तत्र प्रतिष्ठा भवति । The reading न शुचेव... ०व्रतं प्रतुष्टचै (does not bring me satisfaction मम प्रतुष्टचै न भवति) does not add to the poetical charm, as Chandra. introduces the stanza with इति लज्लित एवास्मि. **फलयोग** &c.—The double meanings are explained in the com. **फल**...(1) the fruit; (2) the sharp point. **विधियोगेन** *v. l.*; (1) by the ordainment of providence or the agency of fate; (2) **विपक्षतां** *V. t.*—विपक्ष—(1) the party of the enemy; (2) birds' feathers; see Trans, Feathers were attached to the hinder parts of arrows in order to regulate their motion. *Cf.* Ragh, II. 31; Vikra. ch. X. 3. **अधोमुख**—Their tips are called their **मुख**. Arrows are naturally placed in quivers with their tips downwards. **प्रतिष्ठा**—fixed or permanent position. *Cf.* for a similar idea Kir. XVII. 47. Fig.s—Utprekshá and Ślesha.

अथवा—The next moment Chandra. drives away the feeling of uneasiness and shows that he is pleased at his Guru's achievement. **विगुणीकृत**—See com. **तन्त्र**—administration of kingdom (राज्यं राज्ञः कर्म) ; *cf.* Ragh. XIV. 85. **जागरूकः**—जागरणशीलः; जागृ+ऊक showing habit; जागरूकः Pāṇ. III. 3. 165.

आशिस्—Mark the sense of this word here which means 'a desire'; *cf.* जगच्छरण्यस्य निराशिषः (निरभिलाषस्य Mallī.) सतः किमेभिराशोपहृतात्मवृत्तिभिः । Kum. V. 76. **चाणक्यः राजानं** &c.—see ft. note. This speech is quite out of place here and is therefore, dropped. **संभावित०**—He gave promise of his future exaltation. **क्रमेण** &c.—*Cf.* 1. 6. II. 9. *supra.*

P. 150. **षाड्गुण्य**—षड्गुणा एव षाड्गुण्यं, स्वार्थे ष्यञ् (य). Śis. II. 93. **चिन्तायां**—As regards the deliberation about the use or the proper employment of, *i. e.* the management of state affairs. **आर्ये**—The first refers to Chāṇ., the second to Rākshasa. It is but proper that Chandra., knowing the desire of Chāṇkya, should pay such a compliment to Rākshasa.

स्पृशति—couches (degrades). **भृत्यभावेन**—with the state or condition of a servant; dependence. For, by his foregoing speech Chandragupta showed that he accepted him as his minister, (honourable servitude as Malaya. had put it). **कौटिल्यशिष्यः**—This is very significant. At first Rāk. thinks that Chandra., as a pupil of Kauṭ. calls him आर्य merely as a political device having some secret object in view. But suddenly he remembers what implicit confidence Chandra. had in his premier and thinks that he might have sincerely accepted him as his premier, readily acceeding to the will of his preceptor, and says अथवा &c. **स्थाने**—may be a *prep*. or a noun in the Loc.

द्रव्य—The fit or proper person; *cf*. नाद्रव्ये निहिता काचित्क्रिया फलवती भवेत्। Hil. I **जिगीषु**—lit. one desirous of conquering; hence one stirred by ambition, aspiring; same as विजि०, for which see additional notes. **नेतुः**—the minister at the head of the management of affairs. See Kir. VI. 42. **प्रतिष्ठा**—The word has already occurred twice; II. 5, 9. For the idea *cf*. क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति । Ragh III. 29. पात्रविशेषन्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः । Māl. I. 6. 'क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्' इति कौटिल्यः । Also Hit. quoted above. **शुद्धनयः**—Scheming rightly, unerring in his policy. **कूलजवृक्ष०**—*i. e.* the king by his impolitic meddlings undoes what his minister does, like a stream undermining the tree on its bank (which strengthens it). Fig. अर्थान्तरन्यास based on अप्रस्तुतप्रशंसा and अर्थापत्ति and निदर्शना.

अगृहीतशस्त्रेण—Without accepting the minister's sword. Chān. means to say—we have called you अमात्य and you have merely acquiesed in it. But that is not ratified by my actually delivering over the ministerial sword to you and your accepting it. **गृह्यताम्**—Taking the sword was virtually and formally accepting the ministerial office.

P. 562. **अशून्या०**—अशून्यानि (not vacant or unoccupied) or विद्यमानानि आसनानि येषु. **स्नाना०**—०शयने शयनविषये स्वेच्छासुखैः । **माहात्म्य**—greatness, heroic valour.

परिकल्पना—Being equipped for battle. **व्यतिकर**—contact; constant presence of.' This word has a variety of meanings according to the context. **प्रोच्छून**—much swollen; *p. p.* participle of श्वि with प्र and उत्. Śl. 16.—**स्नेहगुणः**—Many kind acts or excellences of—गुण may mean here, excellence or effect. **भृत्योऽस्मि**—For Rāk. sees no other way out of the difficulty. **व्यापारणीयं**—I have to wield, I am forced to act as minister. **कार्याणां गतयः**—See com; *cf.* **नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ।** Bhar. Nīt. 99.; and Shakespeare. 'Time's glory is to calm contending kings, and turn the giddy round of fortune's wheel'. This may also be taken as—**कार्याणां गतयः चिरादपि नरं विधेः आज्ञाकरत्वं नैयन्ति**–The courses of events take *i. e.* force a man even after a long time (howsoever he may resist them) to yield to fate. **आलोचनागोचरं**—*V. l.* **आलोचना** vision, comprehension; construe **विधेः कार्याणां गतयः नरस्यालोचनागोचरं** &c. This reading is simpler. Fig.s—In the 2nd line **रूपक** and **अप्रस्तुतप्रशंसा** (as the **द्रुमच्छेदन** implies Rāk.'s acceptance of the service of the enemies); in the 3rd l. there is **काव्यलिङ्ग** and in the 4th **अर्थान्तरन्यास.**

P. 364. **आर्यः प्रमाणम्**—*i. e.* it rests with your honour to decide what is to be done with him. **जानीते**—knows what order to pass; *i. e.* he is the responsible minister now. **मलयकेतौ** in dependence on. For the Loc. Mr. Telang compares Manus. II. 67.

प्रतिष्ठित—Established on the throne. The restoration of the kingdom to Malaya. shows that Chāṇ. wished to represent Chandragupta as a Dharmavijayī king. *Cf.* Ragh. IV. 43. **हस्त्यश्वं**—war-elephants and war-horses (necessary for the kingdom). **सर्वमोक्षः**—To order a general release on an exceptional occasion of joy, such as the birth of an heir to the throne, royal inauguration &c., seems to have been a very ancient custom which is still observed in the courts of Indian princes. See Ragh III. 20. **नेतरि**—see śl. 14. *supra.*—**हस्तिभ्यः**— not **हस्त्यश्वं** (Sam. Dw.) as he no longer treats these animals as parts of the army now. **पूणप्रति०**—Rák. being secured as Chandra'.s minister all danger coming from him was past and the Nanda family might now be regarded as extirpated. **बध्यते शिखा**—This gives a good contrast with **मुच्यतां सर्वबन्धनं**; *cf.* the 2nd line of the śl. from Raghu, referred to above; if this be dropped, the śl. would lose its charm.

P. 368. **राक्षसेन**—&c.—It is but meet that Chandragupta should thus express his gratitude to Chāṇakya. **नन्दाश्चो०**—&c.—is specially meant to please Chāṇakya. The sl. is omitted in the Cal. Ed.s and perhaps with better taste. The reference to the annihilation of the Nandaṣ in the very hearing of Rāk., to conciliate whom is the chief object of the drama, is, as remarked by Mr. Dhruva, highly impolitic and unbecoming.

भरतवाक्यं—The concluding stanza is so called as it is repeated by Bharata, (the chief actor) in his character as a *Naṭa* and not as representing any dramatic personage. Here the player who represented Ràk speaks as a *naṭa.* It contains an expression of a wish for a general prosperity &c. on the part of the actors, and forms the concluding Mangala.

आत्मयोनि—here Vishṇu; see Ragh. X. 20. **तनुमास्थितस्य**—*cf.* स्वरूपमास्थाय Kum. V. 84. **यस्य प्राक्**—&c.—*Cf.* Taittirīya A'raṅ. उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । According to the Taitt. Brāhmṇaa it was Prajāpati, afterwards known as Brahmā, who raised the earth out of the boundless waters. According to the Harivaṃśa, the Earth, not being able to bear the weight of the mountains upon it, sank into the unfathomable deep from which it was raised by Vishṇu assuming the form of a Boar. भूत्वा यज्ञवराहोऽसौ द्रागघः प्राविशद् गुरुः । अद्भिः संच्छादितामुर्वीं स तामाच्छंत् प्रजापतिः । रसातलतले मग्नां रसातलतले गतः । प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार च ॥ **अधुना भुज॰**—Mark the contrast; प्राग्दन्तकोटिं; now भुजयुगं as that is proper Vishṇu being in the form of a king now. **राजमूर्तिः**—The king is supposed to be an incarnation of Vishṇu. The king meant here is of course Chandragupta. **म्लेच्छैः**—Although apparently putting the verse into the mouth of Rākshasa the poet really refers to the early invasions of India by the white Huns in which they were worsted. **चन्द्रगुप्तः**—Some Mss. read instead पार्थिवो रन्तिवर्मा and some पार्थिवोऽविन्तिवर्मा; assigning the verse to Chandra. and Rāk.; of these the reading रन्तिवर्मा is rejected by Mr. Telang himself as a copyist's slip for वन्तिवर्मा, the name रन्ति॰ cannot be traced any where. But the same cannot be said of अवन्तिवर्मन्. This was a king of Kanauj or ancient Kañyakubja: see Introduction. But the reference here cannot be reasonably said to be to this king. For he was not a sovereign of great power; nor is he known to have saved India from the pest of the म्लेच्छs. Again it would have looked awkward for Rák. who repeats the śl. although he does it divested of his dramatic character, to have suddenly praised a king other than the one whose confirmation as the sovereign lord of India was just sung in the previous verse. So it appears the poet naturally chose a name in describing whose heroic deeds he would also indirectly praise those of his master. See Introduction. For the fig. based on the identification of Vishṇu with the king, see commentary.

ADDITIONAL NOTES

P. 62.—Foot-note—after णन्दन्ति add पदीओ (प्रकृतयः ।)

P. 62. **संक्षेपतो** &c.—वर्तितव्यं is omitted in Prof. Hille.'s. ed. which is better, as it serves as a direct answer to Chan.'s कथमाविर्भवति.

P. 82. **अमन्तोसधिकुसलो** &c.—is given in a metrical form by Prof. Hillebrandt— वालग्गाहि अमन्तोसहिकुसलो मत्तगअवगरारोहो । राअकुलसेवओक्षित अवस्सं तिण्णिवि विनासमणुहोन्ति ।।

P. 158. **श्रान्तास्याः**—We should have preferred त्यश्रान्तास्य which is more forcible. यदवितथ—The reading अतिवितथवाचोऽपि कृतिनः should have been noticed; (see paper for 1877). It is not a good reading. अतिवितथवाचः means 'uttering exceedingly great lies. अपि has no force after this; even if we construe as कृतिनोऽपि अतिवि० सन्तः; it has no propriety after अभूतैरपि गुणैः

P. 210. **विजिगीषुं** &c.—The reading, विजिगीषुरात्मगुणसम्पन्नः प्रियहितद्वारेणश्रयणीय इति ननु न्याय्यमेवेदम्—which is perhaps a better one, remained by an oversight from being inserted in the foot-notes. **विजिगीषुः**—is thus described by Kàma.—सम्पन्नस्तु प्रकृतिभिर्महोत्साहः कृतश्रमः । जेतुमेषणशीलश्च विजिगीषुरिति स्मृतः । Nit. VIII. 6. The आत्मगुणs are—उद्योगमेधाधृतिसत्त्वसत्यत्यागानुरागस्थिति-गौरवाणि जितेन्द्रियत्वं प्रसहिष्णुता ह्रीः प्रागल्भ्यमित्यात्मगुणप्रवेकः (·णान्वदन्ति । इ. पा.) ।।K. N. XVI. 31.

P. 220. After foot. note 1 add—०स्योद्धरणादसौ किंचित्कार्यं &c.;—स्योद्धरणे सौकयमवश्यं पश्यति । But these reading are bad as they go against the context, as Bhag. śl. object is to prejudice the mind of Mal. against Rākshasa.

P. 226. **व्यसनमभियुञ्जानस्य**—The readings सचिवव्यसनम०, and सचिवव्यसनिनमभि० (an enemy under difficulty owing to, the loss of a competent minister) are better, as better suiting the context.

P. 312. उत्तमाङ्गैरहितैरङ्गैरिव—For अङ्गैः there is a variant नागैः elephants (they live like elephants without their heads); but it has no propriety at all. Perhaps it is due to the elision of the *anuswāra* mark from the reading नाङ्गैश्चिरं, as observed by Prof. Dhruva. This reading which is also a good one should have been noticed. It means—what can they do? they have to be in the present situation; for limbs connot remain long without the head. उच्चैरभिजनं—This is not strictly true; Rāk. calls his master so out of his blind love for him. According to the Vis. P. Nanda's mother was a Śūdrā. Perhaps she was his father's duly married wife, as अनुलोम marriages were allowed in those days, and hence he was a legitimate son; still he was not उच्चैरभिजनः.

APPENDICES.

No. 1.

The Subhāshitas Occurring in the Play.

See Intro.

No 11.

The Metres used in the Play, their definitions and Schemes.

1. Sanskrit verse is regulated by quantity, and not by accent, as in English. A पद्य or stanza consists of four पादs or quarters. A *páda* is regulated by the number of syllables (अक्षरs), or syllabic instants (मात्राs). When the *pádas* are all in one metre, it is called a समवृत्त, to which type most of the metres conform; there are अर्धसमवृत्तs, wherein the first *páda* cerresponds with the third, and the second with the fourth, called respectively the odd and even *pádas*. A third class is विषमवृत्तs which are very rare.

2. The vowels अ, इ, उ, ऋ and ऌ are short, and the rest long. The quantity of a syllable is determined by its vowel. A syllable with a short vowel is called लघु (light), and one with a long vowel is called गुरु (heavy).

3. But a लघु syllable becomes गुरु if it is followed by an Anusvāra or a Visarga, or a conjunct consonant, or when it occurs at the end of a páda.[1]

4. Three successive syllable form a गण (foot). Marking a short syllable as ◡ and along one as—, the different गणs, which are eight in number, may be exhibited as follows[2]:—
य ◡ – – ; र – ◡ – ; त – – ◡ ; भ – ◡ ◡ ; ज ◡ – ◡ स ◡ ◡ –; म – – – ; and न ◡ ◡ ◡, A short syllable is; sometimes indicated in the Definition by the letter ल and a long one by ग.

---

[1] सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत् ।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥

[2] आदिमध्यावसानेषु य-र-ता यान्ति लाघवम् ।
भ-ज-सा गौरवं यान्ति म-नौ तु गुरुलाघवम् ॥

5. Excepting the Párkrit stanzas (I. 17, 18, 19, 21; II. 1, 11; IV. 1, 4, 18, 19, 20, 21; V. 1, 2, 9; VI. 1, 2, 3, 4; VII. 1, 2, 3), the Mudra. represents 18 varieties of metre, which we give below in alphabetical order.

अनुष्टुभ्—(Also called श्लोक). Def. श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥. There are many varieties of this metre, but the one defined is the commonest. Each *Páda* of it consists of 8 syllables, of which the sixth is long and the fifth short, and the seventh in the 2nd and 4th *pādas* is short and in the 1st and 3rd *pādas* long. The rest of the syllables may be either short or long. *Examples*:—I. 3, 16, 24; II. 20, 22; III. 23, 32; IV. 8, 9, 10; V. 14, 17, 22; VI. 15, 18; VII. 7, 8, 12, 13, 17, 18.

आर्या—Def. यस्याः प्रथमे पादे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या ॥. This belongs to the class of metres regulated by number of मात्राs or syllabic instants. The four *Pādas* contain respectively 12, 18, 12 and 15 मात्राs. *Ex.*—I. 5, 6, 9 &c., II. 11, 19. &c. which can be easily recognised.

इंद्रवज्रा—Def. स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । Each quarter has 11 syllables. Sch—त, त, ज, ग, ग. *Ex*—V. 8.

उपजाति—Def. (स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । ल्पेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ॥) अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥ (इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥). An *Upajāti* is a mixture of one or more *pādas* of इन्द्रवज्रा (see above), with one or more of उपेन्द्रवज्रा (11 Syllables, Sch—ज, त, ज, ग, ग), so as to form one stanza. A mixture of other metres also in this manner is called an *Upajāti*. The student is recommended to scan and find out in each case whether a *pāda* is in Indra. or Upendravajra. *Ex*—II. 2; IV. 13.

(**औपच्छन्दसिक**—See मालभारिणी below).

पुष्पिताग्रा—Def. अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥ Odd *pādas*—12 Syllables; Sch.—न, न, र, य. Even *pādas*—13 Syllables; Sch.—न, ज, ज, र, ग. This is an अर्धसम वृत्त. *Ex*—I. 4.

पृथ्वी—Def. जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ।. 17 Syllables. Sch—ज, स, ज, स, य, ल, ग. The pause occurs after the eighth syllable. *Ex.*—VI. 16.

प्रहर्षिणी—Def. म्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।. 13 Syllables.

Sch—म, न, ज, र, ग. The pause occurs after the third Syllable. *Ex.*—I. 7; III. 12; V· 13.

मन्दाक्रान्ता—Def. मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौ नतौ ताद्गुरू चेत् । 17 Syllables. Sch— म, भ, न, त, त, ग, ग. The pause occurs at the fourth and the tenth syllables. *Ex*—VI. 19.

मालभारिणी—(Also called औपच्छन्दसिक, of which it forms a special variety). Def. विषमे ससजा गुरू समे चेत्सभरा येन तु मालभारिणीयम् ॥. Odd *pāda*—11 Syllables. Sch.—स, स, ज, ग, ग. Even *pāda*—12 syllables. Sch. स, भ, र, य. This is an अर्धसम वृत्त. *Ex*—VII. 10,11.

मालिनी—Def. ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । 15 syllables Sch—न, न, म, य, य. The pause occurs after the eighth syllable. Ex. IIII. 15. 25. VI. 1. 3.

रुचिरा—Def. जभौ सभौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः । 13 Syllables. Sch—ज, भ, स, ज, ग. The pause occurs after the fourth syllable. Ex.—II. 3; V. 6.

वंशस्थ—Def. जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।. 12 syllables; Sch. ज, त, ज, र. Ex—VI. 14.

वसन्ततिलका—Def. उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः । 14 syllables. Sch.—त, भ, ज, ज, ग, ग. Ex—I. 8, 10, 26; II. 6, 8, 17; III. 9, 17, 18, 31, 33; IV. 6, 11, 17; V. 7, 16; VI. 7. 13; VII. 14.

शार्दूलविक्रीडित—Def. सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ 19 Syllables. Sch.— म, स, ज, स, त, त, ग. The pause occurs at the twelfth syllable. Ex.—I. 12, 14, 15, 22, 25; II. 4, 5, 9, 12, 13, 15, 16, 18, 21, 23; III. 1, 2, 5, 13, 14, 26; IV. 5, 15; V. 5, 10, 15, 18, 20, 21, 24; VI. 5, 8, 10; VII. 4, 5, 6, 9, 15, 16.

शिखरिणी–Def. रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागाः शिखरिणी ।. 17 Syllables. Sch.—य, म, न, स, भ, ल, ग. The pause occurs at the sixth syllable. Ex.—I. 13; II. 7. 10; III. 3, 4, 7, 8, 11, 16, 29; V. 3, 4, 12; VI. 6, 11, 12, 14, 17.

सुवदना—Def. अश्वैरश्वैश्च षड्भिर्मरभनयभला गः सात्सुवदना ।. 20 syllables. Sch.—म, र, भ, न, य, ल, ग. The pauses occur at the seventh and the fourteenth syllables. *Ex.*—IV. 16.

स्रग्धरा—Def. म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।. 21 Syllables. Sch.—म, र, भ, न, य, य, य. The pauses occur at the seventh and the fourteenth syllables. This is the longest metre in ordinary use. *Ex.*—I. 1, 2, 11, 20; II. 14. III. 10, 19, 20, 21, 22, 24, 27, 28, 30; IV. 3, 7, 12, 22; V. 11, 19, 23; VI. 9, 21; VII. 19.

हरिणी—Def. नसमरसलाग: षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।. 17. Syllables. Sch.—न, स, म, र, स, ल, ग. The pauses occur at the sixth and the tenth syllables. *Ex.*—III. 6; IV. 2; VI. 20.

NO. III.

QUESTIONS FROM THE TEXT SET AT THE BOMBAY UNIVERSITY EXAMINATIONS.

[*N. B.*—Questions repeated are omitted.]

1871.

1 (*a*) Give and criticise the character of Rāk., supporting your remarks with quotations, or at least references to passages from the drama, (*b*) What defects or excellences, if any, do you see in the character of Malayaketu ? 2. Distinguish the fiction from the reality of the Mud., giving shortly your authorities or reasons. 3. Translate closely but idiomatically into English.—(*a*) IV. 22. (*b*) भक्तया...विगणंयन् &c. V. 5. (*c*) भयं तावत्...अतोध्यारूढानां V. 12. (*d*) उच्छिन्नाश्रय...गोत्रान्तरं.... नागैश्चिरं स्थीयते VI. 5. (*e*) पतिं त्यक्त्वा....प्रयातुं नो येषां VI. 6. 4. What figure of speech is involved in *pāda* 4 of (a) ? Who were the Nandas ? Derive the sense of गोत्र in (*d*). A Ms.* reads प्रयत्नं for प्रयातुं in (*e*); which reading is preferable and more likely to be the correct one and why ? What is the exact force of तावत् in l. 1 of (*e*) ?

1877.

1. Translate:—(*a*) I. 8. अश्वै सार्धं.....कविकक्षामैरशून्यासनान्...... VI. 15. 2. Translate the following passages (*a*) I. 16; (*b*) II.

---

* Not one but many. The reading प्रयातुं which occurs only in two of the Mss. consulted by Mr. Telang is probably a mislection for प्रयातं p. p. p. used as a noun in the sense of movements in the matter, actions. But this does not fit in well with विफलयति as प्रयत्न does ; so प्रयत्नं is better.

1. (*c*) प्रत्यग्रोन्मेष....प्रभाणां...निद्राच्छेदा....राकेकरा वः । p. 74. केनानेक.... पंजरे p. 147. 3. (A) Do you suspect any mislection in the following ? If you do, state why, suggesting the proper reading. If the sense is clear as the passages stand, give it. (*a*) कृतकलहं कृत्वा स्वतन्त्रेण त्वया कंचित्कालं......मित्यार्योपदेश.....अथवा.... सदैव स्वतन्त्रा वयम्। कुतः p. 146. (*b*) स्तुवन्त्यश्रान्तास्याः....कार्पण्याददतिवितथावाचोपकृतिनः । (*c*) आप्तैरप्य....त्तमांगरहितैर्नागैश्चिरं स्थीयते। p. 312 (*d*) श्रावितोस्मि.....मां विना ॥ p. 320. (B). Of the two readings in the following which is correct or better and why ?—(*a*) किमन्यत्...गुप्तस्योद्धरणेसौ कार्यमवश्यमवगच्छति—द्धरणान्न किंचित्कार्यमवश्यं पश्यति। p. 220. (*b*) भीम.... च नैकनक्रमकरो...र्णवः। p. 352. 4. (A). IV. 3. Name the several stages in the development of the plot of a play mentioned by writers on Dramaturgy and indicated in this śloka. Analyse the plot of the Mud., and Point., out these stages in it. Translate the śloka. (B) What are the logical fallacies alluded to in the following. and why ?—p. . 272 śl. 10.

1882.

1. Translate:—(*a*) राजा—राज्यं हि नाम &c... । यतः—परार्थानुष्ठाने जडयति (*v. l.* रहयति)...परित्यक्तस्वार्थों (*v. l.* त्यक्तान्यार्थो)...पुरुषः ॥ p. 144. Discuss the various readings. (*b*) फलयोगमवाप्य + मनियोगेन विलक्षतां...स्वशुचेव...व्रतप्रतिष्ठा ॥ p. 356. (2) Explain the following giving the context—(*a*) जाणन्ति तन्तजुत्तिं....उवचरन्ति । (*b*) अत्थाहिमुहे.....अ कदुम्भि ॥ (*c*) विजिगीषुमात्मगुणसंपन्न०......न्याय्य एवामर्थः। (*d*) तथा नामामात्यराक्षसः.....कुसुमपुरमागतः। (*e*) स्मृतं स्यात्पुत्रदाराणां विस्मृताः स्वामिभक्तयः। चलेष्वर्थेषु.....स्वनपायिषु ॥ (3) कार्योपक्षेपमादौ &c.......मस्मद्विधो वा. IV. śl. 3. Explain all the terms in this verse which, relate to Dramaturgy, and state the portions of the plot which those terms refer to. (4) Annotate on and derive:—स्तम्बकरिता, उपजाप, यमपट, दक्षिणद्वारिंकं नक्षत्रं, जीवनाशं नष्टाः, अपथ्यकारिन्. (5) What is the date of Chandragupta and how is it determined ? Justify the remark that the date of Chandragupta is an important link in the determination of Indian Chronology, and mention the places and persons of Chandragupta's time, alluded to in the Mudrārākshasa.

1883.

(1). Contrast the style and sentiment displayed in the writings of Śūdraka and Viśākhadatta and state what you know of the lives of each of those poets. (2) Describe and compare the civil policy of Chāṇakya and Rākshasa. What natural advantage had the former on his side? (3) State what you know of the History of Chandragupta from Greek, Roman, Buddhist or other sources, and give a comparison of the historical account of that king with that given in the Mudrārākshasa. (4) Translate adding a few explanatory notes where necessary. (*a*) I. 2; (*b*) II. 6. (*c*) अस्ति तावत्..... कुसुमपुरम् p. 102. (*d*) ततः समन्तात्...तपस्विनि पर्वतेश्वरे—p. 104. (5) Explain the following (*a*) सासणमल्हि॰....धम्मलाहो होदु—p. 236. (*b*) एसो क्खु...वत्थिदो p. 124. भअवं...प्पमाणीकरेसि; p. 240. To what religious sect does Jivasiddhi belong? Is the author right in calling him as Kshapaṇaka? If not give reasons.

1884.

1. Who is the author of the Mudrārākshasa and what materials are there to determine his date? Examine the play as a dramatic work and point out its defects and excellences. 2. Translate:—(*a*) भर्तुस्तथा कुलषितां....III. 9. (*b*) दुष्कालेपि.... VII. 5. (*c*) शिबेरिव....VI. 11. Explain fully the allusion in (*c*). 3. Explain, giving the context where necessary:—(*a*) तदुच्यतां....एभिरक्षरैः.....लेखं शकटदासेन लेखयित्वा मामुपतिष्ठस्व. (*b*) अस्माभिर–(*v. l.* अस्माकम–).....जिजीविषां (*v. l.* जिजीविषा....अनुगम्यते ॥ (*c*) अस्ताभिमुखे सूर्ये......केतौ । (*d*) प्रतिमानयितव्योमात्यराक्षसस्य प्रथमः प्रणयः। (*e*) अनुपेक्षणे द्वयी गतिर्निगृह्येत वा....प्रतिपाद्येत वा। (*f*) अयं लेखस्याशून्यार्थो भविष्यति। इमामपि.....दर्शय (*g*) अलहन्ताणं....गच्छन्दि ॥ p. 246. (*h*) अज्ज ण रहस्सं णादिगुरूअं किंदुः.....मरणस्स कालहरणं कादुं Discuss fully the various readings in (*b*) 4. (*a*) What is meant by षड्गुण, उन्मेष, निदर्शन, बीज, विमर्ष and यमपट? (*b*) Sketch briefly the character of Bhāgurāyaṇa, stating the part he is made to play in the drama. (*c*) State all the allusions to the Buddhist religion that occur in the play.

1885.

1. Translate:—(*a*) शक्यः खल्वेषः...प्रमाष्टुंमिच्छामि. p. 30. (*b*) III. 98. (*c*) VII. 19. What is the technical name for the verse

and why is it so called? 2. State in what connection the following sentences are used and translate them:—(*a*) अज्ज णं पसादो...करेदि । p. 132. कथं निरुपपद...चाणक्यमिति । p. 196. (*c*) शोणं...शतशः IV. 16. State the meter of this line. (*d*) अतः प्रतिलिखितमस्या...विभावयिष्यति । p. 284. (*e*) वअस्स भद्दभट...अण्णं मुहे अण्णं निव्व्हणे । p. 304. Explain clearly the words underlined in (*e*) and state which portions of the plot in the Mud. are covered by them. 3. What are the different ways in which dramatic writers wind up the प्रस्तावना? Which of them is used in the Mud.? 4. Analyse the character of Chāṇ., giving quotations where necessary. Do you concur in the remark that the policy of this Brāhmāna politician may be regarded as quite Machiavellian? Give fully your reasons. 6. Give the substance of the letter which Chāṇ. made Śakaṭa. write without any address upon it. What part does it play in the *denouement* of Mud.? 7. What different people are mentioned in the Mud? Identify them where you can. Criticise the style of Viśākh., stating the merits and demerits and illustrating the latter. To what time does his play refer? Give the precise meanings of the following:—कल्यवर्तं, हस्त्यश्वम् यमपट, पुरुषकारः, शूलायतनाः, त्रिवर्गः वाक्छलम्, भतार्थः.

1886.

1. What reference is there in the Mud. to the Buddhas and what trait of character does it illustrate? 2. With what object in view did Chān. cause Rāk.'s ring to be delivered to the latter and what purpose is served by the feigned quarrel between Chāṇ. and Chandragupta? 3. Translate:—(*a*) p. 168. sl. 21. (*b*) शाङ्गंकिर्षा०. VI, sl. 9. 4. Discuss the merits of the different readings in the following Passages:—(*a*) भक्तया कार्यधुरं (धुरां *v. l.*) वहन्ति बहवः । (*b*) अथवा न लिखामि पूर्वं—(सर्वं—*v. l.*) मनभिव्यक्तमेवास्ताम् । (*c*) तल्लक्ष्मी.........:मूर्घा–(मूर्ध्ना *v. l.*) वबध्य स्रजम् (*d*) चित्रवर्मादयो मह्य (मा) मभिद्रुह्यन्ति । (*e*) अगृहीतशस्त्रेण भवतानु–(नानु *v. l.*) गृह्यते वृषल इत्यतः संदेहः । (*f*) अथवा अमात्यराक्षसे नेनेतरि किमस्माकं (किं हस्त्यश्वेन *v. l.*) प्रयोजनमिदानीम् । (*g*) विना (सह) वाहनहस्तिभ्यां मुच्यतां सर्वबन्धनम्, Explain (*a*) सत्वभंगभयाद्राज्ञाम् (*b*) मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि; (*c*) शकटदासस्तु.... अक्षराणि. (*d*) सर्वज्ञतामुपाध्यायस्य चोरयितुमिच्छसि. 6. Explain the

meaning of the following :—पंचवर्षदेशीय, परसंवेदन, शात्रव, वाचिक, लोष्ठघातम्, निव्यूढ, वृषलोद्य, उपश्लोकयितव्य.

1887

1. Translate into English :—(*a*) p. 140. sl. 1. (*b*) p. 202 sl. 3. 2. (*a*) What is a नाटक ? What historical facts do you find embodied in the plot of the Mud. ? (*b*) What is a पताका and a प्रकरी ? Refer to any in the Mud. 3. Who were the allies of Malaya. ? What countries were they the servereigns of ? With whom do you identify the Mlechchhas referred to in म्लेच्छैरूद्विज्यमाना &c. in the Bharatavākya ? 4. Explain fully the following—(*a*) p. 98. sl. 11. (*b*) p. 238. sl. 19. (*c*) त्वद्वांछान्तरितानि संप्रति विभो तिष्ठन्ति साध्यानि नः। (*d*) मयापि लेखस्याशून्यार्थं किमपि प्रेपितम् । अयं लेखस्याशून्यार्थो भविष्यति । (*e*) p. 272. sl. 10. 11, 3. 4. (*f*) संवदन्त्य......विसंवदन्त्यक्षराणि......... 5. What Jaina doctrine is indirectly alluded to in अलहन्ताणं... गच्छन्दि. p. 246. 6. What difference in language do you make in (*a*) and (*b*) in question 4, and the verse given under question 5 ?

1889.

1. Translate :—(1) p. 352. sl. 6. (2) p. 146. sl. 6. (3) p. 70. sl. 23. Who utters the first verse, on what occasion, and with what object ? Explain the comp. नक in the last line and give another instance from the play of a similar formation. What is the story about शिबि to which allusion is made in (3). 2. Dissolve the following compounds :—विमलमुक्ता....वक्षस्थले p. 110. Explain giving the context :—(1) त्वदीयसुचरितैकदेशस्यानुकरणं किलैतत् ; (2) अलक्षितनिपाता....दशापरिणतयो भवन्ति; (3) त्वद्वांछा......साध्यानि नः; (4) फलेन संवादितमस्य विकत्थितम् । With what character does the Mud. *actually* commence, and, how is it introduced on the stage ? By what name is this form of introduction known to Hindu critics ? What is your opinion regarding the state of public morality as disclosed by the Mud ? 4. Give the meaning of the following words as used in the Mud.; अभियोग, उपजाप, विकार, स्पश, व्याल, अपवरक, जितकाशिन्, अभिचार, व्यापत्ति, उत्सेध 5.

What means did Rāk employ to destroy the life of Chandra., and how was he forestalled by Chāṇ. in every one of his efforts ? Explain the plot planned by Chāṇ. to bring about a rupture between Rāk, and Malayaketu.

1892.

1. Compare the following characters as sketched in the Mudrārākshasa; (*a*) Chāṇakya and Rākshasa; (*b*) Chandra. and Malayaketu. Cite passages to illustrate your remarks. 2. Dissolve the following compounds:—(*a*) अरिमित्रोदासीनव्यवस्था; (*b*) सजलजलदव्योमसंकाशमूर्तिः, 3. Explain the formation of the following words:—(*a*) निर्व्यूढ; (*b*) प्रोच्छून ; (*c*) अमात्य. 4. Translatc into English:—(*a*) III. 19; (*b*) V. 4; (*c*) VIII. 5.

1892.

1. Translate:—p. 222. sl. 1.; p. 318. śl. 12. 2. Briefly sketch the character of Bhāgurāyaṇa, citing passages to illustrate your remarks. 3. Write notes in English to explain the following passage—कार्योपक्षेप &c. IV. 3.

1893.

1. What allusion do you find in Mud. to the *Nāṭya-sandhis* ? Illustrate these with reference to this play. 2. Give in Sanskṛt the substance of the feigned quarrel between Chan. and Chāṇakya. 3. Translate and explain fully giving the context:—(*a*) द्वयोः सारं तुल्यं द्विषति च विभक्तं सुहृदि च। (*b*) उत्तरोयं लेखार्थः पूर्वः कथमस्तु ? (*c*) उवक्खित्तं अणेण दुट्टेण किवि । (*d*) शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः। (*e*) ये याताः किमपि.........गमने कामं प्रकामोद्यमाः। (*f*) अमन्तोसहिकुसलो वालग्गाही.........विणासमणुहोन्ति ॥ (*g*) अस्माभिर (अस्माकम) मुमेवार्थमालम्ब्य (मवलम्ब्य)....जिजीविषां (विषा) .....कृतघ्नैः । (कृतज्ञैः) नानुगम्यते । (*h*) दुरात्मान् राक्षस दृश्यसे खलु भोः। जागर्ति खलु कौटिल्यः (*i*) सावगा णिरूविदा........अदिक्खणे नक्खत्तें। (j) अहवा ण णिसंसाणां उदासीसु इदरेणेसु वा विसेसोत्थि। (*k*) फलयोगमवप्य....प्रतुष्टयै । Discuss the readings in (*g*) Describe the scheme of Rāk. to baffle the attempts of Chāṇ. and show how the latter

either vigilantly nipped them in the bud or turned them to his own advantage.

1. Translate :—śl. 13 p. 230; कुले &c......क्षणिकमपि लोभांद्धनवति (*v. l.* क्षणिकधनभात्)...विमृशति. p. 252. 2. Explain the following giving the context :—(*a*) सुलभेष्वर्थलाभेषु......शिबिना विना । Explain the allusion. State in what other connection the same story is alluded to in the drama. (*b*) नामान्येषां लिखामि.... चित्रगुप्तः प्रमाष्टु । (*c*) वनराज इव....विनेय । Quote the verse from the Mud. in which the same idea is expressed. (*d*) पर्यय-पातितः......सहस्रधाम्नः । (*e*) विजिगीषुमात्मगुणसंपन्नं......न्याय्य एवायमर्थः । (*f*) संवादे तारेसाणं......दूणन्ति ॥ (*g*) वअस्म मद्दभटप्पमुहा किल...अण्णं मुहे अण्णं निव्वहणे (*h*) कार्याणां गतयो......आज्ञाकरत्वं चिरात् । 3. Write in Sanskṛt a commentry on either of the following :—(*a*) अपामुद्वत्तानां &c. III. 8. (*b*) मुहुर्लक्ष्योद्भेदा..... । V. 3. What do you understand by the dramatic terms पताका and प्रकरी ? Explain them fully with special reference to the Mud. 5. Discuss the date of Viśakhadatta.

1895.

(1) Discuss the date of the Mudrārākshasa. (2) Translate into English :—III. 3, 5. VII. 5. (3) Explain :—(*a*) V. 10; (*b*) पाऊण निरवसेसं &c. II. 11. (*c*) अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः । (*d*) अधिकारपदं नाम.....शङ्कास्थानम् । (*e*) मयापि लेखस्याशून्यार्थं किमपि प्रेषितम् । (*f*) त्वमपि स्वाधिकारमशून्यं कुरु । (*g*) वैरोचनपुरःसरेण पदातिलोकेन लोष्ठघातं हतः । (*h*) दुराराध्या......आत्मवद्भिरपि राजभिः । (4) Write grammatical notes on लोष्ठघातं औशीनरीयं. 5. Contrast the character of Chāṇ with that of Rākshasa.

1886.

1. Translate :—(*a*) चन्द्रोपरागं.....बुधयोगः । (*b*) p. 320. śl. 14. (*c*) p. 158. sl. 15. 2. (*a*) Define प्रस्तावना and mention which kind of प्रस्तावना is indicated by आः क एव &c. above. (*b*) Sketch briefly the character of the two kings alluded to by द्रव्यं and अद्रव्यं in verse 1 (*b*). 3. State in what connection the following sentences occur. ? (*a*) दैवेनोपहतस्य.....विपर्यस्यति. (*b*) दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति. (*c*) मम तावद्यद्भवति तद्भवतु. (*d*) अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः । 4. (*a*) Give the meaning of अस्मत्तो न किंचित्म-

रिहास्यते; संभावितमेवेदमस्मद्विधैर्भवत:; आत्यन्तिको विश्लेष: । (*b*) Derive जितकाशी, सांवत्सरिक, निष्कासिष्ये, परायत्त:.

1960.

1 Translate into English ;—(*a*) आरुह्यारूढकोपस्फुरण . . . नन्दाः पर्याय॰ हताः पश्यतो राक्षस्य ॥ (*b*) पितॄन्भ्रातॄन् ... वणिजः ॥ (2) Explain with reference to the context :—(*a*) फलयोगमवाप्य . . . न शुचेव . . . व्रतं प्रतुष्ट्य ॥ (*b*) न खल्वनिश्चितार्थं &c. p. 284. (*c*) पूर्वमनृतमिदानीमासीदिति परस्परविरोधिनी वचने । (*d*) दिष्टया न सचिवायत्ततन्त्रोऽस्मि । (3) Quote or refer to passages where the poet makes his characters attribute human feelings to objects not human.

1902.

I. Translate into English :—(*a*) III. 21. (*b*) स्वस्ति यथास्थानं . . . श्रोतव्यमिति । pp. 264. 266. Explain the several references contained in (*b*). II. Explain with reference to the context :—(*a*) कायस्थ इति लघ्वी मात्रा । (*b*) अयं कुसुमपुरवृत्तान्तज्ञो भवत्प्रणिधिरिति गाथार्थः । (*c*) नमः सर्वकार्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय ।. III. (*a*) Give a description of the जीर्णोद्यान in English. (*b*) State what you know of Chandragupta and the dynasty to which he belonged. (*c*) Discuss the character of Chānakya. (*d*) Write notes on :—औशीनरीयं यशः, अर्हतः प्रणमामः, बुद्धानामपि चेष्टितं . . . क्लिष्टम्, and श्रावक. IV. Explain all the mythological allusions in the following stanza :—कर्णेनेव &c. III. 15.

1913.

I. Translate into English :—(*a*) परार्थानुष्ठाने &c., III. 4; (*b*) परिकल्पितविभागैर्भवद्भिः प्रयाणे प्रयातव्यम् ।. *N. B.* what was the order of the army as commanded by Rākshasa ? (*c*) निर्स्त्रिशोऽयं &c., VI. 19. Explain and give the context of :—(*a*) एकमपि नीतिबीजं बहुफलतामेति यस्य तव । (*b*) आकाशं . . . कृत्तिमैर्भीम् । III. 20; (*c*) अहो सुश्लिष्टोऽभूच्छत्रुप्रयोगः । (*d*) वहसि दोर्घां सिद्धिं चन्द्रस्य वलेन गच्छन् । (*e*) दासीकृतस्य मामधना विज्ञापनायां मुखरीकरोति कौटिल्यः । III. How does Viśākhadatta impress upon the mind of his reader that clear head and quick decision in availing of an opportunity is a sign of true political genius ? *Or*, How does the play teach that success in politics is due as much to the capacity of the principal officer as to the help of true and capable assistants ? IV. (*a*) Give the meanings and etymology of the following words as used in the Mudrá. :—स्तम्बकरिता, सांवत्सरिक, वाक्यभेद, वाचिक, आत्मसंवेदन. (*b*) Name other Sanskrit plays the Introductions in which present a similarity to that of the Mudrā., and notice the special points in which they do so. (*c*) Briefly mention the sciences which the poet of the Mudrā. seems to have mastered to some extent. Give reasons for your remarks.

QUESTIONS FROM THE TEXT SET AT THE BOMBAY UNIVERSITY EXAMINATIONS.

[N. B. Questions repeated are omitted.]

1924.

I. (*a*). To what does Mudrārāksasa owe its unique position in the Hindu Theatre ? *Or*, What is the conception of a good dramatist according to Viśākhandatta, and how far has he executed in his Mudrārāksasa ?

(*b*) Write a note on the date of composition of the Mudrārāksasa. *Or*, Discuss the remark :—

> "It is plain that the sympathy of the reader is expected for Chāṇakya and his party, while it is equally plain that the policy of Chāṇakya is not remarkable for its high morality".

II. Explain fully *any five* of the following :—

(1) V. 10 11. 1, 2; (2) VII. 19. 11. 3, 4; (3) II 19; (4) IV. 8.

(5) न शक्नुमो वयमार्यस्य मतिमतिशयितुम्। सर्वथामात्यराक्षस एवात्र प्रशस्यतरः। (6) न खल्वनिश्चितार्थमार्यचाणक्यप्रणिधयो ऽभिधास्यन्ति।

III. Translate into English .—

(*a*) VI. 11 (6) VII. 5.

NO. IV.

Index of Important words.

(The figures refer to the pages this edition)

अतिभारिक 322
अतिशी (verb) 154,160
अद्रव्य 360
अध्वग 200
अनुविद्ध 154
अनेकप 352
अन्तरा 162, 166
अन्वय 272
अपथ्य 68, 178, 340
अपरक्त 30, 38, 210, 304
अपराग 176,226
अपरोप 126
अपलपन 158
अपवरक 44
अपवाहित 30, 124
अभिचरण 224
अभिजन 312
अभिजात 88
अभिद्रुह् (verb) 56,88,272
अभिनिविश् (verb) 276
अभियुज् (verb) 26, 172
अभियोग 22, 26, 32, 88, 228
अभ्यर्ण 328
अर्थिन् 256, 266
अवबोध 136
अशून्य 100
असिपुत्रिका 110
आकलय् (verb) 108
आकेकर 170
आगस् 154
आजि 208
आत्मगुण 210
आत्यन्तिक 220
आप्त 32
आभिरामिक 210
आयति 224
आरण्यक 76
आस्थान 250
आहितुण्डिक 80, 94
उत्सिक्त 154
उत्सेकिन् 76
उदग्रथ् (verb) 318
उदन्त 302
उदास् (verb) 32
उद्ग्रथ् (verb) 10
उद्विज् (verb) 144
उन्निद्र 202
उपकण्ठ 314
उपचर्य 144
उपजाप 88, 134, 274
उपरज् (verb) 12
उपराग 14

उपवाह्या 110
उपश्लोकय् (verb) 136, 214
उपांशु 108
उपालभ् (verb) 166
उपालम्भ 278
उपोद्घात 140
उरीकृत 226
ऐकान्तिक 230
औशीनरीय 350
कटक 252
कनकदण्डिका 110
कमलालया 86
कलय् (verb) 276
कल्प 324
कविक 210, 314
कशा 306
कापुरुष 208
कामचार 106
काम्बोज 102
कार्पण्य 158
कालपाशिक 56
कुड्य 158
कुनीत 318
कुलाल 252
कुलिश 352
कृतक 146, 336
कृत्ति 168
कृपाणी 112
कृष्णिमन् 296
कौमुदी 216
कौमुदीमहोत्सव 150, 216
क्षपणक 32, 40, 120, 244, 294
गण्ड 294
गतागत 84, 200, 280
गन्धगज 86
गाथा 98
गुल्म 248, 262
ग्लानि 224
घटा 102, 234
घातक 54
चक्रवाल 170
चटुल 174
छद्मन् 98
छल 64
जवनिका 352
जिजीविषा 122
जितकाशिन् 134, 212
जिह्म 168
जीविका 82
तन्त्र 74, 80, 358
तिमि 174
तूणी 356
तूर्य 126
तोरण 110, 112
त्रिवर्ग 10, 296
त्वरायित 264
दण्डनीति 32
दण्डपाशिक 56
दम्य 142
दाक्ष्य 106
दान 86
दुःशीलता 22
दून 216
दूषण 194

देशीय 44
देहली 46
दौवारिक 200
द्वितय 26
धूमकेतु 20
धूली 296
नभस् 148
नशयान 30
नान्दी 320
निकष 332
निकार 68,120
निदर्शन 228
नियति 86
निर्बन्ध 322, 342
निर्मोक 318
निर्वहण 314
निर्वापित 334
निर्व्यूढ 120
निवाप 208
निशामय् (verb) 304
निषादिन् 110
निस्त्रिंश 332, 334
निह्नु (verb) 2, 292
पटल 158
पटुता 140
पत्ति 104
परिक्लेश 62
परिणाह 44
परिपणन 22, 264
परिपन्थिन् 260
परिपाटी 216, 310
परिभाव 292
परिभूति 222
परिमल 296
पारसीक 102
पारिप्लव 102
पार्वण 152
पितृवन 190
पिशङ्ग 160
पिशुनय् (verb) 320
पिशुनित 334
पुरंध्रि 88
पुरातनी 100
पुरुषकार 184, 352
पुलकित 332
पुष्कल 220
पेटक 82
प्रकृति 40, 60
प्रकोष्ठ 20
प्रगुणय् (verb) 164
प्रगुणीकृ (verb) 76
प्रणय 94, 366
प्रणिधि 30, 42, 98
प्रतिपत्ति 324, 364
प्रतीहार 124
प्रत्यासत्ति 206
प्रदोष 288
प्रवण 292
प्रश्रय 166
प्रसर 144
प्रह्व 364
प्राकृत 42
प्रोच्छून 362
फल् (verb) 118

फल 356
बाह्लीक 102
बीजनाशम् 314
बीभत्स 234
भदन्त 248, 256
भव्य 126
भूतधात्री 368
मात्रा 42
मुख 304
मुखर 232
मुखरीकृ (verb) 364
मुखरय् (verb) 166
मुद्रा 52, 132, 244
मुधा 140
मौर्य 90, 138, 154
यमपट 34, 36
युक्तरूप 122
योगचूर्ण 114
रक्ष् (verb) 4
रस 32, 88, 100
रहय् (verb) 144
राजराज 164
राजि 314
लिंग 32
लोष्ठघातम् 112
वंश 362
वणिज्या 60
वशा 110
वसा 190
वाचिक 266
वारबाण 110
विकच 148
विकत्थन 192
विकल्प 108, 252
विजिगीषु 194, 210
विट 156
विधेय 140
विपक्ष 272
विप्रकृत 228
विभावय् (verb) 284
विलक्ष 356
विलोल 308
विशिख 90
विश्रब्ध 248
विश्रम्भ 32, 260, 292
विषकन्या 30, 40, 104, 256
विसंवद् (verb) 38, 286
वृषल 22, 30, 114
वृषली 312
वैतालिक 21, 168
वैशस 104
व्यंजन 30, 136
व्यसन ब्रह्मचारिन् 322
व्यवसाय 308
व्याघात 104, 188
व्यापात्ति 338
व्यापारय् (verb) 52
व्यायाम 182
व्याल 196
व्युत्तिष्ठमान 30
शक 102, 274
शब्दायित 58
शरण 158
शरासन 102

शात्रव 86
शारद 62
शालभ 20
शिल्पिन् 108
शुश्रूषा 166
शूलायतन 348
श्यान 148
श्वभ्र 294
संवद् (verb) 286
संवाद 284
संवादित 68
संवेदन 70
संव्यवहार 60, 346
संस्था (verb) 144
संकाश 332
संज्ञा 54
सटा 352
सदागति 350
सनामन् 16
सपक्ष 272
समीहा 290
समुद्रक 82
संप्रतिपत्ति 290
सहभू (समभू) 22
सहस्रधामन् 106
सहोत्थायिन् 32, 328
सांवत्सरिक 106, 234, 240
साकम् 152
साधन 272
साधय् (verb) 94
साध्य 272
सार 70
सुरङ्गा 104, 116
सूत्रवार 106
सोच्छ्राय 276
सोत्सेव 210
सौहार्द 138, 178
स्तनंधय 230
स्तम्ब 296
स्तम्बकरिता 8
स्तूप 158
स्थगिका 244, 292
स्पश 156
स्फोट 294
स्मय 138
स्मरय् (verb) 60
हव्यवाह् 190
हिण्ड् (verb) 44
हृदयेशय 184
हैडिम्बेय 106

ERRATA—अशुद्धि-पत्र

PAGE AND LINE	ERRATUM	CORRECTED FORM
12. 4	ब्रह्मणानाम्	ब्राह्मणाम्
24. 2	मुंखर्	मुंखैर्
30. 9	भाचारवेदिनो	भाषाचारसञ्चारवेदिनो
32. 8	प्रयोजमनुष्ठेयम्	प्रयोजनमनुष्ठेयम्
34. 4	कार्यं	कार्यं
44. 19	निष्क्रामन्नेव	निष्क्रामन्नेव
50. 2	निष्क्रान्तः	निष्क्रान्ता
56. 2	शकटदसो	शकटदासो
56. 4	शल	शूल
58. 12	तादवद्यद्भवति	तावद्यद्भभवति
60. 15	स्मरयन्ति	स्मारयन्ति
64. 2	तृणानाग्निना	तृणानामग्निना
64. 9	देशान्तर	देशान्तरम्
66. 4	लज्जा	लज्जाम्
66. 9	चद्रगुप्त	चन्द्रगुप्त
76. 2	एषाहम्	एषोऽहम्
80. 2	आहितुण्डिका	आहितुण्डिकः
80. 4	सर्पनराधिपावुपचरन्ति	सर्पनराधिपउपचरन्ति
84. 1	मूर्ति	मूर्तिं
100. 2	मष्श्रुः	श्मश्रुः
102. 4	माकृत्य	माकृष्य
102. 15	पारिप्लुवाम्भः	पारिप्लवाम्भः
104. 1	राक्षसोऽतं	राक्षसोऽन्तं
108. 9	पवर्तक	पर्वतक
126. 10	प्रमथनीम्	प्रमथिनीम्
152. 1	रवायमानाः	रन्वीयमानाः
154. 14	नन्दाऽसौ	नन्दोऽसौ

156. 8	प्रतीप	प्रतीपं
165. 1	द्वितीयोऽङ्कः	तृतीयोऽङ्कः
168. 1	कारस्त्रिविधां	कारास्त्रिविधां
172. 1	आकण्य	आकर्ण्यं
180. 8	नाप्यरितुष्यतो	नाप्यपरितुष्यतो
182. 1	पूवः	पूर्वः
188. 9	मत्सनिन्	मत्सरिन्
190. 9	स्नतबहल	स्नुतबहल
202. 7	निशां	निशा
206. 12	दपसारण	दपसारणा
206. 16	कञ्चुकिनो	कञ्चुकिना
228. 4	मेवानवर्तन्ते	मेवानुवर्तन्ते
240. 2	संवादयत	संवादयतु
244. 1	स्थागिका	स्थगिका
244. 3	वद्धिजल	वृद्धिजल
270. 10	मलयनगराधिप	मलयनगराधिपः
278. 17	तत्	तत
280. 14	लेख	लेखं
288. 9	प्रदोष	प्रदोषः
290. 13	स्वाभ्यत्र	स्वाम्यत्र
296. 8	ध्रूमयन्तः	धूमयन्तः
312. 5	आप्त	आप्तै
316. 9	रमणीता	रमणीयता
318. 7	निबन्धन्ति	निबध्नन्ति
320. 2	नान्दीनाद	नान्दीनादः
320. 7	द्यैर्घ्यं	दैर्घ्यं
326. 9	परु०	पुरु०
330. 2	भाणतेन	भणितेन
330. 3	संयमि	संयमितः
334. 10	आश्चर्य	आश्चर्यं
342. 10	चण्डालानुगती	चण्डालानुगतो
342. 13	भङ्गभीणां	भङ्गभीरूणां

344.	2	मनुषा	मानुषा
346.	2	आत्मानुग्रही	आत्मानुग्रहो
348.	7	भूर्ध्यांघ्राय	मूर्ध्न्याघ्राय
348.	13	ग्रृहीत	गृह्णीत
350.	11	रक्षतां	रक्षता
354.	14	दृष्टिपूर्वं	दृष्टपूर्वं
364.	3	वृष्ल	वृषंल
364.	4	गृहितोऽसि	गृहीतोऽसि
364.	14	परिक्ष्यन्ताम्	परिरक्ष्यन्ताम्
366.	8	पृतथिब्या	पृतथिव्यां
366.	10	वाहहिनस्तभ्यो	वाहनहस्तिभ्यो